# दो शब्द

भारतीय विश्वविद्यालयों की उपाधि परीक्षाओं के लिए अब तक
"मानवविज्ञान" विषय पर हिन्दी में एक भी पुस्तक न थी। जब मैं विश्व-
विद्यालय में अन्वेषण सम्बन्धी कार्य करता था तो मेरी यह प्रबल धारणा
थी कि सामान्य मानवविज्ञान "(General Anthropology) पर हिन्दी
में कोई ग्रन्थ लिखूं। आज १५ वर्षों के अनथक प्रयत्न के बाद मैं अपनी
इस इच्छा को पूरा कर पाया हूँ। मानव विज्ञान' विषय पर हिन्दी में लिखा
जानेवाला यह पहला ग्रन्थ है। इसमें पहला प्रयास तो यह किया गया है कि
मानविज्ञान जैसे कठिन एवं नीरस विषयका कोई अंग छूट न पाए जिस
से परीक्षार्थियों को कठिनाई प्रतीत हो। यद्यपि इतने विस्तृत विषय को छोटी
सी पुस्तक में लाना पर्याप्त कठिन था तो भी संक्षेप में सभी विषयों का स्पर्श
मात्रकर लिया गया है। भौतिक, सांस्कृतिक तथा प्रागैतिहासिक खण्डों को
पृथक् पृथक् कर दिया गया है ताकी छात्र 'मानविज्ञान' के सभी अंगों का
पृथक् पृथक् अध्ययन कर सकें।

'परिभाषिक-शब्दकोष' पर विशेष प्रयास किया गया है। 'मानव-
विज्ञान के परिभाषिक शब्दों को अंग्रेजी में अपनाना भी उपयुक्त न समझा
गया अतः हमारा यह दावा है कि इसमें एक भी परिभाषिक शब्द अंग्रेजी-
में न मिलेगा। सम्भव है कि प्रारम्भ में छात्रों को परिभाषिक शब्द कठिन
प्रतीत हों परन्तु यदि वे धीरे धीरे उन्हें अपना लेंगे तो भविष्य में उन्हें कठि
नाई न जान पड़ेगी। मौलिक-साहित्य के निर्माण में लेखक सदैव उच्चकोटि के
विदेशी ग्रन्थों का केवलमात्र अनुवाद कर लेते हैं। इस प्रथा को इस ग्रन्थ के
निर्माण में परित्यक्त किया गया है। ग्रन्थों की मौलिकता का सरक्षण करते
हुए उनकी सैद्धान्तिक पुष्टि तो अवश्य की गई है परन्तु ग्रन्थों के उद्धरण-
निरूपण तथा अनुवाद प्रणाली का अनुसरण नहीं किया गया।

आशा, है हिन्दी-जनता तथा छात्र इस ग्रन्थ को अपनायेंगे।

—

# मानव विज्ञान

## पर

## अमूल्य सम्मतियां

१. मानव-विज्ञान (General Anthropology) पर लिखा गया हिन्दी में यह प्रथम ग्रन्थ है। —'हिन्दुस्तान' देहली।

२. भारतीय विश्वविद्यालयों में जहां जहां मानव-विज्ञान (Anthropology) पढ़ाया जाता है-यह ग्रन्थ उनके पाठ्यक्रम में रखने योग्य है।
—'नवजीवन' लखनऊ।

३. मानव-विज्ञान (Anthropology) पढने वाले छात्रों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है। —'स्वतंत्र भारत' लखनऊ।

४. This outstanding publication covers all its aspects on the lines prescribed for the degree courses in most Indian Universities.
—Indrapal Singh, Delhi University.

५. I strongly recommenes this book for all Indian Universities. —Dr. P.C. Viswas, Delhi University.

६. The book has been written to introduce the subject to the serious students and research scholars of Anthropology. —"Pioneer" Lucknow.

७ भारतीय विश्वविद्यालय "मानव-विज्ञान को पाठ्यक्रम में रखकर छात्रों का महान उपकार करेंगे। —'जनसत्ता' देहली।

८. 'मानव-विज्ञान' की गणना हिन्दी के उच्चकोटि के ग्रन्थों में भी जा सकती है। —'नवभारत टाइम्स' देहली।

९. The author has been fairly successful in his attempt to write a comprehensive text book on Anthropology.
'Amrit Bazar Patrika' Allhabad.

१०. हिन्दी में नृतत्व पर यह पहली पुस्तक है। एम०सी० दुबे
—उस्मानिया यूनिवर्सिटी।

Modern printers—Lucknow.
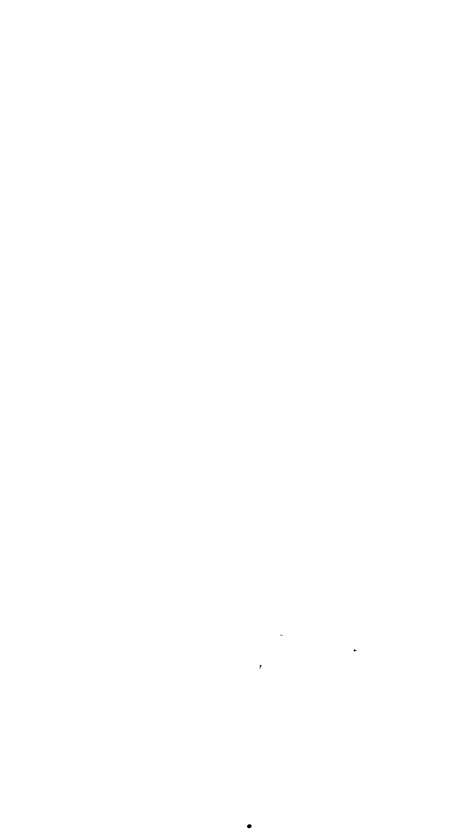
# प्रथम भाग


## विषय प्रवेश

'मानव-विज्ञान' की परिभाषा—मानव-विज्ञान के अंग—भौतिक मानव-विज्ञान—सांस्कृतिक मानव विज्ञान—समाज और संस्कृति—पुरातत्व शास्त्रीय विभाग—नृवंश शास्त्रीय विभाग—समाजशास्त्रीय विभाग—शिल्पकला शास्त्रीय विभाग—मानव शास्त्र तथा समाज शास्त्र—पुरातत्व शास्त्र तथा प्रागैतिहासिक काल—भाषा तथा मानव शास्त्र—मानव शास्त्र तथा अन्य शास्त्र—मानव विज्ञान एक विज्ञान के रूप में—मानव विज्ञान व्यवसाय के रूप में—मानवविज्ञान वेत्ताओं के कार्य की रूपरेखा।

पृष्ठ संख्या १-१५

## पशु, मनुष्य और संस्कृति

मनुष्य और प्रकृति—सजीव प्राणियों की समानता—पशु जगत् की भिन्नता—पशु और मनुष्य में भेद—दीर्घमस्तिष्क—सीधा खड़ा होना—अस्थिभेद—हस्त रचना भेद—सम्भाषण योग्यता—कतिपय अन्य गुण—मनुष्य का सामाजिक महत्त्व।

पृष्ठ संख्या १६-२४

## मानव विकास

मानव विकास की पूर्ववर्ती घटनायें—लेमार्क से स्पेन्सरवाद—मनुष्य का प्राणिशास्त्रीय विश्लेषण—कोषरूप में विकसित जीवन—कोषों के महत्त्वपूर्ण कार्य—आनुवंशिकवृत्तियों में माता पिता की देन—आनुवंशिकता तथा वर्णसूत्रों का सम्बन्ध—वाहकाणु क्या काम करते हैं? मेंडल का सिद्धान्त—मनुष्य का भूगर्भ शास्त्रीय विवेचन—उपकल्प—मध्यकल्प—नूतनकल्प—आदिनूतन—मध्यनूतन—अतिनूतन—अतिनूतन—हिमखण्ड तथा पृथ्वी—वर्षा सम्बन्धी प्रमाण—घाटी तथा समुद्रवर्ती प्रदेश—सर्वनूतन—प्रधानवर्ग—प्राचीन विश्व के वानर—नवीन विश्व के वानर—मानवाकार वानर परिवार—ओरंगुटान—शिपान्जी—गोरिल्ला—वानर तथा मानवाकार वानर में भेद—मानवशाखा का प्रारम्भ—अफ्रीकन वानर की सम्प्राप्ति।

पृष्ठ संख्या २५-६३

## निखातक मानव

निखातकों की कहानी—जावा का वानर मानव—वानर मानव के रूप—रचना भेद—मोडजोकर्टो-मानव—चीनी मानव—चीनी मानव के रूप—चीनी मानव की विशेषता—चीनी मानव का जावा मानव से सम्बन्ध—कन्दरावासी चीनी मानव का जीवन—अफ्रीकन मानव—उष: मानव—उष: मानव का जबड़ा तथा कपाल—मस्तिष्क का आकार प्रकार—उष: मानव का काल निर्णय—उष. मानव सम्बन्धी नई खोज—हीडलबर्ग मानव—हीडलबर्ग मानव का काल—नियन्डरथल मानव—नियन्डरथल मानवों का काल—नियन्डरथल मानव फ्रांस में—जर्मनी, रोम, फिलस्तीन, युगोस्लाविया में नियन्डरथल की सम्प्राप्ति—शरीर रचना भेद—हस्त तथा पाद रचना—मेधावी मानव—ग्राइमाल्डी जाति—रोडेशियन मानव—रोडेशियनकपाल का रूप—सोलो मानव—बोस्कोप मानव—क्रोमेग्नन मानव—वाजक कपाल—स्वैन्सकोम्बे कपाल—निखातक मानव एक दृष्टि में

पृष्ठ संख्या ६४-१०६

## जाति-प्रजाति

जाति की परिभाषा—जाति तथा राष्ट्र—शारीरिक चिन्ह तथा माप—नरमापक यन्त्र, दीर्घव्यास मापक यन्त्र, लघुव्यासमापक यन्त्र, विस्तृत व्यास मापक यन्त्र—सिर तथा आकृति—नाक की ऊँचाई—शारीरिक माप—परिधि माप, भार एवं तोल, त्वचा का वर्ण, केशवर्ण, चक्षुवर्ण बाह्य आकृति-रूप तथा प्रजनन रूप—चुनाव—परिस्थिति का प्रभाव—जनसंख्या और जाति—जातीय सम्मिश्रण—पृथक्करण—प्रत्यावर्तन—जातियों का वर्गीकरण—प्रमुख जातियाँ—श्वेतांग जाति समुदाय—संसार की प्रमुख जातियों के शारीरिक चिन्ह—भारत की प्रमुख जातियाँ—भारतीय प्रान्तों का जातीय वर्गीकरण—आधुनिक जातियों के प्रारम्भ का सिद्धान्त—जाति भाषा तथा संस्कृति—जातीय मनोविज्ञान—जातीय समस्यायें—भारत में जातीय तत्व।

पृष्ठ संख्या १०७-१३८

# द्वितीय भाग

## परिवार

परिवार की परिभाषा—पारिवारिक जीवन का विकास—प्राणिशास्त्रीय उत्कण्ठा, शैशवकाल की दीर्घता, पुरुषाधिकार भावना—निवास

स्थान—मातृ नामी तथा पितृ नामी योजना—वंश, सत्ता—परिवार के रूप—एक विवाह परिवार—बहुपति व बहुपत्नी परिवार—मिश्रित परिवार—विकसित परिवार माता पिता तथा सन्तान—शैशवकाल—शिक्षा—पतिपत्नी सम्बन्ध—पारिवारिक जीवन में अस्थिरता—परिवार का आर्थिक महत्व—पति पत्नी का श्रमविभाजन—अविवाहित परिवार के अंग नहीं—दत्तक सन्तान की सम्प्राप्ति—स्त्रियों की स्थिति।

पृष्ठ सख्या १४०-१५८

## विवाह

विवाह की परिभाषा—विवाह से पूर्व की व्यवस्था—दम्पति की आयु—दम्पति का निवास स्थान—बहिर्विवाह तथा अन्तर्विवाह—वैवाहिक प्रतिबन्ध—बहुविवाह प्रथा—बहुपत्नी प्रथा—बहुपति प्रथा—विवाह पद्धतियाँ—क्रयविवाह, सेवा विवाह, आदान प्रदान विवाह, हरण विवाह, गुप्त एव पलायन विवाह, परीक्ष्यमाण विवाह, गन्धर्व विवाह, अधिमान्य विवाह, भाई बहिन सन्तति विवाह, बाल्यविवाह, मृतक विवाह, देव विवाह, तलाक प्रथा तथा पुनर्विवाह—भारत की वैवाहिक पद्धतियाँ।

पृष्ठ सख्या १५६-१७६

## रक्त सम्बन्ध तथा गोत्र प्रणालियाँ

रक्त सम्बन्ध का स्वरूप—वर्जित प्रथायें—निषेधाज्ञा सम्बन्धी सिद्धान्त—अन्य निषेधाज्ञायें—विशेषाधिकार युक्त मेल जोल—वर्जित तथा अवर्जित अधिकार—भाई बहिन सन्तति विवाह के दुष्परिणाम—देवर तथा स्याला सम्बन्ध—उपहास सम्बन्ध—सन्तति नाम से सम्बन्ध संस्मरण—गोत्र व सम्बन्ध की परिभाषा—परिवार और गोत्र पद्धति में भेद—गोत्र प्रणाली के रूपों का संगठन—गोत्र प्रणाली सम्बन्धी सिद्धान्त—मातृगोत्र व पितृगोत्र - गणचिन्हवाद—गोत्र तथा वंश—गोत्र तथा परिवार में भेद—अर्धांश—भ्रातृ-भाव-पितृ प्रतिबन्ध। पृष्ठ संख्या १७७-२०३

## वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था का स्वरूप—ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था—वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति—वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी सिद्धान्त—जन्म व कर्म से वर्ण व्यवस्था-दलितजाति वर्ग—सामाजिक असमानता अस्पृश्य वर्गों का सामाजिक वर्गीकरण भारत में ४ सामाजिक व्यवस्थायें।

पृष्ठ सख्या २०४-२१२

## सम्पत्ति

सम्पत्ति का आदिकालीन स्वरूप—व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वामित्व—भूमि अधिकार का नियम—'सर्वाधिकार सुरक्षित' सम्पत्ति—साम्पत्तिक अधिकार को सौंपना—उत्तराधिकार-चलसम्पत्ति—वास्तविक अचल सम्पत्ति—सम्पत्ति पर छोटे बड़े का अधिकार।

पृष्ठ संख्या २१३-२२६

## धर्म और जादू

धर्म का स्वरूप- जादू और धर्म—अलौकिक शक्ति में विश्वास—जादू—धर्मसम्बन्धी निषेध—निलिप्सा तथा जड़देवता—चेतनता का विचार—सर्वव्यापक शक्ति—जीववाद-पितृपूजा-पुरोहित तथा मिथ्याधर्मी—स्वप्न तथा दृष्टि—रोग की चिकित्सा प्रेतात्मा का सिद्धान्त-प्रेतात्मा का समाज संरक्षक प्रेतात्मा-देवता तथा शास्त्रोक्त विधिविधान—यौवन सम्बन्धी शास्त्र-विधियाँ-श्मशान सम्बन्धी विधियाँ-जादू की विशेषतायें-सामाजिक जीवन में जादू सम्बन्धी नियम-वर्णित कथा।

पृष्ठ संख्या २२७-२४८

## संस्कृति

संस्कृति का स्वरूप-सामाजिक संस्कृति-संस्कृति तथा तत्त्व-स्थान परिवर्तन-परसंस्कृति ग्रहण-भौतिक संस्कृति-भौतिक संस्कृति का विकास।

पृष्ठ संख्या २४६-२५६

## प्राचीन कला तथा व्यवसाय

कला तथा शिल्प का विकास—मनुष्य यन्त्रकार के रूप में-आखेट तथा मत्स्य व्यवसाय-कृषि-पशुपालन-आग तथा पाक विज्ञान-पाकशास्त्र-वेशभूषा तथा आभूषण-गृह तथा नगर निर्माण-मावरी जाति का सभा-भवन-शिल्प तथा दस्तकारी-कताई बुनाई-पैरवियन का करघा व्यवसाय-पात्र निर्माण-धातुशोधन-लकड़ी पर खुदाई का काम-व्यापार और आवागमन-मनोविनोद-मुद्रा-नृत्य-चित्र संकेत कला-साहित्य-संगीत।

पृष्ठ संख्या २५७-२८०

## जनजाति समुदाय

जनजाति निर्माण व संगठन—जनजाति की सामाजिक स्थिति का ववेचन—धन्त समीकरण—जनजातीय सरकार—शासन प्रणालियाँ—पुन

वास सम्बन्धी योजनायें—भारत की प्रमुख जातियों का वर्गीकरण—कतिपय अन्य जनजातियाँ। पृष्ठ संख्या २८१-३०४

# तृतीय भाग

## प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ

हिमयुग का प्रारम्भ—प्रादिप्रतिनूतन कालीन अवशेष—मध्यप्रतिनूतन कालीन अवशेष—अन्तिम प्रतिनूतनकालीन अवशेष—पाषाण युग—पाषाणयुग के विभाग—उप पाषाण कालीन उपकरण—पूर्वपाषाण युग—आन्तरक तथा शल्कल व्यवसाय—स्ट्रेपियन तथा चैलियन संस्कृति—स्ट्रेपी मानव की संस्कृति—चैलियन मानव की संस्कृति—पूर्व चैलियन तथा चैलियन उपकरण—एशूलियन संस्कृति—मौस्टेरियन मानवों का पाषाणव्यवसाय—पत्थर को छेदने व पीसने की विधियाँ—अस्थि तथा काष्ठादि व्यवसाय—आरिग्नेशियन संस्कृति—आरिग्नेशियन कालीन उपकरण—साल्युट्रियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—मडलेनियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—अजीलियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—नवपाषाण युग—डेनमार्क के ढेर—गृह निर्माण तथा पात्र कला सामाजिक जीवन नव पाषाण युगीय उपकरण—ताम्र युग तथा उसके उपकरण—लोहयुग तथा उसके उपकरण—लोहयुग की संस्कृति—मृतक संस्कार-आवागमन के साधन।

पृष्ठ संख्या ३०५-३४७

## प्राचीन वस्तुकला

प्राचीन वस्तुकला क्या है? अफ्रीका में वस्तुकला—इण्डोनेशिया—आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया, पोलीनेशिया—दक्षिण एशिया—उत्तरीय एशिया—केन्द्रीय एशिया,—मैलानेशिया - माइक्रोनेशिया आदि में वस्तुकला का विस्तार—ओशेनिया तथा अमेरिका सम्बन्ध—भारत में वस्तुकला सिन्धुघाटी की प्राचीन संस्कृति-गृह निर्माण वस्तुकला तथा सामाजिक—संस्कृति—दक्षिण भारत, राजपूताना गुजरात, पंजाब बंगाल तथा मद्रास में खुदाइयाँ—चीन में वस्तुकला का विस्तार—फिलस्तीन में वस्तुकला—ताम्र तथा कांस्ययुग का सामाजिक प्रभाव—बृहत्पाषाण-स्मारक अन्तिमपूर्व पाषाण युगीय गृह तथा कन्दरा कला—हिमयुग।

पृ० संख्या ३४८-३८४

पारिभाषिक शब्द कोष।

पृ० संख्या ३८५-४००

## सम्पत्ति

सम्पत्ति का आदिकालीन स्वरूप—व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वामित्व—भूमि अधिकार का नियम—'सर्वाधिकार सुरक्षित' सम्पत्ति—साम्पत्तिक अधिकार की घोषणा—उत्तराधिकार-चलसम्पत्ति—वास्तविक अचल सम्पत्ति—सम्पत्ति पर छोटे बड़े का अधिकार।

पृष्ठ संख्या २१३-२२६

## धर्म और जादू

धर्म का स्वरूप- जादू और धर्म—अलौकिक शक्ति में विश्वास—जादू—धर्मसम्बन्धी निषेध—निलिम्मा तथा जडदेवता—चेतनता का विचार-अवैयक्तिक शक्ति—जीववाद-पितृपूजा-पुरोहित तथा मिथ्याधर्मी—स्वप्न तथा दृष्टि—रोग की चिकित्सा प्रेतात्मा का सिद्धान्त-प्रेतात्मा का समार संरक्षक प्रेतात्मा-देवता तथा शास्त्रोक्त विधिविधान—यौवन सम्बन्धी शास्त्र-विधियाँ-श्मशान सम्बन्धी विधियाँ-जादू की विशेषतायें-सामाजिक जीवन में जादू सम्बन्धी नियम-कल्पित कथा।

पृष्ठ संख्या २२७-२४८

## संस्कृति

संस्कृति का स्वरूप-सामाजिक संस्कृति-संस्कृति तथा तत्त्व-स्थान परिवर्तन-परसंस्कृति ग्रहण-भौतिक संस्कृति-भौतिक संस्कृति का विकास।

पृष्ठ संख्या २४९-२५६

## प्राचीन कला तथा व्यवसाय

कला तथा शिल्प का विकास-मनुष्य यन्त्रकार के रूप में-आखेट तथा मत्स्य व्यवसाय-कृषि-पशुपालन-आग तथा पाक विज्ञान-पाकशास्त्र-वेशभूषा तथा आभूषण-गृह तथा नगर निर्माण-मावरी जाति का सभा-भवन-शिल्प तथा दस्तकारी-बनाई बुनाई-टोकरियन का करघा व्यवसाय-पात्र निर्माण-धातुशोधन-लकड़ी पर खुदाई का काम-व्यापार और आवागमन-मनोविनोद-जुआ-नृत्य-चित्र संकेत कला-साहित्य-संगीत।

पृष्ठ संख्या २५७-२८०

## जनजाति समुदाय

जनजाति निर्माण व संगठन—जनजाति की सामाजिक स्थिति का विवेचन—अन्त समीकरण—जनजातीय सरकार—शासन प्रणालियाँ—पुन

वास सम्बन्धी योजनायें—भारत की प्रमुख जातियों का वर्गीकरण—कतिपय अन्य जनजातियाँ। पृष्ठ संख्या २८१-३०४

# तृतीय भाग

## प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ

हिमयुग का प्रारम्भ—आदिप्रतिनूतन कालीन अवशेष—मध्यप्रतिनूतन कालीन अवशेष—अन्तिम प्रतिनूतनकालीन अवशेष—पाषाण युग—पाषाणयुग के विभाग—उप पाषाण कालीन उपकरण—पूर्वपाषाण युग—आन्तरक तथा शल्कल व्यवसाय—स्ट्रेपियन तथा चैलियन संस्कृति—स्ट्रेपी मानव की संस्कृति—चैलियन मानव की संस्कृति—पूर्व चैलियन तथा चैलियन उपकरण—एशूलियन संस्कृति—मौस्टेरियन मानवों का पाषाणव्यवसाय—पत्थर को छेदने व पीसने की विधियाँ—अस्थि तथा काष्ठादि व्यवसाय—आरिग्नेशियन संस्कृति—आरिग्नेशियन कालीन उपकरण—साल्युट्रियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—मडलेनियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—अजीलियन संस्कृति तथा उसके उपकरण—नवपाषाण युग—डेनमार्क के ढेर—गृह निर्माण तथा पात्र कला सामाजिक जीवन नव पाषाण युगीय उपकरण—कांस्य युग तथा उसके उपकरण—लौहयुग तथा उसके उपकरण—लौहयुग की संस्कृति—मृतक संस्कार-आवागमन के साधन।

पृष्ठ संख्या ३०५-३४७

## प्राचीन वस्तुकला

प्राचीन वस्तुकला क्या है? अफ्रीका में वस्तुकला—इण्डोनीशिया—आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया, पोलीनीशिया—दक्षिण एशिया—उत्तरीय एशिया—केन्द्रीय एशिया,—मैलानेशिया - माइक्रोनेशिया आदि में वस्तुकला का विस्तार—ओशीनिया तथा अमेरिका सम्बन्ध—भारत में वस्तुकला सिन्धुघाटी की प्राचीन संस्कृति-गृह निर्माण वस्तुकला तथा सामाजिक—संस्कृति—दक्षिण भारत, राजपूताना गुजरात, पंजाब बंगाल तथा मद्रास में खुदाइयाँ—चीन में वस्तुकला का विस्तार—फिलस्तीन में वस्तुकला—ताम्र तथा कांस्ययुग का मामाजिक प्रभाव—बृहत्पाषाण-स्मारक अन्तिमपूर्व पाषाण युगीय गृह तथा कन्दरा कला—हिमयुग।

पृ० संख्या ३४८-३८४

पारिभाषिक शब्द कोष।

पृ० संख्या ३८५-४००

## नवीन अनुसन्धान

*इस पुस्तक मे बंगाल की नवीन खुदाई तथा पिल्टडाऊन मानव की असत्यता पर प्रकाश डालने का विशेष प्रयत्न किया गया है जिससे पाठकवृन्द नवीन विचारधारा से अनभिज्ञ न रहे ।*

—लेखक

# प्रथम भाग

## भौतिक मानव-विज्ञान

# मानव-विज्ञान

## विषय-प्रवेश

"मानव विज्ञान" अथवा "नृ-तत्व शास्त्र" की परिभाषा:—

मानव विज्ञान एक ऐसा शास्त्र है जिसके द्वारा मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति एवं विकास का सम्पूर्ण अध्ययन किया जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक विकास किस प्रकार हुआ? पृथ्वी पर मनुष्य किस रूप में प्रकट हुआ? अपने अस्तित्व को चिरस्थाई बनाने के लिए तथा उसे वर्तमान रूप तक पहुचाने के लिए मनुष्य ने किन २ योजनाओं का आश्रय लिया? मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियां क्या थी? उसके आचार-विचार क्या थे? वर्तमान आविष्कारों के अभाव में आवश्यकता-पूर्ति के लिए उसे किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा? शिल्प, कला, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान उसे किस प्रकार प्राप्त हुआ? इन सब समस्याओं का सम्पूर्ण क्रमिक इतिहास जानने के लिए हमें केवलमात्र मानव-विज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ेगा; क्योंकि मानवजाति के सम्पूर्ण विकास का बोध कराना ही इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है।

मानव-विज्ञान द्वारा जहां हम मानव जाति का क्रमिक इतिहास जान पाते है वहां हम भूगर्भ-शास्त्र सम्बन्धी परिवर्तनों का भी ज्ञान प्राप्त करते है। प्राचीन काल के निखातक प्राणियों (Fossil Men) के अस्थि-पंजर तथा कन्दराओं, चट्टानों अथवा अन्य अवसादों (Deposits) से प्राप्त अवशेष—भूगर्भ-शास्त्र सम्बन्धी परिवर्तनों का क्रमिक इतिहास बतला रहे है। भौतिक मानव-विज्ञान, भौगोलिक जन-संख्या, प्राचीन वस्तु कला, सामाजिक मानव-विज्ञान, आदि कुछ ऐसे विषय है जिनका नृ-तत्व शास्त्र से सीधा एवं प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। मानव शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते समय यदि हम उसके इन अंगों का भलीभांति अध्ययन न करेंगे तो मानवजाति की क्रमिक उन्नति का इतिहास भी अधूरा ही रह जाएगा।

'नृ-तत्व शास्त्र' अथवा मानव-विज्ञान का सीधा सम्बन्ध जनसमुदाय,
तथा उनमें घटित होनेवाली सभी घटनाओं से है। मानव-विज्ञान को कि
दृष्टि से हम प्राणि-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र—दोनों से सम्बद्ध समझ
यह तथ्य है कि मनुष्य एक पशु या प्राणी है और सभ्य एवं सुसंस्कृत
होते हुए उसका अपना ही इतिहास और अपने ही सामाजिक गुण हैं। म
में भौतिक एवं शारीरिक तथा सामाजिक तत्व निहित हैं। जहां अन्य श
मनुष्य के एक ही तत्व की व्याख्या करते हैं वहां मानव-विज्ञान मनुष्य
दोनों तत्वों की व्याख्या करता है। मानवशास्त्री जहां मनुष्य के विकास-क्र
का वर्णन करता है वहां वह मानव जाति के सामाजिक गुणों से भी अलग
थलग नहीं रहता।

जब हम प्रश्न करते हैं कि एक नीग्रो काला और लम्बे सिर वाला क्यों
है ? तो सहज उत्तर मिलता है कि वह पैदा ही ऐसा हुआ था। जिस प्रकार
आनुवंशिक गुणों द्वारा एक गौ बछड़े को जन्म देती है, शेर शेर को तथा चीता
चीते को, उसी प्रकार नीग्रो से नीग्रो की उत्पत्ति होती है। यथा प्रजनन-क्रिया
द्वारा हम वंशपरम्परा के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं और सभी जातियों के
चिन्ह पृथक्-पृथक् मानते हैं तथा इस प्रक्रिया को भी हम आनुवंशिक शक्ति
का प्रभाव मानते हैं। इसके बाद पुनः प्रश्न पैदा होता है कि नीग्रो के अमुक
गुण अन्य जातियों से भिन्न क्यों हैं ? तब भी हमारा मस्तिष्क इतना ही
सोच पाता है और उत्तर मिलता है कि वह बनाया ही ऐसा गया था और
उसकी रचना उन्हीं गुणों के अनुकूल हुई थी। परन्तु जब हम देखते हैं
कि कुछ गुण नीग्रो में ऐसे भी समाविष्ट हो गये जो उसके पूर्वजों में नहीं थे,
अपितु जिन्हें उसने अपनी जाति से बाहर अन्य मानव प्राणियों के संपर्क से
प्राप्त किया—तो हमारा मस्तिष्क चक्कर में पड़ जाता है। हम सहज ही
इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन समस्याओं का हल केवलमात्र समाज-
शास्त्र तथा इतिहास के अध्ययन से नहीं हो सकता। हम देखते हैं कि प्राणि-
शास्त्र वेत्ता इस समस्या का समाधान नहीं कर पाते, क्योंकि प्राणिशास्त्र
का सीधा सम्बन्ध केवलमात्र आनुवंशिक क्रम तथा उससे सम्बद्ध तत्वों से है।
प्राणिशास्त्र उन परम्परागत सिद्धान्तों तथा मनुष्य के उन गुणों की व्याख्या
नहीं कर पाता जो उसने समाज में रहकर प्राप्त किये हैं। जातियों का
पारस्परिक सम्मिश्रण, गुणवाहकता, तदनुरूपता, आनुवंशिक योग आदि कुछ
ऐसे तत्व हैं जो जातीय इतिहास की पूरी-पूरी व्याख्या कर सकते हैं। मानव-
विज्ञान अथवा नृ-तत्व शास्त्र के अतिरिक्त और कोई ऐसा शास्त्र नहीं जो
इन सब का विस्तृत विवेचन कर सके। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा

कि मानव-विज्ञान ही एक ऐसा शास्त्र है जो हमें मानव जाति के भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त कराता है।

सम्पूर्ण मानव-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए मानव शास्त्रियों ने इसे दो मुख्य भागों में बांटा है। प्रथम, भौतिक तथा दूसरा सांस्कृतिक। अब हम पृथक्-पृथक् रूप से भौतिक मानव विज्ञान (Physical Anthropology) तथा सांस्कृतिक मानव विज्ञान (Social or Cultural Anthropology) के सभी अंगों पर प्रकाश डालेंगे और मानव विज्ञान का अन्य शास्त्रों से क्या सम्बन्ध है ? इसका स्पष्ट विवेचन करेंगे।

## भौतिक मानव-विज्ञान

जब हम मानव-विज्ञान के अन्तर्गत भौतिक पक्ष का अध्ययन करते हैं तो हमें मानव-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत जान पड़ता है। यों तो मानव-शास्त्र के भौतिक स्वरूप पर हम आगे चलकर पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन करेंगे परन्तु यहां इतना बता देना आवश्यक है कि भौतिक मानव-विज्ञान का महत्व मानव-शास्त्री के लिए कितना अनिवार्य है ? इसका अध्ययन किये बिना हमारा मानव-विज्ञान अधूरा रह जाता है। भौतिक मानव-विज्ञान के अंगों में सबसे महत्वपूर्ण नृ-वंश विद्या (Ethnology) है जिसके आधार पर हम मनुष्य जाति के पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी विशेषता आदि के सम्बन्ध में पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भौतिक मानव-विज्ञान का दूसरा अंग 'मानव का परिमिति प्रमाण' (Anthropometry) है जिसके द्वारा मनुष्य की माप की जाती है। अस्थि-विज्ञान (Osteology), भौतिक विज्ञान (Somatology) तथा उत्पत्ति विषयक शास्त्र (Genetics) के ज्ञान के बिना हम मनुष्य की ठीक-ठीक माप न कर सकेंगे और न ही रक्त सम्बन्ध आदि का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। अतः जब हम मानव के परिमिति प्रमाण आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करने लगें तो हमें उनके सहायक अंगों का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त मानव-विज्ञान का एक और अंग भी है जिसे कपालीय परिमिति प्रमाण (Craniometry) कहते हैं। इसके द्वारा हम स्त्री व पुरुष के कपाल के सम्बन्ध में माप आदि का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मानव शास्त्री के लिए कपाल की लम्बाई, चौड़ाई, कपालदेशना (Cranial Index) आदि सभी चीजों का जानना आवश्यक है।

प्राणिशास्त्र सम्बन्धी परिवर्तनों के आधार पर वर्तमान और पुरातन काल के प्राणियों का गहरा अध्ययन किया गया है। उन प्राणियों की अस्थि-रचना

में और आधुनिक काल के प्राणियों की अस्थि-रचना में पारस्परिक भिन्नता और अभिन्नता पर पर्याप्त अन्वेषण किये गये हैं। अस्थियों के माप आदि का भी पूर्णरूपेण अवलोकन किया गया है। शरीररचना शास्त्र-वेत्ताओं तथा नस्ल-शास्त्र-वेत्ताओं का इस बारे में एक ही मत है और वह यह कि पुरातन काल के प्राणी को आधुनिक प्राणी से किसी रूप में भी पृथक् नहीं किया जा सकता। प्राणियों का उत्पत्ति-क्रम, उनकी अस्थिरचना एवं अंगरचना, कपाल का माप आदि कुछ ऐसी चीजें हैं जिनमें वैज्ञानिक समता उपलब्ध होती है। जहाँ कहीं कुछ विरोध दिखाया भी गया है तो वह केवलमात्र जाति भेद, वर्ण-संकर एवं वर्ण-श्रेष्ठता आदि के कारण ही है। भौतिक मानव-विज्ञान द्वारा जातियों के इन सभी भेदों का अध्ययन हम भलीभाँति कर सकते हैं। भौगोलिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के विचार को दृष्टि में रखते हुए यदि हम जाति-भेद के विषय का अध्ययन करें तो हमें यह महान् अन्तर भी सहज में समझ आ जाएगा।

मानव शास्त्र, प्राणि शास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। आनुवंशिकता के सभी सिद्धान्त तथा उत्पत्ति एवं विकास की प्रणालियां उसे मान्य हैं। शरीर-रचना शास्त्र, भ्रूणशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, जीव विद्या आदि के सभी सिद्धान्त जो मानव-रचना की व्याख्या करते हैं, मानवशास्त्री को स्वीकार्य हैं। मानव-शास्त्र सदा से यह विचार करता रहा है कि ये सिद्धान्त मनुष्य पर कहाँ तक और किस रूप में लागू होते हैं।

चूंकि मानव-शास्त्र कपाल की लम्बाई, चौड़ाई, कर्णरेखना, अस्थियों के वर्तुलाकार, अस्थियों की रचना, संख्या तथा तत्सम्बन्धी विषयों से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करता रहा है और विभिन्न-विभिन्न जातियों के लाक्षणिक चिन्हों, उनकी आयु तथा लिंग-रचना आदि का ज्ञान कराता रहा है अतः कई विद्वान् उसे पृथक् शास्त्र न मानकर भौतिक-विज्ञान में ही परिगणित करते रहे हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। मानव-विज्ञान का क्षेत्र तो बहुत विस्तृत है। मानव शरीर-रचना पर विचार एवं गवेषणा करने का कार्य भी भौतिक मानव-शास्त्रियों ने अपने हाथ में लिया हुआ है। यदि हम जाति और प्रजाति के प्रश्न पर विचार करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि भौतिक मानव-शास्त्रियों के मतानुसार सभी जातियाँ अपने-अपने चिन्हों को लेकर पृथक्-पृथक् रूप से विकसित हुई हैं। पशु, पक्षी, कीट, सरीसृप, जलचारी मत्स्य आदि नाना-विध जीव अपने ही लाक्षणिक चिन्हों के साथ २ विकसित होते गये। मनुष्य भी भौतिक मानव-शास्त्र के आधार पर अपनी पृथक् सत्ता को लेकर विकसित हुआ। डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त पर जब भौतिक मानवशास्त्रियों

ने विचार किया तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि डार्विन का विकासवाद प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों का उपहास-मात्र है। प्राणीशास्त्रीय सिद्धान्तों की हत्या तथा उनका दुरुपयोग है। मानव-शास्त्र को डार्विन के विकासवाद से हानि नहीं हुई। मानव-शास्त्र को तो उन विचारों ने आघात पहुँचा जो विकास-क्रम के कपोलकल्पित एवं असंगत सिद्धान्तों का मिथ्या प्रचार करते थे। डार्विन ने तो केवलमात्र उन असत्यवादी विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों का पोषण किया। सन् १८६० से लेकर १८६० तक ऐसे ही मानव-शास्त्रियों का बोलबाला रहा जो मानव-विज्ञान को ठीक रूप में न तो समझते थे और न ही दूसरों के सम्मुख उसे पेश कर सकते थे। परिणाम यह हुआ कि मानव-विज्ञान का विकृत रूप जनता के सम्मुख प्रदर्शित किया गया।

संक्षेप में भौतिक नृ-तत्व शास्त्र (Physical Anthropolgy) को समझने के लिए निम्न वर्गीकरण उपयुक्त जान पड़ता है:—

## भौतिक नृ-तत्व शास्त्र (Physical Anthropology)

*भौतिक नृ-तत्व शास्त्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है:—*

१. भूगर्भशास्त्रीय विभाग—(Geological)
२. प्राचीन सत्वशास्त्रीय विभाग (Paleontological)
३. नृ-वंश शास्त्रीय विभाग (Ethnological)

भूगर्भशास्त्रीय विभाग द्वारा प्राप्त निखातक अवशेषों के आधार पर मनुष्य की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। पृथ्वी की आयु कितनी है, मनुष्य पृथ्वी पर कब आया? इन सब प्रश्नों का समाधान हमें भूगर्भशास्त्र द्वारा मालूम हो सकता है।

प्राचीन सत्वशास्त्रीय विभाग द्वारा हम भूगर्भशास्त्रीय तथा शरीर रचना-शास्त्रीय साक्षियों के आधार पर मनुष्य की प्राचीनता का पता लगा सकते हैं।

नृ-वंश शास्त्रीय आधार पर हम मनुष्य जाति की मुख्य नस्लों का एक-दूसरे से भेद जान सकते हैं। जातियों और प्रजातियों का वर्गीकरण तथा भूगर्भशास्त्रीय विभाजन कर सकते हैं। परिस्थितियों का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी हम पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

## सांस्कृतिक मानव विज्ञान—(Cultural Anthropology)

इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य और पशु में भेद है और मनुष्य पशुओं से अपनी

पृथक् सत्ता रखता है। सामाजिक वंश-परम्परागत गुण ही उसकी पृथक्सत्ता को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। मानव संसार और पशु संसार का प्रारम्भ और उसकी उत्पत्ति, उत्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार भी बिलकुल भिन्न है। सांस्कृतिक मानव विज्ञान वेत्ता—जो जाति रचना भेद तथा उत्पत्ति शास्त्र का पूरा पूरा ज्ञान रखते हैं, मानव जाति की प्रचलित प्रथाओं और सामाजिक जीवन के नानाविध रूपों का भेद स्पष्टरूपेण प्रकट करते हैं। अतएव जब वे मानव-विज्ञान का गहरा अध्ययन करते हैं तब वे प्रारम्भिक मनुष्य जाति के आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, तथा धार्मिक संगठनों पर भी पूरा २ प्रकाश डालते हैं जिससे मानव जाति के सभी अंगों का विशद विवेचन हो जाता है।

सांस्कृतिक मानव-विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि प्रागैतिहासिक वस्तुकला ( Prehistorical Archeology ) तथा शिल्प कलाविज्ञान ( Technology ) भी इसी के अन्तर्गत परिगणित किये जाते हैं। सभी प्रकार की सामाजिक संस्थाओं, संस्कृतियों, भाषाओं तथा पौराणिक घरेलू कथा-कहानियों ( Folklore ) का पूरा-पूरा इतिहास जानने के लिए सांस्कृतिक मानव-विज्ञान का आश्रय लेना पड़ता।

जाति-विशेष की संस्कृति क्या है, इसे समझने के लिए हमें तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। तभी हम उस जाति की प्रत्येक बात का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। प्रथम यह कि उस जाति में उपकरण ( Artifacts ) आदि सामग्री क्या उपलब्ध होती है, जिससे उसकी प्राचीनता, नवीनता और कलात्मक विकास का पता चल सके। दूसरी, सामाजिक वृत्तियाँ (Sociofacts) जिसके द्वारा हम इसका विशद विवेचन कर सकते हैं कि कौनसी सामाजिक वृत्तियाँ ऐसी हैं जो मनुष्य में हैं और मनुष्येतर प्राणियों में नहीं। मनुष्य के स्वभाव, हावभाव, प्रकृति और बाह्य एवं आन्तरिक आचरण का भी पता चलता है। इसके अतिरिक्त तीसरी चीज मनुष्य की मानसिक धारणायें हैं, जिनके अनुसार मनुष्य के उच्चकोटि अथवा निम्नकोटि के आदर्शों का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे जातीय आदर्श की ठीक-ठीक माप हो जाती है। भारतीय जीवन का आदर्श "सादा जीवन उच्च विचार" है। कई जातियों की दृष्टि में जीवन का ध्येय भोग और ऐश्वर्य की सम्प्राप्ति है। उपर्युक्त तीन बातों के आधार पर जातियों की संस्कृति का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समाज में कुछ ऐसे तत्व भी विद्यमान होते हैं जिनसे जातियों की संस्कृति में पारस्परिक भेद व मान्यता उत्पन्न होती रहती है। उनमें मुख्य तत्व निम्न हैं:—

१. जलवायु में भिन्नता होने के साथ-साथ संस्कृति में भी भिन्नता

उत्पन्न हो जाती है। शीतप्रधान जलवायु में पलनेवाले व्यक्ति तथा उष्णप्रधान जलवायु में पलनेवाले व्यक्ति सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न होते हैं।

२. उत्पत्ति-शास्त्र के नियमानुसार दो संस्कृतियों में भिन्नता पाई जाती है। नीग्रो, श्वेताग, मंगोल, चीनी तथा अन्य जाति के लोग भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के वाहक हैं, न कि एक संस्कृति के।

३. वस्तुजगत् में परिवर्तन होने के साथ २ संस्कृति में भी भिन्नता देखी जाती है।

इसके अतिरिक्त, रक्त सम्बन्ध, आयु सम्बन्ध तथा लिंग सम्बन्ध आदि तत्व भी समाज में अपना-अपना कार्य करते रहते हैं और मनुष्य जाति को प्रभावित करते रहते हैं। इनके द्वारा मनुष्य की सामाजिक प्रतिष्ठा का भी बोध होता रहता है।

## समाज और संस्कृति—

समाज और संस्कृति से मनुष्य का बहुत गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य जिन परिस्थितियों में अथवा जिस वातावरण में पलता है उनका प्रभाव उस पर पड़ता है। जब हम सामाजिक रचना तथा सामाजिक संगठन का उल्लेख करते हैं तो हमारा स्पष्ट अभिप्राय जनसमुदाय, श्रेणी, वर्ग, परिवार, राज्य, सभा व जाति से सम्बन्धित होता है। समाज पारस्परिक सम्बन्धित व्यक्तियों के समुदाय का दूसरा नाम है। मानव भूगोल-शास्त्र, इतिहास, अर्थ शास्त्र, शासन-प्रणाली, मानव-शास्त्र आदि सभी विषय सामाजिक विज्ञान से सम्पर्क रखते हैं। क्योंकि इन सब शास्त्रों का केवलमात्र मनुष्य से नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवजाति से सम्पर्क होता है। मनुष्य एक विशिष्ट पशु है जिसमें भाषण, गुणों की सादृश्यता एवं सामान्य अनुमान की शक्ति समाहित होती है। इन गुणों द्वारा वह प्राप्त ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाने की योग्यता रखता है। वह अपना प्राप्त ज्ञान अपने साथियों को सुगमता से प्रदान कर सकता है। यदि उसके पूर्वज भी जीवित हों और उसकी बात सुनने को समुद्यत हों तो अपना ज्ञान उन तक पहुंचाने में भी वह संकोच न करेगा। वह अपने विचार, स्वभाव और सफलता को आगे आनेवाली सन्ततियों तक पहुंचाता रहता है। मनुष्य का यह विशिष्ट गुण किसी और पशु में हम किसी भी रूप में नहीं पाते। संस्कृति मनुष्य की विशेष उपज है जो अपना प्रभाव बहुत दूर तक डालती है। यदि उनमें संस्कृति का अभाव हो तो वे पशुतुल्य ही हैं। एक व्यक्ति दूसरे के गुणों से और वह किसी अन्य के गुणों से प्रभावित होता रहता है।

इस प्रकार मानव जाति का सांस्कृतिक विकास होता रहता है। अतएव मानवीय व्यवहार में संस्कृति की महती शक्ति है। यदि हम एक जाति की संस्कृति का अध्ययन करें तो हमें उसके पीछे कई संस्कृतियों के समावेश का लम्बा इतिहास उपलब्ध होगा। प्रत्येक संस्कृति अपना-अपना महान् प्रभाव रखती है। एक लुसियाना-वासी नीग्रो का खेती करना, धार्मिक विधि-विधान का अनुसरण करना अमेरिकन संस्कृति का प्रतीक है। यदि वह अफ्रीका में अपने पूर्वजों के साथ पला होता तो उसकी वेशभूषा, उसका भोजन, धर्म तथा शासन-प्रणाली, भाषा आदि सब इससे बिल्कुल भिन्न होते। यह सब क्यों? संस्कृति के ही कारण। प्राप्त ज्ञान द्वारा मनुष्य अपनी संस्कृति का प्रभाव अपने समाज पर डाल रहा होता है। यह प्रभाव आनुवंशिक प्रभाव से बिल्कुल भिन्न होता है। धर्म, उपकरण, विचार आदि संस्कृति द्वारा ही उत्पन्न होते हैं न कि आनुवंशिकता द्वारा।

यह मानना पड़ेगा कि संस्कृति मनुष्य के लिए प्राणिशास्त्रीय अथवा मनोवैज्ञानिक प्रभावों से भी अधिक मुख्य स्थान रखती है। प्राणि-शास्त्र तथा मनोविज्ञान इसकी व्याख्या नहीं कर सकते कि संसार में सम्पत्ति-कानून, शिष्टाचार, धर्म आदि क्यों और कैसे विकसित हुए? अथवा उनकी सत्ता क्यों दृष्टिगोचर होती है? अतः संस्कृति सामाजिक प्राणियों की उपज है और एक महती शक्ति है जो मनुष्य-जाति पर सामाजिक तथा व्यक्तिगत रूप से अपना प्रभाव डालती है। विशेष एवं विस्तृत रूप से संस्कृति मनुष्य के लिए सार्वभौमिक वस्तु है।

तर्कशास्त्र के आधार पर भी समाज और संस्कृति दो चीजें हैं, परन्तु दोनों आपस में सम्बद्ध हैं। बहुत से पशु समाज के होते ही जीवित रहते हैं अन्यथा मर जाते हैं; परन्तु उनकी संस्कृति नष्ट नहीं होती। समाज संस्कृति की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है। अतएव पशु की अपेक्षा मनुष्य में समाज और संस्कृति दोनों का अधिक सामञ्जस्य रहता है।

संक्षेप में हम सांस्कृतिक मानव-विज्ञान को निम्न भागों में बाँट सकते हैं--

१. पुरातत्व शास्त्रीय विभाग
२. नृ-वंश शास्त्रीय विभाग
३. समाज शास्त्रीय विभाग
४. शिल्पकला शास्त्रीय विभाग

## पुरातत्व शास्त्रीय विभाग—

पुरातत्व-शास्त्र के आधार पर मनुष्य के जितने भी कलासम्बन्धी

अवशेष प्राप्त होते हैं उनसे मानव की प्राचीनता का पता लगाया जा सकता है। प्रागितिहास-कालीन विशेषताओं का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

२ नृ-वंशशास्त्रीय विभाग—

नृ-वंशशास्त्र द्वारा हम मानव-समाज की भौतिक संस्कृति, भाषा, धर्म, विचार तथा सामाजिक सम्बन्धों की स्थिति का वर्गीकरण तथा तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। मानव-समाज की शारीरिक विशेषताओं से संस्कृति का क्या भेद है? इसका भी पता लगा सकते हैं। संस्कृति पर परिस्थिति के प्रभाव का ज्ञान तो सहज में ही प्राप्त किया जा सकता है।

समाजशास्त्रीय विभाग—

सामाजिक विचार का तुलनात्मक अध्ययन—जिसमें प्रागितिहासकालीन संस्कृति का उल्लेख हो—किया जा सकता है। सामाजिक संगठन, सरकार तथा कानून आदि का ज्ञान प्राप्त करना, नैतिक विचारों तथा नियमों का ज्ञान प्राप्त करना, धार्मिक विधि-विधानों, दैवीय तथा लौकिक शक्ति की क्रियाओं तथा कला, भाषा आदि का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करना समाजशास्त्र का मुख्य अंग है।

शिल्पकलाशास्त्रीय विभाग—

शिल्पकला शास्त्र द्वारा हम मानव जाति की मुख्य कलाओं तथा व्यवसायों के प्रारम्भ, विकास तथा भौगोलिक विभाजन का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। इसके साथ-साथ उनके साधनों तथा उपकरणों का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

मानव शास्त्र तथा समाज शास्त्र—

समाज शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले जितने विज्ञान हैं उन सब में मानव-विज्ञान ही ऐसा विज्ञान है जो संस्कृति से अधिक सम्बद्ध है। संस्कृति किस प्रकार अपना कार्य करती है, मानव-विज्ञान इसका बोध कराता है।

साहित्यिक दृष्टि से संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य किस प्रकार व्यवहार करता है, और संस्कृति का इतिहास किस प्रकार विकसित हुआ, मानव-शास्त्र इसका दिग्दर्शन कराता है। जब भाषा और लिपि का विकास नहीं हुआ था तो मनुष्य जाति का कोई लेखबद्ध इतिहास नहीं था। बड़े-बड़े शासकों, उनके कृत्यों आदि का कोई लिखित ज्ञान उपलब्ध नहीं था परन्तु हम रीति-रिवाजों, प्रचलित प्रथाओं और संस्कृति के सम्बन्ध में ज्ञान अवश्य रखते थे। प्रारम्भिक व्यक्ति केवलमात्र दो वस्तुएं हमारे लिए छोड़ गये। एक तो अपने अवशेष जो अस्थिरूप में हमें निखातक अवसादों (Fossil deposits) से प्राप्त हुए और दूसरा अपनी संस्कृति—जो उनके पाषाण-निर्मित उपकरणों द्वारा जानी जा सकती थी। प्रारम्भिक प्राणी की ये दो चीजें हमारे अन्वेषण का आधार बनी और हम कई महत्वपूर्ण परिणामों पर पहुंच सके। इस विषय पर गवेषणा करते-करते मानव-शास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से पर्याप्त मतभेद उत्पन्न हो गया। समाजशास्त्रियों ने अपने ढंग से मानव जाति की संस्कृति की खोज की। परिणाम यह हुआ कि समाज-शास्त्री प्रधानतया सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध विषयों पर ही विचार करते रहे। उन्होंने वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध, पारिवारिक संगठन, सामाजिक संगठन आदि विषयों पर प्रकाश डाला परन्तु मानव-विज्ञान इसके साथ-साथ मनुष्य, मानवीय उत्पादन, संस्कृति आदि सभी विषयों पर भी गहरा विचार करता रहा।

सैद्धान्तिक दृष्टि से समाज शास्त्र तथा मानव शास्त्र को पृथक् पृथक् करना कठिन है। सुमनर जैसे महान मानव-विज्ञानवेत्ता अपने विचारों में अमेरिका के प्रसिद्ध समाजवादियों—थामस, ओसबर्न, सोरोकिन तथा पार्सन्स आदि से एक मत हैं। मानवशास्त्र का मनोविज्ञान से जो सम्बन्ध है वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक लोग एक संस्कृति को स्वीकार कर लेने के बाद और उसे सार्वभौमिक कल्पित करने के बाद उस का मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं परन्तु मानव शास्त्री एक संस्कृति पर आधारित अन्य संस्कृतियों का विभिन्न-विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करते हैं।

## पुरातत्वशास्त्र तथा प्रागैतिहासिक काल—

इतिहास द्वारा हम मानव जाति के उन अंगों का पता चला सकते हैं जिन्हें ऐतिहासिकों ने पुस्तकों में लेखबद्ध कर दिया है। परन्तु मानव जाति के इतिहास में वह काल भी तो था जहाँ ऐतिहासिकों की पहुंच नहीं हो सकी और

ऐतिहासिक लोग स्वयं भी मानव जाति के उस काल के सम्बन्ध में अन्धकार में रहे। प्रागैतिहासिक युग का ज्ञान उन्हें न हो सका जिसे वे लेखबद्ध भी न कर पाये। हजारों वर्षों तक के इतिहास को इतिहासज्ञों ने लेखबद्ध किया परन्तु उससे भी पूर्व की सभ्यता का ज्ञान इतिहासज्ञों द्वारा नहीं अपितु पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्राप्त अवशेषों के आधार पर प्राप्त किया गया है। यदि हम इस प्रागैतिहासिक काल के उपलब्ध उपकरणों का अध्ययन करें तो हम मानवीय विकास की ओर की गई प्रगति का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मानव-जाति ने जिन-जिन पाषाणनिर्मित उपकरणों का प्रयोग किया है उनकी बनावट, उन पर की गई चित्रकला उनकी रचना आदि से उनकी सभ्यता का भलीभाँति परिचय मिल जाता है। ये उपकरण प्रथम समय के मानवीय इतिहास, सामाजिक जीवन, सामाजिक सभ्यता एवं पुरातन सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश डालते हैं आधुनिक पुरातत्त्वशास्त्रवेत्ताओं ने तो जहाँ-जहाँ भी खुदाइयाँ हुई हैं वहाँ पर उपलब्ध उपकरणों के प्रयोग आदि पर समय-समय पर पृथक् रूप से प्रकाश डाला है।

यदि भिन्न-भिन्न अवसादों ( Deposits ) से प्रागैतिहासिक साक्षियाँ ( Prehistoric Evidences ) प्राप्त न होतीं तो आज हमारा मानवशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान अधूरा रह जाता और हम मेधावी मानव (Homo Sapiens) के विकास-क्रम को भी भलीभाँति न जान पाते। कन्दराओं, चट्टानों तथा अन्य स्थानों से प्राप्त अवशेषों ने मानव जाति की प्रागैतिहासिक शृंखला को इतना सुदृढ़ बना दिया है कि उसमें अब किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं रहा।

## भाषा और मानव शास्त्र—

समस्त भूमण्डल पर लगभग २७०० भाषायें बोली जाती हैं। भाषा-शास्त्रियों ने वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार सभी भाषाओं के बोलचाल के ढंग, उनकी रचना एवं शब्दावली, उच्चारण आदि का भेद पता लगाया है। बहुत से भाषा-शास्त्री तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा परिवर्तन का विशेष प्रतिपादन करते हुए उन सभी प्रयत्नों का विशद वर्णन करते हैं जो इस दिशा में किये गये हैं। वे उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों की खोज अवश्य करते हैं जिनके द्वारा ये परिवर्तन हुए हैं। उनकी गवेषणा का आधार न केवल प्रसिद्ध और प्रचलित भाषाओं पर ही होता है अपितु अन्य गौण भाषाओं पर भी, जो अभी लिपिविहीन एवं अप्रसिद्ध होती हैं—आश्रित होता है।

भाषा की स्वर-ध्वनि ( Phonetics ), भाषा का व्याकरण तथा भाषा

के उत्पत्ति सम्बन्धी नियमों के बारे में भी पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि मानव-शास्त्री का यह भी कर्तव्य है कि वह संस्कृति तथा भाषा के पारस्परिक अन्तर और पारस्परिक सामञ्जस्य पर पूरा-पूरा प्रकाश डाले। प्राचीन युग में विभिन्न भाषा-भाषियों में क्या सम्बन्ध था, कौन सी भाषा के शब्द किसी दूसरी भाषा में मिश्रित हो गये, यह जानना भी नितान्त आवश्यक है। जब हम भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास-क्रम को जान लेते हैं तो हमें किसी विशेष संस्कृति की उन्नति के बारे में जानने की पूरी-पूरी सुविधा प्राप्त हो जाती है। भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए भाषा का व्यवहार आवश्यक है। भावनाओं द्वारा संस्कृति का विकास होता है। भावनाओं द्वारा मनुष्य एक-दूसरे मनुष्य के संपर्क में आता है। आदान-प्रदान के सिद्धान्तानुसार अपनी संस्कृति के चिन्ह मनुष्य दूसरों को देता है और उसी प्रक्रिया द्वारा कुछ विशिष्ट गुण दूसरों से ले लेता है। इसी का नाम 'सांस्कृतिक संपर्क' है।

## मानव-विज्ञान एक विज्ञान के रूप में—

मानव-विज्ञान को हम सचमुच एक विज्ञान का रूप दे सकते हैं। प्रथम बात तो यह है कि मानव-विज्ञान मानवीय जीवन और संस्कृति का ठीक-ठीक चित्र चित्रित करता है। दूसरा यह कि मानव समाज में जैसे-जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवर्तन होते हैं उन्हें ठीक उसी रूप में पेश करना है। तीसरा यह कि वर्तमान मानव-समाज में होनेवाले सभी सम्भव परिवर्तनों के सम्बन्ध में भी भविष्यवाणी करता है और परिवर्तन की दिशा का ठीक-ठीक वर्णन करता है। अतएव मानवविज्ञान का उचित क्षेत्र उन ऐतिहासिक, सामाजिक, तथा मनोवैज्ञानिक नियमों को पेश करना है जो ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक काल के लोगों की प्रगति का उचित रीति से वर्णन करते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों एवं तिथिक्रम के अनुसार मानव-विज्ञान मानव-समाज के सभी अंगों पर प्रकाश डालता है।

साधारणतया मानवविज्ञान-शास्त्रियों ने अपनी वैज्ञानिक गवेषणा को मिश्र, वैबीलोन, फारस तथा इस प्रकार के अन्य प्राचीन देशों की प्राचीन सभ्यता के विधानों, नियमों तथा संस्कृति-सम्बन्धी परिवर्तनों तक ही सीमित रखा है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी गवेषणा के आधार पर अन्यत्र भी मानव-समाज के रीतिरिवाजों का पता लगाया जा सकता है; और अब तो मानव-विज्ञान-वेत्ताओं का ध्यान धीरे-धीरे सभ्य और सुसंस्कृत जातियों की सभ्यता सम्बन्धी अन्वेषणों की ओर भी आकृष्ट हो रहा है।

जर्मनी, फ्रांस तथा स्वीडन में केवलमात्र भौतिक मानव-विज्ञान के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। वे लोग सांस्कृतिक मानव-विज्ञान को 'नृ-वंश-शास्त्र' के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। ब्रिटिश मानव शास्त्री नृ-वंश शास्त्र को भौतिक मानव विज्ञान के अन्तर्गत मानते हैं। और कई मानव शास्त्री जातियों के इतिहास को ही नृ-वंशशास्त्र का रूप देते हैं। कई मानवशास्त्रियों का मत है कि सांस्कृतिक मानव विज्ञान में संस्कृतियों की उन्नति और उनके इतिहास को ही पढ़ाना चाहिये और तद्विषयक सिद्धान्त प्रतिपादित करने चाहियें। परन्तु कुछ ऐसे मानवशास्त्री भी हैं जो सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानव-विज्ञान में भेद प्रतिपादित करते हैं। इनके मत में सामाजिक मानव-विज्ञान का विषय केवलमात्र सामाजिक जीवन की उन्नति का अध्ययन करना ही है। इनका विचार है कि सामाजिक प्रथाओं, रीतिरिवाजों, व्यक्ति तथा समष्टि के सम्बन्धों आदि का वर्णन करना ही सामाजिक मानव-विज्ञान का मुख्य कार्य है। परन्तु जून सन् १९५२ में न्यूयार्क में मानवशास्त्रियों का जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ उसमें संसार के सभी मानवशास्त्रियों ने मानव-विज्ञान को एक विज्ञान के रूप में स्वीकृत करते हुए यह स्पष्ट घोषणा की कि 'सांस्कृतिक मानव-विज्ञान' अथवा 'सामाजिक मानव-विज्ञान' आपस में एक ही पारिभाषिक शब्द है।

## मानव-विज्ञान व्यवसाय के रूप में—

आजकल मानवविज्ञान का महत्त्व इस दृष्टि से भी बढ़ गया है कि विद्वान् लोग इस में नानाविध गवेषणायें कर रहे हैं। अमेरिकन विश्वविद्यालयों में इस विषय के अध्यापन का विशेष प्रबन्ध है। मानव विज्ञान के सभी विभागों के विशेषज्ञ भौतिक विज्ञान, पुरातत्व शास्त्र, धर्म, कला और संस्कृति आदि विषयों पर सारगर्भित और विवेचनात्मक व्याख्यान देते हैं। उच्च शिक्षण-संस्थाओं में मानवविज्ञान-शास्त्रियों को विशेष पद प्रदान किया जाता है। संग्रहालयों में भी उन्हें उच्च पद प्राप्त होता है। हालैण्ड, रूस तथा अन्य देशों में इसकी शिक्षा तथा इस विषय के अन्वेषणों पर विशेष दिलचस्पी दिखाई जा रही है। अतः मानव-विज्ञान को व्यवसायात्मक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया जा रहा है।

## मानवविज्ञान-वेत्ताओं के कार्य की रूपरेखा—

यह तथ्य है कि मानव विज्ञानवेत्ता नास्तिक दृष्टि से भूतकाल पर विचार

करता है। प्राचीन वस्तुकला के आधार पर तथा भिन्न-भिन्न युग में उपलब्ध *सामग्री के आधार पर वह किसी विशेष जाति व स्थानविशेष का पूरा-पूरा* चित्र निर्माण करता है। वह भूतकाल के प्राणियों का वर्तमान युग के प्राणियों से सम्पर्क जोड़ता है, और उनकी संस्कृतियों की पारस्परिक तुलना करता है। वह उन जातियों में जाकर अपने अन्वेषण-कार्य को उचित रीति से बढ़ाता है। जब एक मानवविज्ञान-शास्त्री एक स्थान पर जाकर अपना गवेषणात्मक कार्य प्रारम्भ करता है तो सर्वप्रथम वह वहां के वृद्धवासियों के सम्पर्क में आता है क्योंकि वे उसे सभ्यता के बारे में बहुत कुछ सही-सही सूचना दे सकते हैं और वहां के युवा पुरुष उसकी भाषा को समझ कर उसका भलीभांति उत्तर दे सकते हैं। मानवविज्ञान-शास्त्री को चाहिये कि वह अपने उद्देश्य की सफलता प्राप्ति के लिए अपने आप को तदनुरूप बनाये और उनके अन्दर घुल मिलकर उनके उत्सवों, विधि-विधानों और त्योहारों में सम्मिलित हो। इसी बीच में वह किसी वृद्ध व्यक्ति पता लगाये जो उस जाति के सम्बंध में सभी आवश्यक और उपयुक्त बातें बता सकता हो। वहां की भाषा में यदि कुछ हस्तलेख प्राप्त हों तो उन का भी संग्रह कर लेना चाहिये। उस जाति का आर्थिक जीवन, कला, शिल्प, धर्म, सामाजिक तथा राजनैतिक संगठन आदि सब बातों का पता करना चाहिये। इस प्रकार धीरे-धीरे मानवविज्ञान-शास्त्री की उस जाति के सम्बन्ध में दिलचस्पी पैदा हो जायगी। उनकी सामाजिक प्रथायें, रिश्तेदारियां, पारस्परिक सम्बन्ध आदि का सही-सही ज्ञान प्राप्त हो जायगा। अतएव मानव शास्त्री के लिए गवेषणा के समय निम्न बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है. —

१. सूचक से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जाये जिससे वह मानव-विज्ञान वेत्ता को पूरा-पूरा विवरण विशदरूप से दे सके।

२. ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाये जिससे सूचक की सहानुभूति व उसका प्रेम मानवशास्त्री की ओर आकृष्ट हो जाये।

३. उन लोगों से कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिये।

४. पहले तटस्थ विषयों पर बातचीत करनी चाहिये जिससे उनके मन में सन्देह न उत्पन्न हो।

५. सूचक कई होने चाहियें ताकि वे सत्य के प्रदर्शन के लिए एक-दूसरे की झूठी बात को काट सकें।

६. नौ मास अथवा बारह मास एक गवेषणात्मक कार्य के लिये पर्याप्त है।

७. भाषा के मुहावरों तथा भाषा-शैली को उद्धृत करना आवश्यक है।

८. भिन्न भिन्न आयु के लोगों की तुलना करनी चाहिये।

९. यह ज्ञान अवश्य प्राप्त लेनी चाहिये कि हमारे बारे में उन लोगों की क्या राय है?

१०. एक ही बात को पुनः-पुनः दोहराना चाहिये और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से उस की जानकारी प्राप्त करनी चाहिये।

११. वहां के लोगों के बचपन के बारे में भी ज्ञान लेना जरूरी है।

इन उपरोक्त बातों के आधार पर मानवविज्ञान-वेत्ता को अपने गवेषणात्मक कार्य में पूरी सफलता मिल सकती है। अंग्रेज मानवविज्ञान वेत्ता मि० रिवर्स को इसी आधार पर कई मास दक्षिणी भारत के टोड लोगों में रहने तथा कार्य करने का अवसर मिला। मि० पाल राडिन ने विन्नेबागो ( Winnebago) में रहकर, क्लार्क विस्लर ने पानी ( Pawnee ) जाति में रहकर इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर अपने उद्देश्य में सफलता पाई। भारत के सुप्रसिद्ध मानवविज्ञानवेत्ता डा० मजूमदार की सफलता का रहस्य भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है।

तक उनके पूर्वजों की समानता तक भी पहुँचना सुगम हो जाता है। यह विकास नहीं अपितु तथ्य-वर्णन है जिसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

## पशु-जगत की निम्नता—

मनुष्य का पशुओं की उच्च श्रेणी से जो सादृश्य दिखलाया गया है उससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिये कि ये उच्च श्रेणी के स्तनधारी ( Mammels ) प्राणी मनुष्य जाति के पूर्व-पुरखा व पितर हैं। उदाहरणार्थ—गिब्बन, शिपांजी आदि सभी अपने-अपने तरीके से विकास के क्षेत्र में अपनी विशेषता रखते हैं। मनुष्य के विकास का मार्ग भी अपने ही प्रकार का एक मार्ग है। अभी तक हमने पशु-जगत् और मानव-जगत् की सादृश्यता का वर्णन किया था परन्तु अब कालान्तर में हमें उनके भेदों पर भी विचार करना चाहिये। मनुष्य अपने ही विशेष और आश्चर्यमय जाति-भेद के आधार पर पनपता चला आया है। मनुष्योत्पत्ति की विधि जानने के लिए मानवीय आकार धारण करनेवाले पूर्वजों पर विचार करना पड़ेगा, जिनका विकास-क्रम निम्न है:—

१. मनुष्य ने बिना किसी कठिनाई के सीधे पैरों के बल खड़ा होना सीखा।

२. मनुष्य का चलना और साँस लेना अपने ही विशेष ढंग का है।

३. मनुष्य के ज्ञान-तन्तुओं की परिवर्तनप्रक्रिया भी भिन्न प्रकार की है।

४. घ्राण शक्ति तथा वीक्षण शक्ति की भावना अन्य सबसे भिन्न है।

५. भुजाओं और पैरों की पृथक् विशेषता है।

६. कालान्तर में मनुष्य की आँखें सामने की ओर मुड़ी और उनमें वीक्षण शक्ति काम करने लगी।

७. कालान्तर में पशु समान नाक का उभरा हुआ अग्रभाग कम हो गया और वास्तविक नाक के रूप में परिवर्तित हो गया।

८. खोपड़ी का रूप भी कुछ बढ़ गया और कालान्तर में पैर चौड़े आकार वाले हो गये।

९. इस प्रकार मनुष्य का पूर्वरूप धीरे-धीरे बदलते-बदलते मनुष्य-रूपी प्राणी के रूप में परिवर्तित हो गया।

अब पशु-जगत् को लीजिये। कोई पशु भी ऐसा नहीं जो मनुष्य की भाँति सीधा खड़ा हो सकता हो। और यदि किसी समय पशु ऐसा करता भी है, तो वह अपने आप को सुखद अनुभव नहीं करता। रीछ भी जब कभी पैरों के बल खड़ा होता है तो वह थोड़ी देर बाद अपनी सामान्यावस्था में आ जाता

हैं। एक घोड़ा भी कुछ शिक्षा देने के बाद यह कार्य सुगमतया सम्पन्न कर सकता है। कुछ समय तक तो उसे आराम प्रतीत होता है, परन्तु थोड़ी देर बाद अपने शरीर की वह स्थिति उसे दुःखदायी प्रतीत होने लगती है। हा' गिब्बन को हम सीधा खड़ा होने वाला प्राणी कह सकते हैं। पृथ्वी पर खड़ा होने की स्थिति में हम उसे दो पैरोंवाला प्राणी कह सकते हैं। परन्तु फिर भी चौपाये पशुओं का शरीर पृथ्वी के समानान्तर होता है। जहां तक दुम का प्रश्न है, मनुष्यों में दुम का अभाव होता है। पशुओं में श्वास-प्रक्रिया का ढंग भी भिन्न-भिन्न होता है। हाथों के बल पृथ्वी पर चलने से हिलने-डोलने वाली क्रिया में स्थिरता एवं दृढ़ता आ जाती है। चौपाये पशु के अगले अंग वस्तु को पकड़ने के लिए सुदृढ़ अवश्य होते हैं परन्तु उन्हें हाथ नहीं कहा जा सकता।

बिल्ली पेड़ के ऊपर तेजी से चढ़ती है—वह इसलिए क्योंकि उसके पञ्जे एक विशेष प्रकार के बने होते हैं। वे पेड़ की छाल में अपना स्थान बना कर तेजी से आगे बढ़ते चले जाते हैं। अतः यह ठीक है कि पेड़ पर चढ़ने वाले इन चौपाये प्राणियों के अगले अग शाखाओं को पकड़ने और पेड़ पर चढ़ने के उपयुक्त होते हैं। इन प्राणियों के हाथ संकीर्ण और लम्बे होते हैं और ऐसे अगुलियां भी होती हैं। इस में अगूठे का कोई विशेष कार्य नहीं होता। परन्तु वह अंगुलियों के मोड़ के साथ-साथ उसी दिशा में मुड़ता रहता है। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों का नियन्त्रण भी होता रहता है। यही कारण है कि पशु जब अपना खाना खाता है तो वह बड़ी सतर्कता से देखता रहता है।

पेड़ पर रहने वाले बन्दरों और अन्य गिब्बन, गोरिल्ला आदियों की बाहुओं में तथा मनुष्यों की बाहुओं में महान् अन्तर पाया जाता है। मनुष्य की बाहु उन के मुकाबले में छोटी होती है। बहुत से लौकिक चौपाये प्राणी ऐसे हैं जो पैर की अंगुलियों के बल पर चलते हैं। कई प्राणी ऐसे हैं जो पञ्जे के बल पर चलने वाले हैं। इन प्राणियों की पैर की अंगुलियां इतनी बड़ी होती हैं कि वे सारे शरीर के भार को वहन कर लेती हैं। कई प्राणियों के पञ्जे सारे शरीर को वहन करते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे अंगों में परिवर्तन हुआ और कई अंग छोटे, बड़े और कई सुडौल होते गये। कई आकार-प्रकार में छोटे और कई बड़े होते गये। इस सम्बन्ध में हूटन ( Hooton ) महोदय का कथन है कि पावों से ही चलने, दौड़ने और शरीर के भार-वाहन करने का उद्देश्य पूरा किया जाता था और हाथ परिवर्तनशील अवस्था में थे। पेड़ पर रहने वाले प्राणियों में एक मनोरञ्जक बात यह थी कि वे सन्तानोत्पत्ति के समय दो अथवा तीन से अधिक बच्चे पैदा नहीं करते थे। क्योंकि एक पेड़ पर एक साथ कई

बच्चों की देखरेख करना भी कठिन हो जाता था। हूटन (Hooton) का कहना है कि लेमूर (Lemur) प्रायः एकबार दो बच्चे पैदा करता था परन्तु अन्य बन्दर तो एक बार में एक ही बच्चा पैदा करते थे।

पशु और मनुष्य में भेद—

मानव रचना और पशु रचना में पर्याप्त विभिन्नता है जिसके आधार पर हम मनुष्य का वर्गीकरण पशु-जगत् से पृथक् करते हैं। अब हम उन विशेषताओं का निरूपण करेंगे—

१. दीर्घ मस्तिष्क—

मनुष्य का नाड़ी संस्थान अत्यन्त संगठित और केन्द्रित है। नाड़ी-संस्थान का सबसे अधिक विकसित भाग मस्तिष्क ही है। हम विकास-क्रम में सभी मानवसम वानरों के मस्तिष्क का अध्ययन करते हैं, परन्तु किसी का भी मस्तिष्क वज़न के अनुपात में इतना बड़ा नहीं जितना मनुष्य का। एक पुरुष-कपाल का आनुपातिक आयतन १४५० वर्ग शतांशमीटर और एक स्त्री-कपाल का आयतन १३०० वर्ग शतांशमीटर है। परन्तु जब हम मानवसम प्राणियों वानर, गोरिल्ला आदि के कपाल का आयतन देखते हैं तो वह केवलमात्र ५०० वर्ग शतांशमीटर ही होता है। अर्थात् मनुष्य के कपाल के आयतन का लगभग एक-तिहाई है। इतना ही नहीं, वानर, गोरिल्ला आदि के मस्तिष्क की अपेक्षा मानव-मस्तिष्क की रचना अत्यन्त जटिल है। दीर्घ मस्तिष्क द्वारा सदैव उच्च मानसिक प्रक्रियायें संचालित होती हैं। बृहत् मस्तिष्क करोटि की तुलना करें तो वह पशुओं की मस्तिष्क करोटि की अपेक्षा अधिक लिपटी हुई और बड़ी होगी। बड़े-बड़े शरीररचना शास्त्रियों का मत है कि १० परब नाड़ियों के छोर मनुष्य की बृहत् मस्तिष्क करोटि में जुड़े हुए होते हैं जिनके पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा ही नाना प्रकार की व्यवहार प्रतिक्रियायें मानव शरीर में होती रहती हैं।

२ सीधा खड़ा होना—

मनुष्य की दूसरी विशेषता सीधे खड़े होने की है जो किसी अन्य पशु-जगत् के प्राणी में उपलब्ध नहीं होती। दोनों हाथों पर शरीर का भार बिल्कुल

अवलम्बित नहीं रहता। केवल मात्र पैर ही सम्पूर्ण शरीर का भार सन्तुलित किये रहते है। इस प्रक्रिया द्वारा जहाँ परिश्रम की बचत हुई है वहाँ भुजाओं को भी नानाविध कार्य सम्पन्न करने तथा वातावरण को उपयुक्त एव अनुकूल बनाने का पूरा-पूरा अवसर प्रदान हो गया है। भुजाओं को किसी काम के लिए विवश नही होना पड़ता। इसकी एक विशेषता यह है कि जहाँ चौपाये प्राणी किसी वस्तु की परीक्षा नाक, जिह्वा आदि द्वारा सूंघ और चखकर करते है वहाँ मनुष्य उसे अपने हाथ में उठाकर उसकी परख करता है। मनुष्य का पैर चूंकि सम्पूर्ण शरीर का भार उठाता है अतः उसकी रचना भी विशेष प्रकार से हुई है। वानर-मात्र किसी वस्तु को पैर से पकड़ लेते है और उसे थामे रहते है परन्तु मनुष्य के परो में यह शक्ति समाप्त हो गई है। टखने की अस्थियाँ एक चपटा आकार धारण किये हुए है। बडी अगुलियो के किनारे छोटी अगुलियों से मिल गये है। उनमें दूरी प्रतीत नही होती। एडी की अस्थि लम्बी तथा पैर का कटाव बढ़ा हुआ है। यदि मनुष्य की पाद-रचना में ये विशेषतायें न होती तो सम्भवत. वह भी पृथ्वी पर सीधा खड़ा होने में समर्थ न हो पाता। चूंकि वानरो को वृक्ष पर वास करना पड़ता था एव एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदना, एक शाखा से दूसरी शाखा को पकडना वानर का मुख्य कार्य था, अतएव उनके हाथ पैरों को उसी जीवन के अनुकूल बनाया गया। उनकी पाद-रचना पृथ्वी पर सीधा खड़ा होने के उपयुक्त न थी। यही कारण है कि वानर जब पृथ्वी पर चलते है तब भी मनुष्य और वानर की चाल में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

३. अस्थिभेद—

रीढ़ की हड्डी की रचना भी मनुष्य और पशु में एक समान नहीं। श्रोणिका (Pelvis) के परिवर्तनो ने पैरो को लम्बा तथा खड़ी दिशा में शरीर के भार को वहन करने का सामर्थ्य प्रदान किया है। यदि हम मानव-शरीर में रीढ़ की हड्डी की रचना को ध्यान से देखें तो हमें वह वक्र-रेखा की भाति दिखाई देगी। जिसमें दो मोड़ आगे की ओर, और दो मोड़ पीछे को ओर होते है। आगे का झुकाव शरीर-भार को विभक्त करने तथा सतुलित रखने में सहायता प्रदान करता है। वानरो में न केवल इस प्रकार के झुकाव का अभाव ही होता है, अपितु उनकी शारीरिक प्रणाली में और कोई ऐसा उपाय नही जिसमें वे धड के भार को पैरो के गुरुत्वाकर्षण केन्द्र पर सम्भाल सकें। वानर के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी पेशियों पर जोर

डाले, परन्तु मनुष्य को अपनी पेशियों पर जोर डालने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

४. हस्तरचना भेद—

वानर तथा मानव की हस्तरचना में भी भेद है। मनुष्य के हाथ इतने लचकीले होते हैं कि वह उन्हें आसानी से मोड़ सकता है। अंगुलियाँ भी सुगमता से घुमा-फिरा सकता है। अंगूठे की भीतरी तह सुगमता से अन्य अंगुलियों की तह तक मिल पाती है। अंगूठा और अंगुलियाँ लम्बाई में अपेक्षाकृत बढ़ गई हैं। हाथ का संगठन इतना सुन्दर है कि जो हम किसी पशु, वानर आदि में नहीं पाते।

५ संभाषण योग्यता—

मनुष्य में संभाषण शक्ति की विशेषता एक ऐसी विशेषता है जो उसे वानरों से बिलकुल पृथक कर देती है। वृहत् मस्तिष्क सम्बन्धी परिवर्तनों के परिणाम-स्वरूप ही मनुष्य को यह विशेषता प्राप्त हुई है। मनुष्य के जबड़ो की रचना भी इस प्रकार की है कि वे वानरों की अपेक्षा कम बाहर निकले हुए होते हैं और आकार में छोटे होते हैं। वानरों में नीचे का वृहत् जबड़ा सामने की दन्तावलि के नीचे एक हड्डी की तह से सरक्षित होता है जिसे वानर-पट्टिका (Simian Plate) कहते है। जिसके कारण जीभ को इधर-उधर घुमाने में कठिनाई जान पड़ती है। मनुष्य में चूंकि इसका अभाव होता है अतः वह स्वच्छन्दता-पूर्वक अपनी जिह्वा को इधर-उधर घुमाने में कठिनाई अनुभव नहीं करता। मनुष्य का वृहत् मस्तिष्क बड़े कपाल में आवेष्टित रहता है। निचला जबड़ा ठीक कानो के छेदों के नीचे कपाल के साथ सीधा जुड़ा होता है। अपेक्षाकृत चौड़े कपाल से तात्पर्य निचले जबड़े की हड्डी का चौड़ा होना है। मनुष्य में निचले जबड़े को ऊपर से देखा जाय तो उसके दोनों पार्श्व उल्टे त्रिकोण की भाँति दृष्टिगोचर होगें। वानरों में जबड़े के दोनों पार्श्व ऐसी दो समानान्तर रेखाओं की भाँति प्रतीत होंगे जिनके नीचे के दोनों सिर वर्तुलाकार रूप में आपस में मिले हुए हों। ये कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो मनुष्य की आवाज निकालने में सहायक होती है।

मनुष्य का नाडी-यन्त्र तथा मस्तिष्क यदि अत्यन्त विकसित अवस्था में होता तो मनुष्य का वाक्-यन्त्र भी व्यर्थ होता। क्योंकि वह अपने विचारों

को दूसरों तक प्रकट न कर पाता। भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाजें तो पशु भी कर लेते हैं परन्तु उनका वाक्-यन्त्र उस शृंखला को चलाने में असमर्थ रहता है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी बात दूसरों तक पहुँचाता है। यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम देखते हैं कि मूर्ख मानव स्पष्ट बोलने में भी असमर्थ रहते हैं। यह सम्भव है कि गोरिल्ला, चिम्पाजी अथवा अन्य कोई वानर-मानव एक स्थूल आवाज द्वारा मानव बोली को बोल सके। परन्तु उसका अविकसित मस्तिष्क एवं नाड़ी-यन्त्र क्रमबद्ध विचार-शृंखला को व्यक्त करने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकता। हो सकता है कि मनुष्य जो कुछ वाणी से कहता है उसका बौद्धिक महत्व कम हो अथवा न भी हो परन्तु उसका समाज-शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। क्योंकि वह वाक्-शक्ति द्वारा संस्कृति के विकास में योग देता है और जीवन का एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है जिससे मानव-जाति की अभिवृद्धि एवं कल्याण होता है।

६ कतिपय अन्य गुण—

१. बाल पशुओं का प्राकृतिक आवरण है। पशुओं पर इस प्राकृतिक आवरण के होने से उनकी शारीरिक उष्णता नष्ट नहीं होती। मनुष्यों में प्रारम्भिक आवरण का अभाव है, अतः उसकी शारीरिक उष्णता बहुत-कुछ नष्ट हो गई है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य को शीतप्रधान प्रदेशों में रहने पर कृत्रिम आवरण का आश्रय लेना पड़ता है। अपने शारीरिक संरक्षण अथवा आक्रमण से बचाव करने के लिए उसके पास अन्य स्तनधारियों (Mammels) की भाँति आखेटयोग्य दन्तावलि नहीं होती। अतएव अपनी सुरक्षा के लिए वह कृत्रिम साधनों, उपकरणों आदि का आश्रय लेता है, और अपनी रक्षा के लिए नवीन आविष्कार करता रहता है।

२. मनुष्य का शैशवकाल पशुओं की अपेक्षा अधिकतर लम्बा होता है। अपने शैशवकाल में वह परमुखापेक्षी एवं पराधीन होता है। यदि मां-बाप निरन्तर काल तक उसका पालन-पोषण न करें तो सम्भवतः उसका जीवन कुछ क्षणों में ही समाप्त हो जाये। मनुष्य को सहज ही किसी वस्तु के प्रति घृणा नहीं होती। वह अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल बनाकर सब कुछ खाने-पीने के लिए उद्यत हो जाता है। अनेक प्रकार की वस्तुओं मांस, अनाज, घास, फल-फूल इत्यादि का उपयोग करके वह अपना जीवन-यापन कर सकता है।

### ५. मनुष्य का सामाजिक महत्व

मनुष्य और पशु में केवलमात्र भेद बुद्धि एवं ज्ञान का है। बुद्धि के बल पर ही मनुष्य ने संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया हुआ है। मनुष्य को पशुओं का राजा भी इसीलिये कहा जाता है क्योंकि वह कृत्रिम साधनों के आविष्कार द्वारा उन पर अपना साम्राज्य फैलाये रहता है। यों तो पशुओं की अपेक्षा मनुष्य का शरीर दुर्बल, शक्तिहीन एवं लघु होता है। मनुष्य के दो पैरों के बल चलने से उसमें चलने की गति भी पशुओं से कम ही रहती है। चूंकि मनुष्य के शरीर पर बाल व कांटे नहीं होते अतएव वह अपनी रक्षा भी भलीभांति नहीं कर पाता। आपत्ति के समय उसे अपना शरीर बचाना कठिन सा प्रतीत होता है। मनुष्य की सीधा खड़े होने की प्रकृति उसके प्रजननशील अंगों की क्षति की सम्भावना को बढ़ा देती है। मनुष्य के लिये यह कठिनाई है कि उसे दो पैरों पर खड़ा हो सकने के लिये पर्याप्त समय तक लालन-पालन के हेतु दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है। और जब तक वह चलने-फिरने योग्य नहीं होता तब तक उसे दूसरों की दासता स्वीकार करनी पड़ती है। अपने को सांसारिक वातावरण के अनुकूल बनाने के लिये उसे कई वर्षों तक पर्याप्त तपस्या करनी पड़ती है और परिश्रम और निरन्तर शिक्षा प्राप्त कर लेने पर वह समाज के लिए अनुकूल बन पाता है।

मनुष्य को यदि हम पशु मानें तो उसके साथ हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अतीव क्षुद्र एवं अकिंचन है। परन्तु एक चीज मनुष्य को सम्पूर्ण पशु-जगत् से पृथक् कर देती है वह है उसका मस्तिष्क। इसी के बल पर वह प्रकृति और परमात्मा से भी टक्कर लेने का प्रयत्न करता है। वह अपने मस्तिष्क द्वारा कठिन से कठिन और असम्भव कार्य को भी सम्भव बनाने का प्रयत्न करता है और उन्हीं प्रयत्नों की सफलता के लिए अपना सारा जीवन जुटा देता है। मनुष्य के पास ग्रहण-शक्ति है। वह किसी चीज को सुगमता से सीख लेता है। उसके हाथों में दक्षता होती है। वह हाथों द्वारा किसी भारी से भारी काम को पूर्ण करने का बीड़ा उठा लेता है। उसमें सीधा खड़े होने का सामर्थ्य तथा संभाषण कर सकने की विशेषता होती है जो हम पशु-जगत् के किसी वर्ग में नहीं पाते। अपनी सम्भाषण-शक्ति द्वारा मनुष्य अपने ज्ञान का विकास कर उसे अपनी सन्तति तक पहुँचाता है। इस प्रकार वह ज्ञान एक सन्तति से दूसरी सन्तति तक क्रमशः पहुँचता चला जाता है और उस ज्ञान का लोप नहीं होने पाता। अतः मनुष्य का सामाजिक जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

# मानव-विकास

मानव-विकास की पूर्ववर्ती घटनायें—

सृष्टि के विकास के सम्बन्ध में वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक धारणाएँ पाई जाती हैं। जहां तक सृष्टि-विकास के सम्बन्ध में धर्म का स्थान है वहां तक हम देखते हैं कि संसार के सभी धर्म इस विकास-प्रक्रिया की व्याख्या अपने ही ढंग से करते हैं। १६ वीं शताब्दि के पिछले भाग में जब सामाजिक सिद्धान्तों का विभिन्न दृष्टि से अध्ययन किया गया तो डार्विन के प्राणि-शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रभाव से तथा हर्बर्ट स्पेन्सर एवं कतिपय अन्य मानव-शास्त्रियों की विकास सम्बन्धी दार्शनिकता द्वारा यह विचार प्रबल होता गया कि रूपान्तर तथा परिवर्तन का सिद्धान्त ही सृष्टिविकास-क्रम पर लागू होता है। भूत को वर्तमान से जोड़ने का विचार कोई नवीन विचार नहीं। सामाजिक विकास को पूर्णरूपेण डार्विन के विकास सम्बन्धी सिद्धान्तों से जोड़ना किसी न किसी रूप में भूल ही है। शुरू से मानवशास्त्रियों ने यह भूल की है। आदिम निवासी भी इन समस्याओं पर विचार किया करते थे। उस विचार-धारा का उद्देश्य भूत और वर्तमान की विशेष दृष्टिकोण से व्याख्या करना था। एस्किमो को ही लीजिये। उनका विचार था कि भूत और वर्तमान एक समान हैं। जो वस्तुएँ जिस रूप में आज हैं उसी रूप में वे पहले भी थीं। वर्तमान भूत का प्रतिबिम्ब मात्र है। बहुत से आदिमवासियों का मत है कि एक विचार को सत्य में परिवर्तित करने का नाम ही उत्पत्ति है। उत्पत्तिकर्ता का विचार सत्य के संसार में सच्चाई का रूप धारण कर लेता है। वे अमेरिकन इण्डियन्स जिन्होंने मनुष्य को कला, शिक्षा तथा व्यवसाय का पाठ पढ़ाया—इस विचार के प्रबल समर्थक थे।

पोलिनेशिया में 'ताने' नामक देवता को सृष्टि का उत्पादक माना जाता था। जब 'ताने' पुरुष को उत्पन्न कर चुका और स्त्री को उत्पन्न करने की बारी आई तो उसने मानवीय रूप में मिट्टी की निर्जीव मूर्ति बनाई। महान् देवताओं से मन और आत्मा मांगे गये। जब ताने ने उस मूर्ति के नथनों में सांस डाला तो वह सजीव हो गई। मूर्ति की आंखें खुल गईं। यह एक स्त्री-रूप था। इस प्रकार पुरुष के बाद स्त्री का भी संसार में प्रवेश हुआ। रूपान्तर व परिवर्तन सम्बन्धी ये काल्पनिक विचार सभी जातियों

...ये जाते है। आस्ट्रेलियन लोगों का विचार है कि सब से प्रथम 'माकू' तथा ...रानुई रंगी' नामक दो जीव, पुरुष और स्त्री उत्पन्न हुए। इनसे 'रंगी-...तकी' नामक सन्तान जो आकाश का रूप थी, उत्पन्न हुई। आकाश ने पृथ्वी ...शादी की और उसे अपनी स्त्री बनाया। इस प्रकार संसार की उत्पत्ति हुई।

इस विकास-क्रम के समानान्तर पृथ्वी तथा समुद्र म वनस्पति-जगत् का भी प्रारम्भ हुआ। पहले सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था। जब पानी में मे कुछ जमीन प्रकट हुई तो दिन और प्रकाश का आभास हुआ। धीरे-धीरे लघु और विशालकाय मछलिया तथा अन्य जीव-जन्तु भी प्रकट हुए। ग्रीस, यूनान, भारत, तथा फ्रांस के बड़े-बड़े दार्शनिकों ने भी मानवीय विकास के इस क्रम पर अपने विद्वत्तापूर्ण विचार प्रकट किये है। परन्तु विकास क्रम के इस धार्मिक स्वरूप को अमान्य एव अवैज्ञानिक घोषित किया गया। आगस्ट कामटे ही पहला दार्शनिक था जिसने सब से प्रथम इस विचारधारा को पोषित किया कि वे सभी अवस्थायें जिनमें से मानवीय समाज अपना विकास करता चला आया है अब भी पृथ्वी के सभी सजीव-प्राणियों में दृष्टिगोचर होती है। जहाँ तक ऐतिहासिक परिवर्तनों का सम्बन्ध है मानवजाति में परिवर्तन हुए परन्तु सांस्कृतिक विकास के मार्ग में भूत और वर्तमान का तारतम्य एक समान ही रहा है।

लैमार्कवाद से स्पैन्सरवाद तक—

१८वी शताब्दि के अन्त में तथा १९वी शताब्दि के प्रारम्भ में सृष्टि-विकास के क्रम पर विद्वत्तापूर्ण अन्वेषण हुए। सबसे प्रथम लैमार्क ( १७४४-१८२९ ) ने यह घोषित किया कि अवयव सम्बन्धी कार्य इन्द्रिय का साचा बनाते हैं और गुण आनुवंशिकता से प्राप्त होते हैं। जीवधारी रचना इन्द्रियों के विकास द्वारा कई अवयवों को सुदृढ़ बनाकर अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो जाती है। अर्थात् शेर के पंजे, हाथी के दांत, जिराफ की गर्दन, आदि वि... एव लक्षण अपनी रचना के समय आनुवंशिक रूप धारण करते हैं। आधुनि... प्राणि-शास्त्रवेत्ताओं का विचार इससे कुछ भिन्न है। वे गुणों को केवलम... वंशपरम्परागत सिद्धान्त पर आधारित नहीं मानते। इसके बाद राबर्ट माल... ने इस दिशा में कार्य किया और यह सिद्धान्त स्थापित किया कि ... संख्या का तथाकथित विधान निरीक्षण पर आधारित होता है। जनसंख्या... रसद संचय समय के साथ-साथ बढ़ते चले जाते हैं और इस वृद्धि का प्र... एक समान नहीं होता। जब जनसंख्या रेखागणित के अनुपात द्वारा ब...

तो रसद संचय अंकगणित के अनुपात द्वारा बढ़ता चला जाता है। परिणाम यह होता है रसद का अनिवार्य रूप से अभाव हो जाता है, और संसार में अपनी-अपनी सत्ता कायम रखने के लिए एक होड़ पैदा हो जाती है जिसमें रसद की अभिलाषा अनिवार्य हो जाती है। माल्थस के इस विचार से चार्ल्स डार्विन तथा हर्बर्ट स्पेन्सर को परिचय प्राप्त हुआ। १६वीं शताब्दि के प्रारम्भ में अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा श्लैडन ने वनस्पति शास्त्र तथा श्वैन ने प्राणिशास्त्र सम्बन्धी अनुसन्धान किये और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि जातियाँ अपने विकास में एक-दूसरे से सम्बन्ध रखती हैं। इसके बाद एक रूसी-जर्मन जीव शास्त्रवेत्ता कार्ल अर्न्स्ट वान बेयर ने भ्रूण-विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त करने के बाद स्त्री-रज के सम्बन्ध में कई अनुसन्धानात्मक परीक्षण किये और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि व्यक्तिगत जीवधारी रचना अपने विकास-क्रम के समय ऐसे स्तरों में से होकर गुजरती है जिनमें से कि पशुजातियाँ एक कोष्ठ-सम्बन्धी जीवधारी रचना से विशेष जीवधारी रचना की ओर विकसित हुई हों। इस सिद्धान्त की पुष्टि में अर्न्स्ट हीकल ने विभिन्न-विभिन्न प्राणियों के भ्रूणों के चित्र प्रस्तुत किये। इन प्राणियों के आधार पर जीवशास्त्र-विशारद चार्ल्स डार्विन तथा दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी विशद पद्धतियों का निर्माण किया।

डार्विन वनस्पति जगत् और पशु जगत् की अनित्यता के विचार से अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने भिन्न-भिन्न स्थानों के भिन्न-भिन्न पशुओं और पक्षियों में एक प्रकार की समानता पाई और पशु-जगत् तथा वनस्पति-जगत् में एक भेद अनुभव किया। डार्विन ने माल्थस के जीवन सम्बन्धी होड़-सिद्धान्त की भी गहराई से छानबीन की। वह सोचा करता था कि ध्रुव प्रदेश में रहनेवाला रीछ वास्तव में ध्रुव-प्रदेशीय नहीं होता परन्तु रीछ-परिवार के एक ऐसे भेद से सम्बन्ध रखता है जो अन्य प्रदेशों में श्वेत नहीं अपितु काला व भूरा होता है। तब ध्रुव प्रदेश में रहने से वह श्वेत क्यों बयों होजाता है? डार्विन का विचार था कि रीछ के बालों पर सबसे प्रथम एक श्वेत धब्बा दिखाई देता है और जब यह रीछ अपनी आनुवंशिक प्रणाली में परिवर्तित होता है तो कुछ-कुछ भूरा और कुछ-कुछ सफ़ेद हो जाता है। धीरे-धीरे उसके चिन्ह कालान्तर में बदल कर परिवर्तन-विधि द्वारा श्वेत रंग के हो जाते हैं। इस प्रकार डार्विन ने लैमार्क के वंश-परम्परागत गुणों के सिद्धान्त को ग्रहण कर लिया। इसी को उसने 'प्राकृतिक चुनाव' के सिद्धान्त का नाम दिया और अपने विभिन्नता की सत्यता पर आधारित आनुवंशिक सिद्धान्त का परिपोषण किया और कहा कि जो परिस्थितियों के अनुकूल जीवन की होड़ में उपयुक्त होते हैं वे विजय पाते हैं और अन्य अनुपयुक्त सिद्ध होकर नष्ट

...ते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने भी अपने पक्ष का पोषण करते हुए यह सिद्ध ... कि विकास तभी हो सकता है जब प्राप्त गुणों का आनुवंशिक क्रम हो; ...था विकास नहीं हो सकता। स्पेन्सर की यह पक्की धारणा थी कि यह ...न्तर व परिवर्तन सदैव एक ही दिशा में धीरे-धीरे तथा प्रगतिशील होता ...। सांस्कृतिक परिवर्तनों में एकरूपता होती है। आदिम काल से लेकर आज... ...क संस्कृतियों में अनेक परिवर्तन हुए परन्तु क्रम एक समान रहा। कला और ...धर्म जिस रूप में आदिकाल में था उसी रूप में कतिपय परिवर्तित परिस्थि... ...तियों में आज भी विद्यमान है। शिकार, कृषि तथा पशुपालन के कार्य को ही लीजिये। आदिम काल से ये काम मनुष्य जाति में चले आये हैं परन्तु कई परि... ...वर्तनों के अनन्तर आर्थिक दृष्टि से मनुष्य जाति ने अब भी इन कार्यों को अप... ...नाया हुआ है।

प्रो० हक्सले का यह मत बिल्कुल ठीक है कि विकास वाद का ईश्वर वाद व अध्यात्मवाद से कोई सम्बन्ध नहीं। जहां तक उत्पत्ति के सिद्धान्त का सम्बन्ध है वहां तक इतना ही कहा जा सकता है कि विकास वाद और अध्यात्मवाद आपस में बिल्कुल विरोधी ज्ञान के वाहक हैं। क्योंकि ईश्वर वाद अथवा अध्यात्म वाद के उत्पत्तिविषयक सिद्धान्त धर्म अथवा धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित हैं परन्तु विकास-वाद के उत्पत्तिविषयक सिद्धान्त ठोस वैज्ञानिक गवेषणाओं पर आधारित हैं। मानव शास्त्र का धर्म के सत्य और असत्य भावों से कोई सम्बन्ध नहीं। मानव शास्त्र इन बातों से बिल्कुल अलग-थलग रहता है। परन्तु धर्म का प्राकृतिक इतिहास, धर्मों का प्रारम्भ और विकास, विभिन्न मानव जातियों में फैले हुए धर्म आदि कुछ ऐसे विषय हैं जो मानव शास्त्र की सीमा के अन्तर्गत हैं।

ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान विकसित होता गया हमारी विशेषतायें हमारे अनुसन्धान-प्राप्त अवशेषों के आधार पर मनुष्य जाति के विकास क्रम का कुछ और ही रूप बताने लगी। हम धार्मिक विचारों को एक ओर रखकर मानव समाज के वास्तविक इतिहास पर तथा जिन-जिन विकासवादी अवस्थाओं में से गुजरता हुआ वह मेधावी मानव ( Homo Sapien ) के रूप में आया है—उस पर एकमत हो गये।

## मनुष्य का प्राणिशास्त्रीय विश्लेषण—

मनुष्य का विकास किस प्रकार हुआ? मनुष्य का अन्य प्राणियों से क्या सम्पर्क है? मनुष्य और पशु का क्या सम्बन्ध है? इत्यादि प्रश्न ऐसे

है जो शताब्दियों से वैज्ञानिकों की खोज का विषय रहे हैं। वैज्ञानिकों ने इस विषय में अपने-अपने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। कई विकासवादियों के अनुसार मानव विकास का प्रारम्भ पशु जगत् से माना जाता है। उनका कथन है कि मनुष्य प्रारम्भ में लंगूर की शक्ल में था परन्तु विकासवाद के सिद्धान्तानुसार उसके रूप में परिष्कृत परिवर्तन होते गये और कालान्तर में वह वर्तमान रूप में आया। अतः इतना तो अवश्यमेव स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य का विकास-क्रम हमें पृथ्वी और चट्टानों के बीच में से उपलब्ध होने वाले निखातक ( Fossil ) की पूरी जानकारी कर लेने से भली-भांति जाना जा सकता है। मनुष्य और अन्य सजीव प्राणियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि उन दोनों की रचना, उत्पत्ति, अभिवृद्धि, आचार-विचार आदि में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। धातुविद्या-विशेषज्ञों के कथनानुसार यह समता मनुष्य और प्राणिजगत् की कई श्रेणियों में तो यहा तक पाई जाती है कि उनका भेद करना भी कठिन हो जाता है। वनस्पति तथा पशुओं को वर्गों में विभक्त करने का सिद्धान्त इतना स्पष्ट है कि उससे विकासक्रम का पूरा-पूरा पता लगाया जा सकता है। मनुष्य, गोरिल्ला, शिंपांजी, गिब्बन आदि उस पुरातनकालीन परिवार के अवशिष्ट प्राणी हैं जिनका सम्बन्ध अनेक वर्षों पूर्व के प्राणियों से जुड़ा हुआ है।

प्राणिशास्त्र के विकास द्वारा यह पता चलता है कि मनुष्य की उत्पत्ति का क्रम लंगूर से जोड़ना हास्यास्पद है। कोई भी वैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता कि वर्तमान काल का मनुष्य गोरिल्ला और गिब्बन की सन्तान रहा होगा।

१६ वीं शताब्दि की बौद्धिक सफलताओं में यह सबसे बड़ी सफलता है कि मनुष्य के विकास का एक निश्चित क्रम विद्वानों ने निर्धारित किया है। प्राकृतिक जगत् में मनुष्य का क्या स्थान है? बड़े-बड़े विद्वान् इस पर एकमत हो चुके हैं कि मनुष्य पशुजगत् का एक सदस्य है। यद्यपि वह पशु है परन्तु उसमें बहुत सी बातें ऐसी हैं जो पशुओं से उसकी समानता नहीं दर्शाती। भौतिक मानवशास्त्रवेत्ताओं का सबसे प्रधान कार्य यह है कि वे प्रकृति में मनुष्य के स्थान, मानवीय विकास, पशु जगत् में मनुष्य की स्थिति तथा उसकी वंशपरम्परागत विभिन्नताओं के सम्बन्ध में पूरी-पूरी गवेषणा कर जिससे प्राणिक विकास का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त किया जा सके। नृ-तत्वशास्त्र द्वारा किये गये अनुसन्धानों से पता चलता है कि मनुष्य में एक विशिष्ट व्यवहार का विकास हुआ जो अन्य प्राणियों व पशु जगत् में उपलब्ध नहीं होता।

नस्ल और संस्कृतियों का पारस्परिक सम्बन्ध भी मानवीय जगत् के लिए एक तुलनात्मक अध्ययन का विषय है।

प्राणिशास्त्र-वेत्ता मनुष्य और पशु को पृथक्-पृथक् समूहों में विभक्त करते हैं। वे शारीरिक रचना की समानताओं पर विचार करते समय किसी वर्ग के रक्त सम्बन्ध पर विशेष ध्यान देते हैं। उनका विचार है कि जीवित मनुष्य की जाति ( Species ) *मानवाकार जाति* ( Homonidae ) की बची जाति है। मनुष्य बहुकोषीय ( Metazoa ) पृष्ठवंशी (Vertebrate ) अर्थात् जिसके अन्दर रीढ की हड्डी है - स्तनधारी ( Mammels) प्रधान वर्ग ( Primates) *मानव-सम प्रधानवर्ग* ( *Anthropoid Primates*) और मानव वर्ग का है। अतएव सर्वप्रथम इस पर विचार करते हैं कि मनुष्य-जीवन का विकास कोष द्वारा किस प्रकार हुआ ?

कोष रूप में विकसित जीवन—

मनुष्य का जीवन एक अकेले कोष के रूप में विकसित होता है। माता के गर्भ का रजाणु जब पिता के वीर्याणु से प्रजनन-प्रक्रिया द्वारा संपर्क में आता है तो जीव की उत्पत्ति होती है। रज और वीर्य के कोटाणुओं का सम्पर्क कोष की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार उत्पन्न हुए कोष का आकार-प्रकार इंच के २०० वें हिस्से के बराबर होता है। सर्वप्रथम यही कोष दो भागों *में विभक्त हो जाता है। पुनः यही दो भाग चार, आठ, सोलह और इसी प्रकार* कोटि-कोटि कोषों को जन्म देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी कोष एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूप से विकसित होते रहते हैं। इनमें से कोई कोष तो शरीर में पेशियों का आधार बनता है, कोई कोष ग्रन्थियों ( Glands ) का आधार बनता है और कोई कोष अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं का। इस प्रकार सभी विकसित कोष एक ही शरीर का विकास करने में सहायक होते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि इन कोषों का विकास अथवा निर्माण किस प्रकार होता है ? इस पर विचार करने के लिए हमें शरीररचना-शास्त्र का आश्रय लेना पड़ेगा।

कोषों के महत्वपूर्ण कार्य—

प्रत्येक कोष के दो महत्वपूर्ण भाग होते हैं। एक तो वह भाग है जिसे हम केन्द्रीय ( Nucleus ) मानते हैं तथा दूसरा वह भाग है जो केन्द्र के प्रति-

विक्त सम्पूर्ण अवशिष्ट भाग होता है जिसमें ऊपर नीचे तथा पार्श्वों का सभी भाग सम्मिलित होता है। कोष का केन्द्रीय भाग तथा अवशिष्ट भाग रासायनिक रचना ( Composition ) तथा शारीरिक व्यवस्था में पूर्णरूपेण भिन्न होते हैं। कोष के केन्द्रीय भाग का मुख्य कार्य यह है कि वह अत्यधिक भागों में विभाजित होकर जीवन की क्रिया को स्थापित रखता हुआ अपनी प्रक्रिया जारी रखे। कोष के अवशिष्ट भाग का कार्य यह है कि शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को उनके कार्यों के अनुसार विकसित करे। इस प्रकार केन्द्र कोष और अवशिष्ट बाह्य कोष अपने-अपने कार्यक्रम के अनुसार शारीरिक प्रक्रिया जारी रखते हैं। यदि दोनों का कार्य विभाजित न रहे तो अत्यन्त जटिल समस्या उत्पन्न हो जाये और अंगों का सम्पूर्ण विकास भी न हो सके। जब कोष-ग्रन्थियाँ ( Glands ) की रचना के समय केन्द्र कोष ग्रन्थियों में कार्यक्षमता, शक्ति, प्राण तथा विकास का कार्य सम्पन्न करेंगे तब उनके अवशिष्ट भाग स्रावों ( Secretion ) का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करेंगे, चूंकि स्रावों के बिना उनकी रचना अधूरी रह जायगी। जो केन्द्र-कोष मांसपेशियों का निर्माण करेंगे उनके अवशिष्ट कोष पेशियों में संकोचन, सिकुड़न आदि प्रक्रिया को क्रिया रूप में परिणत करेंगे। इस प्रकार दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी आपस में सामञ्जस्य पैदा करता रहेगा जिससे अन्योन्याश्रित भाव की पूर्ति होती रहे।

आनुवंशिक वृत्तियों में माता-पिता की देन—

प्राणिशास्त्र-वेत्ताओं का सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि निषिक्त अण्ड ( Fertilized ovum ) का केन्द्र प्रत्येक कोष को दो केन्द्र प्रदान करता है। एक केन्द्र तो पिता के वर्ण-सूत्र ( Chromosomes ) का तथा दूसरा केन्द्र माता के वर्ण-सूत्र का। जब यह कोष दो भागों में विभक्त हो जायगा तब यह भी दो ही केन्द्र देगा। इस प्रकार शरीर में विकसित कोटि-कोटि कोषों में भी अनिवार्य रूप से माता और पिता दोनों के वर्ण-सूत्रों का समावेश होना आवश्यक है। आनुवंशिकता का यह सिद्धान्त तीन आवश्यक सिद्धान्तों की ओर संकेत कर रहा है। प्रथम तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माता और पिता दोनों ही आनुवंशिकता के लिए उत्तरदायी होते हैं। दूसरा यह कि गर्भाधान के समय पर ही आनुवंशिकता का निर्धारण वर्णसूत्रों द्वारा हो जाता है। तीसरा यह कि प्रत्येक शरीर में आनुवंशिकता का अंश होता है। कोई शरीर ऐसा नहीं

जो आनुवंशिकता से रहित हो और जिसमें माता-पिता के वर्णसूत्रों का केन्द्र न हो।

गर्भधारण-काल में ही रजाणु और वीर्याणु का समन्वय होता है। इस समन्वय के अवसर पर ही कोष के कोटिश विभाजन में आनुवंशिकता का निवास होता है जिससे आनुवंशिकता उसी समय निर्धारित हो जाती है। तत्पश्चात् वह आनुवंशिकता अपरिवर्तितावस्था में वास करती है। जब आनुवंशिकता का समावेश हो जाता है उसके बाद न तो निषिक्त रजाणु में कोई बाह्य पदार्थ प्रवेश कर पाता है और न ही आनुवंशिकता बाहर से कोई गुण ग्रहण कर पाती है। बाह्य गुणों का प्रभाव आनुवंशिकता पर नहीं पड़ सकता। परिणाम यह होता है कि आनुवंशिकता अपरिवर्तनशील एवं स्थिर रूप धारण कर लेती है।

इस के अतिरिक्त इस अवसर पर जो सब से मुख्य क्रिया होती है वह यह है कि शरीर के प्रत्येक भाग में, प्रत्येक कण-कण में, प्रत्येक अणु-कोष में आनुवंशिकता व्याप्त हो जाती है। जब बच्चा उत्पन्न होता है उस से ९-१० मास पूर्व ही अर्थात् गर्भाधान के प्रथम दिन से ही आनुवंशिकता उसे प्राप्त हो चुकी होती है। रजाणु और वीर्याणु के पारस्पारिक सम्मिलन का काल ही आनुवंशिकता का प्रारम्भिक काल है। असंख्य कोषों का विभाजन होकर शरीर का कण-कण विकसित होता जाता है। तत्पश्चात् जीवन-काल की कोई भी घटना आनुवंशिकता पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती क्योंकि पूर्व-निर्धारित आनुवंशिकता का परिवर्तन असम्भव हो जाता है। आनुवंशिकता का पूर्व निर्धारण ही कोषों में माता-पिता के वर्ण सूत्रों के समावेश का परिणाम है।

### आनुवंशिकता तथा वर्ण-सूत्रों का सम्बन्ध—

वर्णसूत्र (Chromosomes) क्या है? केन्द्र में स्थित दण्डाकार अणुओं के समूह को ही वर्ण-सूत्र कहते हैं। ये वर्ण-सूत्र नानाविध रूपों में होते हैं। लम्बे, छोटे, टेढ़े-मेढ़े तथा अण्डाकार कितने ही रूपों में इनकी सम्प्राप्ति होती है। प्रत्येक कोष के केन्द्र में इन वर्णसूत्रों की संख्या ४८ होती है। जब प्रत्येक कोष का विभाजन होता है तब उस कोष का प्रत्येक वर्णसूत्र भी एक समान दो भागों में विभक्त हो जाता है और एक २ भाग एक-एक कोष की सम्पत्ति बन जाता है। इस प्रकार दोनों नवजात कोष उक्त ४८ वर्णसूत्रों के अधिपति होते हैं।

यह निश्चित है कि प्रत्येक कोष में माता और पिता दोनों के वर्णसूत्र समान

सम्या में रहते हैं। अतः हम प्रत्येक कोष में स्थित ४८ वर्णसूत्रों को २४ जोड़ों में विभक्त कर सकते हैं। कोष में स्थित वर्णसूत्र यों भी जोड़ों में ही प्राप्त होते हैं। निषिक्त अण्ड में भी वर्णसूत्रों के २४ जोड़े ही होते हैं जिनमें एक जोड़ा वीर्य का और एक जोड़ा रज का होता है। प्रत्येक कोष में २४ वर्णसूत्र रजाणु से और २४ वर्ण सूत्र वीर्याणु से प्राप्त होते हैं। जब दो कोषों में इनका विभाजन होता है तो ये पुनः २४,२४ होकर, २४ जोड़े हो जाते हैं अतः यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक कोष माता और पिता दोनों के वर्णसूत्र समान रूप से वहन करता है।

## वाहकाणु क्या काम करते हैं ?

मनकों की माला की भाँति वर्णसूत्र का रूप होता है। जिस प्रकार माला में मनके पृथक्-पृथक् रूप से अलंकृत होते हैं उसी प्रकार वाहकाणु (Genes) पिरोये हुए होते हैं। इन वाहकाणुओं की सख्या लगभग १००० होती है। ये वाहकाणु असमान सख्या में वर्णसूत्रों में विभाजित होते हैं। जिस प्रकार माता के रजाणु और पिता के वीर्याणु के जोड़ों में वर्णसूत्रों की उपस्थिति होती है उसी प्रकार वाहकाणु भी उनमें विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार जोड़ों के वर्णसूत्र एक समान होते हैं उसी प्रकार जोड़ों में वाहकाणु निश्चित नहीं कि एक समान हों। वे भिन्न भी हो सकते हैं। एक ही काल में जोड़ों के वर्ण-सूत्र एक समान होते हैं। अतएव माता पिता और सन्तान में समानता अधिक और भिन्नता कम होती है। माता पिता और सन्तान की यह समानता भिन्नता से कई गुणा अधिक होती है। परन्तु वाहकाणुओं की विभिन्नता भी हो सकती है। यह विभिन्नता इस प्रकार जानी जा सकती है। मान लीजिये दो वाहकाणु विभिन्न-विभिन्न आकृतिवाले हैं। एक वाहकाणु नीली आँख-वाला और दूसरा वाहकाणु भूरी आँखवाला है। यदि सन्तान को माता-पिता से भूरी आँखवाले वाहकाणु प्राप्त हैं तो आनुवंशिक क्रम के आधार पर सन्तानोत्पत्ति के समय सन्तान की आँखें भूरी ही होंगी। यदि वाहकाणु नीली आँखवाला होगा तो सन्तान की आँख भी नीली ही होगी। इसके अतिरिक्त एक और बात भी है। वह यह कि नीली आँखोंवाले वाहकाणुओं की अपेक्षा भूरी आँखवाले वाहकाणु शक्ति में अधिक प्रबल भी होते हैं। अतः सन्तान पर उनका प्रभाव भी प्रबल होता है। क्योंकि वाहकाणुओं की प्रबलता भी पर्याप्त मुख्यता रखती है। देखा गया है कि यदि माता-पिता भूरी आँखवाला वाह-काणु दें और पिता नीली आँखोंवाला हो तो भी सन्तान की आँखें भूरी ही

होगी। क्योंकि भूरी आँखवाले वाहकाणुओं की शक्ति नीली आँखवाले वाहकाणुओं की शक्ति से निश्चित अधिक थी।

मैंडल का सिद्धान्त—

मि० ए० जी० मैंडल ने निरन्तर आठ वर्ष तक पौधों पर नानाविध परीक्षण किये और अन्त में वह सन् १८६५ में इस परिणाम पर पहुँचा कि आनुवंशिकता सन्तान के लिंग-निर्माण में और शारीरिक रचना सम्बन्धी विशेषताओं में महत्वपूर्ण भाग लेती है और सहायक होती है। उसने मटरों पर नानाविध परीक्षण किये। उसका विचार था कि बगीचे में उत्पन्न किया हुआ मटर प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तानुसार विशुद्ध है और उसमें किसी प्रकार का प्रसंकरण ( Hybridization ) नहीं। इसके लिए मैंडल ने लम्बे मटर के बीजों को और बौने मटर के बीजों को एक ही बगीचे में एक साथ बो दिया। जब पौधे उत्पन्न हुए तो उनका आकार लम्बा था। अब उन बीजों को दोबारा बोया गया। इस बार जो पौधे उत्पन्न हुए उनमें से ¼ भाग तो आकार में बौने अथवा छोटे थे तथा ¾ भाग वैसे ही आकार में लम्बे थे जैसे पहले। यही बौने पौधों का ¼ भाग पुनः उगाया गया तो सभी बौने ही उत्पन्न हुए। परन्तु जो ¾ भाग लम्बे पौधों का था जब उसे दोबारा उगाया गया तो उसमें से भी ¼ भाग पुनः बौने पौधों का उगा। इससे स्पष्ट है कि इन ¾ पौधों में ⅓ भाग तो शुद्ध दीर्घ पौधों का था और शेष में वर्ण-संकर था। यह वर्ण-संकरता क्यों हुई? यदि हम इस पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि इसका कारण स्पष्ट था। दीर्घ पौधों ने अपनी विशेषता द्वारा बौने पौधों की विशेषता पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया था जिससे बौने पौधों की विशेषता दब गई थी। इससे दो सिद्धांतों का स्पष्टीकरण हो गया—

१ प्रथम यह कि प्रबल अथवा दुर्बल गुणों की विद्यमानता।

२. दूसरा, पृथक्करण की निश्चितता।

इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वर्णसूत्रों अथवा वाहकाणुओं में जो विशेषतायें प्रबल होती हैं वर्णसंकर होने पर भी उनका लोप नहीं होता अपितु वे प्रबल अवस्था में निहित रहती हैं। वर्णसंकर होने के पश्चात् भी उनका प्रकटीकरण अवश्य होगा। इस प्रक्रिया में दूसरी विशेषता भी साथ-साथ चलती रहेगी। वर्णसूत्रों में विद्यमान रहनेवाले वाहकाणु आनुवंशिकता के वाहक होते हैं। वंशपरम्परागत विधि द्वारा एक वंश को जो गुण अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त होता है वाहकाणु उसके साधन हैं। जब उस सन्तति में शारीरिक चिन्हों को

निर्धारण करने की प्रक्रिया होती है तो ये वाहकाणु अपने प्रभाव द्वारा शारीरिक लक्षणों एवं चिन्हों की रचना में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। ये वाहकाणु आनुवंशिकता की शृंखला को अटूट एवं अविच्छिन्न रखने में भी अत्यन्त सहायता प्रदान करते हैं। आनुवंशिकता की इस शृंखला को अटूट बनाये रखने के लिए ये वाहकाणु निषिक्त रजाण्ड में इस प्रकार रहते हैं जैसे कि ये एक-एक समूह के रूप में पृथक्-पृथक् विशेषताओं की इकाइयों के वाहक हों। पुनः यही समूह इन अलग-अलग विशेषताओं को नवीन सन्तति की आनुवंशिकता में ले जाने का कार्य सम्पन्न करते हैं।

मैंण्डल के विचार की तथ्यता यही है कि मनुष्य पर भी सीमान्तर्गत रूप में प्रबल विशेषताओं का ¾ तथा दुर्बल विशेषताओं का ¼ परिमाण नियमानुसार लागू होना रहता है। यदि हम वर्णसूत्रों के मेल की प्रक्रिया तथा इस सम्मिश्रण में प्रबल अथवा दुर्बल वर्णसूत्रों के प्रवेश पर ध्यान पूर्वक विचार करें तो हम यह भी जान सकते हैं कि बच्चे में माता के कौन से गुण और पिता के कौन से गुण आनुवंशिकता द्वारा प्राप्त हुए हैं। माता और पिता के गुणों का प्रबल और दुर्बल रूप हम सन्तान में पूर्णतया प्रतिबिम्बित पाते हैं। यदि हम आनुवंशिकता के इस सिद्धान्त की उपेक्षा करें तो हम वर्णसंकरता का निर्णय भी न कर पायेंगे। आनुवंशिकता से हमें जो कुछ मिल चुका है वह आजन्म अपना प्रभाव डालता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य परिपक्वावस्था को प्राप्त होता जाता है त्यों-त्यों आनुवंशिकता का प्रभाव मनुष्य में क्रियात्मक रूप में दृष्टिगोचर होता है। शरीर की सभी रचना जन्म से ही आनुवंशिकता के आधार पर निश्चित हो जाती है। आंखों का बड़ा-छोटा होना, नाक का चपटापन आदि शारीरिक आकार-प्रकार सम्बन्धी बातें जन्म से ही निश्चित हो जाती हैं। परन्तु बालों का रंग, गंजापन, भृकुटि के बालों का आकार आदि विशेषतायें समय पाकर प्रकट होती रहती हैं।

## मनुष्य का भूगर्भशास्त्रीय विवेचन—

प्राचीन सत्य शास्त्रियों तथा भूगर्भ शास्त्रवेत्ताओं ने पृथ्वी के प्राचीनतम इतिहास का विशद वर्णन करते हुए पृथ्वी की आयु को निर्धारित किया है। वे पृथ्वी की आयु का विभाजन कई युगों में करते हैं। मनुष्य के सम्प्राप्त काल को वे अतिनूतन काल कहते हैं। प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान हमें पृथ्वी के गर्भ की प्राचीन वस्तुओं से ही प्राप्त होता है। जीवाश्मित जीवन (Fossilized life) के परिवर्तन शील लक्षणों के आधार पर भूगर्भ-

शास्त्रीय स्तम्भों के एक उपविभाग के अनुसार ५ कल्प नियत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण भौमिकीय परिवर्तनों के आधार पर भूगर्भ-शास्त्रीय स्तम्भों को संगठित करने वाला एक अन्य विभाजन भी है। इन्हें प्रारम्भिक ( Primary ) द्वितीयक (Secondary) तृतीयक (Tertiary) तथा चतुष्क (Quarternary) काल के नाम से भी कहते हैं। सम्पूर्ण चतुष्क काल और अन्तर्विभाग जो प्रतिनूतन युग के (Pleistocene) नाम से प्रसिद्ध है समकालीनयुग है। जल-वायु विशेषज्ञों ने इस युग को 'हिमयुग' (Ice Age) नाम दिया है। यह युग चार हिमयुगों ( Glacial periods ) तथा तीन अन्त.-हिमयुगों ( Interglacial Period ) में विभक्त किया गया है। परन्तु हिम सिद्धान्त ( Glacial Phenomena ) तथा उत्तरी भारत की नदियों की चट्टानों के संयुक्त प्रमाणों से इस बात का संकेत प्राप्त होता है कि प्रतिनूतन युग में उसी क्षेत्र में 'अन्तर्हिम' युगों से पृथक् पाँच हिम युग थे। भूगर्भ शास्त्रियों ने कल्पों का विभाजन इस प्रकार किया है।

१. उपः कल्प (*Eozoic*)
२. आदि कल्प (Paleozoic)
३. मध्य कल्प (Mesozoic)
४. नूतन कल्प (Cenozoic)
५. मानस कल्प (Psychozoic)

उपः कल्प—

सरलतम रूप के जीवों का यह कल्प आदि कल्प से भी पुरातन है। *भूगर्भशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार इस कल्प के प्रारम्भ की अवधि* १,५००,०००,००० वर्ष मानी गई है।

आदि कल्प ( Paleozoic )—

इसे पुराजीवीय या प्राथमिक अथवा आदि कल्प कहते हैं। इसमें पृष्ठ-वंशी ( Vertibrate ) मछलियाँ तथा ग्राह विकसित हुए। अस्थि मत्स्य, उभयचर ( *Amphibians* ) और सरीसृप ( *Reptiles* ) आदि का भी विकास हुआ। प्राचीन जीव चूर्ण प्रावार: ( Mollusca ) भी इसी कल्प के हैं। भूगर्भशास्त्र-वेत्ता-आदिकल्प के प्रारम्भ की अवधि ६२५,०००,००० वर्ष मानते हैं।

भूगर्भ शास्त्रीय कल्प विभाजन

| कल्प | विभाग | | कल्प प्रारम्भ की अवधि |
|---|---|---|---|
| उष: कल्प | | | १,५००,०००,००० |
| आदि कल्प | | | ६२५,०००,००० |
| मध्य कल्प | | | १६०,०००,००० |
| नूतन कल्प | | | ५५,०००,००० |
| मानस कल्प | | | १६,०००,००० |
| नूतन कल्प | तृतीयकाल स्तनधारी युग | आदिनूतन | ५५,०००,००० |
| | | मादिनूतन | ३०,०००,००० |
| | | मध्यनूतन | १६,०००,००० |
| | | अतिनूतन | ७,०००,००० |
| | चतुष्कवाल | प्रतिनूतन | १,०००,००० |
| | | सर्वनूतन | २०,००० |

## मध्य कल्प ( Mesozoic or Secondary )

यह काल 'मध्य कल्प' अथवा द्वितीयक कहलाता है। इसे हम सरीसृप युग के नाम से भी कह सकते हैं। इस युग में वायवीय और भौतिक सरीसृप विकसित हुए। जलचारी जन्तुओं का भी इसी युग में विकास हुआ। चिड़िया और आदिकालीन स्तनधारी ( Mammels ) भी इसी युग में प्रकट हुए। विभिन्न प्रकार के तैरने वाले, उड़ने वाले तथा चलने वाले सरीसृप भी इसी युग के ही प्राणी हैं। मध्य कल्प के प्रारम्भ की अवधि १६०,०००,००० वर्ष मानी गई है।

## नूतन कल्प ( Cenozoic )

परवर्ती युग को नूतन कल्प, या नूतन जीवन अथवा आधुनिक जीवन कहते हैं। इसे हम स्तनन्धय युग के नाम से भी कह सकते हैं। इस कल्प को ६ कालों में विभक्त किया गया है। यह अनुमान किया जाता है कि यह कल्प आज से ६ करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। इस नूतन कल्प के ६ भाग निम्न हैं :

१. आदि नूतन ( Eocene )
२. आदि नूतन ( oligocene )
३. मध्य नूतन ( Miocene )
४. अति नूतन ( Pliocene )
५. अति नूतन ( Pleistocene )
६. सर्व नूतन ( Holocene )

## आदि नूतन ( Eocene )

इस आदि नूतन काल में जेरवाले ( Lutherian or Placental ) स्तनधारी प्राणी विकसित हुए। पहले नर-वानरों तथा कीटभोजी (Insectivore ) प्राणियों का विकास हुआ। इसे तृतीयक काल अथवा स्तनन्धयी युग भी कहते हैं। भूगर्भशास्त्रियों ने आदि नूतन काल के प्रारम्भ की अवधि ५५,०००,००० वर्ष मानी है। तृतीयक काल के आदि नूतन युग में मानव-विकास से सम्बद्ध प्राणियों में 'प्राइमेट्स' का विकास प्रारम्भ हो गया था। इस काल में मानव-विकास से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध प्राणी लैमूर था।

## आदि नूतन ( oligocene )

दूसरा काल आदि नूतन काल था जिसमें पहले-पहल छोटे मानवसदृश वानर (Anthropoid Apes) प्रकट हुए। इन्हें हम वर्तमान स्तनधारी प्राणियों के अग्रगामी कह सकते हैं। आदि नूतन काल के प्रारम्भ की अवधि ३,००००,००० वर्ष मानी गई है। पूर्व आदि नूतन काल में पूर्ववर्ती वानर (Parapithecus) का विकास प्रारम्भ हो गया था। मध्य आदि नूतन तथा अन्तिम आदि नूतन तथा पूर्व मध्य नूतन काल में वास्तविक वानर श्रेणी का विकास शुरू हो गया था।

## मध्य नूतन (Miocene)

तीसरा काल मध्य नूतन काल था जोकि दो से ४ करोड़ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। इस काल में वर्तमान महापुच्छविहीन वानरों के सामान्य रूप प्रकट हुए। इसके अतिरिक्त दो पैरों वाले ऐसे भूमिवासी भी प्रकट हुए जो देखने में मानवसदृश रूप थे। भूगर्भशास्त्रियों ने मध्य नूतन काल के प्रारम्भ की अवधि १९,०००,००० वर्ष मानी है। मध्य नूतन काल में महाकाय वानरों तथा वनमानुष दोनों विकसित होने लगे और ये मानव विकास क्रम से सम्बद्ध प्राणी थे। अन्तिम मध्य नूतन काल में तो तरुरोही वानर ( Dryopithecus ) भी विकसित हुए।

## अति नूतन (Pliocene)

चौथा काल अति नूतन काल है। यह लगभग १० लाख से २० लाख साल वर्ष पूर्व का काल है। नूतन कल्प का चौथा काल अति नूतन काल है जो तृतीयक काल अथवा स्तनधारी युग का अन्तिम काल है। इसके बाद चतुष्क काल का प्रारम्भ होता है। अतिनूतन काल के प्रारम्भ की अवधि ७,०००,००० वर्ष मानी गई है। आदि अतिनूतन काल में तरुरोही वानरों का विकास हुआ और उनकी मस्तिष्क रचना में भी धीरे-धीरे प्रगति प्रारम्भ हो गई। अन्तिम अति नूतन काल में मानवाकार प्राणियों के पूर्वरूप भी विकसित होने लगे।

## प्रति नूतन ( Pleistocene )

नूतन कल्प का पांचवां काल प्रति नूतन ( Quarternary ) तथा हिम-

काल (Ice Age or Glacial epoch) कहलाता है। इस काल के प्रारम्भ की अवधि १,०००,००० वर्ष मानी गई है। इसी काल में सर्वप्रथम हमें मानव-सदृश जीवों के अवशेष प्राप्त हुए। यह वही काल है जिसमें मनुष्य, मनुष्य के रूप में प्रकट और विकसित शृङ्खला से आबद्ध रहा है। प्राप्त साक्षियों के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रति नूतन युग के समाप्त होने से पूर्व ही तीन प्रकार के प्रमुख मानव-वर्गों का पृथ्वी पर अवतरण हुआ। इन मानव-वर्गों में से आधुनिक मनुष्य को छोड़ कर आज कोई भी जीवितावस्था में उपलब्ध नहीं होता।

१. प्रथम वर्ग में तीन प्रकार के वानर-मानव थे जो कि दक्षिणी अफ्रीका के प्रदेशों में रहा करते थे। इन प्राणियों के मस्तिष्क सापेक्षतया इतने छोटे होते थे जिनसे उनकी परिगणना निश्चयात्मक रूप से हम आधुनिक मनुष्यों में नहीं कर सकते। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये मानव की दिशा में पर्याप्त आगे बढ चुके थे। इतना ही नहीं, अपितु ये प्राणी दो पैरों पर चलने तथा जमीन पर रहने लग गये थे।

२. दूसरे वर्ग को हम 'प्राचीन मानव' वर्ग कह सकते हैं। ये मानव विश्व के विभिन्न-विभिन्न भूभागों में प्रकट हुए और ये मानव की विभिन्न नस्लों के ही प्राणी थे। जावा के वानर मानव और उनके साथी, पेकिंग से प्राप्त चीनी मानव, दक्षिणी इंगलैण्ड के पिल्ट डाउन स्थान से उपलब्ध उप:मानव, तथा पश्चिमी योरूप, निकटपूर्व, और मध्य रूस में बिखरे 'नीनडरथल मानव' ( Neanderthal ) इसी श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं। इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि जहां-जहां नीनडरथल मानव और आधुनिक मानवों का सम्पर्क हुआ वहां उन्होंने अपनी सन्तति का विकास किया। प्रति नूतन व हिम युग के अन्तिम चरण में फिलस्तीन में कार्मेल पर्वत के निकट ऐसा ही हुआ।

भूगर्भशास्त्रियों ने प्रति नूतन काल को हिमयुग भी इसीलिए कहा है क्योंकि इस समय पृथ्वी का बहुत बड़ा खण्ड हिमाच्छादित था। ग्रीन-लैण्ड का समूचा प्रदेश हिमावृत था। उत्तरीय अक्षांश में योरुप का सम्पूर्ण प्रदेश दक्षिण में ५० वें अक्षावृत्त तक तथा उत्तरी अमेरिका में ४० वें अक्षावृत्त तक सब हिम से आच्छादित था। कहीं-कहीं पृथ्वी का छोटा सा टुकड़ा ऐसा दिखाई दे जाता था जो हिमावृत न हो; जैसा कि दक्षिण-पश्चिमीय विस्कान्सिन, पश्चिमी न्यूफाउण्ड-लैण्ड तथा अलास्का की युकोन घाटी का प्रदेश। बरफ की धीरे-धीरे चलने वाली चट्टानें सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थीं। इन चट्टानों के आगे बढ़ने व गति करने से उत्तरीय अक्षांश के निवासयोग्य प्रदेशों का विस्तार कम होता गया और

पशु और वनस्पति जगत् को इस से महान् आघात पहुंचा। यही कारण है कि पशु और वनस्पति के निखातक अवशेष ( Fossil ) आज भी उन अवसादों ( Deposits ) से उपलब्ध होते हैं। प्रति नूतनकाल को हम पूर्व हिम-काल, प्रथम हिमकाल, प्रथम अन्त. हिमकाल, द्वितीय हिमकाल, द्वितीय अन्तः

| काल | अवधि—वर्षों में | समय |
|---|---|---|
| प्रति नूतनकाल | १,०००,००० | पूर्व हिमकाल |
| | ९००,००० | प्रथम हिमकाल |
| | ८५०,००० | प्रथम अन्तः हिमकाल |
| | ७५०,००० | द्वितीय हिमकाल |
| | ५००,००० | द्वितीय अन्तः हिमकाल |
| | २५०,००० | तृतीय हिमकाल |
| | २००,००० | तृतीय अन्तः हिमकाल |
| | ५०,००० | चतुर्थ हिमकाल |
| सर्व नूतनकाल | २५,००० | अंतिम २०,००० वर्ष |

चतुर्थ-काल के दोनों भागों की अवधि का विभाजन

हिमकाल, तृतीय हिमकाल, तृतीय अन्तः हिमकाल तथा चतुर्थ हिमकाल आदि

उपविभागों में बाँटते हैं। इस काल में हिम खण्ड घटते तथा बढ़ते रहते थे। प्रथम हिमकाल के प्रारम्भ की अवधि ६००,००० वर्ष, द्वितीय हिमकाल के प्रारम्भ की अवधि ७५०००० वर्ष, तृतीय हिमकाल के प्रारम्भ की अवधि २५०,००० वर्ष तथा चतुर्थ हिमकाल की अवधि ५०,००० वर्ष मानी गई है। इस प्रकार प्रत्येक 'हिम युग' के बीच में 'अन्तः हिम युग' का परिगणन किया गया है। यदि सम्पूर्ण प्रतिनूतन काल को आदि, मध्य और अन्त तीन भागों में विभक्त किया जाए तो आदि प्रतिनूतन काल में विशालकाय वानर मानवों, मध्य प्रति नूतन काल में मेधावी मानव सदृश प्राणियों और अन्तिम प्रतिनूतन काल में मेधावी मानवों का विकास-क्रम जाना जा सकता है। सब नूतनकाल में तो मेधावी मानव स्पष्ट रूप में विकसित हुए। इन सब मानवों का विशद वर्णन हम प्रधानवर्गों (Primates) के प्रकरण में करेंगे। परन्तु यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इन हिम युगों में वानर मानवों, उप. मानवों, चीनी मानवों, हीडलबर्ग मानवों तथा अन्य मानवों का विकास अपनी-अपनी दिशा में पूर्णरूपेण प्रारम्भ हो चुका था।

हिमखण्ड तथा पृथ्वी—

योरुप के दो प्रसिद्ध विद्वानों पेंक तथा ब्रुकनर ने—जिन्होंने हिम-सम्बन्धी अन्वेषण किये हैं यह स्वीकार किया है कि हिमखण्डों में निरन्तर प्रगति होती रहती थी। कः बार य हिमखण्ड इतनी जोर से हिलते थे और इनमें इतनी गति होती थी जिससे हिमरेखा खिसककर नीचे आ जाती थी और उत्तरीय गोलार्द्ध में हिमरेखा के नीचे आ जाने के कारण कुछ भूखण्ड दिखाई देने लगता था। इस प्रकार हिमखण्डों में ४ महान् और ३ गौण प्रगतियाँ हुईं जिनसे ७ घाटियों का प्रकटीकरण हुआ। जिन्हें गज, मिण्डेल, रिस, वर्म, बहल, गस्चनिट्ज तथा डान नाम से स्मरण किया जाता है। इंग्लैण्ड में तीन व चार, स्काटलैण्ड में ६, रूस में एक तथा अमेरिका में ५ या ६ हिमखण्डों की प्रगतियाँ बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ठण्ड और गर्मी का यह चक्र सदैव चलता रहा है। अतः यह वर्तमान, सर्व नूतन काल चतुर्थ अन्तः हिम काल है।

वर्षा सम्बन्धी प्रमाण—

जलवायु शास्त्र-वेत्ताओं ने अनेक अनुसंधानों के बाद यह सिद्ध कर दिया

हैं कि जब हिमखण्ड दक्षिण की ओर योरप की तरफ बढ़े तो तूफ़ान, आंधी तथा ववन्डर ने भी दक्षिण की ओर आक्रमण किया। इसके फलस्वरूप उत्तरीय अफ्रीका, मिश्र तथा सहारा प्रदेशों में अत्यधिक वर्षा हुई और ये प्रदेश निवास-योग्य बन गये। जैसे-जैसे उत्तर में हिमखण्ड निवासयोग्य स्थानों को आवृत करते जाते थे वैसे-वैसे सुदूर दक्षिण के प्रदेश मोरक्को से मंगोलिया तक के विस्तृत मरु-प्रदेश निवास—योग्य बनते जाते थे। ये ध्यान देने योग्य बात है कि मुख्य मुख्य संस्कृतियों का विकास भी इन्हीं स्थानों पर हुआ न कि हिमाच्छादित प्रदेशों की सीमा पर।

## घाटी तथा समुद्रतटवर्ती प्रदेश—

हिमखण्ड के घटने व बढ़ने के साथ साथ पथरील प्रदेश प्रकट हुए। नदी की घाटियों का भी विकास हुआ। टेम्स, राईन, नौन, डेन्यूब, इसर तथा कोनैक्टिकट नदी की घाटियों का कुछ भाग पानी से भर जाता और कभी पानी के उतार-चढ़ाव से नष्ट होता रहता। मि० मी० डेपरेट तथा कई अन्य विद्वानों ने मेडीटेरेनियन सागर के चार समुद्रतटों के प्रकटीकरण का भी उल्लेख किया है जिनका नाम उस स्थान के नामानुसार रक्खा गया है। वे हैं:—सिसिलियन, मिलाज़ियन, टिरेनियन, मोनैस्टेरियन। ये घाटियाँ कभी प्रकट होती थीं और कभी पुन. विलीन हो जाती थीं। पृथ्वी के घटने तथा बढ़ने की यह प्रक्रिया जारी रही।

## सर्वनूतन ( Holocene )

तीसरा वर्ग आधुनिक मानव के समावेश का है जिसे हम सर्वनूतन काल कहते हैं। मनुष्य आज से २५,००० वर्ष पूर्व पश्चिमी योरप तथा भूमध्य-सागरीय प्रदेश में प्रकट हुआ। 'क्रोमाग्नोन मानव' को योरप में आधुनिक मानव का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं। उनके आगमन तथा वंश के सम्बन्ध में अभी पूरा-पूरा पता नहीं चला है। परन्तु इतना अवश्य है कि इससे पूर्व के सभी मानवरूप लुप्त हो चुके थे। १०,००० ई० वर्ष पूर्व तक कतिपय मानव जातियों ने पशु पालन, कृषि तथा नगरनिवास आदि को पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी। इसमें सन्देह नहीं कि १०,००० से ५,००० वर्ष तक नव-पाषाण युग ( Neolithic Age ) के विकसित समय में मानव जाति ने जीवन और कला के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। इसी समय मिश्र और

मैसोपोटामिया में सभ्यता का विकास हुआ। सुमेरिया, महेन्जोदड़ो तथा मैक्सिको में उच्च श्रेणी की संस्कृतियाँ विकसित हुई और इसी समय में लिखित इतिहास की भी प्रारब्धि हुई।

## प्रधान वर्ग ( Primates )

सन् १६६६ में टाइसन ने सर्व-प्रथम एक युवा शिपाजी की शरीर-रचना का विशद वर्णन किया और इस प्रकार प्रधान वर्ग शास्त्र (Primatology) की नीव रक्खी। इसके बाद सन् १६१० में मोलिसन तथा १६३३ में शुल्ट्ज ( Schultz ) ने मानवसम प्रधान वर्गों तथा वानरों के सम्बन्ध में अनेक गवेषणायें की और उनमें पर्याप्त विभिन्नताओं का पता लगाया। मानवसम वानरों ( Anthropoid Apes ) में स्यामंग ( Siamang ) वानर को छोड़कर अन्य सब मानवसम वानरों के विषय में कुछ न कुछ क्रमबद्ध अध्ययन किया जा चुका है। मानवसम वानरों के अस्थि पंजर, दन्त रचना, मस्तिष्क रचना, केन्द्रीय नाड़ी संस्थान सभी मानवाकार प्राणियों से भिन्नता रखते हैं। और अब तो, जब से प्रधान वर्गों का विकास-सम्बन्धी इतिहास विदित हो गया है, तब से, उनके पारस्परिक महान् अन्तर का निर्धारण हो चुका है। प्रधान-वर्गों के भावना उत्पादक केन्द्र, आँख के पिछले भाग का चित्रपट, आँत तथा चक्षु-सम्बन्धी अन्य अंगों के विषय में भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो चुकी है। परन्तु अमानवीय प्रधान वर्गों (Non-human Primates) की उत्पत्ति और विकास की समस्यायें अभी तक पूर्ण रूप से हल नहीं हो सकीं; फिर भी इस दिशा में अनेक प्रयत्न जारी हैं।

प्रधान वर्ग (Primates) उन प्राणियों का समूह है जिसमें लेमूर, बन्दर, लंगूर तथा मनुष्य सम्मिलित हैं। प्राचीन विश्व (Old world) विभाजन के आधार पर शारीरिक दृष्टि से मनुष्य, गोरिल्ला, गिब्बन, ओरंगुटान तथा शिंपाजी आदि का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रधान वर्गों में प्राचीन तथा नवीन विश्व ( New world ) के सभी लेमूर तथा पुच्छल वानर और पुच्छ-विहीन लंगूर समाविष्ट हैं जो स्वभावत. वृक्षवासी होते थे। मेडागास्कर, अफ्रीका तथा ईस्टइण्डीज में प्रधान वर्गों के रूप उपलब्ध हुए हैं। लेमूर तथा बन्दर के बीच का एक आकार "टार्सियस" आकार है जो आदि नूतन ( Eocene ) काल में उत्तरीय अमेरिका तथा योरप में पाया जाता था और जिसके वंशज तृतीयक काल के प्रारम्भ में एशिया तथा अफ्रीका की ओर प्रव्रजन(Migration) कर आये थे। लेमूर के मुख का नोकीला भाग ( थूथुन ) लोमड़ी के सदृश

होती है अतः उन्हें बन्दर-सदृश नहीं माना जा सकता। परन्तु फिर भी इन्हें आधा बन्दर सदृश समझा जाता है। इसके अतिरिक्त इनके दो विभाग और हैं जिनमें प्रथम चौड़ी नासिका वाले (Platyrrhines) अमेरिकन बन्दरों की गणना की है जिनके नथुने पृथक्-पृथक् फले हुए होते हैं और द्वितीय प्राचीन विश्व ( Old world ) के सकीर्ण नासिकावाले ( Catarrhines ) बन्दरों की गणना की गई है जिनके दोनों नथुनों के बीच सकीर्ण पर्दा होता है; जिनमें बैबून, लंगूर तथा मनुष्य सम्मिलित है। यह निश्चित है कि इन दोनों वर्गों का विकास पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र रूप में हुआ। प्राचीन और नवीन विश्व के ये वानर अपनी-अपनी दिशा में समानान्तर रूप से विकसित होते गये।

| भूगर्भशास्त्रीय विभाग | मानव विकास-क्रम से सम्बद्ध प्राणी | अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध प्राणी |
|---|---|---|
| द्वितीय काल | पूर्व प्रधानक वर्ग (कीट भोजी) | लेमूर |
| आदि नूतन काल | टार्जियर | |
| पूर्व आदि नूतन | पूर्ववर्ती वानर | |
| मध्य " | वानर | |
| अन्त " | " | |
| तृतीय काल पूर्व मध्य नूतन | " | |
| मध्य " | महाकाय वानर | |
| अन्त " | तरुरोही वानर, दो पैरों पर अवलम्बित प्राणी | चीनी मानव |
| अति नूतन | तरुरोही वानर | |
| मध्य अति नूतन | तरुरोही वानर, मस्तिष्क रचना में प्रगति | |
| अन्त अति नूतन | पूर्व मानव | अफ्रीकन मानव |
| पूर्व प्रति नूतन | विशालकाय वानर मानव | |
| मध्य प्रति नूतन | मेधावी मानवसदृश प्राणी | पूर्व मानव |
| अन्तिम प्रति नूतन | मेधावी मानव | |
| सर्व नूतन | मेधावी मानव | |

मानव विकास में सम्बद्ध प्राणियों का विवरण

लैमूर प्राणी क्योंकि रात्रि में विचरण करता था अतः इसे भूत व पिशाच के रूप में भी समझते थे। यह आकार में छोटा होता था। इसके मुख का नोकीला भाग (थूथुन) लोमड़ी से मिलता-जुलता था। इनका आहार कीट, पक्षी तथा वानस्पतिक द्रव्य आदि था। यह मैडागास्कर तथा उसके आस-पास के द्वीपों में पाया जाता था। लोरी (Loris) लैमूर भारत तथा उसके आसपास के द्वीपों में पाया जाता था।

टार्सवासी टार्मियस चार भुजावाले तथा लैमूर परिवार से सम्बद्ध होते थे। इनका सिर गोल और मुख का नोकीला भाग (थूथुन) मोटा होता था। आँखें बड़ी-बड़ी और पूंछ लम्बी होती थी। इनके पिछले अंगों का भाग भी आकार प्रकार में बहुत लम्बा होता था।

## प्राचीन विश्व के वानर

प्राचीन विश्व के वानरों के इतिहास से प्रतीत होता है कि इनके चार परिवार थे।

१. पुच्छल वानर परिवार (Cercopithecidae) इनमें प्राचीन विश्व के सभी पुच्छल-वानरों तथा बेबून आदि की परिगणना की गई है।

२. वनचर वानर परिवार (Hylobatidae) जिसमें मलाया तथा ईस्ट इण्डीज के लम्बी बाहु वाले गिब्बन की परिगणना की जाती है।

३ समतलनासिका वानर परिवार (Simiidae) जिसमें बोर्नियो तथा सुमात्रा के ओरंगुटान तथा अफ्रीका के चिंपाजी और गोरिल्ला की परिगणना की जाती है।

४. मानव परिवार (Homonidae) जिसमें मानवाकार प्राणियों की परिगणना की जाती है।

## पुरातन विश्व के वानर—

कृष्णवानर—(Mangaby)—यह वानर रूप में बिल्कुल कृष्ण होता था परन्तु इसकी आँखों की पलकें बिल्कुल श्वेत वर्ण होती थी। सबसे प्रथम इसकी उपलब्धि मैडागास्कर में हुई थी। ये अफ्रीका के पश्चिमी समुद्र-तट पर रहते थे।

दीर्घाकृति वानर (Baboon)—इनकी आकृति लम्बी, मुख का नोकीला भाग (थूथुन) विस्तीर्ण तथा उन्नत होता था। कपोल थैलीदार, और दांत

कुत्ते के आकारवाले होते थे। नितम्ब प्रदेश नग्न तथा गिल्टीदार होता था। यह पूर्वीय महाद्वीप तथा उसके आसपास के द्वीपों में पाया जाता था।

अश्वपुच्छ वानर (Horse Tailed Monkey)—इन की पूछ घोड़े की पूछ की न्याई होती थी।

शशाकाकार वानर ( Lagothrix Monkey )—यह पश्चिमी अमेरिका के वानर दीर्घ पूछ वाले होते थे। इनके बाल कोमल तथा ऊन के समान घने होते थे।

समतलनासिका वानर—इनकी नासिका समतल होती थी।

दीर्घनासिका वानर ( Proboscis )—इस वानर की नाक बहुत लम्बी होती थी और यह बोर्नियो के इलाके में पाया जाता था।

लघुपुच्छ वानर ( Macacus )—एशिया में पाये जाने वाले इस वानर की पूछ छोटी होती थी और इसकी भृकुटिया विशेष प्रकार की होती थीं।

## नवीन विश्व के वानर—

कृष्ण शीर्ष वानर ( Capuchin ) ये गायनावासी वानर कहलाते थे। इनके सिर पर बाल होते थे। सिर का प्राय पिछला हिस्सा कृष्ण वर्ण होता था और अवशिष्ट भाग भूरे रंग का होता था।

गर्जनकारी वानर ( Howler Monkey )—यह बन्दर दक्षिणी अमेरिका के बनों में पाया जाता था और रात्रि के समय कुत्ते व भेड़िये के समान गुर्राता था।

मर्कटक वानर ( Spider Monkey )

लघु वानर ( Marmoset Monkey )— यह आकार में छोटा होता था। इसके बाल बहुत नर्म और पंजे साथ-साथ जुड़े होते थे। पूछ लम्बी तथा मोटी होती थी। गिलहरी से मिलता-जुलता था। यह भी दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता था।

चमरपुच्छ वानर ( Squirrel Monkey )—यह चतुष्पाद वानर चिमुरी अथवा गिलहरी के समान होते थे।

लोमड़ीसम पुच्छ वानर ( Saki Monkey )—इस वानर की पूछ लोमड़ी की पूछ के समान होती थी। यह दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता था।

घनकेशीय वानर ( Woolly Monkey )—इस वानर के बाल ऊन के समान घने तथा नर्म होते थे।

## प्रधान वर्ग

प्राचीन तथा नवीन विश्व वानर परिवार

| प्राचीन विश्व | नवीन विश्व |
|---|---|
| १ कृष्ण वानर | १. कृष्णशीर्ष वानर |
| २. दीर्घाकृति वानर | २. गर्जनकारी वानर |
| ३. अश्वपुच्छ वानर | ३. मर्कटक वानर |
| ४. शशकाकार वानर | ४. लघु वानर |
| ५. समतलनासिका वानर | ५ चमरपुच्छ वानर |
| ६. दीर्घनासिका वानर | ६. लोमडीसमपुच्छ वानर |
| ७. लघुपुच्छ वानर | ७. घनकेशीय वानर |

कतिपय प्राचीन सत्वशास्त्रियों का विचार है कि ये प्रधान वर्ग सम्भवतः कुछ आदिकालीन कीटभोजी सम ( Insectivore like ) प्राणिस्कन्ध (Stock) से प्रारम्भ हुए हैं। प्रधान वर्गों के लैमूर तथा टार्सियस आदि नूतन ( Eocene ) काल में विद्यमान थे और इसके बाद उनका लोप हो गया परन्तु प्रतिनूतन काल में ( Pleistocene ) में इनका पुनः प्रकटीकरण हुआ। अभी हाल ही में पूर्वीय अफ्रीका से जो लैमूर का आदि मध्यनूतन कालीन (Lower Miocene ) अवशेष प्राप्त हुआ है उससे इस जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उत्तरीय अमेरिका तथा योरप में आदिनूतन काल (Eocene) में कई प्रकार के टार्सियस विद्यमान थे परन्तु बाद में वे भी लुप्त हो गये। लैमूर तथा टार्सियस पृथक्-पृथक् रूप में विकसित हुए।

मिश्र का आदिनूतन कालीन ( oligocene ) प्रधान वर्ग प्राणी पूर्ववर्ती वानर ( Parapithecus ) बिल्कुल 'टार्सियस' से मिलता-जुलता है। इससे प्रतीत होता है कि सभी वानराकार प्रधान वर्ग 'टार्सियस' के वंशज हैं। दोनों के चबानेवाले दाँत एक समान हैं और जबड़े बहुत छोटे। "टार्सियस" से वानररूप में परिवर्तित होने का एक और प्रमाण बर्मा से भी उपलब्ध हुआ है जहाँ अन्तिम आदि नूतन कालीन ( Upper Eocene ) द्विजातीय वानर ( Amphipithecus ) की सम्प्राप्ति हुई है। ये द्विजातीय वानर टार्सियस तथा वानर दोनों प्रधान वर्गों से सम्बन्ध रखनेवाला प्राणी है। इतना ही नहीं, इससे भी आगे मानव-सम वानरों को भी टार्सियस का वंशज ही समझा गया

है। क्योंकि विचारधारा यह है कि पुच्छल बानर ( Cercopithecus ) तथा मानवसम बानर एक ही शाखा के हैं परन्तु विकास-क्रम में वे धीरे-धीरे एक-दूसरे से अलग हो गये।

पूर्ववर्ती बानर ( Parapithecus ) को अन्तिम आदि नूतनकालीन प्राचीन विश्व का बानर मानते हैं। प्राचीन विश्व के अति नूतनकालीन ( Pliocene ) अवसादों (Deposits) से पुच्छल बानरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषों का अध्ययन करने के बाद प्रतीत हुआ कि इनकी दन्त-रचना एक विशिष्ट प्रकार की है। यह दन्त-रचना पूर्वीय अफ़्रीका के आदि-

लैमूर टार्सियस
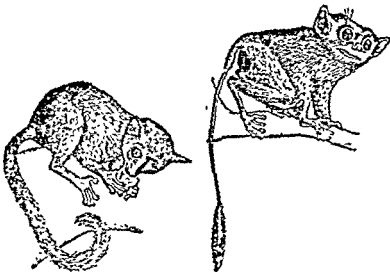
मध्य नूतन कालीन ( Lower miocene ) प्राणियों से मिलती जुलती है। कई मानव-शास्त्री कृमिम बानर को आदिकालीन मानवसम बानर ( Anthropoid Ape ) मानते हैं। परन्तु निष्पक्ष इससे सहमत नहीं। वे आदि अतिनूतन ( Lower Pliocene ) कालीन प्राणी पर्वतीय बानर ( Oreopithecus ) को पुच्छल बानर का ही रूप समझते हैं।

मानवाकार बानर (Homonidea) जाति के इतिहास के सम्बन्ध में अभी हाल ही में अनेक गवेषणाओं के आधार पर पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई है। मानवाकार जाति में मानव बानर तथा मानव परिगणित किये गये हैं। लीके (Leakey) ने पूर्वीय अफ़्रीका के आदि मध्यनूतन कालीन ( Lower miocene ) बानर

गर्ग तथा मि० डार्ट एवं मि० ब्रूम ने दक्षिणी अफ्रीका के अफ्रीकन वानर (Australopithecus के सम्बन्ध में गवेषणा की। कपाल तथा दन्त-रचना में इसे मानवाकार जाति के समान पाया गया। उन्होंने सिद्ध किया कि गिब्बन तथा श्यामग को पूर्ववर्ती वानर (Parapithecus) का वंशज माना। सम्भवतः अतिनूतन वानर (Pliopithecus) तथा सरोवरवर्ती वानर (Limnopithecus) भी इनके पूर्वज हैं चूंकि उनके जबड़ों और दाँतों की सादृश्यता उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं कर सकती। अतिनूतन वानर (Pliopithecus) तो बिलकुल गिब्बन से मिलता-जुलता है। यद्यपि इसके अंगों की कुछ अस्थियां लँगूर तथा बँदूर की भाँति भी हैं, परन्तु मानवाकार जाति से इसका जो सम्बन्ध दिखाई देता है उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

मिश्र के मरु प्रदेश से आदि-आदिनूतन काल (Lower oligocene) का जो अति नूतन वानर उपलब्ध हुआ है उसका नीचे का जबड़ा बहुत छोटा होता था और दन्त-रचना मानवरूप वानर से मिलती जुलती थी। पर यह एक बहुत ही छोटे आकार के बन्दर के सदृश होता था। मध्य नूतन काल (Miocene) के अवशेषों, विशेषतया भारत की शिवालिक पहाड़ियों में निखातक (Fossil) प्राणियों के दन्त और जबड़े मानवीय आकार के लगूर शिपाजी तथा आरगुटान से मिलते जुलते थे। परन्तु मानव जाति से इनका सीधा सम्बन्ध कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। ये सब प्राणी चतुष्पाद हैं और इनमें बाहु के बल पर चलने की प्रणाली विद्यमान है। हाँ! इतना अवश्य है कि इन प्राणियों का विकास मानवाकार जाति के विकास पर प्रकाश अवश्य डालता है, जिसका सीधा सम्बन्ध मानवाकार प्राणियों तथा मानवों से है। अतः मानव जाति के विकास की यह कड़ी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखी जा सकती। लँगूर तथा टार्सियस से प्राचीन और नूतन विश्व के वानरों तथा मानवसम वानरों की विकास शृंखला स्पष्टतया आभासित होती है जिसे आधुनिक मानव विज्ञानवेत्ता अत्यन्त महत्त्व प्रदान करते हैं। इन प्रधान वर्गों की भूगर्भशास्त्रीय आयु का अभी तक ठीक निर्णय नहीं हो सका।

सक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि टार्सियस तथा लमूर से मिलते-जुलते प्राणी दक्षिणी अमेरिकन बन्दर अथवा समतल नासिका वाले (Platyrrhine) बन्दर थे। भूगर्भ शास्त्र के आधार पर इनकी परिगणना मध्य नूतन युग में की गई है। ये आकृति में छोटे तथा इनकी नाक का उभरा हुआ भाग लघु होता था। इनकी पूंछ लम्बी होती थी। आकार-प्रकार में छोटे तथा भार में २० पौण्ड वजन के होते थे। स्वभाव में कुछ शान्त और अल्पबुद्धि समझे

आते थे। इनके दांतों की संख्या ३६ होती थी। दूसरे बन्दर पुरातन विश्व के पुच्छल वानर ( Cercopithecidae ) अथवा संकीर्ण नासिका वाले ( Catarrhine ) बन्दर थे जिनके दांतों की संख्या ३२ होती थी। इनकी विशेषता यह थी कि भोजन रखने के लिए इनके कपोल थैलीदार होते थे और बैठने के पञ्जे विशेष प्रकार के होते थे।

नवीन विश्व वानर

प्राचीन विश्व वानर
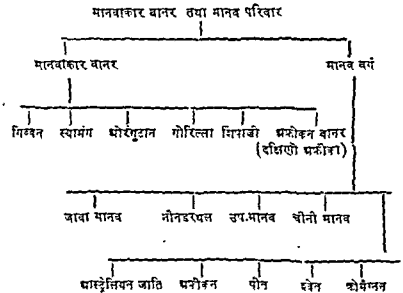
प्रधान वर्ग

मानवाकार वानर परिवार—

१. समतल नासिका वानर या मानवीय आकार के वानर पुच्छ विहीन होते थे। प्रधान वर्ग के अन्य प्राणियों की अपेक्षा ये हमारे अधिक समीप थे। मिश्र, योरुप तथा भारत के निखातक अवशेषों में इनके दन्तयुक्त जबड़े उपलब्ध हुए हैं। मानवीय आकार वाले वानर संख्या में चार-पाँच प्रकार के थे।

१. गिब्बन, २. स्यामंग, ३. ओरंगटन, ४. शिपांजी, ५. तथा गोरिल्ला। पहले तीन तो एशिया तथा भारत में तथा अन्य दो अफ्रीका में रहा करते थे। गिब्बन तो भारत के आसाम प्रान्त में था और वहाँ से डच ईस्ट इण्डीज के इलाके में गया। स्यामग प्रायश. सुमात्रा में उपलब्ध होते थे। उनके अंग-प्रत्यंग लम्बे परन्तु वजन में हल्के होते थे। गिब्बन का भार अधिक से अधिक १५ पौण्ड होता था। स्यामंग भार में इससे आधा होता था।

ओरंगटान ( Orangutan ) (जंगल का प्राणी )—

यह मलाया में उपलब्ध होता था। सुदूर पूर्व में बोनियो तथा सुमात्रा के कुछ भागों में भी पाया जाता था। आकार-प्रकार तथा व्यवहार में मनुष्य तथा शिपांजी के समान था। नर युवा ओरगटन मनुष्य की ऊंचाई से केवल १ फुट कम होता था। इसकी टाँगें छोटी और बाहू बहुत लम्बे होते थे। अतः इसका भार भी मनुष्य के भार से कुछ ज्यादा ही था। कई ओरंगटान वानरो का भार १६५ पौण्ड तक भी होता था। मादा ओरंगटान इससे छोटा होता था। इसकी त्वचा का वर्ण मटियाला तथा बाल रक्तवर्ण के और लम्बे होते थे। माथा ऊँचा तथा आकृति और नाक चौड़े होते थे। आँखें साथ-साथ तथा उनके नीचे नाक के नथने हुआ करते थे। ओरंगुटान के हाथ तथा पैर अन्य सभी प्रधान-वर्ग प्राणियों से बड़े होते थे। ओरंगटान इतना भारी होता था कि उसके लिये एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाना बड़ा कठिन कार्य था। जमीन पर उसके शरीर का आनुपातिक ढंग बहुत भद्दा जान पड़ता था। वह सीधा खड़ा हो सकता था परन्तु सीधा चल न पाता था। अतः परिणाम यह होता था कि वह अन्य वानरों की भाँति इतना स्वच्छन्दता-प्रिय न था अपितु एकान्तप्रिय प्राणी था। यह सम्भव है कि यदि उसको साइकल चलाना, सिगार पीना, मेज पर बैठकर खाना आदि कार्य सिखायें जायें तो वह ये सब कार्य भली भाँति कर सकेगा।

शिपांजी ( Chimpanzee )

शिपांजी वानर मनुष्य के रूप से अधिक समीप था। शिपांजी जंगल में दिन का दो-तिहाई भाग जमीन पर और केवलमात्र एक-तिहाई भाग पेड़ पर गुजारता था। वह आसानी से चढ़ भी सकता था। शिपांजी का भार मनुष्य के भार से कुछ कम होता था। इसका आनुमानिक भार ११० पौण्ड होता था। मादा शिपाजी का वजन नर शिपाजी से पर्याप्त कम होता था। कद में भी मनुष्य से छोटा अर्थात् ५ फुट से भी कुछ कम होता था। ज्यादा भेद टांगों का होता था। शिपांजी की ठोडी (चिबुक) अथवा नीचे जबड़े का समतल कधे के समतल से कुछ नीचे होता है, परन्तु मनुष्य का समतल उससे कुछ ऊंचा होता था। उसका बीच का धड़ मनुष्य से बड़ा होता और कन्धे तथा वक्षस्थल अपेक्षाकृत ज्यादा चौड़े और मोटे थे। उसे हम छोटे आकार का मानव कह सकते है। शिपाजी की त्वचा का वर्ण काला और मटियाला होता था। उसके छोटे-छोटे बाल काले होते थे परन्तु आयु के अनुसार सफेद होते जाते थे। कपाल नीचे की तरफ झुका हुआ होता था। कान बड़े और गोल होते थे। शिपांजी की आंख की पुतली कही भी सफेद नही मिली जैसे कि गोरिल्ला की आंख की मिलती थी। शिपांजी की बाह्य नासिका बिल्कुल ही मनुष्य से मिलती-जुलती थी। होठ कुछ-कुछ मोटे होते हैं। उनकी टांगें इतनी मज-बूत होती थी कि वे ओरंगटान की अपेक्षा जमीन पर अच्छी तरह से चल पाते थे। उसकी पीठ तथा घुटने कुछ-कुछ झुके हुए होते हैं। अभी तक इसकी आयु का पता नही चला। परन्तु इतना अवश्य है कि जिस प्रकार मनुष्य मां के पेट में ६ मास रहता है उसी प्रकार शिपाजी ८ मास रहता था। तीसरे माम में शिपांजी दूधिया दात निकालता और तृतीय वर्ष में पक्के दात निकलना प्रारम्भ हो जाते थे जबकि मनुष्य जरा देर से निकालता है। मानव और शिपांजी की कर्परदेराना का अनुपात ४६ तथा २६ है। शारीरिक वृद्धि की समाप्ति की आयु का अनुपात १२ तथा २० वर्ष है।

युवावस्था में शिपाजी अपनी जाति के लोगों से प्यार और सहानुभूति की भावना रखता है। वे छोटे वानरो की भांति लालची, स्वार्थी तथा कामी नहीं होते। बुद्धि, स्मृति-शक्ति आदि के विकास में शिपाजी और मनुष्य में भेद है। शिपांजी में पहचानने की शक्ति तो होती है परन्तु स्मरणशक्ति कम होती है। शिपाजी किसी विशेष स्थान पर गड़े हुए भोजन को कई दिन बाद भी ढूंढ निकालेगा परन्तु किसी विशेष रंग अथवा आकार वाले सन्दूक में रखे हुए फल को सहज में याद न कर सकेगा कि किस रंग वाले सन्दूक में

कौन सा फल पड़ा है ? मनुष्यों में विचार शक्ति और स्मरण शक्ति होती है। वे एक बार किसी विशिष्ट रंग वाले सन्दूक में रखी गई विशिष्ट वस्तु को

देखकर याद कर लेते हैं और उसे पुनः भूलते नहीं।

गोरिल्ला—

भौगोलिक दृष्टि से गोरिल्ला दो जातियों में विभक्त हैं। हूटन का कथन है कि बेल्जियन कांगो के किनारे के साथ पूर्व में सैकड़ों मील दूर यह गोरिल्ला ऐसे पर्वतीय प्रदेश का वासी है जिसकी ऊंचाई ७,००० फुट है। प्रधान

चिंपाजी गोरिल्ला

वर्गों में सबसे बड़ा और भारी गोरिल्ला है। गोरिल्ला का भार ३०० से ६०० पौण्ड तक भी पाया गया है। मादा गोरिल्ला भी ३०० से ४०० पौण्ड के बीच में होता है। गोरिल्ला का धड़, ग्रीवा, तथा अन्य अंग और अस्थियां मोटी तथा शक्तिशाली होती हैं। वक्षःस्थल का माप ५० से ६६ इन्च तक होता है। इसकी त्वचा तथा इसके बाल कृष्णवर्ण के होते हैं और बाल आयु के

अनुसार पकते जाते हैं। नाक कर्णरेखावत् दो नासिका-छिद्रों को प्रकट करती हैं। आँखें गहरी, डूबी हुई, भृकुटी से नीचे होती है। गोरिल्ला देखने में जितना भयंकर प्रतीत होता है वास्तव में स्वभावतः वह इतना भयंकर नहीं होता। वह शान्त स्वभाव वाला प्राणी है। जब वह कहीं बैठता है तो झुककर बैठता है। यह रीछ की भांति चतुष्पाद होता है परन्तु इसके पर मनुष्यों-जैसे होते है। आगे की टांगें, जिन्हें हम बाजू कह सकते है, बड़ी होती हैं और आगे की ओर झुकी हुई होती है। बाहुओं की लम्बाई के कारण गोरिल्ला के स्कन्ध पिछले भाग अर्थात् चूतड़ की अपेक्षा ऊँचे होते हैं। स्कन्धो के मध्य सिर लटका होता है। प्रत्यक्षरूप से आँखें कुछ-कुछ नीचाई पर मालूम होती हैं। गोरिल्ला बड़ी सावधानी से ऊपर को चढ़ता है। उसके सोने का स्थान भी प्रायः जमीन पर ही होता है। जहां तक बौद्धिक विकास का सम्बन्ध है यह शिपांजी से मिलता-जुलता है। शारीरिक दृष्टि से यह फुर्तीला नहीं होता। इसमें झगड़ने की भावना नहीं होती। स्वभाव में यह बहुत अच्छा होता है। निर्भीक, कार्य पटु, और निश्चयी होता है। इसका विकास शिपांजी की अपेक्षा बहुत धीरे-धीरे हुआ। इसका प्रथम दूधिया दाँत दो ही मास में प्रकट हो जाता है। ५वें महीने में यह बैठना सीख जाता है और ८वें मास में घूमना-फिरना भी प्रारम्भ कर देता है। जब यह पैदा होता है तो मानव बच्चे से हल्का और छोटा होता है। परन्तु ५ वर्ष की आयु में यह १०० पौंड से भी अधिक भारी हो जाता है। सन् १९४६ में न्यूयार्क में तीन मादा गोरिल्लों के अवशेष प्राप्त हुए है। उनसे उनके भार का अनुमान क्रमशः १८०,२०० तथा २१० पौंड लगाया गया है। १५ साल तक की आयु के गोरिल्लो का भार तो ६०० पौंड तक भी अनुमान किया गया है।

यद्यपि ये पशु मनुष्य की हास्य विकृतियाँ ही हैं। परन्तु कुछ-कुछ शारीरिक सादृश्यता दृष्टिगोचर होती ही है। बाह्य आकार में मानवसम लगूरों के कपाल यद्यपि छोटे और सरल हैं तो भी मानव-कपाल की रचना से सादृश्य रखते है। उनकी सभी क्रियायें ४, ५ साल के बच्चे की भांति होती हैं। मनुष्य के बहुत से रोग ऐसे हैं जो उन्हें भी आ घेरते हैं। उनके रक्त में तथा मनुष्यों के रक्त में सूक्ष्मतम परीक्षणों द्वारा भी भेद करना बहुत कठिन है। इतना भी देखा गया है कि नारी शिपांजी तथा गोरिल्ला को मासिक धर्म की प्रक्रिया में से भी गुजरना पड़ता है। शरीर की सभी क्रियायें एकसमान होती है। भेद केवल इतनाही होता है कि ये मानवाकार वानर बहुत तेजी से बढ़ते चले जाते हैं और आयु में मनुष्य की अपेक्षा कुछ कम होते हैं।

योरप के मध्य नूतन कालीन अवसादों और विशेषतया भारत की शिवालिक

पहाड़ियों में जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनके दांत और जबड़े मानवाकार वानरों से मिलते-जुलते हैं। शिपाजी और ओरंगुटान के जबड़ों से भी उनकी सादृश्यता की जा सकती है। सन् १९३२ में पूर्वीय अफ्रीका स्थित केनिया प्रान्त से भी निखातकीय मानवाकार प्राणियों के दांत और जबड़ों को भी मध्यनूतनकालीन ठहराया गया है। भारत में भी मध्यनूतन तथा अतिनूतनकालीन मानवाकार वानर उपलब्ध हुए हैं जिन्हें तरुरोही वानर श्रेणी का मानना पड़ता है। इनकी विशेषता चबानेवाले ५ दांतों से जान पड़ती है। डा० ग्रेगरी तथा डा० हेलमैन का
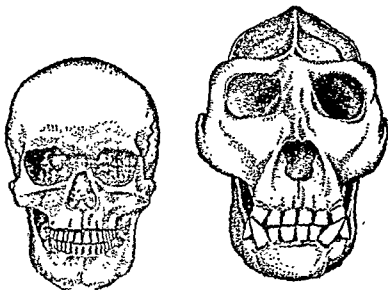
मनुष्य और गोरिल्ला का आकृति भेद

कथन है कि दांतों की यह रचना सभी मानवाकार वानरों तथा मानवों में पाई जाती है परन्तु अधिक सभ्य जातियों-योरुपियन आदि में यह संख्या ४ तक ही होती है।

वानर तथा मानवाकार वानर में भेद:—

नर और वानर की शारीरिक रचना का अध्ययन कर लेने के बाद उन दोनों का भेद पहले तो महान् दिखाई देता है परन्तु जब हम गहराई से

विश्लेषण करते हैं तो दोनों की समानताएं आधारभूत एवं प्रभावशाली प्रतीत होती हैं। चार्ल्स डार्विन ने तो "मनुष्य के पूर्वज" नामक पुस्तक में यह स्पष्ट घोषित किया है कि मनुष्य प्राचीन विश्व-वानर शाखा से उत्पन्न हुआ है। सन् १८८३ में राबर्ट हर्टमैन ने वानर तथा मानव श्रेणी को एक ही वर्ग के अन्तर्गत मानने का प्रस्ताव किया। मि० एच० एच० विल्डर ने भी अपनी पुस्तक में वानर श्रेणी को छोड़कर महाकाय वानरों को मनुष्य के साथ एक ही परिवार का मानने पर जोर दिया है। परन्तु जब हम इन वैज्ञानिकों के सिद्धातो की समीक्षा करते हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि शारीरिक रचना के अतिरिक्त कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक भेद हैं जिन्हें हम उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते।

१. ओरंगुटान तथा अन्य वानरों के गले में हवा की विशाल झिल्लीदार थैली यद्यपि मनुष्य के प्रतिरूप नहीं, तो भी उनके कण्ठनाली सम्बन्धी कोषों में समानता पाई जाती है। इसके विपरीत बहुत से प्राचीन विश्व वानरों के गले में महाकाय वानरों से मिलती-जुलती हवा की विशाल झिल्लीदार थैली तो होती हैं परन्तु कण्ठनाली मे उनका बिलकुल भिन्न सम्बन्ध होता है। अतः उन्हें तुल्य समानान्तर नही माना जा सकता। जहाँ तक गले की झिल्लीदार थैली का सम्बन्ध है, ये महाकाय वानर वानरों की अपेक्षा मनुष्यो के अधिक समीप हैं।

२. केश संयुक्त महाकाय वानर मनुष्य की अपेक्षा वानर से अधिक मिलता-जुलता है। परन्तु प्रो० शुल्ट्ज़ के अनुसधानानुसार जब हम महाकाय वानर के छाती और पीठ के बालो को देखते हैं तो वानर की अपेक्षा उन्हें कम पाते हैं। इस रचना में वह वानर की अपेक्षा मनुष्य के अधिक समीप है। ये दोनों भेद ऐसे हैं जो वानर को मनुष्य से पर्याप्त दूर रखते हैं और महाकाय वानर ओरंगुटान आदि को मनुष्य के अधिक समीप ले जाते हैं।

३. महाकाय वानरों तथा मानवों के कपोलों में थैलियाँ नहीं होती जैसेकि प्राचीन विश्व वानरों में होती हैं।

४. पुच्छल वानर अंगो के अनुपात में सामान्य होते हैं। भुजाएँ तथा टाँगें लगभग समान लम्बाई की होती हैं। चतुष्पायें के रूप में चलते हैं। इनकी पीठ समतल होती है। मानवाकार वानरों की भुजाएँ लम्बी होती हैं। क्योंकि वे भुजाओं से पेड़ की शाखाओं पर लटकते थे। सर आर्थरकीथ ने भुजा के बल पर चल सकनेवाले प्राणियों में सबसे प्रथम गिब्बन को, पुनः ओरंगुटान को तत्पश्चात् चिंपांजी और सबके अन्त में गोरिल्ला को परिगणित किया है।

५. वृक्ष पर चढ़ने की आदतों में भी वानरों तथा मानवाकार वानरों में बहुत अन्तर है। उन दोनों की मांसपेशियों तथा अन्तड़ियों में भेद है।
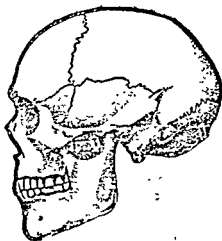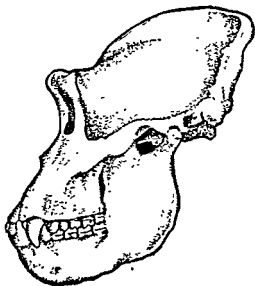
गौरिल्ला और मनुष्य का कपाल मत

ओरंगुटान की अँगुलियाँ कुछ-कुछ लम्बी हो गई हैं और अंगूठा आकार-प्रकार में छोटा हो गया है। यद्यपि इनके पैर अब भी वानरसम थे परन्तु फिर भी इनके पैरों में शरीर-रचना शास्त्र के आधार पर मानव पैरों से सादृश्यता थी। पूर्वीय बेल्जियन कांगों के पहाड़ी प्रदेशों पर जो गोरिल्ला रहते थे उनके पैर तो बिल्कुल ही मानवीय आकार के समान थे। हाथ और पैरों में यदि सबसे कम समानता है तो वह ओरंगुटान में।

६. अभी हाल ही में यह भी पता लगाया जा चुका है कि मानवाकार वानरों का गर्भाशय तथा नाल मानवीय आकार से मिलते-जुलते हैं। मानवाकार में जैसे एक नाल होती है वैसे इन में भी एक है। प्राचीन विश्व-वानरों में दो नाल होती है। मादा शिंपांजी में केवलमात्र भेद इतना है कि इन्हें मासिक धर्म ४ सप्ताह के स्थान पर ५ सप्ताह बाद होता है। और ६ मास के स्थान पर ८ वें मास में मादा शिंपांजी को बच्चा उत्पन्न हो जाता है। मि. नट्टाल ( Nuttall ) ने रक्त-परीक्षण में भी मानवाकार वानरों तथा मानवों में समानता पाई। इसके बाद मि. लैण्डस्टीनर ने भी रक्त सम्बन्धी कई परीक्षण किये, परन्तु भेद बहुत थोड़ा पाया गया।

७. मानवाकार वानरों तथा मानवों को एक समान रोग भी होते हैं। छूत की सभी बीमारियाँ मनुष्य से मानवाकार वानर में और मानवाकार वानर से मनुष्य में भी फैल सकती हैं। उपदंश, आन्त्रिक ज्वर, संग्रहणी, चेचक, सन्निपात-ज्वर आदि सभी रोग एक से दूसरे तक फैल सकते हैं। इंगलैंड के ब्रिस्टल नामक स्थान पर एक चिड़ियाघर में एक युवा गोरिल्ला को काली खाँसी का शिकार होते देखा गया जबकि यह रोग उस इलाके में सर्वत्र फैला हुआ था। यह प्रश्न हो सकता है कि तोता मानवाकार वानरों से कम बुद्धि रखता हुआ भी क्यों बोल लेता है ? और मानवाकार वानर क्यों नहीं बोल सकते ? इसका तो सीधा उत्तर यह है कि तोता वास्तव में सम्भाषण नहीं करता। वह तो विभिन्न प्रकार के सजीव, निर्जीव तथा मानव शब्दों की नकल करता है वह शब्दों के वास्तविक अभिप्राय को नहीं समझ सकता। और जब वह बार-बार उन्हीं शब्दों व वाक्यों को दोहराता है तो उसमें उसकी कोई बौद्धिक योग्यता का आभास नहीं होता। प्रो० वाईट का कथन है कि पशु भावावेश प्रकट करने के लिए विभिन्न आवाजें निकालते हैं। मनुष्य का रोना तथा हँसना भी इसी प्रकार का भावावेश ही है। इस सवेग प्रक्रिया को हम संभाषण-शक्ति नहीं मानते। इससे भी परे मनुष्य की मस्तिष्क रचना में संभाषण के लिये विशेष प्रकार की यान्त्रिक प्रणाली का विकास हुआ है जो कि मानवाकार वानरों में कभी उपलब्ध नहीं होती।

मानव-शाखा का प्रारम्भ—

आधुनिक मानवाकार प्राणियों का प्रारम्भ कब और कहां से हुआ ? मानव-शाखा मानवाकार वानर शाखा से कैसे पृथक् हुई ? मानव-शाखा के प्रारम्भिक सदस्य कौन थे ? इत्यादि प्रश्न ऐसे हैं जो सदा से मनुष्य की जिज्ञासा का विषय बने हुए हैं और जिनका सन्तोषजनक उत्तर अभी तक नहीं दिया जा सका । जब हम प्रथम समस्या पर विचार करते हैं तो हम निखातकों ( Fossil) के आधार पर इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सब से प्राचीन निखातक आदि नूतन-कालीन (Oligocene) निखातक पूर्ववर्ती वानर (Parapithecus) का है जो हमें मिश्र से प्राप्त हुआ है । इसके बाद हमें योरुप तथा भारत से मध्य नूतन तथा अति नूतन कालीन तरुरोही वानरों (Dryopithecus) के अवशेष प्राप्त होते हैं । केनिया तथा अफ्रीका से भी इन प्राणियों से मिलते जुलते कुछ निखातक प्राप्त हुए । मि० पिल्ग्रिम ने भारतीयरूप शिववानर (Sivapithecus) को मानव जाति का पूर्वज माना है । परन्तु इसकी दन्त-रचना चूंकि मानवाकार वानरों की-सी है अतः इसे पूर्वज मानने में अन्य विद्वानों ने आपत्ति की है ।

सन् १९३४ में मि० जी० ई० लुईस ने आदि नूतन कालीन राम वानर ( Ramapithecus ) नामक प्राणी के जबड़ों के अवशेष उपलब्ध किये जिनके आधार पर उन्होंने इस प्राणी की दन्त-रचना को बिलकुल मानवीयाकार में पाया । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य नूतन काल में इस प्राणी का लोप हो गया था अतएव यही आदि नूतन कालीन पूर्ववर्ती वानर श्रेणी को ही मानवों तथा मानवाकार वानरों का पूर्वज मानना पड़ेगा । यदि इस प्राणी के अस्थिपंजर के अन्य अवशिष्ट भाग भी उपलब्ध हो जायें तो सम्भवतः इसे भी पूर्वज मानने में आपत्ति उठ खड़ी हो ।

जहां तक मानवाकार प्राणियों के प्रारम्भिक स्थान का प्रश्न है वहां तक हम एशिया अथवा अफ्रीका को ही उत्पत्तिस्थान मानेंगे । यदि अफ्रीका और एशिया में से भी—देखा जाय, तो विद्वानों का झुकाव एशिया की ओर अधिक जाएगा । चूंकि दक्षिणी अफ्रीका का अफ्रीक्न-मानव फिर भी मानवाकार प्राणी से कुछ-कुछ भिन्नता रखता था ।

मि० जी० ई० स्मिथ का विचार है कि जैसे-जैसे भूमिवासी बनने पर मानवाकार प्राणियों की हस्त तथा पाद-रचना विकसित हुई उसी प्रकार चक्षु तथा मस्तिष्क-रचना का भी क्रमशः विकास हुआ । मि० टी० एच० हक्सले ने तो चार हाथ वाले तथा दो हाथ वाले प्राणियों को पृथक्-पृथक् वर्ग में परिगणित किया है । अतः यह बात विचारणीय है कि इन दो विभिन्न शाखाओं की एक पूर्वज शाखा कौन सी है ।

हो सकता है कि वानर और मानव के बीच की यह समानता दोनो के निकटतम सम्बन्ध को सूचित करती हो; परन्तु इतना अवश्य कहा जायगा कि मनुष्यों के पूर्वज ये वानर अथवा लगूर न थे। शारीरिक अंगों की समानता का अभिप्राय यह कदापि नहीं कि इनमें कोई एकवंशीय (Lineal) सम्बन्ध है। विकासवाद के सिद्धान्तानुसार सम्भवतः लंगूर और मनुष्य किन्हीं एक ही पूर्वजों की संतान हों। परन्तु उस खोयी कड़ी ( Missing link ) के आधार पर— जिसे अभी तक वैज्ञानिक नहीं जान पाये—यह सिद्ध हो चुका है कि लगूर और मनुष्य की पारस्परिक विभिन्नता कई लाख वर्ष पूर्व से ही घटित हो चुकी है। मनुष्य की केवल एक ही स्वतन्त्र जीवित जाति है।

## अफ्रीकन-वानर की सम्प्राप्ति (Australopithecus Africanus)

यह निखातक बेचुआनालैण्ड ( अफ्रीका ) स्थित टॉग्स नामक स्थान पर एक बाल-प्राणी की खोपडी के रूप में सन् १९२४ में एक गुफा में से उपलब्ध हुआ। यद्यपि भूगर्भ शास्त्रानुसार इसके काल का निश्चय तो नहीं हो सका परन्तु फिर भी अनुमान किया जाता है कि यह निखातक अवशेष अन्तिम अथवा मध्य प्रतिनूतन ( Middle pliocene ) काल का होगा। जोहन्स-बर्ग की विटवाटरसैण्ड यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर फेमण्ड ए. डार्ट ने इस कर्पर को साफ़ कराया और उसने अध्ययन करने के बाद इसका नाम अफ़्रीकन वानर (Australopithcus Africanus ) रक्खा। यद्यपि यह कपाल दात निकालनेवाले प्राणी का था परन्तु ऐसा प्रतीत होता था जैसे यह ६ साल के बच्चे का कपाल हो। आकार प्रकार में कपाल शिपाजी के कपाल से मिलता-जुलता था। केवल मात्र भेद इतना था कि इसके पहले निकलनेवाले दात बहुत छोटे, ठोडी विकसित, माथा लम्बरूप तथा आँख के गढे की दीवार बहुत उभरी हुई न थी। मस्तिष्क शिपांजी की अपेक्षा बड़ा और मानवीय मस्तिष्क के आकार से मिलता-जुलता था। दन्त-रचना भी अन्य मानवतुल्य वानरों की अपेक्षा मानवीय दन्तरचना से मिलती-जुलती थी। चबानेवाले प्रथम स्थायी दांत शिपांजी की अपेक्षा बड़े थे।

प्रो. डार्ट इस खोपड़ी को मानवीय आकारवाला देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुआ। उसका कथन था कि यदि यह खोपड़ी बच्चे की न होकर किसी युवा प्राणी की होती तो बिल्कुल ही मानवीय आकार से मिलती जुलती, क्योंकि तब तक जबड़े भी पूर्णतया विकसित हो जाते। पूर्ण युवावस्था में इस प्राणी का मस्तिष्क गोरिल्ला के मस्तिष्क की अपेक्षा कुछ बड़ा होता। प्रो. डार्ट का विश्वास था कि चूंकि यह कपाल बहुत छोटे प्राणी का है और इसके

अस्थिपंजर के अन्य भाग प्राप्त नहीं हुए, अतः इसके बारे में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। यह मानव तथा वानर दोनों रूपों का सम्मिश्रण था।

सर आर्थर कीथ ने इस प्राणी की परिगणना मानवाकार वानर श्रेणी में की है। परन्तु उनका विचार है कि यह अफ्रीकन वानर शाखा के इन प्रगतिशील सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिनकी सत्ता प्रतिनूतन काल म लुप्त हो गई।

सन् १६३६ में ट्रासवाल के इलाके में स्टर्कफोन्टीन नामक स्थान से एक दूसरा कपाल गुफा में से उपलब्ध हुआ, जिस पर ट्रासवाल म्यूजियम के अध्यक्ष डा० राबर्ट ब्रूम ने अनुसन्धान करते हुए बतलाया कि इस प्राणीकी कर्परदेशना ६०० वर्ग शताशमीटर है जोकि बड़े गोरिल्ला की कर्पर देशना से मिलती-जलती है। इसकी दाढ़ सम्बन्धी अस्थियां तथा ऊपर के दांत सुरक्षित रक्खे हुए है। चबानेवाले दांत शिपाजी तथा मनुष्य के दातो से बड़े है परन्तु ऊपर के भेदक दात (Canine) का रिक्त छिद्र यह प्रकट करता है कि यह दांत दूधिया भेदक दांत की अपेक्षा छोटा है। डा० ब्रूम का कहना है कि बच्चे और युवा की खोपड़ी में महान् अन्तर है। डा० ब्रूम ने इसे अंतिम प्रतिनूतन ( Upper Pleistocene ) काल का बतलाया है।

अफ्रीका का यह भाग वर्षा वाले जगली प्रदेश से १००० मील दूर दक्षिण में स्थित है। यह सत्य है कि टाग्स के इलाके से उपलब्ध अवशेष तथा स्टर्कफोन्टेन नामक प्रदेश से प्राप्त अवशेष यह सिद्ध करते हैं कि अफ्रीकन वानर अवश्य ही भूमिवासी प्राणी होगा, परन्तु पर्वतीय चट्टानो वाले प्रदेश में ही विचरण करता होगा।

सन् १६३८ में डा० ब्रूम ने कुछ अन्य अनुसन्धान भी किये जिनके आधार पर एक अन्य उपलब्ध महाकाय वानर प्राणी की तथा इस अफ्रीकन वानर की तुलना की। उनका मत था कि इन दोनों अवशेषों का मस्तिष्क आधुनिक वानर-श्रेणी से बड़ा नहीं परन्तु भेदक दांत आकार तथा रूप में मानवाकार वानरों की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते हैं। इन प्राणियों के छोटे भेदक दात आक्रमण तथा संरक्षण करने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त होते हैं। डा ब्रूम का कथन है कि सम्भवतः ये प्राणी सीधे खड़े होकर चलते थे और छड़ी तथा पत्थर आदि का व्यवहार उपकरण रूप में किया करते थे। डा० ब्रूम का यह विचार और भी पुष्ट हो गया जब कि इन प्राणियों के भुजा तथा टांग के अवशेष प्राप्त हुए। चूंकि ये अवशेष मानवाकार वानर की अपेक्षा मनुष्य से बहुत अधिक सादृश्यता रखते थे। अत. इस दिशा में वानर-श्रेणी की प्रगति पर्याप्त आगे पहुँच चुकी थी।

# निखातक-मानव

(Fossil Man)

निखातकों की कहानी—

हम पिछले अध्यायों में मनुष्य के विकास-क्रम तथा पशु-जगत् और मानव-जगत् की विभिन्नताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम उपलब्ध निखातक अवशेषों ( Fossil Remains ) के आधार पर मानव विकास का वर्णन करेंगे। मनुष्य को प्राचीन रूप से अर्वाचीन रूप तक पहुँचाने का लम्बा इतिहास इन्हीं निखातकों द्वारा ही जाना जा सकता है। इस सम्बन्ध में हमें जितनी साक्षियाँ उपलब्ध हुई हैं वे दो प्रकार की हैं। एक तो उनका आधार प्राचीन मानव की वे अस्थियाँ हैं जो हमें निखातकीय एवं खनिजीय रूप में उपलब्ध हुई हैं। दूसरा आधार उन अस्थि-अवशेष के आयु सम्बन्धी तथ्यों पर आश्रित है। भूगर्भशास्त्र तथा प्राचीन वस्तुकला द्वारा इन अस्थि-अवशेषों पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है।

सन् १८४६ में मि० बाउचर डे-पर्थ्स ने सोमेनदी की अतिनूतन कालीन कन्दराओं में जब एक "चैलियन-एशूलियन" (Chellean Acheulean) संस्कृति सम्बन्धी उपकरण को हस्तगत किया और लारटेट ने दक्षिणी फ्रांस से मध्यनूतन ( Miocene ) कालीन तरुरोही वानरावशेष की गवेषणा की तो संसार के मानवशास्त्री अचम्भित हो गये और उन्होंने मि० बाउचर डे० पर्थ्स के इस विचार को स्वीकृत किया कि आदिकालीन मानव मेधावी मानवों (Homo Sapiens) का प्राचीनतम रूप ही था। इसके बाद राईन नदी की घाटी से प्राप्त नियंडरथल ( Neanderthal ) मानवावशेष, पैरीगोर्ड (Perigord) कन्दरा से प्राप्त आदि अतिनूतन कालीन क्रोमैग्नन (Cromagnon ) मानवावशेष, जावा में प्राप्त वानर-मानव (Pithecanthropus) अवशेष आदि अनेक निखातक अवशेषों से मानवीय विकासक्रम पर प्रकाश डाला गया और उन्हें मेधावी मानवों की श्रेणी का ही समझा गया। मि० हैविड्सन ब्लैक ने सन् १९२५ में पेकिंग में एक लेख लिखा जिसमें उसने मि० डब्ल्यू डी० मैथ्यू के इस विचार का पोषण किया कि मानव जाति का प्रारम्भ

केन्द्रीय एशिया में ही हुआ और वीडनरीख के इस विचार को पेश किया कि आधुनिक मंगोलायड जाति के लोग भी चीनी-मानव (Sinanthropus) की सन्तान हैं।

वान ईकस्टेड ( Von Eickstedt ) ने जातियों और प्रजातियों पर अपनी पुस्तक लिखते हुए ग्रेगरी, कापर्स तथा अबेल जैसे उच्चकोटि के विद्वानों के इस मत का पोषण किया कि मेधावी मानवों का युगारम्भ एशिया से हुआ है। परन्तु इसके कुछ समय बाद जब सन् १९२५ में मि० डार्ट को ट्रासवाल के प्रदेश से 'अफ्रीकन मानव' की सम्प्राप्ति हुई और लीके को केनिया प्रदेश से प्रति-नूतन कालीन उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई तो बहुत से मानव-शास्त्रियों का ध्यान अफ्रीका की ओर भी आकृष्ट हुआ। इतना ही नहीं, इसके बाद मिश्र की फ़यूम नदी, ट्रांसवाल, टांगानीका, बेल्जियन कांगो, रोडेशिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के कई प्रदेशों से वानर-मानवों के अनेक अवशेष तथा उपकरण उपलब्ध हुए जिससे अफ्रीका का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अफ्रीका अवश्य ही किसी समय में मानवीय विकास का आदिकालीन केन्द्र रहा होगा। मनुष्य की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक विकास अफ्रीका तथा दक्षिणी एशिया में, आदि तथा मध्यपूर्व पाषाणयुगीय मेधावी मानवों का विकास उत्तरीय यूरेशिया तथा अमेरिका में और नव-पाषाण-युगीय मेधावी मानव का विकास अफ्रीकन महाद्वीप से बाहर ही हुआ होगा।

परन्तु इतना सर्वसम्मत है कि मानव अपने वर्तमान रूप में आज से २५,००० साल पहले पश्चिमी योरप और भूमध्यसागरीय प्रदेश में अवतरित हुआ। योरप में तो आधुनिक मानव का प्रारम्भिक रूप क्रोमैनन स्थान में प्राप्त क्रोमैनन मानव था। यह अभी तक ज्ञात नहीं हो सका कि ये क्रोमैग्नान मानव किन की सन्तान थे। इनके आगमन से उनके पहले के नियंडरथल तथा अन्य पूर्वरूप लुप्त हो चुके थे। तब से आज तक समस्त पृथ्वी पर आधुनिक मानव का ही आधिपत्य और विस्तार होता चला आया है। अब हम भिन्न २ स्थानों पर मिलने वाले इन प्राणियों की विस्तार से समीक्षा करते हैं।

## जावा का वानर-मानव ( Pithecanthropus )

### वानर-मानव की सम्प्राप्ति—

वानर ( Pitheo ) मानव ( Anthropus ) जावा का वानरतुल्य

मानव था। यह दो पैरों पर सीधा खड़ा होने वाला प्राणी था। उत्तरकेन्द्रीय जावा में सोलो नदी ( Solo River ) पर स्थित ट्रिनिल ( Trinil ) नामक ग्राम के समीप डच सर्जन डुबायस ( Dubois ) को सन् १८९१ में एक वानराकार दन्त की उपलब्ध हुई। १० फीट की दूरी पर अन्य दांत तथा कान और आँखों से ऊपर का कपालावशेष भी प्राप्त हुआ। एक वर्ष बाद ठीक उसी सतह पर ४५ फीट की दूरी पर एक मानव की जंघास्थि ( Thigh-bone ) भी उपलब्ध हुई। सन् १८९४ में इस जावा-मानव के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ। हीकेल ( Haeckel ) द्वारा प्रयुक्त नाम को ग्रहण करते हुए डा० डुबायस ने भी इस मानव का नाम सीधा खड़ा होने वाला वानर-मानव (Pithecunthropus erectus ) रक्खा। और इसे वानर और मानव के बीच का प्राणी घोषित किया। १६ विद्वानों ने इस मानव के सम्बन्ध में अपनी गवेषणाएँ की। इनमें ५ विद्वानों ने उपलब्ध कपाल को मानवाकार वानर का, सात विद्वानों ने मानव का तथा अवशिष्ट सात ने वानर और मानव की बीच की श्रेणी का घोषित किया। जो विकासवाद के विरोधी थे उन्होंने इसकी सत्यता से भी इन्कार किया। कइयों का विचार था कि जावा-मानव बोल सकता है और कई कहते थे कि यह बोल नहीं पाता। अन्ततोगत्वा डा० डुबायस जावा के वानर-मानव को अपने घर ले गये और २० वर्ष तक इसे उन्होंने ताले में बन्द रखा। कतिपय वर्षों बाद बहुत से मानव शास्त्रियों ने घोषित किया कि जावा-मानव एक विशालकाय, तरुगामी गिब्बन है और इसका कपाल तथा जंघास्थि मनुष्य से बिल्कुल भिन्न है। इतना ही नहीं, डा० डुबायस, जिन्होंने इसका अनुसन्धान किया, वे स्वयं ही इसके मनुष्य न होने की युक्तियाँ पेश करने लगे। यह कितनी विचित्र बात थी कि जब संसार उनके मत को स्वीकार करने लगा तो वे स्वयं ही अपने मत को झूठा सिद्ध करने लग गये।

डा० डुबायस की मृत्यु के बाद सन् १९०६ में मेडम सलेंका ( Madame Salenka ) ने जावा के ट्रिनिल प्रदेश की खोज की और लौटते समय वह अपने साथ एक स्तनधारी निखातक ( Mammalian Fossil ) को ले आई परन्तु इससे 'जावा-मानव' के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ा।

तीसरा प्रयत्न डा० वान कोयनिग्स्वाल्ड ( Von Koeningswald ) ने किया और वे एक कपाल अपने साथ ले आये। इसके बाद तीन कपाल और भी प्राप्त हुए जिनमें एक बच्चे का भी कपाल था। सन् १९३९ में वान कोयनिग्स्वाल्ड ने ऊपर के जबड़े के दाँत प्राप्त किये जिन्हें वे डा० वीडनरीख

की प्रयोगशाला में पेकिंग ले आये जहाँ 'चीनी-मानव' के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये जा रहे थे।

## वानर-मानव के रूप—

कपालावशेष के ऊपरी भाग, जंघास्थि तथा दो चबाने वाले दांतों के आधार पर वानर-मानव की खोज की गई। उरु प्रदेश की लम्बाई तथा

जावा का वानर-मानव

सीधेपन से अनुमान किया गया कि इसका आकार ५ फीट ७ इंच रहा होगा। यद्यपि इसका कपाल (Skull) तथा उरु प्रदेश कुछ-कुछ दूरी पर अवश्य थे, परन्तु दोनों समतल थे। इस वानर-मानव का काल अति नूतन काल की समाप्ति का समय अथवा प्रतिनूतन या हिमयुग का प्रारम्भिक समय निर्धारित किया गया। कोर्यनिग्स्वाल्ड ने इस सर्जन की खोजों को पुष्ट किया। इसके बाद नर और मादा वानर-मानवों के अवशेष प्राप्त हुए। ये अवशेष खण्डित एवं भग्नावस्था में प्राप्त हुए। इनके ऊपर के जबड़ों (Upper jaw)

के दांत तथा नीचे के जबड़ो ( Lower jaw ) के दांत भी थे। मोड्जोक्र्टो ( Modjokerto ) से एक बच्चे का कपाल उपलब्ध हुआ जो वानर-मानव का तो नहीं, अपितु उससे मिलता-जुलता था। वानर-मानव के कपाल का बाह्य आकार आधुनिक मनुष्य के कपाल के बाह्य आकार से बड़ा और विस्तृत था परन्तु मस्तिष्क तथा कपाल का वर्ग परिमाण नर - गोरिल्ला से लगभग दुगना और शिपाजी से पूरा दुगना तथा आधुनिक मनुष्य का दो-तिहाई भाग था। वीडनरीख ( Weidenreich ) महोदय ने तीन उपलब्ध कपालों का वर्ग परिमाण क्रमशः ९००,७७५ तथा ९०० शतांशमीटर ठहराया है। एक चौथे उपलब्ध कपाल का आकार-प्रकार वानर-मानव से थोड़ा सा भिन्न है परन्तु है यह भी वानर-मानव वर्ग का ही। वानर-मानवों के जितने भी अवशेष प्राप्त हुए हैं वे सब मानवाकार जाति के हैं जिनका सीधा सम्बन्ध आधुनिक मनुष्य से है, न कि वानर जाति से। इतना अवश्य है कि यह वानर-मानव बोल भी सकता था और अपनी आवश्यकता के लिए कुछ उपकरणों का भी प्रयोग करता था।

सन् १९४१ में जावा के संगिरन नामक स्थान पर पुनः एक अवशेष प्राप्त हुआ जिसके निचले जबड़े के दो दायें पार्श्वीय चबानेवाले दांत थे। ये दांत मानवीय आकार से मिलते-जुलते थे परन्तु वानर-मानव के चबानेवाले दांतों से आकार में कुछ बड़े थे जिस का सम्बन्ध कोर्निग्स्वाल्ड ने जावा के महान् मानवों से जोड़ा है। यह हीडलवर्ग प्राणियों के जबड़े से आधा मोटा था।

यदि हम डा० वीडनरीख के कथन को पुष्ट करते हैं तो हमें यह मानना पड़ेगा कि दो प्रकार के वानर-मानव जावा में एक ही काल में भ्रमण किया करते थे। यदि हम जावा के उस विशालकाय वानर-मानव को भी इनमें परिगणित करें तो हमें तीन रूप के प्राणी मानने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त मोड्जोक्र्टो बालक की कपाल-सत्ता भी स्वीकार करनी पड़ेगी, जिसका सम्बन्ध इस वानर-मानव से जुड़ा हुआ है। चूंकि वानर-मानव बच्चे का और मोड्जोक्र्टो युवा का कोई अवशेष प्राप्त नहीं हुआ अतः हम किसी विशेष जाति के भेद से उनका सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते। इसके अतिरिक्त जावा में हमें सोलो प्राणी का भी आभास मिलता है जिसका सम्बन्ध प्रतिनूतन युग से है और जो रूप में प्राचीन मानव (Paleoanthropic) माना जाता है और अपनी मस्तिष्क रचना व आकार-प्रकार में वानर-मानव से सम्पर्क रखता है। वानर-मानव को हम वनर और मनुष्य के बीच की कड़ी समझ सकते हैं। डार्विनवाद के प्रबल समर्थक मि० अर्नस्ट हीकल ने सन् १८६८ में वानर से मनुष्य का विकासक्रम जोड़ते हुए वानर-मानव को 'वाणीहीन वानर-मानव' घोषित किया था।

इसके बाद हालैण्ड के डाक्टर डुवायस ने हीकल के इस पुराने नाम वानर-मानव ( Pithecuntbropus ) को अपनाया और इस दिशा में सबसे पूर्व आश्चर्यजनक गवेषणा की । इन सभी गवेषणाओं के परिणामस्वरूप सब की एक ही धारणा थी कि जावा का यह वानर-मानव जावा के जंगलो में प्रारम्भिक प्रतिनूतन काल में रहा करता था ।

रचना भेद—

वानर-मानव के कपाल के साथ माथे का अग्र भाग संकुचित होता था । जिससे अनुमान किया जाता है कि यह कपाल वानर सदृश था । भृकुटि के ऊपर का उभरा हुआ स्थूल भाग महान् अफ्रीकन वानर की भाँति था । रोडेशियन मनुष्य में तो यह भाग और भी उन्नत और स्थूल होता था। कनपटी सम्बन्धी मासपेशियों से ऐसा प्रतीत होता है कि जबड़े बहुत विस्तृत आकार के नही हो सकते जैसे कि गोरिल्ला तथा ओरंगुटान के होते है। हाँ ! कपाल का आकार-प्रकार मलाया वासी गिब्बन से जरूर मिलता-जुलता था जो कि वृक्षवासी वानर की भाँति होता था । कपाल की अधिक से अधिक बाह्य लम्बाई १८४ शतांश मीटर, अधिक से अधिक चौड़ाई १३.१ शतांश मीटर थी । सामने की नसों के अत्यधिक विस्तार के कारण मस्तिष्क-रंध्र की अपेक्षा कपाल अधिक लम्बा हो गया था । इस प्रकार आभ्यंतरिक कर्परदेशना (Intra Cranial Capacity) ६४० वर्ग शतांश मीटर थी जो कि मानवीय आकार से मिलती-जुलती थी। गोरिल्ला की कर्परदेशना अधिक से अधिक ६५५ वर्ग शतांश मीटर थी और वानर-मानव की इससे ड्योढी अर्थात् गोरिल्ला से ५० प्रतिशत अधिक थी । जहाँ तक मस्तिष्क का सम्बन्ध है वह तो मानवीय आकार से पर्याप्त समानता प्रदर्शित करता था । डा० एफ्० टिल्ने ने तो मस्तिष्क के स्नायु-संस्थान पर अनुसन्धान करते हुए कई स्नायुओं, नस और नाड़ियों के विकास पर प्रकाश डालकर मस्तिष्क की समानता प्रदर्शित की है ।

जावा के ट्रिनिल नामक स्थान से २० मील दूर केडंग ब्रूक्स में डा० डुवायस को जो नीचे के जबडे की एक अस्थि उपलब्ध हुई थी, यह भी ठीक उसी समय की निर्धारित की गई है जिसमें वानर-मानव प्राणी वास करता था । पहले तो वह इसे प्रारम्भिक मानव के जबड़े की अस्थि समझता रहा परन्तु बाद में वह इस परिणाम पर पहुँचा कि यह भी वानर-मानव जाति की है । यह अस्थि चिबुक एवं ठोडी प्रदेश की भी जोकि वानर के सदृश नहीं । ट्रिनिल में उपलब्ध वानर-मानव के चबानेवाले दाँत भी दन्त रचना में

मानव सदृश थे। १६३५ में ट्रिनिल में जो पाषाणनिर्मित उपकरण मिले, कोयनिग्स्वाल्ड के मत में वे उपकरण वानर से सम्बन्धित नहीं। वानर-मानव अपनी जाति का अन्तिम रूप था परन्तु उसे किसी भी मानवीय रूप का प्रत्यक्ष रूप से पूर्वज नहीं माना जा सकता। इसके साथ-साथ जब हम जावा के 'वाजक-मानव' तथा 'सोलो मानव' आदि पर विचार करते हैं तो वे वानर मानव की अपेक्षा मानवाकार श्रेणी के अधिक समीप प्रतीत होते हैं।

सन् १६३७ में डा० कोयनिग्स्वाल्ड ने केन्द्रीय जावा से जो युवा वानर-मानव का कपाल प्राप्त किया था वह ट्रिनिल के वानर-मानव' से अधिक पूर्णावस्था में प्राप्त हुआ था। यह देखने में तो वानर-मानव से मिलता-जुलता था परन्तु आकार-प्रकार में छोटा था। इसकी कर्परदेशना ७५० वर्ग शतांश मीटर थी। उसी स्थान से नीचेवाले जबड़े के कुछ भाग भी उपलब्ध हुए जिसमें ४ दांत आकार में छोटे परन्तु बिल्कुल मानवीय आकारसम थे। अतः इस अवशेष को ट्रिनिल के वानर-मानव की अपेक्षा मानवों के अधिक समीप समझा गया।

## मोडजोकर्टो-मानव (Homo Modjokertensis)

डा० कोयनिग्स्वाल्ड ने १६३६ में प्रतिनूतन काल के एक शिशु की खोपड़ी का अध्ययन किया जो कि पूर्वीय जावा के सुराबैय्या नामक स्थान के पश्चिम में मोडजोकर्टो के इलाके से उपलब्ध हुई। डा० कोयनिग्स्वाल्ड का कथन है कि यह खोपड़ी आदि प्रतिनूतनकाल की थी और जावा के वानर-मानव से पुरानी थी। यह शिलातक (Fossil) सम्पूर्ण कपाल का था जिसमें बायी आंख के गड्ढे का ऊपर का सिरा तथा दोनों कान के भीतर के पर्दे की अस्थियाँ भी सम्मिलित थीं। परन्तु उसमें चेहरे की अस्थियाँ नहीं थी। दांतों की अनुपस्थिति के कारण बच्चे की आयु का तो ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका; परन्तु इतना अवश्य है कि बच्चे की कपाल की अस्थि की दरार बन्द थी जो कि प्रायः दो साल की आयु के बच्चे की होती है। कपालास्थि की दरार बन्द होना बहुत महत्वपूर्ण बात है। यह कपाल एक साल के बच्चे के कपाल से भी आकार-प्रकार में छोटा थी। कुल लम्बाई १३८ सहस्रांशमीटर थी। चौड़ाई ११० सहस्रांश मीटर थी। ऊँचाई केवल ६२ सहस्रांश मीटर थी जो कि बहुत कम थी, जैसे कि वानर-मानव में। माथा तिरछा तथा ढालुवां था और उस में बच्चे के समान पूर्णता प्रतीत नहीं होती थी। पिछले शरीर के बाहरी भाग का प्रदेश दबा हुआ-सा था।

प्रो० डुवायस ने इसकी कर्परदेशना का अनुमान ६५० वर्ग शतांश मीटर लगाया जोकि एक वर्ष के आधुनिक बच्चे के दो-तिहाई भाग से कुछ अधिक है। एक वर्ष की आयु में बच्चे का मस्तिष्क युवा के मस्तिष्क का दो-तिहाई भाग होता है। अतएव डा० कोर्मनिग्स्वाल्ड का मत था कि यद्यपि यह पृथक प्राणी अवश्य है, परन्तु इसका सम्बन्ध भी वानर-मानव जाति से है। हो सकता है कि ट्रिनिल मे उपलब्ध होनेवाले वानर-मानवो से न हो और ये वानर-मानव किसी दूसरे स्थान पर रहते हो, परन्तु इतना अवश्य है कि यह भी किसी वानर-मानव ( Pithecunthropus ) श्रेणी का है। ट्रिनिल से उपलब्ध वानर-मानव श्रेणीके शिशु की भृकुटियां तथा ललाट प्रदेश युवासमान नहा होते। डा० डुवायस का यह विचार है कि सम्भवत बच्चे की यह खोपड़ी किसी सोलो-मानव की हो जोकि आदि प्रतिनूतनकाल में जावा में वास किया करता था।

## चीनी मानव (Sinanthropus Pekinensis)

### चीनी-मानव की सम्प्राप्ति—

प्रथम मानवो के ( Protoanthropic ) निखातक अवशेषो में पेकिंग का चीनी-मानव (Pekin Man) प्राणी भी है। कतिपय प्राचीन सत्व-शास्त्रियों—विशेषतया प्रोफेसर ओस्वर्न का मत है कि मनुष्य जाति का उद्गम स्थान एशिया है। इस मत के पक्ष में कई प्रमाण भी पेश किये जाते हैं। मध्यनूतन काल तथा प्रतिनूतन काल में भारत में मानवाकार वानरों की तरहोही वानर-श्रेणी का विकास हुआ। बीसवी शताब्दि के प्रारम्भ में चीन में एक मानवाकार निखातक प्राणी के दात उपलब्ध हुए और इस के अतिरिक्त चीन तथा मंगोलिया से पूर्वपाषाण युग के अनेक पाषाण-उपकरण मिले हैं जो एशिया को ही मानवोत्पत्ति का स्थान सिद्ध करते हैं। सन् १९२६ में पेकिंग के दक्षिण-पश्चिमीय प्रदेश में ३७ मील दूर (Choukoutien) नामक स्थान पर एक कन्दरा से आदि नूतन कालीन मानव दांतों के अवशेष प्राप्त हुए। सन् १९२७ में नीचे का चबानेवाला दात उपलब्ध हुआ। इस अकेले दात की सम्प्राप्ति के आधार पर ही पेकिंग मेडिकल कालेज के कैनेडियन प्रो० डा० डेविड्सन ब्लैक (Davidson Black) ने गवेषणा की और एक मानव जाति की नवीन शाखा का पता लगाया। जिसका नाम उसने पेकिंग का 'चीनी-मानव' रक्खा। यह मानव जावा के वानर-मानव की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलता-जुलता

था। मि० ब्लैक ने चौकौटीन कन्दरा-से उपलब्ध अवशेष को मध्य प्रतिनूतन-कालीन बतलाया। चूंकि प्रति नूतन काल की भूगर्भशास्त्रीय आयु ५००,००० से १,५००,००० वर्ष तक मानी गई है अतः यह भी अनुमान किया जाता है कि यह चीनी-मानव ५००,००० वर्ष व उससे कुछ अधिक वर्ष पुरातन प्राणी है। ये चौकौटीन अवशेष छोटी-छोटी पहाड़ियों की कन्दराओं में से उपलब्ध हुए हैं जहाँ मनुष्य और पशु स्वच्छन्दता से विचरण किया करते थे। परन्तु धीरे-धीरे कन्दरायें रक्तमृत्तिका, कंकड़ी तथा अस्थिपूर्ण अवसादों से भर गईं।

सन् १९२८ में नीचे के दो जबड़े तथा कुछ दांत उपलब्ध हुए। उनमें से एक जबड़ा तो एक बच्चे का था जिसका ठोडी प्रदेश तथा मांसपेशियाँ वानर-सम थी। यह जबड़ा हीडलवर्ग मानव के जबड़े की अपेक्षा वानर श्रेणी से अधिक मिलता-जुलता था। पेकिंग के चीनी मानव के नीचे के जबड़े के कुछ हिस्से तथा कर्पर प्रदेश के कुछ भाग सन् १९२९ में उपलब्ध हुए। एक चीनी प्राचीन सत्व-शास्त्री 'पे' को एक युवा प्राणी का पूरा कपाल उपलब्ध हुआ। सन् १९३० में युवा पुरुष का एक दूसरा कपाल प्राप्त हुआ जिसमें नाक की अस्थियां भी साथ में थीं। 'पे' द्वारा प्राप्त कपाल का परिमाण, लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई जावा के वानर-मानव से कुछ-कुछ बड़ी थी। माथे का अग्रभाग नियंडरथल प्राणी से मिलता-जुलता था। इसमें विशेष बात यह थी कि शरीर के ऊपरी भाग का बाह्य प्रदेश कनपटी के निचले प्रदेश की चौड़ाई के मुकाबले में संकीर्ण था। मि० ए० हृदलिका का मत था कि यह कपाल नीनडरथल प्राणी के कपाल से मिलता-जुलता था। परन्तु दूसरे कपाल की उपलब्धि के साथ-साथ उनकी सम्मति भी बदल गई और उन्होंने चीनी-मानव को इन दोनों प्राचीन मानवों के बीच की श्रेणी का परिगणित किया। ✓

चीनी-मानव के रूप—

प्रो० ब्लैक गवेषणा के बाद इस परिणाम पर पहुँचे कि कपालभित्तिका बहुत अधिक स्थूल था अतः मस्तिष्क रन्ध्र, जितनी कल्पना की गई थी—उससे छोटा था। पहले तो उनका विचार था कि सम्भवतः यह कपाल किसी स्त्री का है। परन्तु अब उन्होंने मस्तक के पिछले प्रदेश तथा मांस के गड्ढे को उभरा हुआ पाया तो उनका विचार बदल गया और उन्होंने उसे पुरुष का कपाल समझा। इसके बाद नियंडरथल प्राणी से मिलते-जुलते कई अवयवों के निचले भाग प्राप्त हुए।

मि० डैविडसन ब्लैक की मृत्यु के बाद मि० वीडनरीख ने चौकोटीन अव-शेषों की गवेषणा का कार्य अपने हाथ में लिया। उन्हें जबड़ों के कई भाग, अनेक दांत तथा सन् १९३६ में तीन कपाल उपलब्ध हुए। उनमें से दो कपाल तो पुरुष के थे जिनकी कर्परदेशना क्रमशः १२०० तथा ११०० वर्ग शतांश मीटर थी। तीसरा कपाल एक स्त्री का कपाल था जिसकी कर्परदेशना १०५० वर्ग शतांश मीटर थी। वेनर्ट ने स्टेनहीम से जो मादा नियण्डरथल प्राणी प्राप्त किया था उसकी कर्पर देशना ११०० वर्ग शतांश मीटर थी। इसके बाद कुछ अन्य कपाल, दान तथा अस्थियाँ आदि भी उपलब्ध हुई। कुल १४ खोपड़ियों, जबड़ों तथा चबाने वाले दांतों पर अनुसन्धानात्मक कार्य प्रारम्भ हुआ। ३२ प्राणियों के १४७ दात जिनमें ८३ दात तो जबड़े से जुड़े हुए और अवशिष्ट पृथक्-पृथक् रूप से उपलब्ध हुए। इन सब को देखने के बाद सभी विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये चीजें मध्य प्रति नूतन युग (Middle Pleistocene) की हैं। केवल मात्र 'पे' नामक चीनी विद्वान का यह विचार था कि ये प्रारम्भिक प्रति नूतन युग के अवशेष हैं। चीनी मानव के कपाल को देखने से मालूम होता है कि यह नियन्डरथल प्राणी तथा अन्य सभी निखातक अवशेषों के अतिरिक्त वानर-मानव से अधिक समानता रखता था परन्तु कपाल कुछ-कुछ ऊंचा अवश्य था। इसका अग्रभाग कुछ मुड़ा हुआ था और इसका घनत्व भी वानर-मानव से १० व १५ प्रतिशत बड़ा था। आकार प्रकार में जावा के वानर-मानव की अपेक्षा यह आधुनिक मानव की ओर ज्यादा विकसित था। जिससे प्रतीत होता है कि नियन्डरथल, रोडेशियन तथा आधुनिक मानव का विकास भी इसी से प्रारम्भ हुआ होगा।

चीनी-मानव की विशेषताः—

एक विशेष बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह कि जो चीनी मानव की खोपड़ियाँ उपलब्ध हुई उनमें ललाट सम्बन्धी नाड़ी छोटी अथवा बिल्कुल नहीं थी जबकि यह ललाट सम्बन्धी नाड़ी वानर-मानव तथा अन्य प्राणियों में पूर्ण रूप से विकसित अवस्था में थी। चीनी-मानव के चबानेवाले दात बिल्कुल प्रारम्भिक प्राणी की भाँति थे तथा सम्पूर्ण दांत मानवीय आकार के सदृश थे। उनके भेदक (Canine) दात लम्बे नहीं थे। आगे के काटने वाले चौड़े दात फ़ावड़े के आकार सदृश थे जैसे कि आधुनिक मंगोलायड्स के हैं। जबड़ों की अपेक्षा दंत-रचना की दृष्टि से ये आधुनिक मानवीय आकार से मिलते-जुलते हैं। हीडलबर्ग मानव का भी ऐसा ही आकार-प्रकार है। जंघास्थि के

आधार पर इनका कद १५६ शतांश मीटर है जोकि आधुनिक जापानी व एस्किमो के बराबर है। बाजू के ऊपरी भाग से लेकर ऊपरी टाँग की हड्डी तक उसका अनुपात कुछ अधिक मालूम होता है। यह अनुपात क्रमश: चीनी-मानव का .७६ नीयन्डरथल का .७२, तथा आधुनिक प्राणी का .७० - .७२ है जबकि मानवीय आकार के प्राणी शिपाजी, गोरिल्ला और ओरंगटन में क्रमश. १ ०१, १.१७ तथा १.३६ है।

चीनी-मानव की शारीरिक अस्थियों की अपेक्षा उसकी कर्परास्थियां तथा जबड़े की अस्थियाँ अधिक संख्या में उपलब्ध हुई हैं। बहुत से अंगों की हड्डियां तो टूट भी गईं।

### चीनी-मानव का जावा मानव से सम्बन्ध—

बहुत से मानव शास्त्री इस बात से इन्कार करते हैं कि चीनी-मानव जावा-मानव की सन्तान थे। डा० वीडनरिख ने दोनों को ही मानवों का पूर्व-रूप माना है परन्तु दोनों की शाखा पृथक्-पृथक् है। यह हो सकता है कि दोनों ही रूप एक पूर्वज की सन्तान हों। जावा-मानव के अवशेष जावा के कई स्थानों से उपलब्ध हुए हैं परन्तु चीनी-मानव के सभी अवशेष एक ही कन्दरा से प्राप्त हुए हैं। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी-मानव विस्तृत प्रदेश में वास न करता होगा। वानर-मानव के ऊपर के भेदक दन्त (Canine Teeth) तथा कर्तनक दन्त (Incisors) के बीच में जिस प्रकार व्यवधान है उस प्रकार चीनी-मानव में नहीं। 'जावा-मानव' के जबड़े के बड़े चर्वर दन्त (Molar) वनमानुष के समान बड़े हैं। चीनी-मानव में छोटा बुद्धि-दन्त (Wisdom Tooth) सबसे बड़ा है परन्तु यह बुद्धि-दन्त चीनी-मानव के तीनों चर्वरदन्तों में सबसे छोटा है। चीनी-मानव के दांत मानवों से मिलते जुलते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि दोनों रूप पृथक्-पृथक् हैं।

### कन्दरावासी चीनी मानव का जीवन—

चीनी-मानवकालीन कई प्राणियों के अन्य अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जिससे प्रतीत होता है कि घोड़ा, ऊंट, हाथी तथा अन्य पशु ग्रीष्म ऋतु में रहा करते थे और इनका काल प्रतिनूतन काल का मध्य व अन्तिम काल था। इनमें पाषाण-संस्कृति के चिन्ह भी दिखाई देते थे। 'चीनी-मानव' आग, पाषाण उपकरण, अस्थि उपकरण आदि का भी प्रयोग किया करते थे। उनकी कन्दरायें

से काली जमीन के कुछ भाग उपलब्ध हुए हैं। वे लोग भट्टी पर मांस भी पकाया करते थे। 'चीनी-मानव' अपना सब काम दायें हाथ से किया करता था। यह कभी-कभी अपनी ही जाति के प्राणियों को खाया भी करता था। गुफाओं में वास करने वाले ये प्राणी अजनबी व्यक्तियों को मार डालते थे और उन्हें भोजन में प्रयुक्त करते थे। मृतक प्राणी का सिर अपने साथ गुफा में ले आते थे। कपालावरण (Skull cap) को पानी पीने के रूप में व्यवहृत करते थे।

## अफ्रीकन-मानव (Africanthropus Njaransensis)

सन् १६३४ में पूर्वीय अफ्रीका के टागानीका प्रान्त स्थित 'लेक नजारा' अथवा इयासी (Eyassi) प्रदेश में सबसे प्रथम तीन कपालों के कुछ अवशेष प्राप्त हुए। इसमें एक पुरुष-कपाल था जिसे कुछ पूर्णावस्था में पाया गया। इस मानव के सम्बन्ध में कतिपय विवादग्रस्त मत प्रचलित हो गये। लीके ने इसे प्राचीन-मानव निखातक ( Paleoanthropus Fossil ) घोषित किया परन्तु वेनर्ट ने 'इयासी का अफ्रीकन-मानव' नाम रखना ही अभीष्ट समझा।

मस्तक के पिछले भाग, तथा कनपटी प्रदेश की कुछ अस्थियां ऐसी थी जो आपस में एक दूसरे से जुड़ जाती थी। ललाट प्रदेश की अस्थियों के कुछ भाग भी उपलब्ध हुए। ऊपर की हन्वस्थि ( Maxilla ) कर्तनक दन्त (Incisors) बाया भेदक दन्त (Canine) प्रथम चर्वरदन्त (Molar) तथा अन्य कुछ हिस्से यद्यपि भग्नावस्था में थे तो भी मानवीय आकार से सादृश्यता रखते थे। कानो के भीतर के पर्दे का आकार लीके के कथनानुसार शिंपांजी से समानता रखता था। कपालास्थि स्थूल तथा आंख के गड्ढे के उभरे हुए प्रदेश की अस्थि, पूर्ण विकसित दशा में थी, जिसकी तुलना जावा-मानव तथा चीनी-मानव से की जा सकती है। माथे का अग्र भाग भी उनसे मिलता-जुलता था। मस्तक के पिछले भाग का आकार-प्रकार स्टेनहेम कपाल से सादृश्यता रखता था। यद्यपि कपाल और दन्त-रचना के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मालूम नहीं हो सका तथापि इतना अवश्य है कि यह अफ्रीकन-मानव चीनी-मानव तथा एक - आध नियन्डरथल मानव रूपो के वर्ग का ज्ञान पड़ता है। वेनर्ट के मतानुसार इसे नियन्डरथल वर्ग का प्रारम्भिक सदस्य घोषित किया गया है। लीके का मत है कि इस अफ्रीकन-मानव को जावा-मानव तथा चीनी-मानव के अधिक निकट मानना चाहिये।

जिन दिनों में अफ्रीकन-मानव की विद्यमानता थी उन दिनों के कुछ उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हें लेवेलोसियन संस्कृतिकालीन (Lavallosian) माना जा सकता है। लीके ने जब इयासी प्रदेश का निरीक्षण किया तो उसने भी इस मत की पुष्टि की। कई इस मानव को नीनडरथल तथा रोडेशियन मानव रूपों से जोड़ते हैं और कतिपय विद्वान् चीनी मानव तथा जावा मानव वर्ग से जोड़ते हैं। परन्तु इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सका।

उपः मानव (Eoanthropus Dowsani or Piltdown Man)

उपः मानव की सम्प्राप्तिः—

सन् १९११-१२ में इग्लैण्ड के ससैक्स ( Sussex ) प्रदेश स्थित पिल्टडाऊन नामक ग्राम से इस निखातक मानवावशेष की सम्प्राप्ति हुई। यह मानव मानवशास्त्रियों तथा शरीररचना - शास्त्रियों में अनेक वर्षो तक विवाद का विषय बना रहा। नदी के बहाव द्वारा बनी हुई कंकड़मय भूमि में सबसे प्रथम मानवीय कपाल के कुछ ऐसे अवशेष प्राप्त हुए जो आधुनिक प्राणी से बिल्कुल मिलते-जुलते थे। केवल मात्र भेद इतना था कि इस कपाल की अस्थियाँ अत्यधिक स्थूल थी। यदि केवल मात्र कपालावशेष ही प्राप्त हुए होते तो निश्चय ही उसे मेधावी मानवों का प्रारम्भिक एवं प्राचीनतम रूप मान लिया जाता। परन्तु कुछ ही फीट की दूरी पर नीचे के जबड़े का आधा दायाँ पार्श्व भी उपलब्ध हुआ जिसमें चबाने वाले दो दांत जुड़े हुए थे। यह जबड़ा शिपाजीं के जबड़े से बिल्कुल मिलता-जुलता था। अतएव यह कहा जा सकता है कि यदि केवल मात्र जबड़ा ही प्राप्त होता तो हम इसे किसी निखातक वानर-श्रेणी का, सम्भवतः तरुरोही वानरों का ही, अवशेष स्वीकार करते। चूंकि इंग्लैण्ड में अब तक किसी निखातक वानर के अवशेष प्राप्त न हुए थे, और इस प्राणी के कपाल और जबड़े का सान्निध्य था अतएव ब्रिटिश म्यूजियम के अध्यक्ष डा० ए० एस० वुडवर्ड ने इसे किसी शिपाजी का अवशेष न मानकर यह घोषित किया कि ये अवशेष उसी प्राणी से सम्बन्ध रखते हैं जिसका नाम मैं उप: मानव (Eoanthropus Dawsoni or Dawn Man) रख चुका हूं। चूंकि मि० चार्ल्स डासन उन अवशेषों के अनुसन्धानकर्ता थे अतएव उन्हीं के सम्मान में यह विशिष्ट नाम रखा गया। कपाल तथा जबड़े के पारस्परिक सम्बन्ध पर विवाद उठ गया

हुआ। सन् १६१५ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रीय म्यूजियम के अध्यक्ष मि० गैरिट एस० मिलर ने जबड़े को निखातक शिपाजी का जबड़ा स्वीकार किया और केवल मात्र कपाल को उषः मानव का कपाल माना।

सन् १६१५ में पिल्टडाऊन से दो मील की दूरी पर उसी कपालावशेष के ऊपरी भाग तथा ललाटीय प्रदेश के दो अन्य हिस्से भी पाये गये जिसमें नीचे के जबड़े का चबाने वाला एक दांत भी था। यह जबड़ा पिल्टडाऊन के जबड़े से बिल्कुल मिलता-जुलता था। कुछ समय बाद एक भेदक दन्त

पिल्टडाऊन का उषः मानव

(Canine) तथा नाक की कुछ अस्थियाँ भी उपलब्ध हुईं। इस द्वितीय गवेषणा ने उषः मानव की सम्प्राप्ति को और भी पुष्ट कर दिया।

उषः मानव का जबड़ा तथा कपाल :—

पिल्टडाऊन से जो कपालावशेष प्राप्त हुआ था उसमें बायीं कनपटी की अस्थि, बाया ललाटीय ऊपरी भाग, दायें ऊपरी भाग का कुछ बड़ा हिस्सा,

मस्तक के पिछले भाग का तथा नासास्थियों का ऊपरी भाग सम्मिलित था। इस प्रकार कपाल का जो अवशिष्ट भाग अनुपलब्ध था उसकी पूर्ति इन प्राप्त भागों से हो गई। यदि नीचे के जबड़े के अनुपलब्ध भाग की पूर्ति भी इस प्रकार हो जाती और वह कपाल के साथ संयुक्त हो जाती तो सम्पूर्ण आकृति का अनुमान हो जाता। कपाल जिस रूप में उपलब्ध हुआ वह मध्य कपालीय (Mesocephalic) रूप था। न तो वह बहुत दीर्घ और न ही बहुत लघु था। कनपटियों के किनारे के उन्नत प्रदेश का कुछ भाग जो अभी सुरक्षित अवस्था में है—सिद्ध करता है कि माथा लम्बरूप (Vertical) और इसमें भृकुटि का किनारा बिल्कुल भारी न होता था और स्तन प्रदेश की रचना पूर्णतया विकसित थी। सिर गर्दन के ऊपर सन्तुलित रूप से स्थित होता था जैसा कि आधुनिक मनुष्य में होता है। कपालभित्ति की भी स्थूलता के कारण मस्तिष्क का घनत्व कल्पित अनुमान की अपेक्षा छोटा था। कर्परदेशना १२४० वर्ग शतांश मीटर थी। परन्तु कइयों का अनुमान है कि सम्भवतः कर्पर देशना इससे भी कम है। इस प्राप्त अवशेष का लिङ्ग निर्णय सन्देहात्मक है। यदि यह किसी स्त्री का कपाल हो तो पुरुष कपाल की आन्तरिक कर्पर देशना इससे भी अधिक होनी चाहिये। नीचे का जबड़ा आकृति में वानरसम और ठोडी की आकृति भी वानरसम थी। हीडलवर्ग मानव तथा चीनी मानव में चिबुक एवं ठोडी का प्रदेश इससे बिल्कुल भिन्न होता है। इनके वाह्य दांत भी बड़े होते होंगे। सन् १६१५ में जो भेदक दन्त (Canine) उपलब्ध हुआ था वह आकृति में बहुत बड़ा था, जैसे कि मादा शिंपांजी का हो, अतएव अनुमान किया जाता है कि नीचे के चबाने वाले दांत भी आकार में बड़े होते होंगे। जबड़ों और दांत की रचना वानरतुल्य होते हुए भी दाढ के छिद्र मानवीय आकार से मिलते-जुलते थे।

उषः मानव का कपाल वस्तुतः ही मानवीय दिमाग को उलझा देनेवाला था क्योंकि इसके जबड़े इतने वानर-सम, और ठोडी प्रदेश तथा दांत भी इतने ही वानराकार हैं कि मानवीय कपाल में ये ठीक तरह से जँचते भी नहीं और पूर्णरूपेण अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं।

प्रो० इलियट स्मिथ ने उषः मानव की कपालास्थि की स्थूलता की तुलना चीनी-मानव की कपालास्थि की स्थूलता से की है। सन् १६३३ में मि० एच० वोनर्ट ने उषः मानव सम्बन्धी उपलब्ध अवशेषों की समीक्षा करने के बाद यह परिणाम निकाला कि जबड़े तथा कपाल एक ही प्राणी के हैं, पृथक्-पृथक् प्राणियों के नहीं। यदि जबड़े को पुनः व्यवस्थित किया जाय तो वे मानवीय आकार के प्रतीत होते हैं। वह इसकी प्राचीनता से इन्कार करते हुए कहते हैं

कि यह प्राणी नियन्डरस्थल प्राणी से पुराना नही। योरप तथा अमेरिका में इसके सम्बन्ध में अनेक विवादग्रस्त मत प्रचलित हैं।

मस्तिष्क का आकार-प्रकारः—

उषः मानव के मस्तिष्क के आकार-प्रकार के सम्बन्ध में भी विभिन्न-विभिन्न मत प्रचलित हैं। स्मिथ वुडवर्ड ने उष मानव की कर्पर देशना १०७० वर्ग शतांश मीटर बतलाई हैं। कीथ ने कर्परदेशना का अनुमान १५०० वर्ग शतांश मीटर लगाया है। परन्तु बाद में दोनों ने पुन. विचार किया और वुडवर्ड ने कर्पर देशना को १३०० वर्ग शतांश मीटर तथा कीथ ने १३५८ वर्ग शतांश मीटर घोषित किया।

उषः मानव का काल-निर्णयः—

भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से इस प्राणी के काल का अनुमान नही लगाया जा सका। परन्तु फिर भी जिन अवसादों (Deposits) से उषः मानव की सम्प्राप्ति हुई है वे सब आदि प्रतिनूतन कालीन हैं। अतः उसे भी आदि प्रतिनूतन कालीन मान लिया गया है। मौस्टेरियन (Mousterian) संस्कृति के पूर्वपाषाण युगी उपकरण तथा कई अस्थि उपकरण भी इन कंकड़ों से प्राप्त हुए हैं। अति नूतन तथा प्रति नूतन कालीन पशुओं की अस्थियाँ तथा दांत भी उपलब्ध हुए हैं। प्रो० ओसबर्न ने तो एक निखातक हाथी के दांतों को अतिनूतन कालीन बताते हुए यह घोषित किया कि यह उषः मानव तृतीयक (Tertiary) युग का है। अतः यह सबसे पुराना निखातक मानव है।

उषः मानव के सम्बन्ध में नवीन खोजः—

लन्दन के ६६ वर्षीय विद्वान् और अनुभवी दन्त चिकित्सक एल्बन० टी० मार्स्टन ने अभी हाल ही में उषः मानव की धारणा को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। उनका कथन है कि उषः मानव एक महान् धोखा है। यह अस्थियों का झूठा मेल-जोड़ है। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि खोपड़ी की अस्थियाँ जिस मनुष्य की है वह आज से ५० हजार वर्ष पहले जीवित रहा होगा। परन्तु उषः मानव का अस्तित्व कभी भी पृथ्वी पर नही रहा। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने अपने कई परीक्षणों का प्रदर्शन किया। स्वयं ही आधुनिक

पुच्छ-विहीन वानर की खोपड़ी को लेकर उसमें उषः मानव के सूआ दांत (Canine) को उपयुक्त रूप में जड़कर दिखा दिया। पुच्छ-विहीन वानर में मनुष्य की अस्थि को तथा मनुष्य में पुच्छ विहीन वानर की अस्थि को सुसज्जित कर दिखाने के कई परीक्षण किये। इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने क्रियात्मक रूप से आधुनिक वानर के जबड़े को भी उष. मानव के मुख में लगाकर दिखाया और उस जबड़े में से असली सूआ दांत निकालकर उसके स्थान पर उषः मानव का सूआ दांत लगाकर दिखाया। वे ठीक नहीं जुड़े। मि० मार्स्टन के इन परीक्षणों ने सचमुच ही न केवल वैज्ञानिक जगत् को, अपितु मानव शास्त्रियों और विकास वादियों को भी अचम्भे में डाल दिया उषः मानव के अस्तित्व को मिटा देने और उसे धोखा सिद्ध करने के प्रयास में मि० मार्स्टन को कहां तक सफलता मिली है, यह तो ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारियों की उस घोषणा से प्रतीत हो जाता है जो अभी हाल ही में उन्होंने प्रकाशित की है।

ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारी मि० मार्स्टन की गवेषणा के आधार पर स्वीकृत करते हैं कि उषः मानव महान् धोखा है। उसके कपाल तथा सूआ दांत मनुष्य के हैं और जबड़ा वानर का। यह मनुष्य ५० हजार वर्ष से किसी भी रूप में प्राचीनतम नहीं। मि० मार्स्टन की गवेषणा की सत्यता के आधारपर ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारियों ने अब उषः मानव की अस्थियों को म्यूजियम के 'प्रागैतिहासिक संग्रह' में से निकालकर 'नवीन उपलब्धि संग्रह' में रख दिया है।

## हीडलबर्ग मानव (Heidelbergensis or Heidelberg Man)

### हीडलबर्ग जबड़े की सम्प्राप्ति—

प्राचीन मानवों में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राणी हीडलबर्ग-मानव आज द्वितीय अन्तः हिमयुग अथवा मध्यवन. प्रथम हिमयुग में आज से लगभग डेढ़ लाख व इससे भी दुगना अथवा ३ लाख वर्षपूर्व वास किया करता था। सन् १९०७ में जर्मनी स्थित हीडलबर्ग प्रदेश के मावेर ( Mauer ) नामक स्थान से इस मानव का जबड़ा प्राप्त हुआ था, जिसके आधार पर इस मानव की खोज की गई। इस स्थान पर अन्य भी कई प्रति नूतन कालीन पशुओं के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए। यह जबड़ा जमीन की सतह से ७ फ़ीट की गहराई से प्राप्त हुआ और इस जबड़े के ऊपर नदी की रेत, कड़ी मिट्टी तथा कचरा आदि सब पड़ा हुआ मिला है। यह जबड़ा आकार-प्रकार में भारी तथा बड़ा था ठोड़ी-प्रदेश का कुछ भी भाग इसमें सम्मिलित नहीं। अतएव

ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः यह जबड़ा भी किसी पुच्छ विहीन वानर का हो परन्तु दात और दांतों की मेहराब निश्चय ही किसी मानव की प्रतीत होती है और ये किसी प्रारम्भिक मानवाकार प्राणी के दांत और दांतो के मेहराब से बड़ी नहीं। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जबड़े के ऊपर का भाग बहुत चौड़ा और नीचे के जबड़े का कटाव सिरे पर कम गहरा है।

बहुत से शरीर-रचना शास्त्रज्ञो का मत है कि यह जबड़ा नियन्डरथल मानव जाति से भी कई प्रकार की समानतायें रखता है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यह हीडलवर्ग प्राणी नियन्डरथल प्राणी का पूर्वज ही रहा हो और सभी नियन्डरथल प्राणी इसके वंशज होगे। प्रो० शूटनसैक ( Schoetensack ) ने ही सर्वप्रथम इस प्राणी का नाम हीडलवर्ग-मानव रक्खा था। मि० बोनारेली (Bonarelli) ने सन् १९०७ में इस हीडलवर्ग मानव का नाम प्राचीन मानव (Paleoanthropus) रखने का विचार पेश किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि यदि यह जबड़ा दांतों के बिना उपलब्ध हुआ होता तो निश्चय ही यह किसी वानर का होता। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें पुच्छहीन वानर से कुछ समानतायें अवश्य हैं परन्तु इसकी मानवीय आकार सम्बन्धी सादृश्यता से भी इन्कार नही किया जा सकता। इसके दांत मानवीय आकार के सदृश हैं। इसके सुआ दात भी वानरसम नही। इसका तीसरा चर्वरदन्त अथवा दाढ़ दूसरे चर्वर दन्त की अपेक्षा छोटा होता हैं। नीचे के जबड़े से ऊपर वाले दांतो की मेहराब बनाना सम्भव है। नीचे के जबड़ो के कारण दाढ़ तथा गाल की हड्डियां भी पुन. व्यवस्थित की जा सकती हैं। इस प्रकार यदि ऊपर के दांतो का मेहराब बनाया जावे तो बड़ा और यू (U) आकार का होगा जो कि नियन्डरथल प्राणी के समान होगा। जहां तक, इस पुनर्व्यवस्था के अन्तर्गत कपोल-रचना का सम्बन्ध है, उसमें दोनों प्राणियों में भिन्नता पाई जाती है। जिस प्रकार नियन्डरथल प्राणी की कपोलास्थियां पीछे की ओर ढलुवां होती हैं उसी प्रकार हीडलवर्ग प्राणी की कपोलास्थियां ढलुवां न होकर चतुष्कोणाकार बन गई होती जिससे उसकी मुखाकृति चौड़ी और चपटी होती।

हीडलवर्ग मानव का काल—

शरीर रचना शास्त्र तथा भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी तर्कों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह हीडलवर्ग प्राणी नियन्डरथल प्राणी का पूर्वज ही होगा। हीडलवर्ग प्राणी की संस्कृति के सम्बन्ध में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका क्योंकि इस प्रदेश में जबडे के अवशेष सम्बन्धी किसी पदार्थ

पुच्छ-विहीन वानर की खोपड़ी को लेकर उसमें उप: मानव के सूमा दांत (Canine) को उपयुक्त रूप में जड़कर दिखा दिया। पुच्छ-विहीन वानर में मनुष्य की अस्थि को तथा मनुष्य में पुच्छ विहीन वानर की अस्थि को सुसज्जित कर दिखाने के कई परीक्षण किये। इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने क्रियात्मक रूप से आधुनिक वानर के जबड़े को भी उप. मानव के मुख में लगाकर दिखाया और उस जबड़े में से असली सूमा दांत निकालकर उसके स्थान पर उप: मानव का सूमा दांत लगाकर दिखाया। वे ठीक नहीं जुड़े। मि० मार्स्टन के इन परीक्षणों ने सचमुच ही न केवल वैज्ञानिक जगत् को, अपितु मानव शास्त्रियों और विकास वादियों को भी अचम्भे में डाल दिया उप: मानव के अस्तित्व को मिटा देने और उसे धोखा सिद्ध करने के प्रयास में मि० मार्स्टन को कहाँ तक सफलता मिली है, यह तो ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारियों की उस घोषणा से प्रतीत हो जाता है जो अभी हाल ही में उन्होंने प्रकाशित की है।

ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारी मि० मार्स्टन की गवेषणा के आधार पर स्वीकृत करते हैं कि उप: मानव महान् धोखा है। उसके कपाल तथा सूमा दांत मनुष्य के हैं और जबड़ा वानर का। यह मनुष्य ५० हजार वर्ष से किसी भी रूप में प्राचीनतम नहीं। मि० मार्स्टन की गवेषणा की सत्यता के आधारपर ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारियों ने अब उप मानव की अस्थियों को म्यूजियम के 'प्रागैतिहासिक संग्रह' में से निकालकर 'नवीन उपलब्धि संग्रह' में रख दिया है।

हीडलबर्ग मानव (Heidelbergensis or Heidelberg Man)

हीडलबर्ग जबड़े की सम्प्राप्ति—

प्राचीन मानवों में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राणी हीडलबर्ग-मानव आज द्वितीय अन्तः हिमयुग अथवा सम्भवत. प्रथम हिमयुग में आज से लगभग डेढ़ लाख व इससे भी दुगना अथवा ३ लाख वर्षपूर्व वास किया करता था। सन् १९०७ में जर्मनी स्थित हीडलबर्ग प्रदेश के मायेर ( Mauer ) नामक स्थान से इस मानव का जबड़ा प्राप्त हुआ था, जिसके आधार पर इस मानव की खोज की गई। इस स्थान पर अन्य भी कई अति नूतन कालीन पशुओं के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए। यह जबड़ा जमीन की सतह से ७ फ़ीट की गहराई से प्राप्त हुआ और इस जबड़े के ऊपर नदी की रेत, कंकड़ी मिट्टी तथा कचरा आदि सब पड़ा हुआ मिला है। यह जबड़ा आकार-प्रकार में भारी तथा बड़ा था ठोड़ी-प्रदेश का कुछ भी भाग इसमें सम्मिलित नहीं। अतएव

ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत यह जबड़ा भी किसी पुच्छ विहीन वानर का हो परन्तु दांत और दांतों की मेहराब निश्चय ही किसी मानव की प्रतीत होती है और ये किसी प्रारम्भिक मानवाकार प्राणी के दांत और दांतों के मेहराब से बड़ी नहीं। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जबड़े के ऊपर का भाग बहुत चौड़ा और नीचे के जबड़े का कटाव सिरे पर कम गहरा है।

बहुत से शरीर-रचना शास्त्रज्ञों का मत है कि यह जबड़ा नियन्डरथल मानव जाति से भी कई प्रकार की समानतायें रखता है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यह हीडलवर्ग प्राणी नियन्डरथल प्राणी का पूर्वज ही रहा हो और सभी नियन्डरथल प्राणी इसके वंशज होंगे। प्रो० शूटनसैक (Schoetensack) ने ही सर्वप्रथम इस प्राणी का नाम हीडलवर्ग-मानव रक्खा था। मि० बोनारेली (Bonarelli) ने सन् १९०७ में इस हीडलवर्ग मानव का नाम प्राचीन मानव (Paleoanthropus) रखने का विचार पेश किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि यदि यह जबड़ा दांतों के बिना उपलब्ध हुआ होता तो निश्चय ही यह किसी वानर का होता। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें पुच्छहीन वानर से कुछ समानतायें अवश्य हैं परन्तु इसकी मानवीय आकार सम्बन्धी सादृश्यता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके दांत मानवीय आकार के सदृश हैं। इसके सुआ दांत भी वानरसम नहीं। इसका तीसरा चर्वरदन्त अथवा दाढ़ दूसरे चर्वर दन्त की अपेक्षा छोटा होता है। नीचे के जबड़े से ऊपर वाले दांतों की मेहराब बनाना सम्भव है। नीचे के जबड़ों के कारण दाढ़ तथा गाल की हड्डियाँ भी पुन व्यवस्थित की जा सकती हैं। इस प्रकार यदि ऊपर के दांतों का मेहराब बनाया जाये तो बड़ा और यू (U) आकार का होगा जो कि नियन्डरथल प्राणी के समान होगा। जहाँ तक, इस पुनर्व्यवस्था के अन्तर्गत कपोल-रचना का सम्बन्ध है, उसमें दोनों प्राणियों में भिन्नता पाई जाती है। जिस प्रकार नियन्डरथल प्राणी की कपोलास्थियाँ पीछे की ओर ढलुवां होती हैं उसी प्रकार हीडलवर्ग प्राणी की कपोलास्थियाँ ढलुवा न होकर चतुष्कोणाकार बन गई होतीं जिससे उसकी मुखाकृति चौड़ी और चपटी होती।

## हीडलवर्ग मानव का काल—

शरीर रचना शास्त्र तथा भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी तर्कों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह हीडलवर्ग प्राणी नियन्डरथल प्राणी का पूर्वज ही होगा। हीडलवर्ग प्राणी की संस्कृति के सम्बन्ध में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका क्योंकि उस प्रदेश में जबड़े के अवशेष सम्बन्धी किसी पदार्थ

की उपलब्धि नहीं हुई जिससे संस्कृति का अनुमान किया जा सके। हाँ, इतना अवश्य है कि यह हीडलबर्ग प्राणी अवश्य ही नियन्डरथल का पूर्वरूप है। कई मानव शास्त्रियों का विचार है कि यह प्राणी चेलियन संस्कृति-कालीन है परन्तु यह भी सन्देहास्पद है। चूंकि यह प्राणी अन्त: हिमयुगीय जलवायु में रहता था अतएव सम्भव है कि उसे कंदराओं में रहने व आश्रय लेने के लिए बाध्य न होना पड़ा हो।

## नियन्डरथल मानव (Neanderthal Man)

### नियन्डरथल मानव की सम्प्राप्ति—

जर्मनी में डसलडोर्फ (Dusseldorf) प्रदेश के समीप नियन्डरथल नामक स्थान पर सन् १८५६ में जब एक गुफा की खुदाई हुई तो उसमें से एक अस्थिपञ्जर के कुछ अवशेष उपलब्ध हुए। इन अवशेषों में कपाल का ऊपर का सिरा, बाजू और टाँग की कुछ अस्थियाँ भी सम्मिलित थी। इसके अतिरिक्त स्कन्ध मेखला तथा वस्ति प्रदेश के कुछ भाग भी उपलब्ध हुए। कपाल तथा ललाट सम्बन्धी उभरे हुए प्रदेश की समीक्षा करने के अनन्तर यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह रचना वानर तुल्य है। भुजा तथा टाँग की कुछ अस्थियों से भी असाधारण आकृतियों का अनुमान लगाया जा रहा था। परिणाम स्वरूप सन् १८६४में आयरलैंड के प्रसिद्ध प्रोफेसर डा०विलियमकिंग ने गवेषणा करने के बाद मानव जाति के इस नवीन प्राणी को नियन्डरथल-मानव का नाम दिया। इसके बाद इस सम्बन्ध में कई अन्वेषण किये गये। प्रो० टी० एच० हक्सले ने इस मानव को पुरातन तथा वानर सम बतलाया। प्रसिद्ध जर्मन प्रोफेसर रुडोल्फ विरचोव ने सिद्ध किया कि रोग-निदान शास्त्र के आधार पर यह केवलमात्र भद्दे प्रकार का अनियमित कपाल है जब कि दूसरों का कहना था कि यह किसी बुद्धिविहीन प्राणी का कपाल है। कुछ समय बाद समीप की एक गुफा से कुछ पशुओं के अवशेष प्राप्त हुए। बाद की गवेषणाओं के आधार पर इस नियन्डरथल-मानव के अवशेष योरुप, जर्मनी बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन, जुगोस्लाविया, क्रीमिया, फिलस्तीन आदि देशों से भी प्राप्त हुए। हजारों प्रकार के पाषाणनिर्मित उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं।

### नियन्डरथल मानवों का काल—

नियन्डरथल प्राणी मुर्दों को गाड़ने तथा आग जलाने की कला से अभिज्ञ

थे। इनकी जाति बहुत समय तक तृतीय हिम युग से लेकर चतुर्थ हिम युग के अन्त तक योरुप में विद्यमान रही। जर्मनी में वीमर तथा स्टेनहीम नामक स्थान से तथा रोम से जो कपाल उपलब्ध हुए हैं, वे ७५,००० अथवा १००,००० वर्ष पुराने हैं। १८५६ में जो नियन्डरथल अस्थिपञ्जर प्राप्त हुआ था उससे ८ वर्ष पहले सन् १८४८ में जिबराल्टर के उत्तर में भी एक मानवीय कपाल खुदाई में प्राप्त हुआ था जो बाद में अंग्रेज भूगर्भशास्त्री जार्ज बस्क की गवेषणा के आधार पर निअन्डरथल-मानव की श्रेणी का

नियण्डरथल-मानव

ठहराया गया। आक्सफोर्ड के प्रोफेसर सोलास ने माप करने के बाद बतलाया कि यह मादा युवा नियन्डरथल प्राणी का कपाल है। यद्यपि इस का नीचे का जबड़ा नहीं है तो भी इतना अवश्य है कि यह नियन्डरथल प्राणी आकार-प्रकार में छोटा है।

नियन्डरथल प्राणी की कर्परदेशना १२८० वर्ग शतांशमीटर थे। प्राचीन वस्तुकला विश भिश डोरोथी गैरोड को १९२६ में एक पंचवर्षीय नियन्डरथल बालक की खोपड़ी जिबराल्टर में उपलब्ध हुई। जहां प्रथम अनुसन्धान हुआ

की उपलब्धि नहीं हुई जिससे संस्कृति का अनुमान किया जा सके। हाँ, इतना अवश्य है कि यह हीडलवर्ग प्राणी अवश्य ही नियन्डरथल का पूर्वरूप है। कई मानव शास्त्रियों का विचार है कि यह प्राणी चेलियन संस्कृति-कालीन है परन्तु यह भी सन्देहास्पद है। चूंकि यह प्राणी अन्त: हिमयुगीय जलवायु में रहता था अतएव सम्भव है कि उसे कंदराओं में रहने व आश्रय लेने के लिए बाध्य न होना पड़ा हो।

## नियन्डरथल मानव (Neanderthal Man)

### नियन्डरथल मानव की सम्प्राप्ति—

जर्मनी में डसलडोर्फ ( Dusseldorf ) प्रदेश के समीप नियन्डरथल नामक स्थान पर सन् १८५६ में जब एक गुफा की खुदाई हुई तो उसमें से एक अस्थिपञ्जर के कुछ अवशेष उपलब्ध हुए। इन अवशेषों में कपाल का ऊपर का सिरा, बाजू और टाँग की कुछ अस्थियाँ भी सम्मिलित थीं। इसके अतिरिक्त स्कन्ध मेखला तथा वस्ति प्रदेश के कुछ भाग भी उपलब्ध हुए। कपाल तथा ललाट सम्बन्धी उभरे हुए प्रदेश की समीक्षा करने के अनन्तर यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह रचना वानर तुल्य है। भुजा तथा टाग की कुछ अस्थियों से भी असाधारण आकृतियों का अनुमान लगाया जा रहा था। परिणाम स्वरूप सन् १८६४में आयरलेंड के प्रसिद्ध प्रोफेसर डा०विलियमकिंग ने गवेषणा करने के बाद मानव जाति के इस नवीन प्राणी को नियन्डरथल-मानव का नाम दिया। इसके बाद इस सम्बन्ध में कई अन्वेषण किये गये। प्रो० टी० एच० हक्सले ने इस मानव को पुरातन तथा वानर सम बतलाया। प्रसिद्ध जर्मन प्रोफेसर रुडोल्फ विरचोव ने सिद्ध किया कि रोग-निदान शास्त्र के आधार पर यह केवलमात्र भद्दे प्रकार का अनियमित कपाल है जब कि दूसरों का कहना था कि यह किसी बुद्धिविहीन प्राणी का कपाल है। कुछ समय बाद समीप की एक गुफा से कुछ पशुओं के अवशेष प्राप्त हुए। बाद को गवेषणाओं के आधार पर इस नियन्डरथल-मानव के अवशेष योरुप, जर्मनी बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन, जुगोस्लाविया, क्रीमिया, फिलस्तीन आदि देशों से भी प्राप्त हुए। हजारों प्रकार के पाषाणनिर्मित उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं।

### नियन्डरथल मानवों का काल—

नियन्डरथल प्राणी मुर्दों को गाड़ने तथा आग जलाने की कला से अभिज्ञ

थे। इनकी जाति बहुत समय तक तृतीय हिम युग से लेकर चतुर्थ हिम युग के अन्त तक योरूप में विद्यमान रही। जर्मनी में वीमर तथा स्टेनहीम नामक स्थान से तथा रोम से जो कपाल उपलब्ध हुए हैं, वे ७५,००० अथवा १००,००० वर्ष पुराने हैं। १८५६ में जो नियन्डरथल अस्थिपञ्जर प्राप्त हुआ था उससे ८ वर्ष पहले सन् १८४८ में जिबराल्टर के उत्तर में भी एक मानवीय कपाल खुदाई में प्राप्त हुआ था जो बाद में अंग्रेज भूगर्भशास्त्री जार्ज बस्क की गवेषणा के आधार पर नियन्डरथल-मानव की श्रेणी का

नियंडरथल-मानव

ठहराया गया। आक्सफोर्ड के प्रोफेसर सोलास ने माप करने के बाद बतलाया कि यह मादा युवा नियन्डरथल प्राणी का कपाल है। यद्यपि इस का नीचे का जबड़ा नहीं है तो भी इतना अवश्य है कि यह नियन्डरथल प्राणी आकार-प्रकार में छोटा है।

नियन्डरथल प्राणी की कपालक्षमता १२८० वर्ग शतांशमीटर थी। प्राचीन वस्तुकला विद मिस डोरोथी गेरोड को १९२६ में एक पंचवर्षीय नियन्डरथल बालक की खोपड़ी जिबराल्टर में उपलब्ध हुई। जहाँ प्रथम अनुसन्धान हुआ

था वहाँ से यह स्थान कई सौ गज की दूरी पर था। बेल्जियम स्थित नैमूर नामक स्थान के समीप स्पाई में १८८६ में जो दो अस्थिपंजर के भाग उपलब्ध हुए थे उससे नियन्डरथल-मानव के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता था। कपाल, जबड़े तथा अन्य अस्थियां सुरक्षित रख ली गई थी। इसका कपाल यद्यपि भग्नावस्था में था परन्तु फिर भी नियडरथल में उपलब्ध कपाल की अपेक्षा पूर्ण था।

## नियन्डरथल मानव फ्रांस में—

फ्रांस के कारेजा प्रदेशस्थित ला चपलेआक्स सेण्ट्स (La chapelle-aux Saints) की गुफा से सन् १६०८ में एक पूर्ण अस्थिपंजर उपलब्ध हुआ। इस के कपाल की कर्परदेशना १६२५ वर्ग शतांश मीटर थी। ठीक इसी साल सन् १६०८ में ही डोरोडोन में ले मौस्टियर नामक स्थान पर नियन्डरथल-मानव का अस्थिपजर भी उपलब्ध हुआ। यह १५ वर्षीय लड़के का अस्थिपजर था। इसके सभी दांत सुरक्षित रक्खे हुए हैं। इसके बाद सन् १६०६ तथा १६१० में ला फैरासी में पुरातन पाषाण-युग के कई अवशेष उपलब्ध हुए। एक अस्थिपंजर युवा पुरुष का और एक युवा स्त्री का था। नर मानव की खोपड़ी भग्नावस्था में थी। मादा अस्थिपंजर के हाथ और पैर भी सुरक्षित रखे हुए हैं। चरेण्टे के ला क्विना नामक स्थान पर प्राप्त नियन्डरथल मानव के अवशेषों के सम्बन्ध में डा० हेनरी मार्टिन ने अनुसन्धान किया। सन् १६११ में एक युवा नियन्डरथल-मानव का तथा १६१६ में बाल नियन्डरथल प्राणी का कपाल लगभग पूर्णावस्था में उसने पेश किया जिसमें केवल मात्र नीचे के जबड़ों का अभाव था। इस बच्चे की आयु ८ वर्ष से अधिक की न होगी। माथा अभी पूर्ण विकसित अवस्था में ८ वर्षीय आधुनिक बच्चे की भांति न था।

## जर्मनी में नियन्डरथल—

कतिपय अन्वेषणों से सिद्ध होता है कि नियन्डरथल-मानव का वास तृतीय हिमयुग में योरप में हुआ करता था। सन् १८६२ में वेमर के समीप एक स्थान पर नीचे के जबड़े का जब चबाने वाला दांत मिला तो नेहरिंग ने उसे नियन्डरथल प्राणी का दांत बतलाया। (Ehringsdorf) एहरिंगडोर्फ़ में १६१४ तथा १६१६ में नीचे के दो जबड़े मिले। एक तो बड़ी आयुवाले

व्यक्ति का या और दूसरा बच्चे का। दोनों नियन्डरथल-मानव की जाति से सम्बन्धित थे। १६२५ में इसी स्थान पर एक युवा नियन्डरथल प्राणी का कपाल का कुछ भाग भी उपलब्ध हुआ। जर्मनी के स्टेनहीम इलाके से १६३३ में जो कपाल उपलब्ध हुआ उसके सम्बन्ध में प्रो० वेनर्ट ने बतलाया कि यह एक मादा नियन्डरथल प्राणी का कपाल था। इसकी वर्परदेशना ११०० वर्ग शतांशमीटर थी, जोकि किसी युवा नीनडरथल-मानव से कम थी। *१६३६ में जिन दो चीनी-मानवों के कपाल प्राप्त हुए थे यह उनसे भी छोटी थी।*

### रोम में नियन्डरथल—

रोम नगर के बाहर १६२६ में एक युवा नियन्डरथलन्मानव की पूर्ण खोपड़ी प्राप्त हुई। इस इलाके में नियन्डर-थल मानव की यह प्रथम खोपड़ी थी। प्रो० सर्गियोसर्गी का कथन है कि यह कपाल जिबराल्टर में उपलब्ध कपाल से मिलता-जुलता था। इसके बाद सन् १६३५ में इसी इलाके में एक और नियन्डरथल-मानव की खोपड़ी उपलब्ध हुई।

### जुगोस्लाविया में नियन्डरथल—

क्रपिना (Krapina) नामक स्थान पर सन् १८६६ में नियन्डरथल-मानव के एक दर्जन अस्थिपञ्जर उपलब्ध हुए जिसमें कुछ बच्चों के भी अस्थिपञ्जर थे। प्रो० के गोर्जनोविक-क्रैम्बरगर ने अनुसंधान करने के पश्चात् बताया कि इनमें से कुछ कपाल और अस्थियाँ जानबूझ कर नष्ट-भ्रष्ट की गई थी। इससे मालूम होता है कि इस इलाके के लोग नर भक्षी थे।

### फिलिस्तीन में नियन्डरथल—

सबसे प्रथम सन् १६२५ में गैलिली समुद्र के समीप एक गुफा की खुदाई के समय एक कपाल-अवशेष प्राप्त हुआ जिसे "गैलिली-कपाल" के नाम से कहा जाता है। इसकी ललाटास्थि तथा दक्षिण कपोलास्थि को देखने से सहज ही नियन्डरथल प्राणी का अनुमान हो जाता है। कुछ वर्ष बाद फिलस्तीन में कार्मेल पर्वत की पश्चिमी गुफाओं में एथलिट नामक स्थान पर अन्य दस प्राणियों के अवशेष उपलब्ध हुए। यह स्थान गैलिली से १५ मील पश्चिम में स्थित था। सर आर्थर कीथ तथा मि० टी० डी० मैककाऊन ने अनुसंधान किया। सन्

१९३१ में मि० मैककाउन ने मघरेट-एस-सखुल (Mugharet-es-Skhul) 'बाल गुफा' में तीन वर्षीय बालक का अस्थिपञ्जर पाया और सन् ३२ में नर और मादा नियन्डरथल-मानवों के ८ अस्थिपञ्जर पाये गये जिनसे मालूम होता था कि इन्हें स्वेच्छापूर्वक गाड़ा गया था।

समीपवर्ती तबून (Tabun) नामक एक गुफा में एक स्त्री का अस्थिपञ्जर उपलब्ध हुआ। इसके साथ-साथ ऐसे पाषाणनिर्मित उपकरण भी प्राप्त हुए जिसमें अस्थियों का प्रयोग किया गया था। पहले इन सब अस्थिपञ्जरों को योरुपियन नियन्डरथल-मानव के अस्थिपञ्जर समझा गया परन्तु बाद में पता चला कि यह 'तबुन स्त्री अस्थिपञ्जर' पश्चिमीय नियन्डरथल प्राणी से मिलता-जुलता था। 'सखुल' में उपलब्ध अवशेष बिल्कुल आधुनिक प्राणी से मिलता-जुलता था। 'तबुन' गुफा में उपलब्ध हुए दोनों जबड़ों में से एक जबड़ा ठोडी रहित था तथा दूसरा ठोडीवाला था जैसे कि 'सखुल' गुफा का प्राणी। दांतों की रचना यूरोपियन नियन्डरथल-मानव के दांतों की-सी नहीं थी। कपोलास्थियां आधुनिक मानव की भांति थी। फ्रांस के लम्बे क्रोमैग्नन मानव का आकार-प्रकार इनसे सादृश्य रखता था। इसकी लम्बाई ५ फीट १० इन्च अथवा ५ फ़ीट ८ इन्च तक थी। 'तबुन' से प्राप्त स्त्री की लम्बाई ५ फ़ीट ही थी। यह नूतन मानव के विकास का प्रारम्भिक सोपान था।

सन् १९२४ में 'गैलिली-कपाल' की उपलब्धि से कुछ मास पूर्व कृष्णसागर के तट पर क्रीमियन प्रदेश के सिम्फरोपोल नामक स्थान के समीप एक गफा से नियन्डरथल- मानव का अवशेष उपलब्ध हुआ। योरुपियन नियन्डरथल-मानवों को कई जातियों में भेदानुसार विभक्त करने का प्रयत्न किया गया। केन्द्रीय एशिया के दक्षिणी उजबेकिस्तान में एक गुफा से सन् १९३८ में नियन्डरथल-मानव के अवशेष प्राप्त हुए हैं। डा० ए० पी० ओकलाइडनिकोव ने इस सम्बन्ध में एक ८ वर्षीय बच्चे की खोपड़ी का पता लगाया। यह स्थान पहले स्थान से १८०० मील की दूरी पर था। अत. यह अनुमान लगाया जाता है कि नियन्डरथल- मानव कई भागों में फैला हुआ था।

सन् १८६७ में मि० एल० विल्सर ने 'नियन्डरथल'-मानव का नाम प्रथम मौलिक मानव (Homo Primigenius) बदलना चाहा परन्तु क्योंकि 'नियन्डरथल-मानव' नाम प्रसिद्ध हो चुका था अतः यह नूतन नाम-परिवर्तन क्रियात्मक रूप धारण न कर सका।

शरीर रचना भेद:—

अब हम विभिन्न-विभिन्न नियन्डरथल-मानवों के शारीरिक रचना

सम्बन्धी भेद पर विचार करते हैं। हमारा यह अध्ययन केवलमात्र योरुपियन सामग्री पर आधारित है। प्रो० बॉले का कथन है कि चपेले आवससैन्ट्स का नियन्डरथल प्राणी कद में छोटा—५ फीट २ इञ्च होता था। नियन्डरथल तथा स्पाई के प्रदेशों में उपलब्ध मानव इसी ऊँचाई के होते थे। ला फेरासी का प्राप्त मानव ५ फ़ीट ४ इञ्च था। ले मोस्टियर में जिस १५ वर्षीय बालक का अवशेष प्राप्त हुआ था वह ५ फीट से भी कुछ कम लम्बा था। ले फेरासी का स्त्री-अवशेष ४ फ़ीट ६ इञ्च ही था। ये माप अस्थियों की लम्बाई के आधार पर ही स्थिर किये गये हैं। फिलस्तीन के अस्थिपञ्जर अपवाद रूप से लम्बे थे। इन अवशेषों की कर्परदेशना १२८० वर्ग शताशमीटर से लेकर १६०० वर्ग शताशमीटर तक थी।

मि० वेनर्ट के कथनानुसार स्टेनहेम स्त्री-अवशेष की कर्परदेशना ११०० वर्ग शताशमीटर से भी कम थी। चैपेले-आवस-सेन्ट्स के अवशेष की कर्परदेशना १६०० घन सैण्टीमीटर से भी अधिक थी। कपाल की रचना दीर्घकपाल ( Dolichocephalic ) की भाँति थी और उसकी लम्बाई तथा चौड़ाई ७६ तथा ७० थी। कान से ऊपर की ऊँचाई अपेक्षाकृत समतल कपालीय ( Platycephalic ) थी। माथा कुछ-कुछ पीछे की ओर हटा हुआ था। आँख के गड्ढे बड़े तथा गोल थे और अन्दर की चौड़ाई अधिक थी। आधुनिक मानव की अपेक्षा आकृति लम्बी है। नासिका छिद्र चौड़े हैं। नाक यद्यपि चौड़ी है परन्तु फैली हुई नहीं। नाक के सम्बन्ध में वानर से किसी प्रकार भी समानता नहीं। नासिका के छिद्र का निचला किनारा तेज है। नासिका का झुकाव ऊपर के ओष्ठ की तरफ नहीं। कपोलास्थियाँ ढालुवाँ तथा पीछे की ओर झुकी हुई हैं, अतएव मेधावी मानवों (Homo Sapiens) की न्याईं कपोलों में किसी प्रकार की विशेषता नहीं। तालु लम्बा, चौड़ा तथा यू (U) आकार का है। वह ठोस अनुवृत्ताकार ( Paraboloid ) नहीं जैसे मेधावी मानवों में है। नीचे के जबड़े की भी कई विशेषताएँ हैं। जबड़े की हड्डियों को जोड़नेवाली ग्रन्थियाँ वानर सम हैं। जबड़ों की बाह्य सतह ढलुवाँ है। जिह्वा की मांसपेशियाँ तथा कुछ अन्य मांसपेशियाँ घटिया हैं। दन्त मेहराब तथा दाँत बड़े हैं। नीचे के चबानेवाले दाँत क्रम से क्रम पहला और दूसरा दाँत तरुरोही वानर प्रतिमान (Dryopithecus Pattern) का सा है। तीसरा चबानेवाला दाँत (Third Molar) इतना बड़ा नहीं जितना औरों का है। मुख दाँतों—जो बिल्कुल मानवीय आकार के होते हैं सर आर्थर कीथ ने वृषभ दन्त (Tauradont) नाम से स्मरण किया है। इसमें गूदेदार छिद्र बढ़कर जड़ों की ओर नीचे झुक जाते हैं। सम्पूर्ण दन्त रचना एक स्तम्भ की भाँति

होती है। यह रचना यद्यपि एकसमान है परन्तु सभी नियन्डरथल प्राणियों में नहीं पायी जाती। इसके अतिरिक्त दन्त रचना में एक और विशेषता यह है कि चबानेवाले दाँतों के सिरों पर झुर्रीदार रेखा सी होती है। बाह्य दन्त-रचना इस प्रकार होती है जैसे ऊपर और नीचे के आगे के काटनेवाले चौड़े दांत मिले हुए हो। ला फेरेसी के स्त्री-अवशेष की प्रगण्डास्थि तथा टांग की बड़ी हड्डी का अनुपात ७०·४ तथा ७४·४ था। जबकि आधुनिक प्राणी में यह अनुपात क्रमश: प्रगण्डास्थि में ७५·४ से ८६·४ तक तथा टांग की हड्डी में ७७·३ से ८६·६ तक होता है। आधुनिक प्राणी का यह अनुपात सभी पुरुषों में पाया जाता है। ला फेरेसी के अवशेष का यह अनुपात स्त्री होने के कारण पर्याप्त छोटा था। वानरसम प्राणियों में यह अनुपात कभी भी नहीं पाया जाता।

*हस्त तथा पाद-रचना—*

मानवाकार प्राणियों तथा मनुष्यों में हस्त तथा पाद का विभिन्न उपयोजन (Adapta ion) भी विशेष रूप से पाया जाता है। चपेले आक्स सेन्ट्स में जो अस्थिपंजर उपलब्ध हुआ था उसकी अंगुष्ठास्थि विकृत रूप में थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि यह नियन्डरथल प्राणी की अंगुष्ठास्थि से भिन्न है परन्तु ला फरेसे में स्त्री-अस्थिपंजर की अंगुष्टास्थि विकृत न थी अतः वह आधुनिक प्राणी से मिलती-जुलती थी। इसकी पादरचना भी बिल्कुल मानव-सम थी। पैर और टांग को जोड़ने वाली टखनास्थियों में थोड़ा भेद अवश्य पाया जाता था। एड़ी की हड्डियों में भी कुछ विशेषतायें अवश्य थीं। प्रो० बॉले के कथनानुसार यद्यपि पाद-रचना मानवसम थी परन्तु तो भी उसमें वानरसम आकार कुछ अंशों में दृष्टिगोचर होते थे। हंसुली मुड़ी हुई तथा नाजुक होती थी। वस्ति प्रदेश ऊंचाई तथा चौड़ाई में लम्बा होता था। आंतों के नीचे का भाग मेधावी मानवों की अपेक्षा कम नतोदर होता और नितम्ब प्रदेश भी बड़ा होता था।

नियन्डरथल मानव के पृष्ठवंशी प्रदेश के सम्बन्ध में अभी पूरा-पूरा अनुसन्धान नहीं हो सका। परन्तु जो अस्थिपंजर उपलब्ध हुए हैं उनमें किसी प्रकार कटि सम्बन्धी वक्रता प्रतीत नहीं होती। गर्दन के कशेरुक (Vertebrae) चिंपांजी के आकार के तथा गर्दन मोटी तथा गोरिल्ला के आकार की होती थी। अतः प्रतीत होता है कि नियन्डरथल प्राणी अभी पूर्ण मानवाकार को प्राप्त न हुआ था। नियन्डरथल प्राणी मेधावी मानवों से भिन्न था और वह वानरसम प्राणियों से भी आकार-प्रकार में भिन्नता रखता था। परन्तु इतना

अवश्य है कि वह वानरसम प्राणियों की भाँति न था जैसा कि कई लेखकों ने उसे वानरसम बतलाया है।

## मेधावी मानव (Homo Sapiens)

पूर्व-पाषाण युग की समाप्ति पर योरुप का जलवायु यद्यपि बहुत ठण्डा था तथापि बर्फ़ के पिघलने से उसमें पर्याप्त शुष्कता आ रही थी। 'हिम' युग के बहुत से प्राणी अवशिष्ट रह गये थे अतएव इस युग को 'बारह सिंघा काल' (Reindeer Period) भी कहते हैं। यह काल लगभग ३५,००० साल पूर्व का है। इस युग में नियन्डरथल प्राणी की सत्ता विलीन होती जा रही थी। अन्ततोगत्वा आज से २५ व ३० हजार साल पूर्व नियन्डरथल प्राणी समाप्त हो गया और आज के मानव से मिलता-जुलता प्राणी उसके स्थान पर प्रकट हुआ। इस काल के लोग सांस्कृतिक दृष्टि से पर्याप्त उच्च थे। उनमें कला और व्यवसाय का भी विस्तार हो चुका था। इसके भी १५ हजार वर्ष बाद 'नवपाषाण युग' का सूत्र पात हुआ। नियन्डरथल प्राणियों का इन प्राणियों से क्या सम्बन्ध था? क्या ये आधुनिक प्राणियों के पूर्वज थे? इत्यादि प्रश्न ऐसे हैं जिनका अभी तक ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया जा सका। मेधावी मानवों के प्रारम्भ की अपेक्षा नियन्डरथल-मानव के प्रारम्भ का बता सकना सुगम और सम्भव है क्योंकि—नियन्डरथल प्राणियों के पूर्वजों—चीनी-मानव होइलबर्ग-मानव आदि का इतिहास तो पूरा-पूरा ज्ञात है परन्तु मेधावी मानवों के पूर्वजों का कुछ पता नहीं। यह नवमानव ( Neoapthropic Man ) तो योरुप में हिमकाल की समाप्ति पर अकस्मात् ही प्रकट हुआ। प्राचीन मानवों ( Paleoanthropic Men ) के राज्य में हमारे पूर्वज कहां थे? कई अंग्रेज नृ-वंशशास्त्री पिल्टडाऊन मानव को इनका पूर्वज बतलाते हैं। परन्तु भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी अवशेषों के आधार पर उन्हें मेधावी मानवों का पूर्वज बतलाना हास्यास्पद प्रतीत होता है। प्रचलित मत यह है कि सम्भवतः योरुप में मेधावी मानवों का समावेश एशिया तथा उत्तरीय अफ़्रीका से प्रव्रजन (Migration) प्रक्रिया द्वारा हुआ है। ये लोग जब योरुप में आये तो अपने साथ परवर्ती संस्कृति (Aurignacian Culture) को ले आये और उन्होंने नियन्डरथल को पराजित करके उनका सर्वनाश कर दिया। इसका भी कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। प्राचीन मानव और नव मानव में शारीरिक और सांस्कृतिक भेद की शृंखला का इतिहास अभी तक भी ज्ञात नहीं हो सका। अगर यह कहा जाये कि मेधावी मानवों ने अपनी उच्च संस्कृति के कारण

नियन्डरथल मानवों को पराजित किया तो भी दोनों मानवों की कुछ न कुछ विद्यमानता एक ही काल में होनी चाहिये अथवा दोनों का जातीय सम्पर्क प्रदर्शित किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में मि० जी० जी० मैक्कर्डी का कथन है कि दोनों के शारीरिक तथा सांस्कृतिक अवशेषों से बीच की श्रृंखला का पता चलता है और ऐसा जान पड़ता है कि दोनों में आन्तरिक सम्पर्क अवश्य हुआ होगा। मि० ई० फिशर ने भी ऐसा मत प्रकट करते हुए लिखा है कि नियन्डरथल रक्त जीवित रहा।

कतिपय नृ-वंश शास्त्रियों का विश्वास है कि प्राचीन पाषाण युग के पूर्ववर्ती काल के कपालावशेषों से यह पता चलता है कि इनमें पारस्परिक सम्मिश्रण अवश्य हुआ। सन् १८६१ में जैकोस्लोवाकिया के मोराविया प्रदेश-स्थित ब्रन नामक स्थान से कुछ समय बाद मोराविया प्रदेश के प्रेडमोस्ट नामक स्थान से बोहेमिया के ब्रक्स नामक स्थान से तथा १६०६ में फ्रांस के कोम्बे कैपल नामक स्थान से जितने अस्थिपञ्जर प्राप्त हुए हैं उनकी समीक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्राणी नियन्डरथल मानव तथा क्रोमैग्नन मानव के बीच की श्रृंखला रूप थे और उनमें पारस्परिक जातीय सम्मिश्रण अवश्य रहा होगा। नृ-वंशशास्त्रियों का कथन है कि काकेशस के पोडकांमोक नामक स्थान पर सन् १६१८ में उपलब्ध हुआ कपाल तथा वोल्गा नदी पर स्थित ख्वालीनक नामक स्थान पर उपलब्ध कपाल दोनों की श्रृंखला को और सुदृढ़ सिद्ध कर रहे हैं। अगर ये दोनों कपाल नियन्डरथल-मानव से किसी भी प्रकार का सम्पर्क रखते हैं तो उनका सुदूर पूर्व में उपलब्ध होना *अत्यन्त* महत्व रखता है। नियन्डरथल-मेधावी मानव प्रसंकरण (Hybridization) सिद्धांत अभी स्वीकार्य नहीं क्योंकि कई मानवशास्त्रियों का विचार है कि ये अवशेष क्रोमैग्नन मानव के पूर्व रूप थे। कार्मेल पर्वत पर उपलब्ध अवशेष दोनों रूपों का सम्मिश्रण प्रतीत होता है।

योरप में मेधावी मानवों के प्रारम्भ के सम्बन्ध में एक नवीन और विभिन्न विचारधारा डा० ए० हर्डलिका की है। उनका विचार है कि नियन्डरथल रक्त प्राचीन पाषाणयुग के अन्त में सुरक्षित रहा। रक्त की यह सुरक्षितता इसलिये न थी कि *नियन्डरथल मानवों* पर मेधावी मानवों ने विजय प्राप्त की थी। यह सुरक्षितता नियन्डरथल प्राणी के मेधावी मानव के रूप में सीधे विकसित हो जाने का परिणाम थी। डा० हर्डलिका यह भी स्वीकार करते हैं कि इस विचार को सिद्ध करने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री नहीं है परन्तु फिर भी इस विचार में पर्याप्त तथ्यता जान पड़ती है। हर्डलिका का कथन है कि हमें अभी मेधावी मानवों का पूर्वस्थान भी मालूम नहीं हो सका और न ही

उनके पूर्वजों के कोई अवशेष ही प्राप्त हुए हैं। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जावा से उपलब्ध सोलो तथा वाजक मानव अवशेष और आस्ट्रेलिया के तलगई अवशेष मेधावी मानवों के प्रतिनूतनकालीन उदाहरण हैं। ये उतने ही पुराने हैं जितना कि योरुप का परवर्ती काल। यही बात अफ्रीका के बोस्कोप तथा रोडेशियन अवशेषों के बारे में कही जा सकती है। यद्यपि यह निश्चित है कि इन अवशेषों में से कोई भी ऐसा नहीं था जिसे हम योरुप के आक्रान्ताओं के वास्तविक पूर्वज कह सकें। जब हम और किसी साक्षी द्वारा निश्चित मत पर नहीं पहुँच पाते तो योरुप पर आक्रमण का होना और मेधावी मानवों द्वारा नियन्डरथल प्राणियों का स्थान ले लेना ही ठीक जान पड़ता है। विजय प्राप्त कर लेने के बाद मेधावी मानवों तथा नीनडरथल मानवों में जातीय सम्मिश्रण अवश्य हुआ होगा।

योरुप में पूर्व-पाषाणयुग के अन्तिम काल से सम्बद्ध कुछ अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इनमें एक अवशेष ग्राइमाल्डी जाति का है, जो परवर्ती काल से सम्बद्ध है और नीग्रायड जाति के आकार-प्रकार का है। दूसरा अवशेष क्रोमैग्नन-मानव से बिल्कुल मिलता-जुलता है और प्राचीन पाषाण युग के अन्तिम समय का है। इन अवशेषों का तीसरा रूप मगडलेनियन काल का है जो 'चान्सलेड जाति' से सम्बद्ध है। इसका आकार-प्रकार मंगोलायड जाति के सदृश आधुनिक एस्किमो से समानता प्रदर्शित करता है। अगर हम पश्चिमी योरुप में वास करनेवाले मेधावी मानवों को नीग्रायड, श्वेत तथा पीत इन तीन भागों में विभक्त करें तो प्रतिनूतन काल के अन्त में इन सबका प्रतिनिधित्व स्वीकार करना पड़ेगा।

ग्राइमाल्डी जाति—

मेडीट्रेनियन सागर के तटवर्ती प्रदेश मोनाको में नौ सुशोभित कन्दरायें थीं जिन्हें 'ग्राइमाल्डी' गुफाओं के नाम से पुकारा जाता था। इनमें से कइयों में प्रतिनूतन काल के कई अवशेष उपलब्ध हुए। एक कन्दरा में, जिसे "ग्रोटे डेसइन्फेन्ट्स" नाम से कहा जाता था दीर्घकाय क्रोमैग्नन मानव का अवशेष प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई अवशेष प्राप्त हुए। सन १६०१ में तो दो विभिन्न प्रकार के सम्पूर्ण अस्थिपञ्जर उपलब्ध हुए जिनका सम्बन्ध योरुप के परवर्ती काल के प्रारम्भ से जोड़ा जाता है। ये अवशेष एक युवा स्त्री के तथा १४ वर्षीय लड़के के हैं वे जो सम्भवतः माध्यम ऊंचाई के हैं। स्त्री की लम्बाई ५ फीट ३ इन्च तथा बच्चे की ऊंचाई ५ फीट से थोड़ा सी

अधिक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक ही स्थान पर गाड़े गये माँ और लड़के के अवशेष हैं। प्रो० आर० वरनियू का कथन है कि ये अस्थिपञ्जर नीग्रायड जाति से मिलते-जुलते हैं। इनके दांत लम्बे, कपाल दीर्घ तथा ठोडी उन्नत है। नासिकास्थि समतल तथा नासिका-छिद्र चौड़े हैं जिससे प्रतीत होता है कि ये नीग्रो जाति के हैं। टाँगें तथा आगे की भुजा की लम्बाई उन्हें नीग्रायड जाति से मिला रही हैं। मि० बॉले तथा अन्य लेखकों ने तो इसे अफ़्रीका के झाड़वासी ( Bushmen ) लोग बतलाया है। स्त्री अवशेष के स्थूल नितम्ब ( Steatopygous ) झाड़वासी स्त्रियों के समान हैं जिससे प्रतीत होता है कि इनकी पारस्परिक जातीय नातेदारी भी रही होगी।

ग्राइमाल्डी मानव

ग्राइमाल्डी जाति तथा नीग्रायड जाति की पारस्परिक सादृश्यता साधारणतया स्वीकार की जा चुकी है परन्तु योरुप में इसकी सम्प्राप्ति में इसके प्रारम्भ के सम्बन्ध में अनेक विवाद उठ खड़े हैं। डा० वरनीयू का मत है कि ये लोग सम्भवतः 'बारहसिंघा युग' के अन्तिम दिनों के क्रोमैग्नन शिकारियों के पूर्वज होंगे। डा० वरनीयू ने इस सम्बन्ध में नवपाषाण युग के योरुपियन अवशेषों के आधार पर सिद्ध किया कि इनके कपाल तथा अस्थियाँ नीग्रायड आकार-प्रकार से मिलती-जुलती हैं। क्रोमैग्नन मानव की भुजा तथा टाँगें नीग्रायड आकार-प्रकार से सादृश्यता रखती हैं। सर जी.

इलियट स्मिथ तथा आर्थर कीथ ने 'ग्राइमाल्डी जाति' के नीग्रायड सदृश होने का खण्डन किया है और यह मत स्थापित किया है कि ग्राइमाल्डी जाति का कोई भी सम्बन्ध नीग्रो वर्ग से न था परन्तु क्रोमैग्नन के प्रारम्भिक लोगों से इन का सम्बन्ध था। मि० जी० एम० मोराण्ट की गवेषणा के आधार पर ग्राइमाल्डी जाति के स्कन्ध को प्राचीन पाषाण युग के प्रारम्भिक काल से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसलिये स्मिथ का कहना है कि बहुत सी नीग्रायड आकृतियाँ आस्ट्रलायड लोगों से मिलती जुलती है। उनका मत है कि ये विवादग्रस्त अवशेष प्राचीन पाषाण युग के प्रारम्भिक लोगों—क्रोमैग्नन मानव तथा कौम्बे कपले और ब्रैडमोस्ट अवशेषों के माध्यमिक रूप से निस्सन्देह सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि आधुनिक आस्ट्रेलियन से इनका कोई सम्बन्ध नहीं तथापि ऐसा अवश्य सम्भव है कि नवमानव रूप के कुछ प्रारम्भिक प्राणी प्रतिनूतन काल में दक्षिणी एशिया में जाकर बस गये हों और वहां से वे लोग दक्षिण की ओर आस्ट्रेलिया में घुस गये हो और योरुप तथा अफ्रीका पर धीरे-धीरे आक्रमण करते रहे हों। अतएव ऐसा जान पड़ता है कि 'ग्राइमाल्डी' जाति विशेष नीग्रायड चिन्ह रखते हुए तथा क्रोमैग्नन समुदाय से पृथक् रहते हुए भी अत्यन्त सन्देहास्पद स्थिति बनाये हुए है।

## रोडेशियन मानव (Rhodesian Man)

### रोडेशियन मानव की सम्प्राप्ति—

सन १९२१ में उत्तरीय रोडेशिया के ब्रोकन हिल (Broken Hill) नामक स्थान पर खानों की खुदाई के समय 'रोडेशियन मानव' की सम्प्राप्ति हुई। यह सम्पूर्ण कपाल का अवशेष पहाड़ के अन्तर्गत एक लम्बी कन्दरा से प्राप्त हुआ, जिसमें नीचे का जबड़ा नही था। कमर के पीछे की हड्डी, बस्ति प्रदेश के कुछ भाग, टांग की कुछ अस्थियाँ भी साथ में उपलब्ध हुई। इनके साथ-साथ कुछ पाषाणनिर्मित उपकरण भी प्राप्त हुए। कपाल को साफ किया गया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि दायें पार्श्व के कुछ हिस्से को छोड़ कर अवशिष्ट सारा कपाल सुरक्षित अवस्था में था। सहसा दृष्टिपात करने पर वह वानरसम प्रतीत हुआ। इसमें नर नियन्डरथल कपाल की साधारण समानता भी विद्यमान थी। बहुत से मानवशास्त्रियों ने तो इसे अफ्रीकावासी नियन्डरथल-मानव का एक रूप घोषित किया परन्तु आलोचनात्मक परीक्षण करने के बाद यह सिद्ध हुआ कि इसमें नियन्डथल-मानव सदृश विशेषतायें विद्यमान

रहा है। वह कभी भी ठीक निर्णय पर नहीं पहुँच सका कि रोडेशियन कपाल को किस वर्ग में परिगणित किया जाये ? तथा कौन से काल का माना जाय ?

अफीका में अभी हाल ही में प्रतिनूतन-कालीन कुछ अन्य अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हे हम नवमानव श्रेणी में परिगणित कर सकते हैं। दक्षिणी अफ़ीका के कुछ अवशेष नीग्रायड आकार से मिलते-जुलते हैं। और प्राचीन झाड़वासी स्कन्ध (Bushman Stock) के पूर्व रूप प्रतीत होते हैं। कुछ अवशेष पूर्वीय अफ्रीका से मिले हैं जिन्हे बहुत से मानवशास्त्री वास्तविक नीग्रो हैं मेटिक तथा योरुप के पूर्ववर्ती क्रोमैग्नन जाति से सम्बद्ध मानते हैं।

## सोलो मानव (Solo Man) .

जावा की सोलो नदी के किनारे नगाण्डोंग (Ngandong) नामक स्थान पर सन् १९३१ में सब से प्रथम ११ कपाल उपलब्ध हुए। इनमें जबड़ो तथा दाँतो का बिल्कुल अभाव था। कपालो का अनुसन्धान्त करने के बाद एक कपाल को ही पूर्ण रूप समझ कर 'सोलो मानव' का रूप निश्चित किया गया। यह अन्तिम प्रतिनूतन कालीन माना जाता है। रोडेशियन-मानव की भांति सोलो-मानव की कर्परदेशना भी १३०० घन शतांशमीटर है जो कि नियन्डरथल मानव से कम है। इनकी भृकुटियो के किनारे रोडेशियन-मानव से मिलते जुलते हैं। बाहर के किनारो पर ये विशेषतया मोटे प्रतीत होते हैं। कपाल का आकार-प्रकार रोडेशियन कपाल की भांति है। अग्रजंघास्थि (Shinbone) सीधी तथा पतली है। मौस्टेरियन-कालके मानवों की अग्रजंघास्थि की भांति छोटी और मोटी नहीं। गर्दन तथा शरीर रोडेशियन-मानव की भांति उन्नत होते थे। सोलो-मानव को जावा-मानव का भी नाम देते हैं परन्तु यह ठीक नहीं।

बहुत से मानव शास्त्री हीडलबर्ग मानव, रोडेशियन मानव, नियन्डरथल-मानव तथा सोलो-मानव चारो को विकास क्रम में नियन्डरथल मानव ही समझते हैं। परन्तु नियंडरथल तथा रोडेशियन मानव का भेद तो बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है। इन्हें एक मानना उपयुक्त नहीं।

## बोस्कोप-मानव (Boskop Man)

सन् १९१३ में ट्रासवाल में बोस्कोप नामक स्थान पर सबसे प्रथम प्रतिनूतन कालीन अवशेष प्राप्त हुए। इसमें एक कपाल तथा कुछ अस्थियां

अपूर्णावस्था में प्राप्त हुई। इस कपाल को सुरक्षित रखा गया है जिस से यह जाना जा सके कि यह कपाल मेधावी मानवों का ही रूप है। दीर्घ कपाल, लम्बरूप माथा, सीधे जबड़े वाली आकृति, विशाल मस्तिष्क, १६३० वर्ग-सेंटीमीटर कर्परदेशना—ये सब सिद्ध करती हैं कि यह मेधावी-मानव का ही रूप था। सन् १९२१ में 'बोस्कोप' से ५०० मील दूर दक्षिणी अफ्रीका के

रोडेशियन मानव का अन्यरूप

समुद्र तटवर्ती जिट्जीकामा (Tzitzikama) नामक स्थान पर एक द्वितीय अपूर्ण कपाल तथा कुछ अन्य अस्थियों की सम्प्राप्ति हुई और अभी हाल ही में केपटाऊन से १५ मील दूर फ़िशहोक नामक स्थान पर तृतीय अवशेष प्राप्त हुआ है। इन तीनों अवशेषों के कपाल की समानता आधुनिक झाड़वासी (Bushman) कपाल से है। ये बोस्कोप-मानव अपने आधुनिक वंशजों की अपेक्षा लम्बे तथा अधिक बुद्धिमान् होते थे। परन्तु बाद में इनका शारीरिक ह्रास हो गया।

जर्मन पूर्वीय अफ्रीका में—जिसे अब टांगानीका का प्रदेश कहा जाता है—सन् १९१३ में ओल्डोवे नामक स्थान पर डा० हंसरेक को एक अवशेष प्राप्त हुआ। इस अस्थिपञ्जर के काल-निर्धारण पर बहुत से मतभेद उत्पन्न हो गये। बहुत से मानव शास्त्रियों ने डा० रेक के मत की पुष्टि करते हुए इसे प्रति नूतन कालीन ठहराया। एक ने तो इसे इससे भी पुराना ठहराया। परन्तु कइयों ने इसे बिल्कुल आधुनिक बतलाया। मोलिसन तथा गीसलर नामक जर्मन मानव शास्त्रियों ने तो एक पूर्वीय अफ्रीकन वर्ग मसाई से इसका जातीय सम्बन्ध भी सिद्ध कर दिया।

सन १९२६ में केनिया में कुछ अवशेष प्राप्त हुए। ट्रांसवाल में स्प्रिंगबाक नामक स्थान पर एक अन्य कपाल की सम्प्राप्ति हुई। कीथ के मत में ये अवशेष उत्तर पूर्वीय अफ्रीका वासियों से सम्बद्ध "नीग्रायड स्कन्ध" का प्रतिनिधित्व करते थे। परन्तु बोनर्ट महोदय का मत है कि स्प्रिंगबाक ( Springbok ) ओल्डोवे, बोस्कोप आदि स्थानों के सभी अवशेष अफ्रीकन क्रोमैग्नन मानव ही थे। और ये योरुप से प्रव्रजन-प्रक्रिया द्वारा यहां आ बसे थे। ये लोग मिश्र के रास्ते से पूर्वीय अफ्रीका आये और वहां से दक्षिणी अफ्रीका में चले गये।

यद्यपि "नीग्रायड स्कन्ध" के पूर्वजों के सम्बन्ध में अभी ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका परन्तु यह तो स्पष्ट है कि प्रति नूतन काल की समाप्ति से पूर्व ही कई "नीग्रायड रूप" विद्यमान थे और मेधावी मानवों की नीग्रायड शाखा का विकास अफ्रीका में स्वतः रूप से होता रहा।

## क्रो-मैग्नन मानव – (Cro-Magnon Man)

### क्रो-मैग्नन मानव की संप्राप्तिः—

योरुप में पूर्व पाषाण युग का प्रसिद्ध मानव, आधुनिक युग का प्रभुत्वशाली व्यक्ति क्रोमैग्नन प्राणी है। सन् १८६८ में फ्रांस के डोरडोन स्थित लेसइज़ीज (Les Eyzies) नामक इलाके की क्रो-मैग्नन चट्टानों में से पांच अस्थिपञ्जर उपलब्ध हुए। जिन्हें मि० क्वाट्रीफेग्स तथा मि० हैमी ने 'क्रो-मैग्नन' मानव का अस्थिपञ्जर नाम दिया। इसी प्रकार के अन्य अस्थिपञ्जर मोनाको तथा मैन्टोन नामक स्थानों पर तथा पश्चिमीय योरुप में भी उपलब्ध हुए। डा० वेरनीयू के कथनानुसार ये किसी सुप्रसिद्ध जाति के मानव थे। ये प्राणी ६ फ़ीट लम्बे और शक्तिशाली एवं सुदृढ़ देहधारी थे। कई-कई तो ६ फ़ीट से भी

अधिक लम्ब होते थे। कपाल उन्नत एवं दीर्घ होता था। परन्तु मुखाकृति छोटी और विस्तृत होती थी जिससे उनका अनुपात असाधारण सा जान पड़ता था। माथा लम्बरूप, कपोल चौड़े, ठोडी विशेषाकारवाली, तथा नाक संकीर्ण होते थे। अग्रभुजा तथा अग्रजंघा भुजा और उरु की अपेक्षा बड़ी होती थी जैसे कि दीर्घकाय नीग्रायड जाति में होती है। परन्तु यह रचना अन्य दीर्घकाय जातियों में भी पायी जाती थी। और जघास्थि का आगे से पीछे की ओर समतल होना, टांग की बड़ी हड्डी का बाह्य किनारे पर चौड़ा होना कुछ विशेषता रखता था। ये दीर्घकाय क्रोमैग्नन मानव एक सुदृढ़ और सगठित शरीर धारण करते थे। पूर्व पाषाण युग के प्रारम्भ की सभ्यता

क्रोमैग्नन-मानव

इनमें कूटकूट कर भरी हुई थी। कन्दरा-चित्रण, अस्थिनिर्मित उपकरणों का प्रयोग, पशुओं के मूर्ति-निर्माण आदि कार्यों में सिद्धहस्त थे। स्त्रियों का आकार-प्रकार पुरुषों से छोटा होता था। डा० वेरनीयू ने जिस प्रकार इनकी शारीरिक रचना का चित्रण किया है उससे भिन्न आकार-प्रकार वाले अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हें इसी जाति का माना जाता है। अतएव सिद्ध होता है कि इस जाति का पर्याप्त विस्तार हो चुका था। चैकोस्लोवेकिया की ब्रन जाति के लोग इसी क्रोमैग्नन जाति के पूर्वज थे। सन् १८८८ में फ्रांस में शैंसेलेड नामक स्थान पर एक पुरुष

और एक स्त्री के उपलब्ध अस्थिपंजर, १६१४ में जर्मनी स्थित बोन प्रदेश के श्रोबेर कैसल नामक स्थान पर उपलब्ध स्त्री पुरुष के अस्थिपंजर तथा कुछ अन्य अवशेष इसी जाति से सम्बन्धित हैं। यद्यपि ये सब अवशेष आकार-प्रकार में ५ फीट से लम्बे नहीं परन्तु इनका कपाल अपेक्षाकृत बड़ा है। फ्रांस में उपलब्ध अवशेष एस्किमो से कई सादृश्यतायें रखता है। इसका कपाल तो ग्रीनलैण्ड वासी एस्किमो से बिलकुल मिलता-जुलता है। कई मानवशास्त्रियों ने तो यहां तक भी स्वीकार किया है कि एस्किमो इस जाति के आधुनिक अवशिष्ट प्राणी हैं। एस्किमो मंगोलायड जाति की एक शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। यदि यह सिद्धांत सत्य है तो भी हमें यह कहना पड़ेगा कि उन दिनों में पूर्व पाषाण युग में पश्चिमीय योरुप में मिश्रित जातियां रहा करती थीं। श्रोबरकैसल के अस्थिपंजर भी इसी प्रकार की समानतायें रखते हैं। सर आर्थर कीथ इस विचार से असहमत हैं। उनका कथन है कि इन्हें मंगोलायड जाति से सम्बन्धित न कर के श्वेत जाति का सदस्य निर्धारित किया जा सकता है। मि० बॉले ने क्रोमैग्नन मानव के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि क्रोमैग्नन को माध्यम रूप समझा जा सकता है जिसमें भौगोलिक दृष्टि से कई भिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो गया है। परन्तु समूचे रूप में वह एक ही जाति है जिसने विस्तृत भूभाग पर बहुत समय तक महत्वपूर्ण पद पाया है।

इस तथ्य को सिद्ध करने के लिये हमारे पास पर्याप्त सामग्री है कि क्रोमैग्नन जाति बिल्कुल विनष्ट नहीं हुई। धीरे-धीरे अन्य जातियों के सम्पर्क में आने के कारण इसकी सत्ता बनी रही और यही कारण है कि इन के वंशज आज भी फ्रांस, इबेरियन प्रदेश तथा पश्चिमी योरुप के कई भागों में उपलब्ध होते हैं। बहुत से मानव शास्त्रियों का विचार है कि केनरी द्वी. के गुञ्चो लोग, १५ वीं शताब्दि में जिनका सर्वनाश किया गया था, क्रोमैग्नन जाति के अवशिष्ट प्राणी थे। इसी प्रकार अल्जीरियाके केबिलस लोग भी इन्हीं के वंशज थे। परन्तु प्रो० हूटन ने इस मत का खण्डन किया है। उनका कथन है कि केनरी द्वीप के गुञ्चो को क्रोमैग्नन का वंशज बतलाना सन्देहास्पद है।

इसके बाद सन् १६३० में मि० ई फिशर तथा डा० डी० जे० वोलफिल ने केनरी द्वीप की जातियों का गहरा अध्ययन करने के बाद यह परिणाम निकाला कि क्रोमैग्नन जाति का अवशिष्ट रूप केनरी द्वीप में अब भी विद्यमान है। उनका मत था कि जब क्रोमैग्नन लोगों ने केनरी द्वीप की ओर प्रव्रजन किया, तो यह श्वेत जाति थी। यदि यह मत ठीक है तो क्रोमैग्नन जाति का तथा उनके वर्तमान वंशजों का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है।

अभी-अभी हाल ही में मि० जी० एम० मोराण्ट ने २७ पूर्व-पाषाणयुगीय योरुपियन कपालों का तुलनात्मक अध्ययन किया और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि पूर्व-पाषाणयुग के प्रारम्भिक प्राणी और आधुनिक योरुपियन मापन में सजातीय (Homogeneous) हैं। ये पश्चिमीय योरुप की आधुनिक दीर्घकपालीय जातियों से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि आधुनिक प्राणी इन पुरातन प्राणियों के वंशज हैं। पूर्व-पाषाणयुगीय योरुपियन ही पश्चिमीय योरुप के आधुनिक वासियों के पूर्वज थे। परन्तु इनके पूर्वज कौन थे? अभी इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया। यदि हम इस पर भी विचार करना चाहते हैं तो हमें एशिया और अफ्रीका के उन प्रतिनूतनकालीन अवशेषों का अनुसन्धान करना पड़ेगा जो योरुप के परवर्ती काल (Aurignacian Period) से भी पुराने हैं। इनमें से कुछ अनुसन्धानों का वर्णन हम संक्षेप में यहाँ करते हैं:—

### वाजक-कपाल (Wadjak Skull)

सबसे प्रथम एशिया को ही लीजिये। जावा के वानर-मानव तथा चीनी-मानव दोनों एशियाई मानव हैं। प्रतिनूतन कालीन दो अन्य अवशेष-'वाजक मानव' तथा 'सोलो-मानव' भी एशियाई मानव हैं। डा० डुवायस ने सन् १९२१ में "वाजक-मानव" के आकार-प्रकार को 'आस्ट्रेलायड-जाति' से सम्बद्ध बतलाया। पिकले के मतानुसार ये 'वाजक-मानव' आधुनिक आस्ट्रेलियन का पूर्वज था।

अप्रैल सन् १९३२ में जावा में प्रतिनूतन कालीन एक अन्य अवशेष की खोज हुई। सोलो नदी के समीप नगण्डोग ग्राम के पार्श्ववर्ती भाग से एक सम्पूर्ण मानवीय मस्तिष्क आवरण की तथा कपाल के दो भागों की सम्प्राप्ति हुई। इसके अतिरिक्त एक बच्चे की ललाटास्थि भी उपलब्ध हुई। यह स्थान ट्रिनिल से ६ मील की दूरी पर स्थित था, जहाँ आज से ४० वर्ष पूर्व जावा के वानर-मानव का पता लगाया जा चुका था। सन् १९३९ में 'सोलो-मानव' रूप के ११ कपाल उपलब्ध हुए। ये कपाल वानर-मानव कपालों से आकार में बड़े थे। इनकी ग्रीवा-सम्बन्धी मांसपेशियाँ भारी थीं। मि० ओपनूर्थ का मत था कि ये कपाल नियण्डरथल मानव से कोई सादृश्यता नहीं रखते परन्तु रोडेशियन कपाल से इनकी कुछ-कुछ समानता अवश्य है। सोलो-मानव की खोपड़ी का पिछला भाग आस्ट्रेलियन जाति के प्राणियों का-सा है। वाडजक मानव की कर्परदेगना १६५० वर्ग शतांशमीटर है।

इस अनुसन्धान के आधार पर ऐसा जान पड़ता है कि जावा के वानर-मानव तथा वाजक-मानव के बीच एक ऐसी कड़ी है जो खोयी हुई-सी जान पड़ती है। वीडनरीख, कोयनिग्स्वाल्ड तथा अन्य कई मानव शास्त्रियों का विचार है कि सोलो-मानव नियन्डरथल प्राणियों का 'जावा-रूप' था। परन्तु अन्य बहुत से मानव-शास्त्री मि० ओपनूर्थ के मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि दोनों रूप बिलकुल भिन्न हैं। यद्यपि दोनों में कतिपय समानतायें हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उनमें मुख्य भेद नज़र आता है। ओपनूर्थ की सम्मति में मेधावी मानवों के ज्ञात प्रतिनिधियों में सब से पुरातन सोलो-मानव है। डा० डुबायस का मत है कि 'सोलो मानव' तथा 'चीनी-मानव' रूप समान हैं।

## स्वैन्सकोम्बे-कपाल ( Swanscombe Skull )

टेम्स नदी के दक्षिण में डार्टफोर्ड तथा ग्रेवसैण्ड के बीच जहां गैलेहिल स्थित है—स्वैन्सकोम्बे नगर बसा हुआ है। यहां पर केवलमात्र कपाल की दो अस्थियों की उपलब्धि हुई। यह कपाल २० वर्ष से भी कुछ कम आयुवाली स्त्री का था जिसकी कर्परदेशना १३२५ अथवा १३५० घन शतांश मीटर थी। अस्थियां आधुनिक स्त्री की अस्थियों से अधिक स्थूल थीं। इस कपाल में आकृति व जबड़े का कुछ भाग भी उपलब्ध नहीं हुआ। केवलमात्र सिर के पिछले भाग की सम्प्राप्ति के आधार पर ही हमें इस मेधावी मानव का पता लगाना था। ये दोनों प्राप्त अस्थियां नियन्डरथल, रोडेशियन, जावा तथा चीनी मानवों के रूपों से बिलकुल भिन्न हैं जिनसे स्पष्ट है कि स्वैन्सकोम्बे इनमें से किसी जाति से सम्पर्क न रखता था।

इसकी बाह्य आकृति स्टेनहेम-कपाल से मिलती-जुलती थी अथवा कुछ कुछ उपः-मानव से सादृश्यता रखती थी। मि० कीथ ने अनुसन्धान के बाद यह सिद्ध किया है कि स्वैन्सकोम्बे मानव उपः-मानव का वंशज होगा और मेधावी मानवों के अधिक समीप प्रतीत होता होगा। उसका यह भी विश्वास था कि उपः मानव प्रथम अन्तः हिमयुग में था और उपः मानव तथा स्वैन्सकोम्बे एक ही परिवार के हैं जो जावा-मानव तथा चीनी-मानव से बिलकुल पृथक् हैं।

मेधावी मानवों का प्रारम्भ जावा स्तम्भ ( Stock ) से सम्बद्ध है। ये मेधावी मानव प्रति नूतन काल की समाप्ति से पूर्व ही आस्ट्रेलिया में आ घुसे थे जैसा कि निम्नांकित दो अन्वेषणों से जान पड़ता है :—

१. १८८४ में क्वीन्सलैण्ड स्थित डार्लिंगडाऊन्स के समीप तलगाई नामक

स्थान से 'म्रादि-म्रास्ट्रलायड' कपाल उपलब्ध हुआ। यह एक १५ वर्षीय बच्चे का कपाल था। डा० एस० ए० स्मिथ ने इस निखातक अवशेष की गवेषणा करते हुए लिखा कि यह प्रतिनूतन कालीन अवशेष है और आधुनिक आस्ट्रेलियन जाति के पूर्वज संसार के उस भाग में प्रवजन कर गये थे जहां से यह कपाल उपलब्ध हुआ है।

२. आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया नामक प्रदेश में मरें नदी के दक्षिण में सन् १९२५ में युवा पुरुष का कपाल उपलब्ध हुआ। यह 'आदि-आस्ट्रलायड' रूप से बिलकुल-मिलता जुलता था। इसके कुछ समय बाद कई अस्थिपञ्जरों के अवशेष उपलब्ध हुए। कुछ अस्थि-अवशेष पुरातन मृत्तिका अवसादों ( Deposits ) में प्राप्त हुए। इन मानवीय अवशेषों के साथ किसी भी पशु के अवशेष प्राप्त नहीं हुए। सर आर्थर कीथका मत है कि कोहुना से प्राप्त कपाल भी आस्ट्रलायड जाति से मिलता-जुलता था। परन्तु यह "तलगाई कपाल" तो बिलकुल ही आधुनिक आस्ट्रेलियन के सदृश है।

# निखातक-मानव

जावा-मानव

सम्प्राप्ति काल सन् १८६१, सम्प्राप्ति-स्थान ट्रिनिल ( जावा ), अन्वेषण-कर्ता—डा० डुबायस। शारीरिक विशेषतायें—कपाल वानर-सम, सकीर्ण, भृकुटि तिरछी, भेदक दन्त लघु, कर्परदेशना ९०० तथा ९८५ वर्ग शतांश मीटर, शिरोदेशना ७३.४, काल—आदि प्रति नूतन

चीनी-मानव

सम्प्राप्ति काल सन् १९२६, सम्प्राप्ति स्थान—चौकौटीन, अन्वेषणकर्ता—मि० डैविड्सन ब्लैक, कर्परदेशना ९१५ से १२२५ वर्ग शतांश मीटर, शिरोदेशना ७९ शारीरिक विशेषतायें—कपाल वानर सम, आकृति लघु, नासिकास्थि चौडी, कपालास्थि मानव-सम तथा जंघास्थि का माप १५६ शतांश मीटर। काल - आदि प्रतिनूतन।

पिल्टडाउन-मानव

सम्प्राप्ति काल सन् १९११, सम्प्राप्ति स्थान—ससैक्स, अन्वेषणकर्ता—डॉसन, शारीरिक विशेषतायें—निम्न हनु वानर सम, उपरिभेदक दन्त वानर सम, कपाल मानव सम, कर्परदेशना १४०० से १५०० वर्ग शतांश मीटर, शिरोदेशना ७८, काल—प्रतिनूतन।

हीडलवर्ग-मानव

सम्प्राप्ति काल सन् १९०७, सम्प्राप्ति स्थान—मावेर, अन्वेषणकर्ता—श्वेटनसैक, शारीरिक विशेषतायें—जबड़ा मानव सम, दांत लघु, कर्परदेशना ११५० ।

नियन्डरथल-मानव

सम्प्राप्ति काल १८५६, सम्प्राप्ति स्थान—डसलडोर्फ, नियन्डर (जर्मनी) अन्वेषण कर्ता—विलियम किंग, शारीरिक विशेषतायें—वक्षःस्थल विशाल, गर्दन वृषभ तुल्य, भृकुटि स्थूल, कर्परदेशना १४०० वर्ग शतांश मीटर, लम्बाई ५ फीट ३ इन्च, काल - मध्यप्रतिनूतन।

लाविना—चेरेण्टे (फ्रांस), कर्परदेशना १३०० वर्ग शतांश मीटर, सन् १९११, स्त्री कपाल।

## ———एक दृष्टि में

लाफरेसी - डोरडोन ( फ्रांस ), सम्प्राप्ति काल सन् १९०६, कर्परदेशना १६०० वर्ग शतांश मीटर, लम्बाई ५ फ़ीट ५ इञ्च, काल तृतीय मन्त: हिमयुग व मन्तिम प्रतिनूतन।

ला चपेल ग्रावस सेन्ट्स—कारीजा (फ़ांस), कर्परदेशना १६१० वर्ग शतांश मीटर, सम्प्राप्ति काल सन् १९०८, लम्बाई ५ फीट ३ इंच।

ला मोस्टेयर—डोरडोन ( फ्रांस ) सम्प्राप्ति काल सन् १९३१, कर्परदेशना १५६० वर्ग शतांश मीटर, लम्बाई ५ फीट ४ इंच।

---

इटली—सक्कोपेस्टोर ( रोम ) मोन्टेसर्मियो (रोम) उपलब्धि नरकपाल, सम्प्राप्ति काल सन् १९३५

जिब्राल्टर—( स्पेन ) सम्प्राप्ति काल सन् १८४८, कर्परदेशना १४५० वर्ग शतांश मीटर, लम्बाई ५ फ़ीट ६ इञ्च, उपलब्धि स्त्री-कपाल।

वेल्जियम—( स्पाई कन्दरा, नेमूर ) सम्प्राप्ति काल सन् १८८७, कर्परदेशना १५०० वर्ग शतांश मीटर, लम्बाई ५ फीट ४ इञ्च।

---

ब्रिटिश द्वीप—( जर्सी ) सम्प्राप्ति काल सन् १९१०, दन्त सम्प्राप्ति।

फिलिस्तीन—(तबुन) सम्प्राप्ति काल सन् १९३१, कर्परदेशना १४०० वर्ग शतांश मीटर। सखुल सम्प्राप्ति काल सन् १९३२, कर्परदेशना १४५० वर्ग शतांश मीटर।

गैलिली – सम्प्राप्ति काल सन् १९२५, अन्वेषण कर्ता टी. पीटर।

जर्मनी—स्टेनहेम कपाल, इहरिंग्सडोर्फ़, कर्परदेशना १०७० तथा १४५० वर्ग शतांश मीटर, स्टेन हेम काल द्वितीय अन्त: हिमयुग

---

उजबेकिस्तान—( रूस, केन्द्रीय एशिया ) कर्परदेशना १४९० वर्ग शतांश मीटर।

कपिना—(युगोस्लाविया)

---

अफ्रीकन-मानव

सम्प्राप्ति काल सन् १९२५, सम्प्राप्ति स्थान-नजारा (उत्तरीय टांगानीका) फयूम, ट्रान्सवाल, अन्वेषणकर्ता—कोह्ललारसेन, शारीरिक विशेषताएँ—दांत लघु, ललाटास्थि स्थूल, भृकुटि का उन्नत भाग स्थूल, कर्परदेशना १८०० वर्ग शतांश मीटर, फयूम अवशेष की सम्प्राप्ति सन् १९२४।

ट्रांसवाल कपाल—सम्प्राप्ति सन् १९३६, अन्वेषणकर्ता मि० ब्रून, कर्परदेशना ६०० से ६५० व० श० मीटर, काल—प्रतिनूतन।

# निआतक मानव—एक दृष्टि में

**क्रोमैग्नन-मानव**

सम्प्राप्ति काल—१८६८, स्थान,—क्रोमैग्नन ( दक्षिणी फ्रांस ) अन्वेषण-कर्त्ता ववाट्रोफेग्स तथा मि० हेमी, शारीरिक विशेषता—कपाल उन्नत एवं दीर्घ, मुखाकृति लघु, माथा लम्बरूप, कपोल चौड़े, ल० ६ फ़ीट । ब्रन ( चैकोस्लोवेकिया ), कोम्बकेपल ( फ्रांस ) पेरीग्युएवम ( फ्रांस ) सन् १८८८, कर्पर देशना १४६० वर्ग शतांशमीटर बोन । ( जर्मनी ) सन् १६१४ । मोनाका, मेण्टोन । काल—पूर्वपाषाणयुग, चतुर्थ हिमयुग

---

**मोड्जोकर्टो मानव**

सम्प्राप्ति काल सन् १६३६, सम्प्राप्ति स्थान—सुरबेय्या (जावा), अन्वेषण-कर्ता—कोयनिग्स्वाल्ड, कर्पर देशना ६५० वर्ग शतांश मीटर, काल—आदि प्रतिनूतन, प्रथम अन्तः हिमयुग

---

**वा ंक-मानव**

सम्प्राप्ति काल सन् १६३६, सम्प्राप्ति स्थान—जावा, अन्वेषणकर्त्ता—डा० डुवायस, शारीरिक विशेषतायें—ग्रीवा सम्बन्धी मासपेशियां—स्थूल, कर्परदेशना १६५० वर्ग शतांश मीटर । काल तृतीय अन्त. हिमयुग

---

**सोलो-मानव**

सम्प्राप्ति काल सन् १६३६, ग्रीवा सम्बन्धी मांसपेशियां भारी, सम्प्राप्ति स्थान—जावा, काल—अन्तिम प्रतिनूतन, तृतीय अन्तः हिमयुग

---

**रोडेशियन-मानव**

सम्प्राप्ति काल—सन् १६२१, सम्प्राप्ति स्थान—ब्रोकनहिल, ( रोडेशिया ) शारीरिक विशेषतायें—भृकुटि प्रदेश विशाल, दीर्घाकृति, दन्त तथा तालु विशाल, मानव सम, दांत क्षीण, कर्परदेशना १२८० से १३२५ वर्ग शतांश मीटर काल—आदि प्रतिनूतन ।

---

**वोस्कोप-मानव**

सम्प्राप्ति काल सन् १६२१ सम्प्राप्ति स्थान-बोस्कोप, शारीरिक विशेषतायें-दीर्घ कपाल, माथा लम्बरूप, मस्तिष्क विशाल, जबड़ा सीधा, कर्परदेशना १६३० वर्ग शतांश मीटर, काल - प्रति नूतन

---

स्वेन्सकोम्बे ( गैलीहिल ) सम्प्राप्ति काल १६३५, कपालाकृति—उप:-मानव सम, कर्परदेशना १३०० से १३४० वर्ग शतांश मीटर, काल—मध्य प्रतिनूतन, द्वितीय अन्तः हिमयुग

# जाति-प्रजाति

जाति की परिभाषा —

हक्सले के मत में जहां तक मानवीय समुदाय का सम्बन्ध है जातीय विचार प्राणि-शास्त्रीय भावना से रहित है। यह क्यों ? केवलमात्र इसलिये-क्योंकि साहित्य तथा समाज-शास्त्र में 'जाति' शब्द का प्रयोग जिस रूप में होता है उसका कोई निश्चित अर्थ नहीं। जब व्यक्तियों का एक समुदाय कई सन्तुतियों से वंश परम्परागत-प्रणाली के अनुसार एक ही देश में रहता हो उसे हम जाति कहते हैं। जैसे अंग्रेज, फ्रांसीसी तथा चीनी। हम 'मानव जाति' की कभी-कभी चर्चा करते हैं। मानव-जाति उन व्यक्तियों का समुदाय है जो एक ही उद्गम में विश्वास रखते हों और जिनका पूर्वज एक हो। सांस्कृतिक दृष्टि से समानजाति का जन-समुदाय भी एक 'जाति' कहलाता है। हम कभी-कभी योद्धा तथा अयोद्धा जातियों का भी उल्लेख करते हैं। अतएव 'जाति' शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता देखा गया है। परन्तु मानव-विज्ञान शास्त्रियों का विचार है कि यदि एक जाति के व्यक्ति शारीरिक चिन्हों द्वारा पहचाने जा सकते हैं तो वे एक विशिष्ट जाति निर्मित करते हैं।

जैकानोवस्की (Czekanowaski) का मत है कि प्रत्येक जाति के मानसिक गुण पृथक्-पृथक् होते हैं। नार्डिक जाति अनुशासन पूर्ण तथा कर्तव्य परायण होगी। मंगोलायड जाति बुद्धिमान होगी परन्तु अनुशासन विहीन होगी। एश्ले मान्टेग्यू (Ashley Montagu) के मत में नृवंशीय वर्ग (Ethnic Group) का नाम ही जाति है।

क्वाट्रेफ्रेग्स (Quatrefages) का कथन है कि एक समान सभी व्यक्तियों की पूर्ण इकाई को जाति कहते हैं। सैलर (Saller) का मत है कि जाति वह है जिसके द्वारा विभिन्न-विभिन्न वर्ग मानुवंशिक गुणों के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। कइयों के विचार में जाति एक प्राणिशास्त्रीय वर्ग (Group) अथवा स्कन्ध (Stock) है जिसमें ऐसे प्रजननात्मक गुण विद्यमान हैं जिनसे यह दूसरे वर्ग से पृथक् जान पड़े। हर्डलिका (Hrdlicka) के मत में जाति विस्तृत रूप से रक्त सम्बन्ध रखने वाले प्राणियों का वर्ग है जो अपने शारीरिक चिन्हों की विशेषता द्वारा दूसरे से भिन्न दृष्टिगोचर

होता है। हूटन (Hooten) का मत है कि जिनका प्रारम्भ एक हो, वह जाति है। ब्वास (Boas) के मत में एक स्थिर रूप (Stable Type) का नाम जाति है। आनुवंशिकता-विहीन जाति नहीं हो सकती। ब्वास का कथन है कि जाति ऐसे व्यक्तियों का एक वर्ग है जिनमें शारीरिक व मानसिक गुण समान होते हैं। फिशर का मत है कि जाति ऐसे पुरुषों का एक वर्ग है जिनकी आनुवंशिकता एक समान हो और जिनके शारीरिक तथा मानसिक गुण दूसरे वर्ग से भिन्न हों। कई मानव-शास्त्रियों का विश्वास है कि मानवीय प्रसंकरण (Human Hybridization) जातीय भेद का विशेष तत्व है। ब्रोका (Broca) ने सबसे पूर्व यूरोपियन जन संख्या के भिन्न जातीय गुणों (Heterogeneous) का उल्लेख किया था। क्वाट्रेफ़ाज़ (Quatrefages) का मत था कि प्रसंकरणोत्पादन (Cross-breeding) द्वारा नवीन जातियाँ विकसित होती हैं।

प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार जाति (Spacies) शब्द का प्रयोग उस पशु-वर्ग के लिए किया जाता है जिनकी शारीरिक रचना एक समान होती है। इन जातियों के प्रजनन तत्व (Genetic) भी इस प्रकार परस्पर सुसंगठित होते हैं जिस से वे प्राणिशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार स्वस्थ संतान उत्पन्न करने में समर्थवान् होते हैं। यदि इस प्राणिशास्त्रीय सिद्धांत को ठीक माना जाये तो समस्त भूमण्डल पर वास करने वाले मनुष्य एक ही जाति से सम्बद्ध होंगे और वह है एक मनुष्य जाति। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें पारस्परिक वाह्य आकृतिभेद हैं। भारतीय, अफ्रीकन, श्वेतांग, फ़्रांसीसी तथा मंगोल सभी आकृतिभेद से पृथक् पृथक् अवश्य हैं परन्तु जातिभेद से वे सब एक ही हैं और वे एक दूसरे से अन्तः-प्रजनन कर सकते हैं। फिर भी मानव जाति में अनेक प्रजनन-परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। अतः हम मानव-जाति को वाहकाणु (Genes) अथवा आनुवंशिक गुणों के आधार पर कई जातीय वर्गों में बांट देते हैं।

जाति की व्याख्या करने के लिए मनुष्यों के आनुवंशिक गुणों अथवा आनुवंशिक लक्षणों का वर्गीकरण करना पड़ेगा। अतः जाति (Race) मनुष्य जाति का एक उप-विभाग है जिसमें जन्म से ही भौतिक लक्षण एक समान होते हैं। एक सामान्य व्यक्ति इस व्याख्या को पढ़ कर इस परिणाम पर पहुंचेगा कि आकार प्रकार, माप, तोल, परिमाण, शिरोरूप, त्वचा वर्ण आदि से जाति की पहचान की जा सकती है क्योंकि सभी व्यक्ति शारीरिक चिन्हों व लक्षणों के आधार पर समानता रखते हैं। परन्तु एक विज्ञानवेत्ता इस बात को स्वीकार न करेगा क्योंकि उसका मत है कि शारीरिक चिन्हों की सादृश्यता, समानता एवं

अनुकूलता तो मनुष्य वर्ग में कृत्रिम चुनाव के कारण ही पाई जाती है। प्रशिया का राजा महान् फ्रेडिक लम्बे कद के व्यक्तियों को बहुत चाहता था। राजा होते हुए उसने आज्ञा दी थी कि मेरे अंग रक्षक ६ फुट लम्बे होने चाहियें। उन में भी अन्तर अवश्य था परन्तु क्रियात्मक दृष्टि से वे सब एक समान थे। इसे हम प्राकृतिक वर्ग नहीं कह सकते। यह एक कृत्रिम वर्ग था क्योंकि राजा की स्वेच्छा से चुना गया था। प्राकृतिक वर्ग सदा इससे भिन्न होते हैं। जब हम यह कहते हैं कि स्काटलैण्डवासी लम्बे कद के होते हैं, स्विटज़रलैण्ड तथा इटली के लोग छोटे होते हैं तो इस का तात्पर्य यह नहीं कि प्रत्येक स्काटलेंड वासी ६ फुट लम्बा होता है अथवा वह प्रत्येक स्विटज़रलैण्डवासी से बड़ा ही हो ऐसी बात नहीं। कई स्विटज़रलैण्डवासी भी बड़े होते हैं परन्तु यह बात आनुपातिक दृष्टिकोण से कही जाती है। स्काटलैण्डवासी हेरी लॉडर बहुत से स्विटज़रलैण्डवासियों से कद में छोटा था। बहुत से स्काटलैण्डवासियों का कद कई स्विटज़रलैण्डवासियों के बराबर भी होगा। यह बात सभी भौतिक चिन्हों पर लागू हो सकती है। उदाहरणार्थ नाक को लीजिए। जब हम छात्रों की एक ही श्रेणी में एक की बन्दर जैसी नाक, एक की सीधी, एक की बढ़ी हुई और एक की चपटी नाक देखते हैं, तो हम सहज ही अनुमान कर लेते हैं कि वे सब भिन्न २ नस्ल एवं जाति से सम्बन्ध रखने वाले प्राणी हैं। क्योंकि ग्रीक की नाक सीधी,. यहूदी की नाक उभरी हुई होती है। इस प्रकार विभिन्न-विभिन्न नासिकाओं द्वारा हम मनुष्यों की श्रेणियों का पता लगायेंगे। यद्यपि यह परिणाम कोई विशेष महत्वपूर्ण न होगा परन्तु इतना अवश्य पता चल जायगा कि व्यक्तियों का एक समूह अमुक प्रकार की नाक रखता है और दूसरा वर्ग उससे भिन्न। वर्गों की यह भिन्नता सहज में ही प्रकट हो जायगी और हम धीरे-धीरे सम्पूर्ण समाज के वर्गों का पता लगा सकेंगे।

जाति तथा राष्ट्र—

कई मानवशास्त्रियों की दृष्टि में जाति (Race) तथा 'राष्ट्र' (Nation) एक ही चीज़ है परन्तु कई इन्हें पृथक् पृथक् रूप में मानते हैं। सर आर्थर कीथ (Sir Arthur Keith) 'जाति' 'तथा' 'राष्ट्र' में कोई भेद नहीं मानते। राष्ट्रों के विकास के लिए भक्ति, सामूहिक भावना आदि जो तत्व उत्तरदायी हैं वही तत्व जातीय निर्माण के लिए भी अनिवार्य हैं। सर आर्थर कीथ ने अपनी युक्ति का पोषण करते हुए फिन जाति तथा स्वीडिश जाति का

उदाहरण पेश किया है। उनका कहना है कि दोनों का स्कन्ध ( Stock ) एक है। शारीरिक रूप भी एक समान है। फिनलैण्ड में प्रति दस व्यक्तियों के पीछे एक व्यक्ति स्वीडिश भाषा भी बोल सकता है। फिनिश भाषा प्रतिवर्ष योरुपियन परिवार से पृथक् होती जारही है क्योंकि इस का उद्गम एशिया से सम्बद्ध है। आज फिन एक राष्ट्र के रूप में होते हुए जाति का भी विकास करते जारहे हैं। अपनी स्वतन्त्रता तथा अपने पद को संवर्धित करने के लिए वे प्रत्येक आर्थिक विचार का बलिदान कर सकेंगे। अभी हाल ही का फिनो-रूसी संघर्ष इस जातीय आन्दोलन का परिणाम है।

एच जी. वेल्स तथा डा० पिड्डिंग्टन ने सर आर्थर कीथ के उक्त विचार का खण्डन करते हुए 'राष्ट्र' और 'जाति' को भिन्न २ दो श्रेणियो में परिगणित किया है। एच. जी. वेल्स का विचार है कि राष्ट्रीयता उन गुणों का एक प्रदर्शन मात्र है जो मानवीय मस्तिष्क की क्रिया जन्य रचना में अन्तर्निहित है। डा० पिड्डिंग्टन का मत है कि राष्ट्रीयता अन्धविश्वास तथा काल-गणना का भ्रम है जिस से मनुष्य छुटकारा पाना चाहता है।

यद्यपि विचारों में इतना विरोधाभास है तो भी जाति तथा राष्ट्र संसार की व्यवस्था तथा सभ्यता के विकास पर अपना प्रभाव अवश्य डालते रहेंगे। राष्ट्र तो एक प्रादेशिक विचार है और इसका निर्माण कृत्रिम है। राष्ट्र में कई विभिन्न विभिन्न जातीय—तत्व समाविष्ट होते हैं। एक वर्णसंकर स्कन्ध जैसे अग्रेज—दो जातीय रूप—जैसे जर्मनी में नार्डिक तथा अल्पाईन, राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यदि एक जनसमुदाय अपने सामान्य शारीरिक चिन्हों द्वारा दूसरों से भिन्नता रखता है तो भी वह एक जाति रूप है, चाहे इस प्राणिशास्त्रीय वर्ग के सदस्य पृथक् पृथक् प्रदेशों में बिखरे ही क्यों न हों। जातीय भेद विशेष आनुवंशिक चिन्हों पर आधारित होने चाहियें न कि परिस्थितिजन्य प्रभावों पर।

## शारीरिक चिह्न तथा माप—

यह एक तथ्य है कि विभिन्न-विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में रहनेवाली जातियों का अध्ययन उनकी उस शारीरिक विशेषता पर आधारित है जिन्हें नापा और देखा जा सकता है। त्वचा के वर्ण, केश रचना तथा शरीर के आकार-प्रकार में किसी न किसी रूप में असमानता अवश्य होती है। दो जातियों के पारस्परिक सम्मिश्रण से एक वर्ग का प्रभाव दूसरे वर्ग पर अवश्य पड़ेगा।

श्वेत नस्ल का सम्मिश्रण नीग्रो से, चीनियों का श्वेत और नीग्रो से, उन वर्गों के शारीरिक चिन्हो में परिवर्तन पैदा कर देगा। अतएव हमारे लिए भिन्न२ वर्गों के शारीरिक चिन्हों व माप आदि का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त महत्व रखता है। आहार-विहार, रहन-सहन, रोग, वेशभूषा आदि सभी चीजें मानव-शरीर पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं। जहाँ हम उत्पत्तिशास्त्र के नियमो, प्रजनन सम्बन्धी बातों, जातीय भेदो तथा वैयक्तिक लक्षणो का ध्यान रखें वहाँ हम अंग-सम्बन्धी रचनाओं का भी अवश्य विचार करें।

मनुष्य के आकार-प्रकार को मापने के लिए यो तो कई प्रकार के यन्त्रों का निर्माण हो चुका है परन्तु हम यहाँ केवल उन्ही यन्त्रो का वर्णन करेंगे जो उपलब्ध हुए हैं।

### १. नर-मापक यन्त्र

यह एक प्रकार को धातुनिर्मित छड़ी होती है जो २०० शतांश मीटर लम्बी होती है। इसके चार समान भाग होते हैं जो पृथक् हो सकते हैं। इस छड़ी में शून्य से लेकर २०० शतांश मीटर तक अंक बने होते हैं। इस छड़ी के एक सिरे पर हत्था भी बना होता है जो इसके पकड़ने में सहायक होता है।

### २. दीर्घ व्याम मापक यन्त्र

यह यन्त्र एक परकार की न्याईं बना होता है। इसके द्वारा किसी गोल वस्तु का भीतरी व बाहरी व्याम मापा जा सकता है। यह ६० शतांश मीटर लम्बा होता है।

### ३. लघु व्यास मापक यन्त्र

यह २५ शतांश मीटर लम्बा होता है। इसके दोनों छोरों पर नोकदार भाग लगे होते हैं। आकृति की रचना को मापने के लिए इस यन्त्र का प्रयोग होता है।

### ४. विस्तृत व्यास मापक यन्त्र

इस यन्त्र का फैलाव ३० शतांश मीटर होता है। यह यन्त्र या तो मुड़ा

हुआ होता है अथवा सीधा होता है ताकि इसे पीछे की तरफ़ से बन्द किया जा सके।

## सिर तथा आकृति

विस्तृत व्यास मापक यन्त्र द्वारा सिर तथा आकृति का माप किया जा सकता है। आँखो के दोनों गड्ढों के उभरे हुए भाग के मध्य तथा नाक के ऊपर की जड के हिस्से से लेकर मस्तक के पिछले भाग तक इस यन्त्र द्वारा सिर की लम्बाई मापी जा सकती है।

सिर की चौडाई मापने का विधान भी इसी यन्त्र द्वारा किया जाता है और कानो की सतह से ऊपर सिर के दोनो तरफ़ माप की जाती है। सिर की ऊँचाई मापने के लिये पर्याप्त सावधानी से काम लेना चाहिये। ललाट संबधी चौडाई को मापने के लिए ललाट तथा कनपटी की हड्डी के बीच की दूरी जानना आवश्यक है। भृकुटियो के अन्तिम सिरे के ऊपर से ही ललाट का भाग प्रारम्भ होता है। कनपटी की मासपेशियो से नही अपितु कनपटी की अस्थि के किनारो से ही यह माप शुरू किया जाता है। दोनों जबड़ो का भी माप किया जा सकता है। निम्न हनु अर्थात् जबड़े के कोणों को भली-भाँति देख लेना चाहिये। इसमें नीचे के जोड़ की मांसपेशी को सम्मिलित नही करना चाहिये।

## नाक की ऊँचाई

यह ऊँचाई लघु व्यास मापक यन्त्र द्वारा मापी जा सकती है। नाक के ऊपरवाले सिरे से, जोकि ललाट के मध्य में जाकर मिलता है, नाक के निचले सिरे तक जो ऊपरी ओष्ठ से जाकर मिलता है, माप लेना चाहिये। मार्टिन के कथनानुसार भृकुटि के निचले सिरे के मध्य तक इस रेखा का माप लेना चाहिये। परन्तु कई मानव विज्ञान शास्त्रियों ने इसका खण्डन किया है।

आकृति के ऊपरी भाग की ऊँचाई भी 'लघु व्यास मापक यन्त्र' द्वारा मापी जा सकती है। इसके अनुसार नासिका और ललाट के संयुक्त स्थान से लेकर मसूढ़ो के निचले भाग तक का सम्पूर्ण हिस्सा मापना चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण आकृति की ऊँचाई को उसी यन्त्र द्वारा माप लेना चाहिये।

शारीरिक माप—

शरीर के माप को भी भिन्न-भिन्न विधियों द्वारा नापना चाहिये। बाहु, स्कन्ध, वक्ष स्थल आदि सभी अंगों का माप पृथक्-पृथक् लिया जाना चाहिये। शरीर के माप के लिए सबसे प्रथम, व्यक्ति को बिल्कुल सीधा खड़ा कर देना चाहिये। पैर नंगे, बाहुएँ सीधी और पैरों की एड़ियाँ एक साथ होनी चाहिये। माप को शिखर से प्रारम्भ करना चाहिये। चूंकि यह भाग सिर का सबसे ऊँचा भाग होता है और बिल्कुल नीचे तक ले जाना चाहिये। इस माप में कई बार नितम्ब प्रदेश तथा स्कन्ध प्रदेश के उन्नत होने के कारण सीधे माप में कुछ अशुद्धि हो सकती है, परन्तु इसका भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। यों भी शरीर में दो-तीन शतांश मीटर घटती-बढ़ती होती रहती है। इस विचार को दृष्टि में अवश्य रखना चाहिए।

पृथ्वी पर स्थित मनुष्य की माप लेते समय उसके शिखर से लेकर पृथ्वी तक का भाग नापना चाहिए। यदि कटि प्रदेश में कोई टेढ़ापन है तो माप ठीक न हो सकेगा। यदि कोहनी को भी सीधी तरह ऊपर की ओर उठा लिया जाएगा तो भी माप में कठिनाई होगी। अतः ऐसी अवस्था में ३० शतांश मीटर ऊंचा एक ऐसा स्टूल बरतना चाहिए जिस पर ज्ञात मोटाई के कुछ बोर्ड शुद्ध माप के वास्ते रख दिये जायें। टांग की माप का सीधा उपाय यह है कि कुल लम्बाई की माप में से स्थित लम्बाई को कम कर देना चाहिए, उतनी ही लम्बाई टांग की होगी।

भुजा का माप करते समय स्कन्ध के उपरी प्रदेश की अस्थि से लेकर सब से बड़ी अंगुली के निचले सिरे तक माप लेनी चाहिए। बाहुओं को जितना भी फैला सकते हों फैला लेना चाहिए। बाहु के अग्रिम भाग के लिए बाहु के भीतरी भाग की हड्डी का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भीतरी भाग की हड्डी के सिरे से लेकर सबसे छोटी हड्डी के निचले भाग तक पूरा माप ले लेना चाहिए। इस रेखा से सम्पूर्ण हाथ का भी माप लिया जा सकता है।

कन्धे की चौड़ाई के लिए कन्धों को पीछे की तरफ न फेंकना चाहिए, जिससे माप घट न जाये।

वक्षःस्थल की चौड़ाई तथा गहराई के माप के लिए बाहुओं को सिर पर रख लेना चाहिए। गहराई के माप में कुछ कठिनाई अवश्य पड़ती है क्योंकि इस में आगे और पीछे दोनों भागों का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। सांस को ग्रहण करने और छोड़ने की दशा का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए।

परिधि-माप —

शरीर की परिधि के माप के लिए शतांश मीटर तथा सहस्रांश मीटर के निशान वाले फीतों का प्रयोग होता है। ये फीते धातु तथा कपड़े के बने हुए होते हैं। इस माप पर मांस-पेशियों के विस्तार और संकोच का भी प्रभाव पड़ता है इसलिए परिधि के माप के समय कतिपय परिधियों का मापना आवश्यक हो जाता है। मनुष्यों में वक्ष: स्थल की परिधि का माप स्तन प्रदेश की ऊंचाई तक करना चाहिये। पेट की परिधि का माप नाभि की ऊंचाई तक करना चाहिये। बाहु की परिधि का माप कोहनी की ऊंचाई तक लेना चाहिए।

भार एवं तोल—

जहां ऊंचाई का माप किया जाता है वहां मनुष्य के भार एवं वजन को भी जरूर लेना चाहिये। अच्छा तो यह है कि मनुष्य को नग्नावस्था में तोलना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव नहीं तो कपडे का वजन घटा कर शरीर का तोल पता करना चाहिए। तोल के लिए यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पेट खाली हो।

त्वचा का वर्ण—

त्वचा के वर्ण के लिए 'वान लुस्चेन तुला' है जिसमें ३६ हल्के रंग के पारदर्शक शीशे होते हैं। ये रंग धुंधले नहीं पड़ते अपितु भिन्न-भिन्न प्रकार की त्वचा से समानता रखते हैं। इस के अतिरिक्त 'ब्रेडले-मिल्टन' नामक एक और यन्त्र होता है जिसमें ४ रंग घूमते रहते हैं और अनुपात को नियमित करने से त्वचा-सदृश रंग का पता चल जाता है।

केशवर्ण—

केशवर्ण के लिए "फिशर बॉक्स" प्रसिद्ध है जिस में ३० प्रकार के केशवर्ण के नमूने होते हैं।

चक्षुवर्ण—

आंखों के रंग के लिए पहचान करना बहुत कठिन है। आंख के तारे का रंग एक

समान कभी नहीं होता। भिन्न-भिन्न जातियों की आंखों के तारों के रंग में साम्यता पाई जाती है परन्तु कई बार उसमें भी सम्मिश्रण पाया जाता है। इस के लिए 'मार्टिन बाक्स' का प्रयोग किया जाता है जिस में शीशे की १६ आंखें होती है। इससे भी प्रारम्भ में अनुसन्धानात्मक कार्य में पर्याप्त सहायता नहीं मिल सकी, अत.एव बाद में दूसरा यन्त्र तैय्यार किया गया जिसमें शीशे की २० आंखें रखी गई।

## बाह्य आकृतिरूप (Phenotypes) तथा प्रजनन रूप (Genotypes)

इतना तो सर्व सम्मत है कि वंशानुगत (Inherited) शारीरिक गुणों का नियन्त्रण स्त्री-बीज तथा पुम्बीज द्वारा होता रहता है। हजारों वाहकाणुओं का शरीर में वास होता है। ये वाहकाणु सन्तान की शरीर-रचना पर अपना प्रभाव डालते रहते है। इसमें सन्देह नही कि आनुवंशिकता के अन्तर्गत प्रायः सभी प्रजनन कारण ऐसे हैं जिनका सही-सही विश्लेषण नही हो सका। फिर भी इतना अवश्य है प्रजननात्मक दृष्टि से अनेक गुणो का पता लगाया जा सका है। बाह्य आकृति रूप (Phenotypes) भी इसी आनुवंशिकता के अन्तर्गत हैं।

जब हम जातियों (Races) पर विचार करते है तो प्रश्न यह होता है कि उन्हें हम मानव-जाति का कौन सा वर्ग मानें ? अनेक मानव-शास्त्रियो का विचार है कि जहां तक प्रजनन रूप (Genotypes) की समानता है वहां तक हम सभी जातियो को एक ही वर्ग में परिगणित करेंगे ; क्योंकि प्रजनन रूप की समानता उन्हें अन्य वर्गों से पृथक् करती है। इतना ही नही, अपितु इसी प्रजनन रूप की समानता के कारण मानव वर्ग के सभी सदस्य अन्य वर्गों के विपरीत एक-दूसरे से अधिक समान नजर आते हैं।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से रूप-रंग आदि में बिल्कुल समानता क्यों नही रखता ? यदि हम इस पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि प्रजननात्मक विशेषताओं पर वातावरण की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता रहता है जो मनुष्य के रूप-रंग आदि के परिवर्तन में सहायक होती है। दूसरा मुख्य कारण अन्तः-परिवर्तन (Mutation) भी है। क्योंकि अनुमान किया जाता है कि मनुष्य के बिम्ब व वर्णसूत्रों (Chromosomes) में हजारों वाहकाणु हैं और प्रत्येक वाहकाणु अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। इन सब वाहकाणुओं में प्रजननात्मक विधि द्वारा अन्तः-परिवर्तन (Mutation) होता रहता है जिससे शरीर में नानाविध मिश्रण होते हैं।

चुनाव (Selection)—

विभिन्न-विभिन्न सामाजिक श्रेणियों में सामाजिक चुनाव भी निश्चित दिशा में होता रहता है। प्रायशः देखा जाता है कि एक यूरोपियन दूसरे योरुपियन से और एक नीग्रो दूसरे नीग्रो से ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना उपयुक्त समझता है। ऐसा नहीं होता कि एक योरुपियन किसी नीग्रो से सम्बन्ध स्थापित कर ले और नीग्रो यूरोपियन से। इस प्रकार का प्राकृतिक चुनाव सभी जातियों में पाया जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि वर्ण-संकरता कम होने पाती है। एक जाति का दूसरी जाति से सम्मिश्रण होना तो संयोग पर ही निर्भर होता है। जब दो विरोधी जातियों का सम्मिश्रण हो जाता है तो प्रजननात्मक रचना में भी परिवर्तन होने लगते हैं और परिणामतः शारीरिक चिन्हों में भी भेद पाया जाता है। जहां सामाजिक वर्गीकरण में तथा प्रत्येक वर्ग की प्रजनन-प्रक्रिया में कोई सम्बन्ध न होगा वहाँ चुनाव द्वारा भी किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होगा।

एक ही वाहकाणु (Genes) में स्त्रीबीज अथवा पुंबीज रहता है व नहीं यह चुनाव पर ही निर्भर होता है। प्राकृतिक चुनाव का परिणाम प्रजनन-तत्व की विशुद्धता है। हम देखते हैं कि जब दो वर्गों का पारस्परिक सम्मिश्रण होगा तो दोनों के गुणों का प्रभाव दोनों वर्गों पर अवश्य पड़ेगा। श्वेत नस्ल का सम्मिश्रण नीग्रो से, चीनियों का श्वेत और नीग्रो से, इण्डियन्स का श्वेत वर्ण वालों से, लम्बे सिर वालों का गोल सिर वालों से, लम्बे कद वालों का छटे कद वालों से सम्मिश्रण होगा तो शारीरिक चिन्हों में अवश्यमेव परिवर्तन होंगे। यह सब चुनाव के कारण ही होगा। यह भी सम्भव है कि एक वर्ग सम्मिश्रण के बाद दूसरे वर्ग की परिस्थितियों को ग्रहण न कर सकने पर अपनी सत्ता भी खो बैठे।

परिस्थिति का प्रभावः—

चुनाव के साथ साथ शारीरिक परिस्थितियों का प्रभाव भी पड़ता है। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण हम आपके सामने पेश करते हैं। सन् १६०७ में अमेरिका के प्रेसीडेन्ट ने ३ प्रतिनिधियों का एक मण्डल नियुक्त किया जिसका कार्य अमेरिका में देश-देशान्तर से आये हुए लोगों की समस्याओं की जाँच करना था। इस कमीशन ने उनके जीवन-सम्बन्धी सब बातों का पता लगाया। कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के प्रो० फ्रेन्ज़ब्वास ( Professor Frenz Boas )

ने इस पर गवेषणा करते हुए सबसे प्रथम न्यूयार्क में देश देशान्तर से आए हुए दो व्यक्तियों को लिया। इनमें एक पूर्वीय योरुप का यहूदी और दूसरा दक्षिणी इटालियन था। उसने यह पता लगाया कि अमेरिका में आकर दोनों की रचना में अन्तर आ गया है। उसने देखा कि सिसली में उत्पन्न हुए-हुए इटालियन का सिर लम्बा होता था। परन्तु अमेरिका में इस जाति के जितने इटालियन पैदा हुए इनका सिर चौड़ा हो गया। पूर्वीय योरुप में पैदा होनेवाले यहूदियों का सिर गोल और चौड़ा होता था परन्तु यहाँ पर बस जाने से उनके सिर लम्बे हो गये। इतना ही नहीं, ब्वास ने अपने अनुसंधान को स्काच, बोहेमियन्स, तथा दो विभिन्न इटालियन जातियों पर लागू किया। शरीर की माप, मुखाकृति, आँखों की रचना, सिर की रचना, तोल, परिमाण, बालों के रंग आदि का पता लगाया। पिछले दस वर्षों तक के पैदा हुए बच्चों को लिया। वह इस परिणाम पर पहुँचा, कि इनके पूर्वज जो योरुप में पैदा हुए थे वे शारीरिक रचना में भिन्न थे। प्रो० ब्वास का मत था कि प्रति वर्ष के अन्तर पर उत्पन्न हुए बच्चों की रचना में भी थोड़ा-थोड़ा भेद उत्पन्न होता जाता है।

यह शारीरिक भेद केवलमात्र स्थानान्तर का ही परिणाम था। परिस्थिति से हमारा अभिप्राय जलवायु, स्थान, खाने की प्रवृत्तियों आदि से है। यदि परिस्थितियों का परिवर्तन ही शारीरिक आकृति पर प्रभाव डालता है तो निश्चय ही मानवीय समाज की बहुत सी जातियां और उपजातियाँ इसके प्रभाव से न बच सकी होंगी। क्योंकि प्रारम्भिक काल के लोगों में आजीविकोपार्जन के लिए घूमने की प्रवृत्ति सदा से रही है अत उन पर यह छाप अवश्य पड़ी होगी। इससे सिद्ध होता है कि इतिहास में जातियों पर सदैव परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता रहा है।

### जनसंख्या और जाति—

किसी स्थान की जन संख्या व आबादी में अनेक पारिवारिक शाखाओं का वास होता है, अत: जाति क्या है, यह जानना आवश्यक हो जाता है। जन संख्या में प्रजनन रूप (Genotypes) स्थाई होते हैं अत हम देखते हैं कि एक स्थान पर एक ही शारीरिक चिन्हों वाले लोग मिलेंगे और दूसरे स्थान पर दूसरे शारीरिक चिन्हों वाले। मंगोलियन, नीग्रो, आस्ट्रेलियन आदि सभी को हम जाति-रूप में परिगणित कर सकते हैं क्योंकि सब की विशेषतायें अथवा गुण अपने-अपने हैं जो उन्हें दूसरों से पृथक् कर देते हैं और ये विशेषतायें तथा गुण उन्हें आनुवंशिकता से प्राप्त होते हैं। जब जातियों में सम्मिश्रण हो जाता है तो

आनुवंशिकता पर दोनों में से एक की छाप गहरी और दूसरे की छाप हल्की पड़ती है। एक स्थान की आबादी में अनेक प्रजनन-रूप ( Genotypes ) होते हैं अत: उनका विश्लेषण भी इस प्रकार किया जाना चाहिये जिससे आधार भूत जातियों का निर्णय हो सके। और उनके विशुद्ध रूपों का पता लगाया जा सके।

जो वर्ग पूर्णरूपेण एक समान होते हैं और जिन में प्रजननरूपों का सम्मिश्रण नहीं होता उन में एक व्यक्ति का आकार उसके सभी अंगों के माप पर प्रभाव डालेगा।

उस वर्ग के सभी सदस्य अपने आकार के अनुकूल बढ़ते चले जायेंगे। यह सम्भव है कि उनकी इस वृद्धि का अनुपात एक समान न हो। यदि उस आबादी में दो पृथक्-पृथक् प्रजननरूप विद्यमान हैं और दोनों के विभिन्न-विभिन्न माप हैं तो उपरोक्त सिद्धान्त असत्य सिद्ध होगा। जिस प्रकार फ्रांस के उत्तर प्रदेशों की जन-संख्या दीर्घ एवं संकीर्णशिरीय होती है और केन्द्रीय प्रदेशों की जन-संख्या लघु तथा विस्तृत-शिरीय होती है। परन्तु जब पेरिस में दोनों जातियों का मिश्रितरूप आंका गया तो पता चला कि उन के लम्बे सिर संकीर्ण हो गये और लघु सिर विस्तृत हो गये।

जातीय सम्मिश्रण—

नस्लों के विभिन्न-विभिन्न लक्षणों और चिन्हों की जाँच करने के बाद हमने जातीय वर्गीकरण में भी एक प्रकार का अन्तःसम्मिश्रण पाया है। निष्क्रमण ही इस अन्त-मिश्रण का मुख्य कारण है। मनुष्य का जीवन प्रारम्भ से ही एक पथिक के रूप में व्यतीत हुआ है। जलवायु के प्रभाव के कारण, अपने जीवन को सुखद बनाने के लिए मनुष्य में सदैव ही साहसिक प्रवृत्ति रही है और वह अपने भोजन की तलाश में इधर-उधर भटकता रहा है। अपनी इसी यात्रा में वह मनुष्य जाति के विभिन्न-विभिन्न आकार-प्रकार वाले कई वर्गों के सम्पर्क में आया और उन वर्गों से उसका सम्बन्ध स्थापित हुआ। इस मिश्रण का परिणाम अन्त-प्रजनन ही हुआ और पृथक् रूपों (Types) की विशुद्धता नष्ट होने लगी। प्रारम्भकाल के मलायावासी अपने पूर्वीय एशिया को छोड़कर दक्षिणी अफ्रीका के किनारे पर जाकर बसे जहाँ पर भिन्न-भिन्न प्रकार के और भिन्न-भिन्न स्वभाववाले लोगों से उनका सम्पर्क हुआ। चीन के मंगोलियावासी दक्षिण दिशा की ओर जाकर बसे जहाँ उनका अन्य मंगोल-रूप-जातियों से सम्पर्क हुआ। उत्तरीय अफ्रीका के नीग्रो लोगों पर सदैव

मंगोलियन तथा पश्चिमीय एशिया-वासियों के आक्रमण होते रहे और उनकी सभ्यता का प्रभाव नीग्रो लोगों पर पड़ता रहा। सातवीं शताब्दी में जब अरब लोगों ने इस्लाम धर्म को अपनाया और वे उत्तरीय अफ्रीका के इलाकों में धर्म-प्रचार के लिए गये तो उनका सपर्क भी नीग्रो लोगो से हुआ और जब वे आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्पेन में घुसे तो वे अपने साथ विज्ञान शास्त्र, दर्शन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा कला के ज्ञान को योरुप में ले आए परन्तु उनमें नीग्रो रक्त का प्रभाव पड चुका था। ये अरब लोग योरुपियन से मिलकर उनके साथ अपने वैवाहिक सम्बन्ध भी जोड चुके थे। इन अरबो में बहुत से यहूदी भी थे जिनमें नीग्रो रक्त का सम्मिश्रण हो चुका था। अत उनमें भी नीग्रो रक्त का प्रभाव था। स्पेन में अरबो के निवास के समय और बाद में यहूदियों के स्पेन से निकाले जाने के बाद नीग्रो रक्त इन दोनो प्रतिक्रियाओं द्वारा योरुपियन लोगो तक सम्मिश्रित हो चुका था। अमेरिका की खोज के बाद श्वेताग वासियों और इण्डियन के बीच यह 'रक्त-सम्मिश्रण' पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहा। १७वीं और १८वीं शताब्दि में दास-प्रथा के समय नीग्रो लोगों को अमेरिका भेजा गया और इनका सम्पर्क श्वेतागो तथा इण्डियन्स दोनों से हुआ। श्वेतांगो का सम्पर्क इण्डियन्स से तो पहले ही हो चुका था, अब नीग्रो से भी होने लगा। ये इण्डियन्स ही एकमात्र आधार न थे जिनके द्वारा मंगोलियन रक्त श्वेतांग जातियों में सम्मिश्रित हुआ। रूस का प्रारम्भिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि कितने मगोल आक्रान्ताओं के निरन्तर आक्रमण रूस पर होते रहे। १३वीं शताब्दि तक तो सम्पूर्ण यूक्रेनियन रूस पर मंगोलों का साम्राज्य रहा। इसके बाद रूस में अढ़ाई शताब्दि तक अन्य जातियो का सम्मिश्रण होता रहा। मैडागास्कर में मलाया लोगों का नीग्रो से और दोनो का श्वेतांगो से सम्पर्क रहा। विशुद्ध नस्ल का विचार सिद्धान्त रूप में था परन्तु क्रियात्मक दृष्टि से वह विचार लुप्त हो चुका था और अनेक जातियो के पारस्परिक सम्पर्क हो चुके थे।

मंगोल का मेलानीज तथा काकेशस का नीग्रो से जो सम्पर्क हुआ उससे जन-संख्या के निर्माण में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई। माइक्रोनीशियन-पोलीनीशियन लोग और कुछ नहीं केवलमात्र इण्डोनीशियन तथा मैलानीशियन जातियों के सम्पर्क से निर्मित हुए है। दो भिन्न-भिन्न जातियो के संयोग से एक नवीन जाति का निर्माण सदैव से होता चला आया है। हाँ! इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रकार के योग से सामाजिक भेदभाव एवं सामाजिक बहिष्कार की भावना अवश्यमेव जागृत हुई।

अमेरिकन नीग्रो की उत्पत्ति का अगर मूल स्रोत देखा जाए तो पता

चलेगा कि उनमें काकेशस, नीग्रो और अमेरिकन इण्डियन्स का वर्णसंकर समाविष्ट है। कई स्थानों पर तो यह वर्णसंकरता यहाँ तक बढ़ गई है कि इसके द्वारा जाति-भेद एवं आकार-प्रकार की भिन्नता भी समाप्त हो गई है। मैंडेलियन सिद्धान्तों के अनुसार एक वर्ण की प्रधानता और एक वर्ण की गौणता का नियम मानवीय वर्ण एवं त्वचा पर लागू नहीं होता। आँखों की रचना, त्वचा का रंग, सिर तथा कपाल की माप, भृकुटि आदि की रचना, शरीर के बाल, ये सब चीजें ऐसी हैं जो जातीय भेद एवं वर्णसंकर के विषय में पर्याप्त प्रकाश डालती है।

## पृथक्करण (Isolation)

मानव-जाति में अस्थिरता एवं परिवर्तनशीलता के होते हुए भी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास में कुछ काल ऐसा आया जब कई जन समुदाय पृथक्-पृथक् रूप से विकसित होते गये। प्रारम्भिक समय में जन-संख्या अवश्य विरल एवं दूर दूर बसी होगी और भौगोलिक तथा सामाजिक कारणों से जनसमुदायों को पृथक्-पृथक् रहने का अवसर भी अवश्य प्राप्त हुआ होगा। आधुनिक काल में भी कई ऐसे क्षेत्र हैं जो अपने आप में पृथक् सत्ता रखते हैं और उनका सम्पर्क अन्य स्थानों से नहीं होता। उदाहरणार्थ ग्रीनलैण्ड, आस्ट्रेलिया तथा प्रशान्त सागर के दूरस्थ द्वीपों की एस्किमो जाति को ही लीजिये। वे एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक् हैं। प्राणिशास्त्रियों का मत है कि पृथक्करण द्वारा एक सुसस्कृत जातीय रूप विकसित होता है चाहे उन का पूर्व रूप एक हो अथवा मिश्रित। वे अपने मत की पुष्टि में गाला पैगोस ( Gala Pagos Islands ) द्वीपों का उदाहरण पेश करते हैं जहाँ प्रत्येक द्वीप की छिपकलियाँ और पक्षी अपनी विशेषतायें रखते हैं और उन विशेषताओं के कारण वे दूसरे द्वीप की छिपकलियों और पक्षियों से भिन्न नजर आते हैं। पोलीनीशियन द्वीपों की प्रत्येक घाटी के शम्बूक (Snails) अपनी पृथक् विशेषतायें रखते हैं। इस प्राणिशास्त्रीय आधार पर हम मनुष्यों में भी 'पृथक्करण' का प्रभाव देखते हैं। कैलिफोनिया की कुछ घाटियों के इण्डियन्स रूप में अपने पड़ोसियों से भिन्न हैं। आस्ट्रियन आल्प्स में दूरस्थ ग्रामों के वासी एक-दूसरे से भिन्न हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकालीन 'पृथक्करण' विशेष जातीय रूप स्थापित करने का साधन था। छोटे-छोटे स्थानीय वर्गों में कतिपय नियम-विरोधी बातों अथवा अव्यवस्थाओं के विस्तार से भी यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। यौवन प्राप्त होने पर मनुष्य की मस्तक के पिछले भाग

की ग्रस्थि के कतिपय हिस्से एकरूप हो जाते हैं परन्तु कभी-कभी मछली के पर-सदृश आकृति वाला उपरिभाग निचले भाग से पृथक् हो जाता है। न्यू मैक्सिको की प्यूब्लो (Pueblo) जाति में सामान्यतया यह बात पाई जाती है। यह तो उन का एक पारिवारिक चिन्ह समझना चाहिये जो इन जातियों में असाधारण रूप से फैला हुआ है। जातियों की ये स्थानीय विशेषताएँ उन भेदों अथवा रूपान्तरों से किसी भी रूप में महान् नहीं जो मूल जनसंख्या में घटित होती रहती हैं।

अन्तः स्राव (Internal Secretions)

सर आर्थर कीथ (Sir Arthear Keith) ने सबसे प्रथम अपने जातीय विकास का सिद्धान्त प्रणालीविहीन ग्रन्थियों (Ductless Glands) की क्रिया पर आधारित किया। उनका कथन है कि शरीर का अनुरूप विकास ग्रन्थियों की विशुद्ध क्रिया का ही परिणाम है। कफ स्रावक ग्रन्थि (Pituitary Gland) जो मस्तिष्क के आधार पर स्थित है—जब सीमा से अधिक विकसित हो जाती है तो नासिका, चिबुक प्रदेश, हाथ तथा पैर बढ़ जाते हैं। चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid Gland)--जो ग्रीवा के सम्मुख स्थित है—विकास का नियन्त्रण करती है। यदि यह ठीक क्रिया न करे तो नाक, कान तथा समतन आकृति-पूर्ण विकसित नहीं हो पातीं। कई स्थानों पर तो इसका दुष्परिणाम पागलपन भी देखा गया है। उपवृक्क ग्रन्थियां (Adrenal Glands) त्वचा के वर्ण पर प्रभाव डालती है। हृदय पार्श्व ग्रन्थि (Thymus) विकास की सत्वरता को नियमित रखती है। सन्ततियों पर इस का प्रभाव सचयकारी होता है। इन ग्रन्थियों की कार्य-प्रणाली से प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र पर प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। सर आर्थर कीथ का मत है कि जातीय भेद इन ग्रन्थियों की रासायनिक क्रियाओं के भेद द्वारा होते हैं। चुल्लिका ग्रन्थियों की अपूर्णता का प्रभाव हम मंगोल, हाटनटाट जातियों पर स्पष्टतया देखते हैं। ग्रन्थियों की कार्यप्रणाली का प्रभाव जातियों के बाह्य आकार पर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है परन्तु इससे जातियों के प्रारम्भ पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

जातियों का वर्गीकरण—

सांस्कृतिक मानव विज्ञानवादी के लिये जाति व नस्ल की उपस्थिति एक महान् प्रतिबन्ध एवं बोझ है। अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन में वह सदैव जाति

को महत्व प्रदान नहीं करता। वह तो जाति के प्रश्न को पीड़ाजनक जानकर उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करता है। उसका मत है कि मनुष्य जाति के लिए सांस्कृतिक प्रश्न जाति से अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रत्येक जाति में सब प्रकार की संस्कृतियाँ पाई जाती हैं परन्तु मानव-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता के रूप में वह मनुष्य का अध्ययन भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से करना चाहता है।

जातियों का वर्गीकरण पुरातन काल से होता चला आया है। प्रो० फेञ्ज-व्वास ने 'अमेरिकन जाति का इतिहास' नामक अपनी पुस्तक में मनुष्य का प्रादुर्भाव उसके पशु-पूर्वजों से बतलाया है। मनुष्य का विस्तृत मस्तिष्क, मनुष्य की भाषा, मनुष्य का उपकरण-प्रयोग मनुष्य तथा पशु के भेद को स्पष्टतया प्रकट कर रहा है। मानवीय प्रकार के दो भेद नीग्रो तथा मगोल स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम तो हिन्द-महासागर के चारों ओर और दूसरा उत्तरकेन्द्रीय एशिया में फैला। धीरे-धीरे योरुप तथा नवीन संसार की ओर बढ़ता चला गया। एक भेद के अंग बुशमैन, नीग्रो, पैमान आदि होते गये और दूसरे के अंग अमेरिकन इण्डियन्स, एशियावासी तथा मलाया के लोग हुए। हाँ! इन सबमें भी जाति की विद्यमानता हर जगह रही। और जातियों का पारस्परिक अंग-सादृश्य आदि भी दृष्टिगोचर होता रहा।

ये दो विरोधी भौतिक वर्ग, जिनसे मनुष्य जाति की रचना हुई, एक तो पूर्वीय एशियाई अथवा मंगोल लोगों का और दूसरा अफ्रीकन व नीग्रो का है जिनसे फ़िलिस्तीन, इण्डोचीन तथा अण्डेमान द्वीपों का सम्बन्ध है। यदि हम त्वचा के वर्ण को लें तो हम बहुत सुगमतया नीग्रो तथा मगोल का भेद भली-भाँति कर सकते हैं। श्वेत-वर्ण जातियों का पीत-वर्ण जातियों से जो भेद है वह भी भली-भाँति दिखाई देता है; परन्तु श्वेत-वर्ण जाति के बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो काले रंग के हैं और मगोलों से मिलते-जुलते हैं। परन्तु यह केवल चिन्ह व लक्षण के भेद के कारण है। इसी प्रकार नीग्रो वर्ग रूप में तो आस्ट्रेलियन वर्ग से अधिक कृष्ण वर्ण वाले हैं परन्तु बहुत से नीग्रो ऐसे भी हैं जो केवलमात्र त्वचा के वर्ण से नीग्रो नहीं पहचाने जाते, अपितु आस्ट्रेलियन मालूम होते हैं। अतः इस कथन की आवश्यकता नहीं कि उप जातिविभाग रूप-रंग के आधार पर सहज ही पहचाने जा सकते हैं।

बालों को लीजिये। एक दृष्टि से बालों का रूप एक उत्तम नस्ल सम्बन्धी चिन्ह माना जाता है। नीग्रो जाति के लोगों के बाल लच्छेदार तथा ऐंठे हुए होते हैं। अपेक्षाकृत पतले और हल्के होते हैं और दूसरी तरफ़ मगोल जाति के लोगों के बाल सीधे, मोटे और भारी होते हैं। परन्तु यदि हम केवलमात्र बालों

पर ही निर्भर रहें तो हम अमेरिकन इण्डियन तथा मंगोल लोगों में भेद नहीं पा सकते। क्योंकि उनके बाल काले, सीधे, मोटे और भारी होते हैं। यदि बाल न काटे जायँ तो वे बहुत लम्बे हो जाते हैं। नीग्रो और आस्ट्रेलियन के बालों में भेद होता है। आस्ट्रेलियन के बाल बहुत-सी श्वेत जातियों से मिलते-जुलते हैं। केवलमात्र बालों पर भी निर्भर नहीं रहा जा सकता और किसी एक लक्षण व चिन्ह के आधार पर वर्गीकरण करना असम्भव है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि जातीय वर्गीकरण के लिए कई लक्षणों व चिन्हों का आश्रय लेना पड़ता है। समष्टि रूप से कई चिन्हों के आधार पर जातीय वर्गीकरण सम्भव है।

प्रमुख जातियाँ—

लिने ने संसार की प्रमुख जातियों को योरपियन, अमेरिकन, एशियाटिक, तथा अफ्रीकन आदि ४ प्रमुख विभागों में बांटा है। ब्लुमेनबाच ने काकेशियन ( योरपियन ) मंगोलियन, यूथोपियन, अमेरिकन तथा मलाया आदि ५ भागों में बांटा है। हक्सले ने भी जातीय वर्गों को पांच भागों में विभक्त किया है—आस्ट्रेलायड, नीग्रायड, मंगोलायड, जन्थोक्रोइक तथा मेलानोक्रोइक। इसी प्रकार डकवर्थ ने आस्ट्रेलियन, अफ्रीकन, नीग्रो, अण्डेमानीज, यूरेशियाटिक, पोलिनीशियन, ग्रीनलैण्डवासी, तथा दक्षिणी अफ्रीकन आदि ७ भागों में विभक्त किया है। इतना स्पष्ट है कि जातियों का यह वर्गीकरण शारीरिक चिन्हों एवं विशेषताओं के आधारपर ही किया गया है। मि० रोलैण्ड बी० डिक्सन ने जातियों का वर्गीकरण करते हुए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन किया और जातियों को ८ भागों में विभक्त किया। प्रथम वर्ग में वे जातियां रक्खीं जिन के सिर उन्नत एवं दीर्घ होते थे, दूसरे वर्ग में संकीर्ण नासिका वालों को रक्खा, तृतीय वर्ग में दीर्घ तथा समतल शिरीय, चतुर्थ वर्ग में समतलनासिका वालों को, पंचम वर्ग में दीर्घ तथा नतशिर वालों को, छटे वर्ग में दीर्घ एवं नतशिर तथा समतल नासिका वालों को, सप्तम वर्ग में दीर्घ एवं उन्नतशिर तथा समतल नासिकावालों को और अष्टमवर्ग में दीर्घ एवं उन्नत सिर तथा संकीर्ण नासिकावालों को रक्खा। इस प्रकार शरीरशास्त्र के आधार पर किया गया वर्गीकरण प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से क्या महत्व रखता होगा? यह हम अभी तक समझ नहीं सके। इसके बाद मि० हडसन ने शारीरिक चिन्हों एवं लक्षणों के आधार पर जातियों का वर्गीकरण किया और मि० जे० डेनीकर ने जातियों में विभाजन करने पर जोर दिया। मि० वानएक्सटेड ने ३ प्रमुख विभाग यूरोपिड, नीग्रिड तथा मंगोलिड किये

और रिपले ने नीली आंख वालों, लम्बे कद तथा उन्नत सिर वालों को नार्डिक, कृष्णवर्णीय तथा लघु शिरीय जातियों को अल्पाईन, छोटे तथा उन्नतशिरीय लोगों को मैडिट्रेनियन नाम से पुकारा।

कई विद्वानों का विचार है कि शारीरिक चिन्हों के आधार पर यह विभाजन नहीं करना चाहिए क्योंकि जातियों के पारस्परिक सम्मिश्रण के अनन्तर ये चिन्ह स्थाई नहीं रहते और वे परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते हैं। परन्तु फिर भी जातीय वर्गीकरण के ५ प्रमुख भाग ऐसे हैं जिन्हें प्रायशः मानव शास्त्री स्वीकार करते हैं। नीग्रो, आस्ट्रेलियन, मंगोलियन, अमेरिकन, इण्डियन, तथा श्वेतांग।

## श्वेतांग जाति-समुदाय—

### (नार्डिक शाखा)—

इनके सिर लम्बे तथा नाक ऊंचे और पतले होते हैं। होंठ पतले, शरीर लम्बे और पतले होते हैं। चेहरा भी पतला होता है। सिर के बाल घुंघराले, सीधे, चमकदार, सुन्दर, तथा विरल होते हैं। ये योरुप स्कंडेनेविया, बाल्टिक प्रदेश, ब्रिटिश द्वीपसमूह के शीतप्रधान तथा समुद्री प्रदेशों में रहने वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त अमरीका तथा ब्रिटिश उपनिवेशों में भी कहीं-कहीं ये पाये जाते हैं। इनकी टांगें लम्बी होती हैं।

यह जाति दीर्घकपालीय तथा संकीर्ण आकृति वाली है। सिर कनपटी के पास विशेष रूप से संकीर्ण होता है। माथा संकीर्ण होता है। कपोलास्थियां पूर्ण विकसित तथा ठोडी विशेष प्रकार की होती है जिससे उनका चेहरा रोबदार हो जाता है। होंट पतले, मुख छोटा, भृकुटि के किनारे अविकसित होते हैं। नाक का दीवार उन्नत तथा ढालुवां और नाक की जड़ का दबाव सामान्य होता है। नार्डिक जाति की सबसे विशेषता यह है कि नीचे के दांतों के किनारे तथा ठोडी की नोक के मध्य पर्याप्त दूरी होती है। त्वचा गुलाबी, श्वेत तथा लाल रंग की होती है। आंखें नीली व हल्की भूरी होती हैं। केश सुनहरी तथा विरल हैं।

### मैडिट्रेनियन—

यह उपजाति सम्पूर्ण मैडिट्रेनियन में स्पेन से लेकर मोरक्को के पार तक

तथा वहां से पूर्वीय दिशा में भारत तक फैली हुई है। यह जाति कद में छोटी, पतली तथा ऊंचाई में औसतन १६६ शतांश मीटर होती है। इनके सिर का आकार नार्डिक जाति से मिलता-जुलता है। दीर्घ कपाल, संकीर्ण माथा, आकृति लम्बी तथा संकीर्ण होती है। जबड़े गहरे, ठोडी नोकदार तथा नाक कुछ-कुछ छोटी होती है। नाक सीधी तथा उन्नत होती है। मुख चौड़ा, होठ पतले तथा झिल्लीदार होते हैं। ये थोड़े से बाहर की ओर बढ़े हुए होते हैं। दोनों लिङ्गों – स्त्री तथा पुरुष में श्रोणिका चौड़ी होती है। मैडिट्रेनियन स्त्रियों के नितम्ब बड़े और वक्षःस्थल पूर्ण विकसित तथा गोलार्ध होते हैं। बाल घुंघराले तथा हल्के भूरे रंग के होते हैं। आंखें भूरी तथा काली होती हैं। केवलमात्र एशियाई मैडिट्रेनियन द्वितीय रक्त समुदाय से सम्बद्ध होते हैं। अन्य सब मैडिट्रेनियन प्रथम रक्त समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं। इन में कृष्ण और श्वेत दोनों वर्गों के व्यक्ति पाये जाते हैं।

डिनारिक—

योरुप के डिनारिक आल्प्स के नाम पर इसका नाम रखा गया है। ये लोग केन्द्रीय योरुप में फ्रांस से मैसीडोनिया तक फैले हुए हैं। इनके सिर उच्च शिखर वाले तथा माथा ढलुवां, और मस्तक का पिछला भाग समतल होता है। सिर चौड़े, चेहरे लम्बे तथा संकीर्ण, नाक तथा ठोडी उभरी हुई और होंठ पतले होते हैं। कद लम्बा और औसतन उंचाई १७० शतांशमीटर होती है। शरीर गठीला, भारी और टांगें लम्बी होती हैं। गला कुछ-कुछ मोटा, होंठ नार्डिक जाति से अधिक चौड़े होते हैं। त्वचा का वर्ण हल्का जैतूनी, सामान्यतया कृष्ण वर्ण होता है। आंखें हल्की, भूरे रंग की तथा बाल काले, भूरे और घुंघराले होते हैं।

अल्पाईन—

ये योरुप के मध्य में फ्रांस से यूराल तक फैले हुए हैं। ये निकट पूर्व तथा उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में भी थोड़े-थोड़े फैले हुए हैं। ये कद में न बहुत लम्बे और न बहुत छोटे होते हैं। इनका औसतन कद १६५ शतांशमीटर होता है। ये नाटे, गठीले तथा वर्गाकार होते हैं। चौड़े कन्धे, गहरी छाती, लघु तथा नाटी टांगें, चौड़े हाथ तथा लघु अंगुलियां, लघु और चौड़े पैर, मोटी और छोटी जंघापिण्डिका इनकी विशेष निशानियां हैं। स्त्रियों की श्रोणिका (Pelvis) अन्य योरुपियन जातियों से कम होती है।

सिर का रूप चौड़ा, सामान्य आकारवाला तथा बर्तुल होता है। माथा उन्नत और चेहरा फैला हुआ होता है। नाक मांसल, लघु तथा समतल होती है। नाक भद्दे रूप में उपरि-श्रोष्ठ तक फैली होती है। ठोढी गोल तथा फैली हुई होती है।

त्वचा का वर्ण भूरा, पीला तथा कृष्ण भी होता है। बाल छोटे तथा अखरोट वर्ण के होते हैं। चेहरे तथा शरीर पर बालों की संख्या बहुत होती है। आँखें ताम्र तथा भूरे रंग की मिली होती हैं।

आस्ट्रेलायड वेडायड—

ये दीर्घकपालीय, लघ्वाकार, तथा घुंघराले केशवाले होते हैं। इनकी त्वचा का वर्ण चाकलेटी होता है। भृकुटि के सिरे उन्नत, नाक की जड़ें दबी हुई, नासिका चौड़ी तथा होठ मोटे एवं सधियुक्त होते हैं। विंध्यप्रदेश तथा दक्षिण भारत में भी इस जाति के लोग पाये जाते हैं। हटन के कथनानुसार फरहाबाद पर्वतों के भील तथा चेन्चू इण्डोआस्ट्रेलियन जाति के लोग इस रूप का प्रतिनिधित्व हैं। इनके कद की औसतन लम्बाई १६५ शतांशमीटर होती है। बालों का रंग कृष्ण और आँखों का रंग काला तथा भूरा होता है।

नीग्रो—

नीग्रो का रंग काला, बाल कुण्ठित व लच्छेदार, सिर पर विरलता से फैले हुए तथा शरीर और मुखपर भी दृष्टिगोचर होते हैं। नाक मोटी तथा मांसल और पीछे की ओर झुकी होती है। नथुने बड़े और मुख के समानान्तर फैले हुए होते हैं। मुख बन्दर की-सी आकृति के समान होता है। नीग्रो के होंठ लम्बे तथा मांसल होते हैं। बाह्य दृष्टि से वे मोटे और फैले हुए होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि होठों के अन्दर का कुछ भाग बाहर निकल आया हो। ऊपर के जबड़े और नीचे के जबड़े एक समकोण से बड़े प्रतीत होते हैं।

नेग्रिटो—

यह कद में छोटे तथा इनकी औसतन लम्बाई १५० शतांश मीटर होती है। लघु कपाल, त्वचा का वर्ण मलिन तथा पीला होता है। सिर के बाल काले तथा लच्छेदार होते हैं। ये कांगो प्रदेश के जंगलों में, हिन्द तथा प्रशान्त-

सागर के द्वीपों में, ग्रण्डेमान, फिलीपाइन्स, न्यूगायना तथा मैलानीशिया के इलाको में फैले हुए होते हैं। उनके सिर बड़े तथा माथे लम्बरूप होते हैं। भृकुटि के किनारे बहुत छोटे तथा चेहरे छोटे और फैले हुए होते हैं। होंठ मोटे तथा बाहर की ओर मुड़े हुए होते हैं। नाक की जड़ संकीर्ण तथा नाक चौड़ी होती है। श्रोणिका उन्नत, टाँगें लघु, भुजायें दीर्घ तथा शरीर के बाल और श्मश्रु विरल होते हैं। बालों की सख्या नीग्रो से भी अधिक होती है।

मंगोलायड.—मंगोल लोगो का रंग हल्का भूरा होता है। बाल काले, सीधे, मोटे तथा भारी होते हैं। मुख तथा शरीर पर बहुत थोड़े बाल होते हैं। कपोल अस्थियाँ विशेष होती हैं। नीग्रो की अपेक्षा इनकी नाक चौड़ी होती है परन्तु उतनी मोटी नहीं होती। आँखों के बीच में नाक की जड़ मोटी और मामल होती है। आँखें बादाम की शक्ल की-सी होती है। पलकें मोटी होती हैं।

अमेरिकन इण्डियन्सः—मंगोलियन से अधिक काले जैसे कि हल्का पीला भूरा रंग होता ह। बाल बिल्कुल मंगोलियन जैसे—काले, सीधे, मोटे और भारी होते हैं। मुख और शरीर पर बाल कम होते हैं। इनकी नाक बिल्कुल भिन्न होती है। अत: इसे विशेष इण्डियन नाक कहते हैं जो एकदम पहचानी जा सकती है। और ऊपर की तरफ उठी हुई होती है। कपोल की हड्डियाँ उभरी हुई होती हैं जिससे मुखाकृति चौड़ी प्रतीत होती है। मुंह लम्बा तथा अपने ही ढंग की विशेषता रखता है। यह पञ्च भुजाकार होता है।

श्वेतांगः—इस जाति के लक्षणों की पहचान बहुत कठिन है। रूप-रंग, केश-रचना, वर्ण, आकृति, परिमाण, आँख, नाक और मुख की रचना में इसमें बहुत सी विभिन्नतायें पाई जाती है। इनका रग साधारणतया गौर होता है। उत्तरीय योरुपियन का पीत वर्ण इसमें नही होता। मैडीटेरेनियन्स के लोगों का रग काला होता है, जैसे कि अरबों और हिन्दुओ का। बाल भी भाँति-भाँति के होते हैं। काले और भूरे दोनों रूप पाये जाते हैं। पुरुषों के बाल भूरे के साथ-साथ लालिमा लिए होते हुए हैं। कइयों के बाल आग की भाँति रक्त वर्ण होते हैं। कइयो के बाल सीधे और लच्छेदार, तथा कइयो के घुंघराले होते हैं। आँखों में भी भिन्नता पाई जाती है। कइयों की आँखें काली भूरी, कइयों की नीली भूरी तथा हल्की भूरी और नीली होती है। नीली आँखों के भी कई भेद होते हैं जो उत्तरीय इलाकों में रहनेवाले श्वेतांगों में पाये जाते हैं। नाक के भी कई भेद होते हैं। कइयों की नाक संकुचित और कइयों की चौड़ी होती है। नयना गहरा, सीधा और उभरा हुआ होता है।

भारत के सम्बन्ध में मि० एच० एच० रिजले ने जातियों का वर्गीकरण

निम्न प्रकार किया है। रिजले ने ७ भागो में विभाजन किया है। अण्डेमान द्वीपसमूहो के नेग्रिटो लोगो को इसमें सम्मिलित नही किया, क्योंकि उनका सम्बन्ध भारत से नही।

### १. तुर्की-इरानियन—

ये बिलोचिस्तान तथा सीमाप्रान्त के इलाको में रहते है जो अब पाकिस्तान के अन्तर्गत है। इनका रग बहुत साफ तथा कद बहुत लम्बा होता है। आँखें साधारणतया काली होती हैं परन्तु किसी-किसी की आँख भूरी भी होती है। इनके चेहरे पर बहुत बाल होते है और ये लोग दाढी भी रखते है। नाक संकीर्ण तथा लम्बी होती है।

### २. इण्डो-आर्यन—

ये लोग पजाब के पूर्वीय भाग, राजपुताना तथा काश्मीर के इलाके में फैले हुए हैं। लम्बे खत्री तथा जाट इस में परिगणित होते है। बहुतो के कद लम्बे, सिर लम्बे, नाक सकीर्ण होती है। इनका रंग साफ होता है और आँखें काले रग की होती है।

### ३. स्काइथो-द्राविड़ियन—

ये दो जातियो का एक सम्मिश्रण रूप है, स्काइथियन तथा द्राविड़ियन। ये मध्य प्रदेश, सौराष्ट्र तथा कुर्ग के पर्वतीय इलाकों में फैले हुए हैं। इनकी नाक लम्बी और सुन्दर होती है। इनका आकार मध्यम और त्वचा का वर्ण गौर होता है।

### ४. आर्यो-द्राविड़ियन—

उत्तर प्रदेश, राजपुताना तथा बिहार के प्रदेशो में यह पायी जाती है। यह इण्डो-आर्यन तथा द्राविडयन का सम्मिश्रित रूप है। इनका सिर लम्बा, त्वचा का वर्ण स्थान-स्थान पर भिन्न होता है। सामान्यतया यह वर्ण हल्का भूरा और काला पाया जाता है। इनमें मध्य नासिका तथा समतल नासिका वाले लोगों की सख्या अधिक है। इण्डो-आर्यन की नासिका इनसे अधिक सुन्दर होती है। ये कद में इण्डो-आर्यन से छोटे होते है।

## संसार की प्रमुख जातियों के शारीरिक चिन्ह

| शारीरिक चिन्ह | श्वेताग | मंगोलायड | नीग्रो | आस्ट्रेलियन |
|---|---|---|---|---|
| वर्ण | श्वेत | पीत, भूरा | गहरा भूरा | गहरा भूरा |
| अक्षि-केश | नानाविध | गहरा भूरा अथवा कृष्ण | गहरा भूरा अथवा कृष्ण | गहरा भूरा कृष्ण |
| केश | सीधे, घुंघराले | सीधे | घने | सीधे, घुंघराले |
| शरीर केश | न बड़े और न छोटे, मध्यम | अभाव, बहुत कम | अभाव, अथवा बहुत कम | मध्यम |
| अधोहनु जबड़ा | साम्य | बहुत कम अथवा उन्नत | विशिष्ट या उन्नत | विशिष्ट उन्नत |
| भृकुटि | मध्यम | छोटी | छोटी | विशिष्ट |
| ललाट | ढालुवां | सीधा, उन्नत | सीधा, अथवा उन्नत | अतीव ढालुवां |
| चिबुक (ठोडी) | उन्नत | मध्यम | बहुत कम उन्नत | पीछे हटी हुई |
| नासिका | ऊंची | नीची | समतल | लम्बी, चौड़ी |
| ओष्ठ | पतले | मध्यम | स्थूल | मध्यम |

५. मंगोल-द्राविड़ियन—

ये लोग बगाल तथा उड़ीसा म पाये जाते हैं। बगाली ब्राह्मण, बंगाली कायस्थ, बंगाली मुस्लिम इस जाति के ही रूप हैं। रिजले का विचार है कि मगोल तथा द्राविडियन का जब आपस में सम्मिश्रण हुआ तो उससे यह रूप उत्पन्न हुआ। उनमें इण्डो-आर्यन रूप का भी रक्त विद्यमान था। ये कृष्ण-वर्णीय होते हैं तथा इनके चेहरे पर बाल अधिक होते हैं। सिर गोल, नाक मध्यम तथा कइयों में नाक समतल भी होती है। कद मध्यम और कभी-कभी छोटा भी होता है।

६. मंगोलायड—

ये लोग हिमालय प्रदेश के साथ साथ नैपाल, आसाम तथा बर्मा में फैल हुए हैं। इनमें विभिन्न २ जातीय वर्ग होते हैं परन्तु आकार-प्रकार एक-समान होता है। इनके सिर विस्तृत, नाक सुन्दर एवं विस्तृत, चेहरा समतल, आँखें मगोल जैसी, त्वचा का वर्ण कृष्ण परन्तु कुछ-कुछ पीलिमा लिये हुए होता है। शरीर पर बाल कम तथा कद छोटा होता है।

७. द्राविड़ियन—

ये लोग दक्षिण भारत, मद्रास, हैदराबाद, मध्य-प्रदेश के दक्षिणी भाग तथा छोटा नागपुर में फैले हुए हैं। दक्षिणी भारत की पनियन जाति में तथा छोटा नागपुर के सन्थालो में इस जाति के सभी रूप पाये जाते हैं। इनमें प्रायः सभी कृष्णवर्णीय होते हैं। इनकी आँखें काली, कद छोटा, बाल घने तथा घुघराले, सिर लम्बा तथा विस्तृत होता है।

जलवायु का प्रभाव—

इस प्रकार जातीय वर्गीकरण की समस्या हल करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुँचे कि केवलमात्र श्वेतांगों को छोड़कर अन्य सभी जातियों के बालों का रग गहरा काला अथवा काला होता है। केवलमात्र मध्य योरप तथा उत्तरीय योरप के लोगो के बालों में हल्के-हल्के भेद पाये जाते हैं। हूटन का मत है कि बालों की कर्कशता, कठोरता, कोमलता तथा

घुंघरालापन ये सब भेद जलवायु पर भी आधारित होते हैं। मुड़े हुए बाल नमीदार जगह पर सीधे हो जाते हैं और गर्मी तथा नमी के प्रभाव से सीधे बाल भी मुड़ जाते हैं। मंगोलियन के बाल नीग्रो के बालों से भार में दूने होते हैं। श्वेतांगों में सबसे ज्यादा भारी नार्डिक जाति के होते हैं। उससे अधिक अल्पाईन तथा सबसे अधिक भारी मैडिट्रेनियन के होते हैं।

जैसा कि हमने देखा, जातीय वर्गीकरण में नाक की रचना का बहुत महत्व है क्योंकि इस के आधार पर आकार-प्रकार और लम्बाई-चौड़ाई का भेद जाना जा सकता है। हूटन ने नीग्रो तथा मंगोलियन नासिकाओं का विशद वर्णन करते हुए लिखा है कि नीग्रो की नाक नीची, चौड़ी और मध्यम ऊंचाई की होती है। इनकी नोक और किनारा मोटा और ऊपर की ओर मुड़ा हुआ तथा नथने गोल और सामने से दिखाई देते हैं। नथनों को विभक्त करने वाला पर्दा मोटा और ऊपर की ओर झुका हुआ होता है। सम्पूर्ण नाक छोटी और किनारे पर चौड़ी होती है। मंगोलियन नासिका इससे बिल्कुल भिन्न है। उसकी जड़ चौड़ी नहीं होती। किनारा उभरा हुआ और पर्दा बिल्कुल पतला होता है। उसमें खोखलापन दिखाई देता है।

जातीय भेद के क्षेत्र में जलवायु तथा भोजन भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सुन्दर सन्तानोत्पत्ति के लिए तो इनका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। इसका तात्पर्य यह न समझना चाहिए कि सुदूर उत्तरीय प्रदेशों में रहनेवाले अफ्रीकन नीग्रो का वर्ण उत्पत्ति-शास्त्र के आधार पर कुछ हल्का पड़ जायगा और भूमध्य रेखा के समीपस्थ प्रदेशों में रहनेवाले काकेशस का वर्ण कालान्तर में कृष्ण हो जायगा। पहले ऐसा समझा जाता था कि भौगोलिक आधार पर एक जाति दूसरे स्थान पर ही क्यों न चली जावे, उसकी कपाल-रचना, नाक एवं केश आदि की रचना में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। लम्बाई-चौड़ाई, आकार-प्रकार भी प्रायशः स्थिर ही रहते थे परन्तु सन् १९०९ में ब्वास तथा अन्य वैज्ञानिकों ने जो अनुसंधान किये उनसे पता चलता है कि जातियों के स्थानान्तर में चले जाने के साथ-साथ उनके आकार-प्रकार, रूपरंग आदि में भी महान् परिवर्तन आ जाता है। स्वादिष्ट एवं उत्तम भोजन द्वारा मनुष्य का कद कई इञ्च बढ़ जाता है और निकृष्ट भोजन मनुष्य के आकार-प्रकार एवं कद को और भी कम कर देता है। उत्पत्तिक्रम के पूर्व और पश्चात् भी परिस्थितियाँ मनुष्य की शरीर-रचना, आकार-प्रकार आदि में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

जब एक भौतिक मानव विज्ञान-शास्त्री एक विशेष जाति की माप करता है तब वह उत्पत्ति विषयक माप को नहीं, अपितु प्राणी के वर्तमान स्वरूप

शारीरिक रूप की तथा जलवायु द्वारा परिवर्तित प्राणी-शरीर की माप करता है। इससे उत्पत्तिकाल-विषयक माप की शृंखला का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। अत. जातीय वर्गीकरण की सबसे अच्छी पहचान त्वचा का वर्ण, केश, शरीर के बालों का परिमाण, नाक की चौड़ाई, इत्यादि ही आधारित हो सकती है। शरीर की ऊँचाई, डीलडौल और सिर की रचना का आधार इतना सन्तोषजनक नहीं होता। अतः यह सम्भव है कि यदि शरीर की ऊँचाई, डीलडौल और सिर के आकार-प्रकार की माप को ही ठीक मान लिया जायगा और त्वचा, वर्ण, केश परिमाण, नाक की चौड़ाई आदि की उपेक्षा की जायगी तो उससे जातीय वर्गीकरण का ठीक-ठीक और सन्तोषप्रद ज्ञान प्राप्त न हो सकेगा।

## आधुनिक जातियों के प्रारम्भ का सिद्धान्त—

जन-संख्या में चुनाव का सिद्धान्त कई प्रकार के परिवर्तनों का प्रादुर्भाव करता है। अतिरिक्त कारणों के बिना नवीन रूपों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। ओथेनियो अबेल ( Othenio Abel ) का मत है कि केन्द्रीय एशिया से पश्चिम की ओर योरुप में तथा पूर्व की ओर अमेरिका में जब पशु वर्ग एवं वनस्पति वर्ग का प्रव्रजन (Migration) हुआ तो केन्द्रीय एशिया का प्रदेश ऊँचा होता गया, और धीरे-धीरे उसका शोषण होता गया। मध्य नूतन काल ( Miocene) के अन्त में एक महान् परिवर्तन हुआ। इस काल से पूर्व योरुप में कई द्वीप हुआ करते थे। अब एक महाद्वीप की रचना हुई और इसी समय केन्द्रीय एशिया में वनस्पति की उत्पत्ति अत्यल्प हो जाने से पश्चिम तथा पूर्व की ओर स्तनधारी प्राणियों का भी महान् प्रव्रजन हुआ। इस काल का विशेष निखातक (Fossil) तीन खुरों वाला घोड़ा है। केन्द्रीय एशिया के सूखने और ऊँचा होने की यह प्रक्रिया हिमकाल में भी जारी रही। केन्द्रीय एशिया में जंगल अदृश्य हो चुके थे और वानरों ने पेड़ों में रहना प्रारम्भ कर दिया था। अबेल मनुष्य के पूर्वज को इस रूप में देखते हैं और उन का विश्वास है कि प्रारम्भ में जब मनुष्य प्रव्रजन की प्रक्रिया द्वारा योरुप में आया तो जातीय भेद पहले से ही स्थापित हो चुका था। चूँकि शिपाञ्जी तथा अन्य वानर त्वचा के वर्णों में पर्याप्त भेद रखते हैं।

हाफडन ब्राईन ( Halfdan Bryn ) के मत में तीन आधार भूत जातीय वर्ग हैं जो अपने आप में पृथक् २ सत्ता रखते हैं। इन तीनों जातीय वर्गों के पूर्वज तृतीयक काल में विद्यमान थे। उनका विचार है कि सब से

पुरातन वामन जातियां ( Pygmy ) हैं जो पृथक्करण के बाद अपने-अपने रूप में विकसित होती रही। इनसे अन्य अनेक जातियां विकसित हुईं। हिमालय तथा अन्य पर्वतीय शृंखला के प्रकट होने से पूर्व ही अन्त में उच्च जातियां एक पुरातन रूप से एशिया में विकसित हुईं।

तीसरा मत मि० टी० जी० टेलर का है, जिनका कथन है कि आदि कालीन जातियां पृथ्वी पिंड के किनारे के प्रदेशों में अवश्य रहती होंगी। अतएव तस्मानियन, एस्किमो तथा दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी इलाके में रहने वाले लोग मानव जाति के सब से पुरातन रूप हैं जिन्हें केन्द्रीय एशिया से पूर्व की ओर फैलने वाली विकसित जातियों ने पीछे की ओर खदेड़ा होगा।

मि० सी० एच स्ट्राट्ज ( C. H. Stratz ) तथा मि० एच० क्लाट्श (H. Klaatsch) का मत है कि आस्ट्रेलियन जाति मानवीय विकास की सबसे प्राचीन अवशिष्ट जाति है। इसी से नीग्रायड, मंगोलायड तथा यूरोपियन जातियां विकसित हुई। सन् १९१० में मि० क्लाट्श ने अपना विचार बदल लिया और इस मत की पुष्टि की कि एक ओर गोरिल्ला, नियन्डरथल मानव, तथा नीग्रो और दूसरी ओर ओरंगुटान, योरुपियन, मलाया, आस्ट्रेलियन तथा मंगोल—दो विभिन्न मानवीय शाखायें हैं। अन्य नीग्रो रूप शिपांजी से सम्बद्ध हैं।

## जाति, भाषा तथा संस्कृति—

इस जातीय सम्मिश्रण के आधार पर एक नवीन प्रकार की संस्कृति का प्रसार हुआ। इस सम्बन्ध में एस्किमो का उदाहरण सब से उपयुक्त एवं समयानुकूल जान पड़ता है। एस्किमो की संस्कृति में यद्यपि कई साधारण भेद हैं परन्तु उनसे कई आधारभूत समताओं का प्रकटीकरण होता है। यद्यपि कई भिन्न २ भाषाएं एस्किमो बोलते हैं परन्तु उनके बहुत से गुण एक समान हैं। ये एस्किमो लोग किसी विजातीय को स्थाई रूप से अपने बीच में रहने नहीं देते। यही कारण है कि सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप अन्य जातियों का जो प्रभाव एस्किमो पर पड़ना होता है वह भी उनके इस गुण, कर्म और स्वभाव के कारण नहीं पड़ सकता। संसार के अन्य प्रदेशों में यह बात नहीं। साधारण अवस्थाओं में शारीरिक रचना, भाषा तथा संस्कृति की अपनी-अपनी विशेषता होती है। प्रत्येक में परिवर्तन अवश्य होता है परन्तु एक-जैसी परिस्थितियों में नहीं। शारीरिक रचना तो तभी बदलती है जब दो जातियों के स्त्री पुरुषों में पारस्परिक सम्बन्ध हो जाता है। भाषा

बदलती नहीं अपितु तभी कुछ परिवर्तन हो जाती है जब दो जातियां एक ही स्थान पर दीर्घ काल के लिए अपना निवास-स्थान बना लेती है। उदाहरणार्थ अल्सास तथा लोरेन के इलाके के लोग भाषा की दृष्टि से फ्रांसीसी हैं और जर्मनी भी। फिनलैण्ड के लोगों ने १८ वीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में रूसी भाषा को अपना लिया परन्तु रूसी सभ्यता को बहुत कम अपनाया। हंगरी के मंगोलियन मग्यारो (Mongolian Magyars) ने योरुपियन अन्त-र्जातीय विवाह-सम्बन्ध स्थापित करके अपने मंगोलियन रूप को भी खो दिया परन्तु उन्होंने मध्य-योरुप की सभ्यता को अपना लिया। बहुत से हंगरी निवासी ऐसे हैं जो जर्मन भाषा भी जानते हैं परन्तु उन्होंने हंगरी भाषा को भी पूर्ण-रूपेण सुरक्षित रक्खा हुआ है। अमेरिकन नीग्रो जिन्हें अफ्रीका से जबरदस्ती खदेड़ कर अमेरिका भेजा गया—शारीरिक दृष्टि से तो नीग्रो ही रहे परन्तु उन्होंने अपनी भाषा और संस्कृति को विलीन कर दिया। सांस्कृतिक तथा भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण से नीग्रो अमेरिकन ही है। राइन नदी के दोनो किनारों पर बसे हुए लोग – अर्थात् दक्षिणी जर्मनी तथा उत्तरीय फ्रांस के लोग भाषा और संस्कृति में भेद रखते हैं परन्तु उनकी शारीरिक रचना एक समान है। इस प्रकार अन्य भी कई उदाहरण हैं। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक है कि हम शारीरिक रचना, भाषा तथा संस्कृति इन तीनों को पृथक्-पृथक् रूप से परिगणित करें। शारीरिक रचना के आधार पर किया गया वर्गीकरण भाषा तथा संस्कृति के आधार पर किये गए वर्गीकरण से बिल्कुल भिन्न है।

१६वीं शताब्दि के रूसी बहुत विद्वान्, शिक्षित, सभ्य तथा बुद्धिमान् समझे जाते थे। रूस के धनी परिवार के उच्च मध्यम-वर्ग के बच्चे जर्मन, फ्रेञ्च तथा अंग्रेज शिक्षकों की देख-रेख में शिक्षित किये जाते थे। उसका प्रभाव यह होता था कि वे बचपन में ही इन भाषाओं को भी सीख जाते थे। १८वीं शताब्दि के अन्त में जर्मन लोग दार्शनिक, कलाकार, भावुक और शान्तिप्रिय होते थे। प्रशिया के उत्थान के साथ-साथ वहाँ महान् परिवर्तन हुआ। फ्रेंको-प्रशियन युद्ध के बाद वे स्वमताभिमानी, कट्टर, पाण्डित्य प्रदर्शक और युद्धप्रिय हो गये। फ्रांसीसी अपनी सर्वपूर्ण यथार्थता, और बौद्धिक प्रखरता के लिए प्रसिद्ध हैं; परन्तु सीजर के युग में उनमें इन गुणों का अभाव था। १७वीं और १८वीं शताब्दि में फ्रांस में विज्ञान, दर्शन शास्त्र तथा साहित्य की उल्लेखनीय उन्नति हुई। परिणाम स्वरूप उनकी संस्कृति में नवीनता आ गई। अतः यह मानना पड़ेगा कि जाति, भाषा तथा संस्कृति के संसर्ग से नवीन संस्कृति का प्रसार होता है।

जातीय मनोविज्ञानः—

जातीय मनोविज्ञान के सम्बन्ध में मानव-विज्ञान-वेत्ताओं ने अपना कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित रक्खा है। मनुष्य के लिये कोई भी मनुष्य पराया नहीं। मानव-विज्ञान वेत्ता का कथन है कि मनुष्य के सभी आधारभूत चिन्ह सभी स्थानों पर विद्यमान रहते हैं। धार्मिक भावना की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति, कला की ओर मनुष्य का भुकाव सभी जातियों में पाया जाता है। मनुष्य चाहे प्रारम्भिक युग का हो चाहे आधुनिक युग का—उसमें धर्म और कला की प्रवृत्तियाँ निहित रहती हैं। परन्तु ऐसा नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति ही कलाकार, शिल्पकार तथा धर्मात्मा हो। हाँ इतना अवश्य है कि उनमें आनुपातिक भेद होता है। कला की ओर किसी की रुचि कम और किसी की ज्यादा। किसी की कला में अभिरुचि है तो किसी की शिल्प में। यह नहीं हो सकता कि प्रत्येक व्यक्ति कला, धर्म और आदर्श-वस्तुओं का पुजारी हो। जहाँ-जहाँ आदर्शों का वास है वहाँ-वहाँ समाज, सामाजिक संगठन तथा समाज के प्रति प्रदर्शन की भावना अवश्य पाई जाती है। समाज की घोषणायें ही विचार और न्याय बन जाती हैं और वे दण्ड और दबाव द्वारा लोगों पर लागू की जाती हैं। एक व्यक्ति समाज में ऐसा प्रभावशाली होता है जो उन पर नियन्त्रण रखता है और उनका नेतृत्व करता है।

यहाँ तक ही मनुष्य की प्रवृत्तियां समाप्त नहीं होतीं। इससे भी आगे मनुष्य आविष्कार करना चाहता है। वह पुराने विचारों की नये विचारों के साथ शृंखला जोड़ता है और पुराने विचारों का नये विचारों में सम्मिश्रण करता है और वह उन्हें इस प्रकार लागू करता है जिससे कि वे इस मौलिक तथा दृढ़ संसार में अपना प्रभाव डालते रहते हैं। संस्कृति के विस्तार का यही क्रम हम इतिहास में भी पाते हैं। प्रारम्भिक काल के कई आधारभूत अन्वेषण अब भी जीवित हैं। हम प्राचीन कालीन व्यक्तियों को असभ्य, धर्मविहीन और जंगली कहते हैं और यह भी मानते हैं कि उनका धर्म तो प्रतिदिन की घटनाओं और आवश्यकताओं के अनुसार बदलता रहता था। वह अपनी नाक से परे कुछ नहीं देख सकता। परन्तु इतना होते हुए भी हम प्राचीनकाल की सभ्यता से इन्कार नहीं कर सकते। उस सभ्यता के उपकरण, उस सभ्यता की अन्य वस्तुओं की हम सुरक्षा करते हैं। इस दृष्टिकोण से प्राचीनकाल की अपनी ही महत्ता है। अतः उनकी संस्कृति और भाषा का अध्ययन न करना और उन्हें अधूरा समझना भी ठीक नहीं। बहुत से लोग अब भी यह समझते हैं कि पुरानेकाल के प्राणियों की सभ्यता और भाषा अधूरी है; परन्तु यह बात सत्यता से कितनी

दूर है। पुरातनकाल की भाषा के आधार पर उनकी संस्कृति तथा उनके मानसिक विकास क्रम का पता चलता है।

मनुष्य का मस्तिष्क क्या चातुर्य और क्या मूर्खता प्रदर्शित करता है इसका अनुमान नहीं लगा सकते। जब मस्तिष्क कोई कार्य कर लेता है तब हम उस के कार्य और उसकी शक्ति का अनुमान लगाते हैं। पुरातनकाल के प्राणियों का मस्तिष्क भी विभिन्न-विभिन्न दिशा में क्या कुछ कार्य कर सका? इसके अध्ययन को हम उपेक्षा नहीं कर सकते। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरातन सभ्यता से नवीन सभ्यता ने कुछ ग्रहण किया और उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। जब मार्को पोलो १३वी शताब्दि में चीन गया तो वह ईसाई धर्म को अपने साथ चीन ले गया, जिसे चीनवासियों ने आसानी से ग्रहण नहीं किया परन्तु वापिस आने पर वह चीन के दार्शनिक सिद्धान्त और चीन का कलात्मक ज्ञान अपने साथ ले आया जिसे योरुप ने ग्रहण किया। दूसरी ओर जापान ने अपनी दकियानूसी को छोड़कर नवीन सभ्यता से सपर्क स्थापित किया। जब जापान ने अपने बन्दरगाह व्यापार के हेतु अमरीका और इंगलैण्ड के लिये खोल दिये तो इन्होंने पश्चिमीय सभ्यता से लाभ उठाकर वैदेशिक व्यापार को सीखा और परिणाम स्वरूप जापान एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। इसलिए हमें जातीय मनोविज्ञान का अध्ययन करते हुए ऐतिहासिक घटनाओं को अवश्यमेव दृष्टि में रखना चाहिये।

## जातीय समस्यायें—

लोगों के प्रव्रजन तथा सपर्क के परिणाम स्वरूप ही जातीय समस्याय उत्पन्न होती हैं। गत ३, ४ शताब्दियों से ये समस्यायें एक रोग का रूप धारण कर गई हैं। बहुत से राजनैतिक वर्ग ऐसे बन गये हैं जिन्होंने पृथ्वी को कई प्रदेशों में विभाजित कर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। जब शक्तियों के वर्गीकरण में त्वचा का वर्ण एक प्रमुख स्थान रखने लगा और गौर वर्ण जातिया अपने को उच्च समझने लगी तो विभिन्न-विभिन्न राजनैतिक वर्गों में भी अनेक प्राणिक सिद्धान्तों का समावेश हुआ। अतः प्राणिशास्त्रीय आधार पर राष्ट्रों का निश्चित वर्गीकरण नहीं किया जा सका। इस प्रकार विभिन्न-विभिन्न वर्गों ने वर्गों में कलह का बीज बोया। जातियों के साम्राज्यवादी सिद्धान्त ने शोषण-नीति द्वारा अपना प्रभुत्व स्थापित किया। जनसंख्या की वृद्धि, व्यवसाय की उन्नति, शहरों का निर्माण, कच्चे माल की मांग आदि समस्याओं ने संसार के मानवों में असुरक्षा की

भावना उत्पन्न की जिससे ऊँच और नीच के विचार उत्पन्न हुए। वर्गों के संघर्ष का सूत्रपात यहीं से होता है। अमीर और गरीब इन्हीं विचारों की देन हैं।

आनुवंशिकता तथा जाति का मिथ्या सम्बन्ध नाज़ी नमूने के उस जातिवाद-सम्बन्धी मय को उत्पन्न करता है जिसके परिणाम-स्वरूप नाज़ियों ने लाखों यहूदियों तथा पोलों को मौत के घाट उतारा। नाज़ियों अथवा फासिस्ट-वादियों को ही एकमात्र दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जातीय पक्षपात तथा जातीय दंगों का प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ा। गत महायुद्ध में जापान में आस्ट्रे-लियन सिपाहियों को जापानी स्त्रियों के सम्पर्क में नहीं आने दिया। आस्ट्रेलिया व अमेरिका में तो अन्तर्जातीय विवाह स्वीकृत ही नहीं किये जाते।

जातिवादियों का दावा है कि सांस्कृतिक भेद जातीय आनुवंशिकता का परिणाम है। ऊँची जातियां सदैव उच्च संस्कृति उत्पन्न कर सकती हैं। श्वेतांग जति की आर्यन शाखा एक उच्च शाखा है अतएव वह सभ्यता की जन्मदात्री है। उनमें जातीय सम्मिश्रण की भावना ने मालिन्य पैदा कर दिया है जिससे वे अपने उद्देश्य में असफल हो रहे हैं। सुन्दर सन्तति एवं सुप्रजनन विषयक (Eugenics) सिद्धान्तों पर आधारित जातिवाद को उन सभी राष्ट्रीय वर्गों की बुराइयों अथवा दुःखों के लिए रामबाण औषध समझा जाता है। इसके विपरीत संस्कृतिवादियों का कथन है कि जातियां कई उपजातियों में विभक्त हो गई हैं। काकेशस जाति में कम से कम तीन वर्ग सम्मिलित हैं। विभिन्न-विभिन्न जातियां एक संस्कृति को भी फैलाती हैं। कहीं-कहीं जातीय चिन्ह विद्यमान रहे परन्तु संस्कृति दूसरे रूप में परिवर्तित हो गई। संस्कृति संचय से बढ़ती है। यह एक सामाजिक विरासत है। अतएव सांस्कृतिक उन्नति की व्याख्या जाति पर नहीं, अपितु परिस्थिति पर निर्धारित है।

इसकी वैज्ञानिक व्याख्या बिल्कुल भिन्न है। वैज्ञानिक आनुवंशिकता की वैज्ञानिक युक्ति को स्वीकार करते हैं परन्तु वे प्रचण्ड जातीय भावना को भी कुछ-कुछ ठीक समझते हैं। हक्सले तथा हडन का मत है कि जातीय सम्मिश्रण जातियों में कई विभिन्नतायें उत्पन्न करता है। उसे हम विशुद्ध रूप नहीं मान सकते। संस्कृतियों का इन जातीय रूपों से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रजनन तथा संस्कृतियों के मिश्रण के प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट हैं। बौद्धिक परीक्षण मानवीय वर्गों में भेद करने में असफल हुए हैं अतः नास्तिक जाति-विचार भी एक कल्पना मात्र है। संस्कृति अथवा राष्ट्रीयता को शारीरिक रूपों से जोड़ना व्यर्थ है।

भारत में जातीय तत्त्व ( Race Elements )

मि० एच० एच० रिज़ले ने भारत में तीन प्रमुख जातीय रूप स्वीकृत किये हैं—द्राविड़ियन, इण्डो आर्यन तथा मंगोलियन। द्राविड़ियन तथा इण्डो-आर्यन रूप कई प्रान्तों में सम्मिश्रित पाये जाते हैं और कई जगह ये दोनों तीसरे जातीय रूप में भी मिश्रित हो गये हैं परन्तु तीसरा रूप उत्तरपूर्वीय सीमा तथा आसाम में पाया जाता है। जातियों के पृथुकपालीय चिन्ह को रिज़ले ने मगोल अथवा स्केथियन रूप से जोड़ा है। मि० ए० सी० हडन (A. C. Haddon) रिज़ले का जातीय वर्गीकरण स्वीकार नहीं करते। उनके मत में भारत में आदि-द्राविड़ियन द्राविड़ियन, ( कृष्णवर्णीय दीर्घकपालीय ) इण्डो आर्यन (श्वेतवर्णीय दीर्घकपालीय), इण्डो अल्पाईन ( पृथुकपालीय ) तथा मंगोलियन जातीय रूप हैं।

सादृश्यता के सिद्धान्त के आधार पर डा० गुहा ने भील तथा चेन्चू का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाया है। श्री वेंकटचर का मत है कि ये भील आर्यन तथा द्राविड़ियन से भी पहले भारत में वास करते थे। सम्भवतः ये लोग सहारा के जलवायु सम्बन्धी संकट के समय इधर-उधर फैल गये थे। उन्हों ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि भील-मुण्डा जाति का एक उप विभाग है जो आदि-द्राविडियन भारत में फैला हुआ था। भाषा की दृष्टि से भीलों को उरांव तथा मुण्डा से सादृश्यता नहीं की जा सकती।

डा० हटन ने भारत की जन संख्या में मैलानीशियन तत्वों का मिश्रण बताया है, परन्तु यह बात ठीक नहीं। यदि मैलानीशियन नीग्रो का तत्व समाविष्ट होता तो भारतीय संस्कृति पर उनकी गहरी छाप होनी चाहिए थी। हटन ने भारतीय जन संख्या में नेग्रिटो तथा आदि-आस्ट्रेलायड दोनो तत्वों का सम्मिश्रण सिद्ध किया है। उनका कथन है कि इन दोनों के सम्मिश्रण से ही आदि-द्राविडियन रूप विकसित हुआ। रक्त समुदायों अथवा अन्य युक्तियों के आधार पर अन्ततोगत्वा हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारत के आदि वासी आदि-आस्ट्रेलायड थे।

हमारे पास इस बात के अनेक प्रमाण है कि भारत के आदि वासी आदि-आस्ट्रेलायड थे। मुण्डा तथा उरांव यद्यपि विभिन्न भाषा-भाषी हैं परन्तु जातीय चिन्हों में अत्यन्त भेद नहीं रखते।

---

# द्वितीय भाग

## सांस्कृतिक मानव-विज्ञान

# परिवार

परिवार की परिभाषाः—

परिवार एक ऐसा संघ है जो विवाह संस्था द्वारा स्थापित होता है। परिवार समाज द्वारा स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का एक सर्वसम्मत रूप है। रैडक्लिफ़ ब्राऊन ने इसे एक ऐसे प्रारम्भिक रूप के नाम से पुकारा है जिस में पति, पत्नी तथा बच्चे समाविष्ट हैं। परिवार की इस परिभाषा के अन्तर्गत गोद लिये जाने वाले सभी बच्चे भी परिवार में परिगणित हो जायेंगे परन्तु वे बच्चे जो दाम्पत्य, पितृत्व अथवा अपत्य सम्बन्ध से असम्बद्ध होंगे उनका पारिवारिक योजना में कोई स्थान नहीं। घर में रक्खे जानेवाले क्रीत अथवा अक्रीत दासों को भी परिवार से पृथक् माना गया है।

परिवार एक प्रकार का सामाजिक संगठन है। इस सामाजिक संस्था का मानवीय इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ज्यों-ज्यों इस सामाजिक संस्था की उन्नति होती गई त्यों-त्यों मानवीय समाज इसकी मौलिकता एवं सार्वभौमिकता को समझने लग गया। स्त्री के लिए परिवार के संपर्क में आना, स्त्री बनकर पति का अंग स्वीकार करना तथा दोनों के दाम्पत्य सम्बन्ध के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान के प्रति मातृवत् अनुराग स्थापित करते हुए उसका पालन-पोषण करना—सहज एवं स्वाभाविक है। पुरुष के लिए अपने आश्रितों को सहारा देना व उनकी रक्षा करना स्वभावानुकूल कार्य है। इसी से पारिवारिक भावना की उत्पत्ति होती है।

परिवार मनुष्य-समाज का केन्द्रबिन्दु है। परिवार के जितने भी सदस्य होते हैं उन सब का एक ही सामान्य निवास स्थान होता है। निवास स्थान के परिवर्तन पर भी परिवार में अस्थिरता आ जाती है। परिवार के सभी बच्चे प्रारम्भ में माता पिता की छत्रछाया में रहते हैं परन्तु वृद्धावस्था में माता पिता सन्तान का आश्रय ले लेते हैं। परिवार का यह सामान्य रूप विश्वव्यापी है। चाहे विवाह-पद्धतियां भिन्न क्यों न हों परन्तु परिवार का स्वरूप तो एक ही है। आदि काल में जब परिवार-पद्धति का विकास न हुआ था तो उनमें व्यभिचार (Incest) की भावना ही नहीं थी।

परिवार व्यक्ति पर कई साधनों द्वारा अपना प्रभुत्व रखता है। जन्म,

मृत्यु, प्रसूतावस्था आदि अवसरों पर परिवार अपना कार्य एक इकाई के रूप में निभाता था। परिवार के सभी व्यक्ति इन अवसरों पर एकात्म्य की भावना रखते थे। एक सन्तति से दूसरी सन्तति की ओर जब कोई सांस्कृतिक परिवर्तन होता है तो परिवार उसमें महत्वपूर्ण भाग लेता है। परिवार द्वारा बच्चों को शिक्षा और संस्कृति का पाठ पढ़ाया जाता है।

रिवर्स का मत है कि बहु-विवाह प्रथा द्वारा पारिवारिक भावना में अनेक जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। क्योंकि यदि कई स्त्रियों से उत्पन्न हुए दो बच्चे एक साथ एक ही मकान में रहेंगे तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध में विषमता आ जाएगी और यदि पृथक्-पृथक् घरों में रहें तो पारिवारिक भावना लुप्त हो जाएगी। रिवर्स का यह भी विचार है कि कोई भी पारिवारिक घटना परिवार की अस्थिरता का कारण बन सकती है। पति अथवा पत्नी की मृत्यु से परिवार का भी विनाश हो जाता है। लड़के अथवा लड़की के विवाह से परिवार का विधान परिवर्तित हो जाता है।

एक ओर हम कई प्राचीन जातियों में यह प्रथा पाते हैं कि एक युवा विधवा, पति-गृह को छोड़कर अपने माता-पिता के यहां चली जाती थी, तो भी उसे परिवार का अंग समझा जाता है और पारिवारिक सदस्यता से पृथक् नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर हम यह भी प्रथा देखते हैं कि जब एक अमेरिकन घर से दूर आस्ट्रेलिया में जाकर बस जाता है तो उसे परिवार का सदस्य नहीं समझा जाता। मैलानीशिया में तो यहां तक भी प्रचलित था कि जब एक लड़का पिता का घर छोड़ कर दूसरों के यहाँ वास करने लगता तो उसे अपने पिता के परिवार में पुनः सम्मिलित नहीं किया जाता था।

### पारिवारिक-जीवन का विकासः—

परिवार को समाज का केन्द्रबिन्दु कहने का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य परिवार में रह कर ही सामाजिक जीवन का विकास करता है। पारिवारिक-जीवन सामाजिक जीवन का आधार है। इसमें संदेह नहीं कि स्त्री और पुरुष में लैङ्गिक सम्बन्ध उनकी शारीरिक तृष्णाओं की पूर्ति का साधन है परन्तु इस भावना के साथ-साथ उनमें एक-दूसरे की कामना, एक साथ रहने की इच्छा का भी प्रादुर्भाव होता है। परिवार के सभी सदस्यों में एक दूसरे के प्रति कुछ ऐसे कर्तव्य होते हैं जिनकी पूर्ति में वे सदा तत्पर रहते हैं। यों तो परिवार में पति-पत्नी तथा सन्तान की परिगणना

की जाती है परन्तु जब हम परिवार की विस्तृत व्याख्या करते हैं तो उसमें निकटस्थ एवं दूरस्थ सभी सम्बन्धियों की परिगणना की जाती है जो सदैव एक साथ रहते हों। सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिवार का महत्व अत्यधिक माना जाता है। माता-पिता असहाय सन्तान की सुरक्षा का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर इसलिए ले लेते हैं ताकि वृद्धावस्था में वह सन्तान उनके वार्धक्य का सहारा बने। यदि यह भावना माता पिता में अन्तर्निहित न हो तो सम्भवतः परिवार का रूप ही बदल जाये। पारिवारिक भावना का प्रारम्भ भी इसी सिद्धान्त पर आश्रित होता है। मनुष्य में पारिवारिक-योजना के निर्माण की भावना कतिपय विशिष्ट गुणों के आधार पर होती है, जो निम्न हैं :—

१. प्राणिशास्त्रीय उत्कण्ठाः—प्राणिशास्त्र वेत्ताओं के विचार में स्त्री और पुरुष की अंगरचना का भेद उनके गुण, कर्म और स्वभाव में भी नानाविध विभिन्नतायें उत्पन्न करता है। पुरुष अपने स्वभाव के अनुसार सदा से अपने आश्रितों के लिए खाद्य-सामग्री जुटाने तथा उनका पालन-पोषण करने का कार्य सम्पन्न करता रहा है और स्त्री घर में रहकर बालबच्चों की देखरेख करती रही है। दोनों के भाव-सामञ्जस्य से परिवार की सम्पूर्ण क्रियायें सुचारु रूप से पूरी होती रही हैं।

प्रसिद्ध लेखक वैस्टरमार्क का कथन है कि 'मातृत्व' की प्रवृत्ति और 'मातृत्व' की भावना से ही पारिवारिक जीवन का उद्गम हुआ। उनका विचार है कि प्राचीन काल में परिवारों के मातृ-प्रधान होने का कारण भी यही था कि माता के हृदय में सबसे प्रथम सन्तान की इच्छा उत्पन्न होती थी। पिता के निश्चित न होने पर स्त्री सन्तानोत्पादन के लिए किसी पुरुष से सहवास कर सकती थी। पिता की इस अनिश्चितता के कारण माता के नाम से ही बालक का वंश चलता था। माता के हृदय में भावी सन्तान के प्रति स्नेह तो होता ही था, परन्तु उसमें बालक को परित्याग करने की भावना कभी भी उत्पन्न नहीं होती थी। जिस बालक को वह अपनी कोख से जन्म देती थी उसकी रक्षा के लिए सब प्रकार का बलिदान करना वह अपना धर्म समझती थी। परिणामतः स्त्री को दो विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। प्रथम कठिनाई तो यह कि जब वह स्वयं आजीविका के लिए बाहर जाये तो बच्चे की रक्षा किसके हाथों में सौंपे? दूसरी कठिनाई यह कि स्त्री अपनी मासारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसको अपना भागीदार बनाये? स्त्री ने अपनी इन दो कठिनाइयों के दूरीकरण का एकमात्र साधन पुरुष को समझा और स्त्री ने

पुरुष के हाथों आत्मसमर्पण कर दिया। अतः सर्वप्रथम परिवार की भावना का प्रारम्भ हुआ। पुरुष अपनी शक्ति के कारण धीरे-धीरे इस पारिवारिक योजना में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता गया और समाज में मातृसत्तात्मक परिवार और पितृसत्तात्मक परिवार की प्रथा का विकास हुआ।

शैशवकाल की दीर्घता:—पारिवारिक भावबोत्पत्ति का एक अन्य कारण शैशवकाल (Infancy) की विस्तीर्णता (Prolongation) है जो केवलमात्र मानव जाति में ही पाई जाती है। पशु बत्सजन्म के कुछ ही समय बाद प्रकृति में विचरण करने लगता है परन्तु मानवीय शिशु को पृथ्वी पर खड़े होकर चलने में भी कई वर्षों की तपस्या करनी पड़ती है। प्रकृति उसे अकेला छोड़ने में तत्पर नहीं होती। अतएव ६ मास तक गर्भ-संरक्षण करनेवाली जननी स्वयमेव ही प्राकृतिक परिस्थितियों की अनुकूलता के अन्तर्गत उसके पालन-पोषण का समस्त भार अपने ऊपर ले लेती है। आखिर मां भी तो इतनी निर्बल, शक्तिहीन एवं असहाय होती है कि वह अपने संरक्षक और आजीविकोपार्जन का आश्रय चाहती है। पुरुष अपने परमात्मा-प्रदत्त गुणों को लेकर संरक्षण का समस्त भार अपने सबल कन्धों पर वहन करता हुआ नवीन क्षेत्र में पदार्पण करता है। यहीं से पारिवारिक जीवन का श्रीगणेश होता है। यदि पशुवत्स की न्याईं मानवीय बालक में भी प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल स्वयमेव अपने पैरों पर खड़े हो जाने का गुण उत्पन्न हो जाये तो सम्भवतः वह भी अपने माता-पिता से दूर कहीं विजन में भाग जाय। परन्तु प्रकृति ने उसे इस योग्य नहीं बनाया, अतएव वह माता पिता के सम्पर्क में ही रहने पर बाध्य हो जाता है। पारिवारिक भावना का यह सुन्दर विवरण मानव-समाज की सर्वोपरि विशेषता है।

३. पुरुषाधिकार-भावना (Male-Possessiveness) भी पारिवारिक भावना की उत्पत्ति का कारण है। आदि काल में जब मनुष्य वर्ग बनाकर रहा करता था और अपनी प्रेमिका से किसी अन्य व्यक्ति को प्यार करता देखता था तो उसे ईर्ष्या होती थी। वह अपने शत्रु को वर्ग से बाहर निकाल कर अपनी प्रेमिका को अपने साथ रखने की इच्छा करता। इस प्रकार स्त्री और पुरुष में लैङ्गिक सम्बन्ध के साथ-साथ एक साथ रहने की भावना भी जागृत होती थी। शारीरिक एवं मानसिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए परिवार को एक स्थायी रूप दिया गया।

इसके विपरीत कई आधुनिक मानवशास्त्रियों का विचार है कि यह पारिवारिक भावना मनुष्य के जीवन में प्रारम्भ से ही चली आ रही है। उनका कथन है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से उसका

स्वभाव ही परमात्मा ने ऐसा बनाया है कि वह अन्य जीवों की भाँति किसी न किसी का आश्रय चाहता है। प्रकृति ने स्त्री को पुरुष से निर्बल बनाया है। उसे अपने जीवन के कई अवसरों पर किसी दूसरे सहायक की कामना रहती है। गर्भावस्था तथा प्रसूतावस्था में विशेष रूप से वह अपने आपको असहाय अनुभव करती है। अतः स्त्री के लिए पुरुष की कामना और पुरुष के लिये स्त्री की कामना न केवल स्वाभाविक ही है अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी उपयुक्त एवं ग्राह्य है। इस भावना का उत्पादन ही पारिवारिक प्रथा का प्रथम सोपान है।

## निवास स्थान ( Residence )

मातृ-गृह अथवा पितृ-गृह (Matrilocal or Patrilocal); पारिवारिक योजना का महत्व बहुत कुछ निवास सम्बन्धी नियमों पर आधारित था। विवाह के पश्चात् सबसे मुख्य प्रश्न यह होता था कि नव दम्पति स्थाई अथवा अस्थाई रूप से कहाँ रहें ? पत्नी-गृह में, पति-गृह में अथवा अपना स्वतन्त्र घर बनाकर। ऐसा प्रतीत होता है कि कई जातियों में तो पत्नी-गृह को और कई जातियों में पति-गृह को ही अपना घर बना लिया जाता था। इस सम्बन्ध में हम दो जातियों के उदाहरण पेश करते हैं। पितृ-गृह के पक्षपाती 'हूपा' (Hupa) जाति के लोग दूसरे गाँव में विवाह करते थे और अपनी पत्नी को अपने ग्राम में ले आते थे। पति, पत्नी, उसके पुत्र और अविवाहित लड़कियाँ एक साथ रहती और लड़कियाँ विवाह के पश्चात् अपने पतियों के यहाँ किसी दूसरे ग्राम में चली जाती थी। इस प्रकार पुरुष तो जहाँ पैदा होता सारी आयु वहीं रहता और मर जाता था परन्तु स्त्री अपने जीवन का बड़ा भाग अपने जन्म-स्थान से दूर व्यतीत करती थी। इस प्रथा के अतिरिक्त यह भी प्रचलित था कि जो व्यक्ति विवाह के समय लड़की के माता-पिता को निश्चित धनराशि न दे सकता था उसे अपने ससुराल में रहकर नौकरी करनी पड़ती थी। इस प्रकार जो बच्चे पैदा होते थे वे माँ के घर पर ही रहा करते। जिस पितृ-गृह का स्वरूप कुछ और ही होता था।

दूसरी ओर प्यूब्लो इण्डियन्स (Pueblo Indians) को लीजिये—जिनके यहाँ मातृ-गृह योजना की प्रथा थी। नव दम्पति विवाह के पश्चात् पत्नी के घर जाकर रहते थे और घर का केन्द्र माँ, नानी, मामी, माँ के अविवाहित भाई आदि पर आधारित होता था। पति विवाह के पश्चात् पत्नी के घर तो रहता था परन्तु उसकी स्थिरता न रह पाती थी। तलाक की अवस्था में उसे

पत्नी का घर छोड़कर अपने उस स्थान पर चला आना पड़ता था जहाँ का स्वामित्व उसकी माँ अथवा किसी बहन के हाथ में होता था। अर्थात् विवाह के पश्चात् भी पति अपनी माँ के घर को अपना घर समझता था न कि पत्नी के घर को। बच्चे सदैव अपने मामा के सम्पर्क में अधिक रहा करते और बच्चों के पिता की स्थिति उस घर में एक अतिथि के रूप में हुआ करती थी।

इसके अतिरिक्त कुछ जातियों में निवास का एक और रूप भी विद्यमान था। वह यह कि विवाहेच्छुक ( Suitor ) प्रारम्भ में तो अपने ससुराल में नौकरी करते और बाद में पत्नी को अपने घर ले जाते थे, जैसे कि उत्तरीय साइबेरिया की कोरयाक (Koryak) जाति में। युकाघीर (Yukagbir) लोग पत्नी-गृह को ही अपना निवास-स्थान बनाते थे। एस्किमो में दोनों पद्धतियाँ प्रचलित थीं। ग्रीनलैण्डवासी एस्किमो विवाह के पश्चात् अपनी पत्नी को पिता के घर से लाता था परन्तु लैब्रेडर (Labrador) जाति के एस्किमो पत्नी के गृह में रहा करते थे। परन्तु इन सब अवस्थाओं में यह निश्चित था कि जब कोई विवाहेच्छुक विवाह के समय 'कन्या-धन' ( Bride Price ) देने में असमर्थ रहता तो वह विवश होकर ससुराल में नौकरी करता था।

नीलगिरि की टोडा जाति में निवास स्थान तो मातृ-गृह होता है परन्तु विधि-विधानादि पितृगृह वाले सम्पन्न करते हैं।

होपी ( Hopi ) जाति में पति का पत्नी-गृह में रहना आवश्यक न था। इसके विपरीत हवासुपाई ( Havasupai ) जाति में स्त्री विवाह के पश्चात् पति-गृह में चली जाती थी। भूमि-सम्बन्धी सभी अधिकार पुरुष को प्रदान किये जाते थे। उत्तर पश्चिमीय एमेज़ान (Amazan) प्रदेशों में पत्नी पति-गृह को ही अपना घर समझती थी।

२. मातृनामी तथा पितृनामी योजना ( Matrinymic and Patranymic )—मातृ-गृह की प्रधानता में परिवार भी मातृनामी होते हैं और पितृ-गृह की प्रधानता में परिवारों का नाम भी पिता के वंश पर चलता है।

३. वंश—जहाँ तक वंश का सम्बन्ध है मातृ-प्रधान परिवारों में मातृवंश (Matrilineal) और पितृ-प्रधान परिवारों में पितृवंश (Patrilineal) चलता है।

४. सत्ता ( Authority )—मातृ-प्रधान परिवारों में मातृ सत्ता ( Matriarchate ) प्रधान होती है। माता के पक्ष के सभी व्यक्तियों को विशेष अधिकार होते हैं। धार्मिक विधि-विधानों, उत्सवों आदि में उनके विशेष कर्तव्य होते हैं। पितृ-प्रधान परिवारों में पितृ-सत्ता ( Patriarchate )

प्रधान होती है। सभी विधि-विधान पितृ पक्षवाले अपने हाथों से करते हैं। इनका विशद वर्णन हम आगामी अध्यायों में पढ़ेंगे।

## परिवार के रूप—

मानवशास्त्रियों के विचार में परिवार के नानाविध रूप हैं। यों तो परिवार मुख्य रूप से माता-पिता तथा बच्चों से परिगणित किया जाता है। परन्तु गौण रूप से माता तथा पिता के सम्बन्धियों को भी परिवार में गिन लिया जाता है। यदि हम परिवार का विस्तृत रूप लें तो हमें 'जातीय परिवार' और 'विश्व परिवार' आदि शब्द भी प्रतिदिन सुनने में आते हैं जिनसे परिवार की विस्तृत भावना के साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणियों में अन्तर्निहित प्रेम भावना का आभास होता है। माता-पिता और सन्तान परिवार का लघु रूप है। माता, पिता, सन्तान, सम्बन्धी तथा रक्त सम्बन्धी, समुदाय, कुटुम्ब, जाति आदि भी परिवार के विस्तृत रूप के द्योतक हैं। परन्तु परिवार का एक विशाल और विश्व-व्यापी रूप भी है जिसे अनेक विद्वान् 'विश्व-परिवार' आदि भावना से सम्बद्ध करते हैं।

परिवार के सर्वसम्मत रूप निम्न हैं, जिनका समझना अत्यन्त आवश्यक है :—

१. एकविवाही परिवार (Monogamous Family)

२. बहुविवाही परिवार (Polygamous Family)

३. मिश्रित परिवार (Mixed Family)

४. विकसित परिवार ( Extended Family ) एकपक्षीय ( Unilateral), द्विपक्षीय ( Bilateral )

## एकविवाही परिवार (Monogamous Family )

व्यक्तिगत परिवार ( Individual Family ) तथा एकविवाही परिवार ( Monogamous) का स्वरूप तो आदि काल से चला आया है। इस पद्धति के अन्तर्गत एक पत्नी, एक पति और बच्चे ही परिवार का रूप धारण करते हैं। जिन दिनों में पारिवारिक योजना अभी पूर्ण विकसित नहीं हुई थी उन दिनों परिवार की रचना का आधार दाम्पत्य-प्रेम पर आश्रित होता था। एक पति और एक पत्नी अपने जीवन को सुखद बनाने के लिए घर का निर्माण करते तथा सन्तान के संरक्षण का कठोर व्रत धारण

करते। यह परिवार सम्बन्धी पवित्र भावना उनमें पारस्परिक स्नेह और स्थिरता को अक्षुण्ण बनाये रहती और पति-पत्नी में दुर्भावना का विचार उत्पन्न न होने देती। एकविवाही परिवार-योजना को ही हम आदर्श रूप मान सकते हैं क्योंकि ज्यों-ज्यों विवाह की अन्य पद्धतियां जारी होती गईं त्यों-त्यों इस आदर्श भावना का ह्रास होता गया और आदर्शपरिवार-योजना भी परिवर्तित होती गई।

## बहुपति व बहुपत्नी-परिवार :—

बहुपति प्रथा (Polyandry) द्वारा परिवार का रूप बदल जाता था। एक स्त्री, स्त्री के अनेक पति तथा उनके बच्चे एक ही परिवार में रहते थे। इसी प्रकार बहुपत्नी प्रथा (Polygymy) द्वारा भी पारिवारिक स्वरूप में परिवर्तन अवश्य आ जाता था। पति एक और पत्नियाँ अनेक। उन पत्नियों से जितने भी बच्चे पैदा होते थे, वे सब एक ही परिवार में रहते थे। यों तो परिवार का सर्वसामान्य रूप एकविवाहीय (Monogamous) था और एक मां, एक बाप तथा उनके बच्चे एक परिवार बनाकर रहा करते थे। परन्तु जैसे-जैसे आदिकालीन जातियों में विवाह सम्बन्धी नियम परिवर्तित होते गये वैसे-वैसे पारिवारिक योजना में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा। एक पत्नी व एक पति के विवाह का रूप तो विश्वव्याप्त है परन्तु एक पुरुष की कई पत्नियां हों और एक स्त्री के कई पति हों यह कुछ अस्वाभाविक-सा जान पड़ता है। एक ही प्रदेश में स्त्रियों व पुरुषों की संख्या में आनुपातिक दृष्टि से कमी हो जाने अथवा व्यभिचार की भावना बढ़ जाने से ही ये प्रथायें पनपने लगती हैं।

चकरौता की खासा जाति तथा अन्य कतिपय पर्वतीय प्रदेशों में अब भी यह प्रथा विद्यमान है। सभी भाई एक ही स्त्री के पति कहलाते हैं और उनसे उत्पन्न बच्चे एक ही परिवार में रहते हैं। नागा जाति के बहुपत्नी-परिवार के रूप के साथ-साथ कुछ शान-सम्बन्धी भावनायें भी जुड़ी हुई हैं। एक नागा जब निर्धारित संख्या में अपने शत्रुओं के सिर काटकर ले आता है तो इस विजयोपहार के बदले में बहुत सी स्त्रियां उसे अपना पति स्वीकार कर लेती हैं। इस प्रकार उसका परिवार कई स्त्रियों और बच्चों से शोभायमान होता है। १६वीं शताब्दि तक हिन्दुओं और मुसलमानों में उच्च जाति के वर्गों में बहुपति-प्रथा की विद्यमानता के कारण परिवार में एक पति, अनेक पत्नियां और बच्चे परिगणित किये जाते थे। इनका विस्तृत वर्णन हम विवाह प्रकरण में पायेंगे।

## मिश्रित-परिवार (Mixed Family)

आदिकालीन जातियों में अनेक माताओं और पिताओं के एक साथ रहने का भी उल्लेख मिलता है। उन जातियों में उत्पन्न होने वाले सभी बच्चे अपनी मा को माता-रूप में तथा वर्ग में रहने वाली अन्य सभी स्त्रियों को मासी आदि के रूप में स्वीकार करते थे। ये स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप में कार्य करते तथा आजीविकोपार्जन के साधन जुटाते।

संयुक्त परिवार को हम एक 'सापत्तिक संघ' का रूप भी मान सकते हैं क्योंकि हम देखते हैं कि धीरे-धीरे इन मिश्रित-परिवारों में भी श्रम-विभाजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। कुछ लोग आखेट-व्यवसाय को अपनाने लगे, कई खाद्यसामग्री जुटाने का कार्य वहन करने लगे और कई घरों में रहकर ही बच्चों का संरक्षण किया करते। धीरे-धीरे इन मिश्रित परिवारों का आर्थिक-विभाजन होता गया और मिश्रित-परिवार कई भागों में विभक्त हो गये।

उत्तरीय रोडेशिया तथा दक्षिणी अमेरिका के इण्डियन्स में संयुक्त परिवार का रूप कुछ भिन्न है। ये लोग परिवार के प्रधान को, उसकी स्त्रियों को, लड़कियों तथा लड़कियों के पति को संयुक्त परिवार में सम्मिलित करते हैं। करीरा जाति में दामाद अपने श्वसुर के यहाँ तो अवश्य रहता है परन्तु वह और उसकी पत्नी अपनी रसोई पृथक् रूप से बनाते हैं। वे संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों से खाने-पीने के मामले में पृथक् रहते हैं। वे खेती भी पृथक्-पृथक् रूप से करते हैं। स्त्री अपने पति तथा बच्चों के लिए सब्जी, अनाज आदि बोया करती है। इस अवस्था में उनकी प्रारम्भिक परिवार की भावना तथा संयुक्त परिवार की भावना—दोनों अपने-अपने रूप में विद्यमान रहती हैं।

## विकसित परिवार ( Extended Family )

इस पारिवारिक योजना के अन्तर्गत सभी रक्त-सम्बन्धी व अन्य सम्बन्धी सम्मिलित होते हैं। ये एकपक्षीय ( Unilateral ) अर्थात् मातृ प्रधान व पितृ प्रधान परिवार में से एक से भी सम्बद्ध होते हैं और द्विपक्षीय(Bilateral) अर्थात् मातृ पक्ष तथा पितृ पक्ष दोनों से भी सम्बद्ध होते हैं। जब परिवार इतना विस्तृत हो जाता है जिससे एक दूसरे को सम्बन्ध व रिश्तेदारी का ठीक-ठीक ज्ञान भी नहीं हो पाता। केवल मात्र वे इतना ज्ञान रखते हैं कि हम एक ही वंश के वंशज हैं। एक ही विकसित परिवार के सदस्यों की संख्या हजारों तक पहुँच जाती है। इन सभी सदस्यों का निवास स्थान, तथा कार्य

एक होता है, और वे परिवार के एक मुखिया को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

हिदात्सा (Hidatsa) जाति में यों तो मातृनामी परिवार की प्रधानता है परन्तु कई ऐसे पवित्र एवं धार्मिक विधि-विधान हैं जो पिता द्वारा ही पुत्र के लिए सम्पन्न किये जाते हैं। सभी शुभ अवसरों पर पिता के सम्बन्धी ही उपहार भेंट करते हैं। मृतक की अन्त्येष्टि क्रिया के अधिकारी भी पिता के संबंधी ही होते हैं, नकि माता के। थोंगा ( Thonga ) जाति में पितृनामी परिवार की प्रधानता है, परन्तु इनमें भी माता के भाई अथवा अन्य सम्बन्धियों के विशेष उल्लेखनीय अधिकार होते हैं। मामे को अपने भाञ्जे के सभी शुभ विधि-विधान पूरे करने पड़ते हैं और वह अपनी बहिन के उस धन के कुछ भाग का भी अधिकारी होता है जो उसे विवाह के समय ससुरालवालों से प्राप्त होता था।

कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि दो परिवारों में एक साथ सदस्यता बन रही हो। कनेला ( Canella ) जाति में एक व्यक्ति अपने मातृपक्षीय परिवार से भी सम्बन्ध रखता है और पितृपक्षीय परिवार से भी। यद्यपि वह अपनी स्त्री के लिए कृषि का कार्य करता और उसे भोजन प्रदान करता है परन्तु अपने शिकार का कुछ भाग वह अपनी माँ को भी देता है। अपने घर का कुछ सामान वह अपनी माँ के पास रखता और जब बीमार होता तो माँ के घर लौट आता है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मरणकाल के समय वहीं जीवन समाप्त करने में अपना अहोभाग्य समझता है।

सैमोन तथा एलोरीज जाति के बच्चे अपने बाप का घर छोड़कर अस्थाई रूप से दूसरे सम्बन्धियों के यहाँ चले जाते हैं। इस प्रकार परिवार के नानाविध रूप हमें अनेक जातियों में उपलब्ध होते हैं। लेवी-स्ट्राम के शब्दों में परिवार चाहे कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो वह अपने आप में अपर्याप्त है और पारिवारिक रूपों में सदैव परिवर्तन होता रहता है।

### माता-पिता तथा सन्तान—

माता-पिता तथा सन्तान के मध्य चार प्रकार का सम्बन्ध होता है। प्रथम पिता तथा पुत्र का, द्वितीय पिता तथा कन्या का, तृतीय माता तथा पुत्र का, चतुर्थ माता तथा कन्या का। श्रम-विभाजन की परम्परागत प्रणाली के अनुसार पुत्र सदैव पिता के कार्यों में सहयोग देता चला आया है और कन्या माता के काम में हाथ बंटाती रही है। यदि किसी समाज में स्त्री के धन की प्रधानता

हैं तो पिता को अपने पुत्र के लिए वधू खरीदने की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। ज्यों-ज्यों लड़का बड़ा होता जाता है त्यों-त्यों पिता और पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध में भी भेद होता जाता है। टाल्स्टाय तथा तुर्गनेव जैसे विद्वानों ने ग्रन्थों में इस भेद का विशद वर्णन किया है। मुरंगिन (Murngin) जाति में नवजात शिशु के लिए पिता सब प्रकार की यातनायें भोगता है परन्तु बड़ा होने पर पिता तथा पुत्र में कलह होने लगती है। यहाँ तक कि कई बार पुत्र अपनी सौतेली माँ से भी व्यभिचार करने पर तत्पर हो जाता है।

आयरलैण्ड तथा योरुप के अन्य भागों में यह प्रथा है कि पिता अपनी आवश्यकतानुसार सम्पत्ति का कुछ भाग रखकर अवशिष्ट सम्पत्ति अपने विवाहेच्छुक पुत्र को सौंप देता है। इससे अन्य छोटे भाइयों को धोखा हो जाता है और उनमें पारस्परिक कलह प्रारम्भ हो जाती है। उन भाइयों की दृष्टि में वृद्ध पिता का मान भी कम हो जाता है। शक्ति तथा धन की मदान्धता के कारण राजपुत्र अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह की आग लगा देते हैं। इसका कारण यह है कि उन भाइयों का पारस्परिक सैद्धान्तिक मतभेद सन्ततियों में भी पार्थक्य की भावना उत्पन्न करा देते हैं। जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय तथा उनके पिता में जो शत्रुता चली वह इसी सिद्धान्त का ही परिणाम था।

माता-पिता वृद्ध होने पर दैनिक जीवन की क्रियाओं में भाग नहीं लेते अपितु विधि-विधानों का नियन्त्रण करते रहते हैं। कई जातियों में वार्धक्य को अत्यन्त घृणित दृष्टि से देखा जाता है। एस्किमो लोग रुग्ण तथा वृद्ध व्यक्ति को भार-स्वरूप समझते हैं और उसे पृथक् गृह में रखते हैं, जहाँ वह मृत्यु की घड़ियाँ गिना करता है और जहाँ उसे उपवास द्वारा अनेक यातनायें दी जाती हैं।

शैशव काल :—

सन्तान से प्यार और मोह की भावना तो सभी जातियों में पाई जाती है परन्तु सन्तान के पालन-पोषण का ढंग पृथक्-पृथक् है। बच्चे का प्रारम्भिक जीवन उसके भावी चरित्र-निर्माण का निर्णायक होता है। शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उसकी अभिरुचिका अनुमान लगाया जा सकता है। बच्चों की समस्याओं को सुलझाने तथा उन्हें नियन्त्रण में रखने के लिए नानाविध प्रथायें प्रचलित हैं। दूध छुड़ाने के बाद शिशु की सामाजिक परिस्थितियां अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। बच्चा जिस वातावरण में पलता है उसके अनुकूल वृत्तियों को धारण कर लेता है।

एक एस्किमो शिशु अपनी घर की चारदीवारी में रहने के कारण बाह्य

वातावरण का ज्ञान नहीं कर पाता और उसे अन्य बच्चों से खेलने का स्वर्णावसर ही प्राप्त नहीं होता। परन्तु इसके विपरीत पश्चिम-उत्तरी अमेरिका का शिशु तीन वर्ष की आयु प्राप्त होने पर बाह्य वातावरण में डाल दिया जाता है और वह नियन्त्रण सम्बन्धी सम्पूर्ण शिक्षा माता-पिता से नहीं अपितु अन्य बच्चों से प्राप्त करता है। परिणामत दोनों शिशुओं में हम महान् अन्तर पाते हैं। जहां एस्किमो बालक अल्पमति, अपटु तथा संकुचित वृत्ति वाला होता है, वहां अमेरिकन बालक ज्ञान, प्रतिभा एवं बुद्धिचातुर्य से संयुक्त होता है। बच्चों को दण्ड देने के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न प्रणालियां विद्यमान हैं।

शिक्षा :—

गुरुमुख से तथा स्कूल व सार्वजनिक स्थान पर एकत्रित होकर शिक्षा ग्रहण करने की परिपाटी भी प्राचीन जातियों में विद्यमान थी। पूर्वीय अफ्रीका व उत्तर-पश्चिमी अमेरिका की कई जातियां किसी वृद्धजन की छत्रछाया में अपने बालक व बालिकाओं को शिक्षा दिलाती थी। धार्मिक, सांस्कृतिक तथा काव्य सम्बन्धी शिक्षा का स्वरूप उन्हें भलीभांति समझाया जाता था। कतिपय उच्च व धनी जातियां बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिए पुरोहितों तथा पण्डितों की भी नियुक्ति किया करती थी।

पति-पत्नी सम्बन्धः—

जिस प्रकार माता पिता के, पिता पुत्र के तथा माता पुत्र के पारस्परिक सम्बन्ध समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और हम इन सम्बन्धों की अवहेलना नहीं कर सकते उसी प्रकार पति-पत्नी के शारीरिक आकर्षण को भी भुलाया नहीं जा सकता। यदि हम विवाह प्रथा का इतिहास देखें तो हमें सभी जातियों की विवाह-प्रथा भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होगी। बहुत सी जातियों में स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और संसार की बहुत सी जातियां उन्हें बहुत सम्मान प्रदान करती हैं। उत्तरीय अमेरिका के इण्डियन्स में तो यहां तक भी देखा गया है कि पति-पत्नी में से एक के मर जाने पर दूसरा भी अपने प्राण विसर्जित कर देता है। इसके विपरीत युगोस्लाविया के किसानों में तथा अल्बानियन घरबारों में पति-पत्नी को एक साथ बैठकर खाने की मनाही होती है। स्त्री और पुरुष पृथक्-पृथक् बैठकर भोजन करते हैं। ग्रीक तथा लैटिन देशों में स्त्री को पति का बौद्धिक साथी

समझा जाता है और वह सदैव अपने पति को विभिन्न-विभिन्न विषयों पर परामर्श देती रहती है।

कई स्थानों पर भाई-बहिन के सम्बन्ध में भी भेद पाया जाता है। धीरेन्टे जाति में भाई-बहिन को घर से बाहर अकेले मिलने की इजाजत नहीं होती। होटन्टाट जाति में भी बड़ी आयु के भाई-बहिन आपस में बातचीत नहीं कर सकते। बड़ी बहिन का इतना मान होता है कि वह अपने भाई की लड़ाई को बन्द करा सकती है। बहिन की उपस्थिति में भाई न तो किसी से लड़ाई-झगड़ा कर सकता है और न ही गाली-गलौच का सूत्रपात कर सकता है। यह सब प्रतिबन्ध युवावस्था की सम्प्राप्ति पर लगाये जाते हैं ताकि किसी प्रकार का व्यभिचार न फैल सके।

पारिवारिक जीवन में अस्थिरताः—

लड़के और लड़कियों का विवाह के पश्चात् अपने परिवार से पृथक् वास करना ही पारिवारिक जीवन की अस्थिरता का मुख्य कारण है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत परिवारों (Individual Family) पर तो स्पष्टतया लागू होता है। जब एक परिवार की लड़कियाँ विवाह के पश्चात् अपने पतिगृहों में चली जाती हैं और लड़के भी स्वतन्त्र रूप से पृथक् घर बना लेते हैं तो पारिवारिक जीवन की वह भित्तिका—जिस पर माता-पिता व बच्चे सभी संयुक्त रूप से आश्रित होते हैं—धीरे-धीरे चकनाचूर होने लग जाती है। माता-पिता के वार्धक्य का एकमात्र आश्रय उसकी सन्तान ही होती है। वह भी यदि उनसे दूर हो जाये तो पारिवारिक जीवन की नाव सदैव मंझधार में पड़ कर अपना अस्तित्व खो डालती है।

पारिवारिक अस्थिरता का दूसरा मुख्य कारण तलाक अथवा स्त्री का परित्याग है जो हम अनेक प्राचीन जातियों में किसी न किसी रूप में पाते हैं। श्रो-जाति में तो यह प्रथा विचित्र ढंग पर आयोजित होती थी। प्रति वर्ष वसन्त के प्रारम्भ में दो विरोधी फौजी दल विवाहित स्त्रियों का अपहरण किया करते थे। वे उन विवाहित स्त्रियों को अपने साथ भगा ले जाने का पूरा-पूरा अधिकार रखते थे जिनके साथ उन्होंने कभी भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखा हो। ऐसे अवसर पर विवाहित स्त्री का पति यदि किसी प्रकार का विरोध करता तो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा कम हो जाती।

इसमें सन्देह नहीं कि यह नियम अवश्य लागू था, परन्तु इसके चरितार्थ होने के एकाध ही उदाहरण मिलते हैं। बहुत सी जातियाँ अपनी स्त्री को

छोड़ने में संकोच करती थी। किरगिज़ (Kirgiz) जाति के लोग क्योंकि विवाह के समय प्रचुर धन व्यय करते थे अतः स्त्री को घर से निकालने में शीघ्र तत्पर न होते थे। इसी प्रकार कार्य (Kai) जाति में पति विवाह के अवसर पर दिये गये धन को जब तक पुनः वापिस न ले लेता था तब तक स्त्री को नये प्रेमी के हवाले न करता था।

विवाह व दाम्पत्य सम्बन्ध की अस्थिरता का एक कारण सन्तान के होने व न होने पर भी आश्रित होता था। यदि सन्तान नही तो दाम्पत्य सम्बन्ध टूटने की सदैव सम्भावना बनी रहती थी। स्त्री का निस्सन्तान होना स्त्री-परित्याग का विशेष कारण बन जाया करता और इससे भी पारिवारिक जीवन में अस्थिरता आ जाती थी। सन्तान के होने पर ही दाम्पत्य सम्बन्ध स्थायी रह सकता था। चुकची (Chukchi) तथा क्रो (Crow) जाति में साधारण-सी बात पर विवाह सम्बन्ध टूट जाया करते थे।

परिवार का आर्थिक महत्व :—

प्राचीन जातियो में कहीं-कहीं एक परिवार व्यावसायिक दृष्टि से दूसरे परिवार से भिन्नता रखता था। हैडा और तिलिंगित जातियो के सभी व्यक्ति लकड़ी के काम में निपुण थे। जुनी तथा होपी जाति की स्त्रियां भाण्डकला (Pottery) में निपुण थी। अतः वे एक दूसरे के अतीव निकट समझे जाते थे। भेद केवलमात्र व्यक्तिगत कार्यक्षमता का था। स्त्री और पुरुष ने स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने पेशे विकसित किये हुए थे। एक ही व्यवसाय को अपनाने वाली जातियो में पारस्परिक सम्बन्ध की भावनायें विकसित होती गईं।

कई बार ऐसा भी देखा गया है कि कतिपय जातियों में विवाह का विधान आर्थिक तथा व्यावसायिक भाव की दृष्टि से भी प्रचलित होता था। ऐसा करने से परिवार में स्त्री और पुरुष का पृथक्-पृथक् आर्थिक महत्व माना जाता था जैसा कि हम कार्य (Kai) जाति में देखते हैं कि उन में पुरुष स्त्री को कामना इसलिए करता था क्योंकि स्त्री बर्तन बनाना, खेती करना, और खाना परोसना आदि कार्य बहुत अच्छी तरह कर सकती थी और पुरुष स्वयं शिकार द्वारा घर का पालन-पोषण करता था। क्वीन्सलैण्ड में भी यही प्रथा प्रचलित थी। पिता मछली का शिकार करता तो मां जिमीकंद और फल आदि बीना करती थी। केन्द्रीय आस्ट्रेलिया में भी पति-पत्नी के कार्य बंटे हुए थे।

मि० ब्राऊन ने पश्चिमी आस्ट्रेलिया की करेरा (Kariera) जाति की

परिवारिक योजना का विशद वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके परिवार पति-पत्नी व पत्नियां तथा उनके बच्चों से विघटित होता है। पुरुष जहां मांस-मछली आदि का प्रबंध करता है वहां स्त्री सब्जी, तरकारी व छोटे-छोटे कीट आदि एकत्रित करती है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के काम में हिस्सा बंटाते हैं। ईव (Ewe) जाति में तो यहा तक भी पाया जाता है कि पुरुष मास पकाता है तो स्त्री नमक मिलाती है। स्त्री सूत कातती है तो पुरुष बुनता और कपड़े तैयार करता है।

पति-पत्नी का श्रम विभाजन—

श्रम विभाजन तथा आधिक स्वतन्त्रता के बढ़ जाने से स्त्रियों और पुरुषों में लौकिक दृष्टि से कार्य विभाजन हो गया। साधारणतया हम समझते हैं कि प्राचीन जातियों में स्त्रियों को दास समझ कर उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था परन्तु ऐसी बात नहीं। स्त्रियां भी पारिवारिक योजना में उसी प्रकार कार्य करती थी जैसे कि पुरुष। परन्तु इतना अवश्य था कि जो काम स्त्रियां आसानी से कर पाती थी वह उन्हें सौंप दिया जाता था और जो काम पुरुष सुगमतया कर पाते थे वह पुरुषों को दे दिया जाता था।

आखेट-प्रिय जातियों में जहां पुरुष शिकार का धन्धा अपने हाथ में रखता था वहां स्त्रियां भी बीज बोने और खेती का कार्य करती थी। ओशीनियन जनजातियों (Oceanian Tribes) में जहा स्त्रिया कुदाली से खेती किया करती वहां पुरुष पशु-पालन आदि कार्य किया करते थे।

उत्तरीय अमेरिका के आदिवासियों में पशुओं की खाल को साफ करने और मुलायम बनाने का काम स्त्रियों के हाथ में था परन्तु दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशों में यह कार्य पुरुषों के हाथ में था। उत्तरीय अरिज़ोना के इलाके में होपी (Hopi) जाति के लोग कताई और बुनाई का काम स्वयं करते थे परन्तु नवाहो (Navaho) जाति में यह काम स्त्रियां किया करती थी। मिट्टी के पात्र-निर्माण (Ceramics) का कार्य जहाँ हाथों द्वारा किया जाता था वहाँ इसे स्त्रियाँ करती थीं परन्तु जहाँ यन्त्र द्वारा पात्र-निर्माण किया जाता था वहाँ यह धन्धा पुरुषों के हाथ में था।

स्त्रियों और पुरुषों का कार्य-विभाजन चूंकि परम्परागत प्रणाली पर आधारित था इससे पारिवारिक योजना पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ता था। इससे उनकी सामाजिक स्थिति की निम्नता और श्रेष्ठता पर कोई प्रभाव न पड़ता था। किरगिज़ जाति की स्त्रियां केवलमात्र घर का काम-काज आसानी से कर

सकती थीं अतः उन्हें बाहर का काम न दिया जाता था। पशुपालन, खेती तथा पात्र-निर्माण का कार्य पुरुष किया करते थे। टोडा स्त्रियां घर में चक्की चलाने, झोपड़ी की सफाई करने तथा कपड़ों पर चित्रकारी करने के अतिरिक्त और कोई कार्य न करती थी और बाहर का सब काम पुरुषों के सुपुर्द होता था।

इसके अतिरिक्त कई जातियों में कुछ कार्य स्त्रियों के लिए वर्जित भी समझे जाते थे परन्तु इससे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर न आने पाता था। जैसा कि हम देखते हैं कि बन्तू (Bantu) जाति के लोग स्त्रियों को जंगली पशुओं को पकड़ने वाले क्षेत्र में न तो घुसने ही देते थे और न ही पशु-संरक्षण का कार्य उनके हाथ सौंपते थे परन्तु इसके विपरीत हाटनटाट (Hottentot) जाति की स्त्रियाँ पशु-संरक्षण तथा ग दुग्ध-दोहन का कार्य अपने हाथों से स्वयं करती थीं। टोडा जाति की स्त्रियों को दूध देनेवाले प्राणियों का मांस पकाने की आज्ञा न होती थी।

## अविवाहित परिवार के अंग नहीं:—

अविवाहित युवा पुरुष तथा स्त्रियों को परिवार तथा जनसमुदाय से पृथक् रक्खा जाता था। जैसा कि हम देखते हैं कि दक्षिण भारत की द्राविड़ जाति में युवा अविवाहित व्यक्ति को अपने माता-पिता के साथ सोने की आज्ञा न थी अपितु उसे पृथक् स्थान पर सोना पड़ता था। लड़कियाँ एक संरक्षिका की देखरेख में पृथक् शयनागार में सोती थीं। करेरा (Kariera) जाति में विवाहितों तथा अविवाहितों के निवासस्थान भी पृथक होते थे। रंडुवे भी अविवाहितों के साथ रहते थे। मसाई जाति में तो विवाहितों की बस्तियाँ ही पृथक् होती थीं।

## दत्तक सन्तान की सम्प्राप्ति (Adoption)

जिन व्यक्तियों की सन्तान नहीं होती थी उन्हें दूसरे के बच्चों को गोद लेने का भी अधिकार होता था। दत्तक बना लेने के बाद वे अपनी सन्तान की न्याईं उन दत्तक बच्चों का पालन-पोषण किया करते थे। चुकची (Chukchi) जाति में यह प्रथा थी कि निस्सन्तान पुरुष अपने किसी सम्बन्धी के पुत्र को दत्तक पुत्र बना लेते और उसे अपना मुख्य उत्तराधिकारी बनाते थे। क्रो इण्डियन्स (Crow Indians) में भी अपने सम्बन्धी के लड़के को गोद लेने की प्रथा थी। मरे द्वीप (Murray Island) में तो यह प्रथा

यहाँ तक प्रचलित थी कि सन्तानोत्पत्ति से पूर्व ही बच्चे को गोद ले लिया जाता और उसे सारी आयु पाल-पोसकर बड़ा किया जाता था। बच्चे को अपने असली माँ-बाप का मृत्यु-पर्यन्त ज्ञान भी न हो सकता था।

### स्त्रियों की स्थितिः—

प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में लोगों की नानाविध सम्भ्रान्त धारणायें हैं। एक ओर कतिपय लोगों का विचार है कि स्त्री दास, अधम तथा पशुतुल्य मानी जाती थी। दूसरी ओर जिन्होंने प्राचीनकाल के मातृसत्तात्मक परिवारों का इतिहास अध्ययन किया है वे स्त्री को गृहस्वामिनी, सम्पत्ति की अधिकारिणी और परिवार की व्यवस्थापिका का रूप मानते हैं। दोनों विचारों में किसी प्रकार की साम्यता नहीं।

सच बात यह है कि स्त्रियों को समाज में पारिवारिक, वैधानिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से पृथक्-पृथक् स्थान प्राप्त था। कई जातिया स्त्रियों को उच्च पद प्रदान करती और कई जातिया उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती थीं। कतिपय जातियों में स्त्रियों को आर्थिक महत्ता तो प्रदान थी परन्तु धार्मिक विधि-विधानों में उन्हें पृथक् रखा जाता था। कई जातियों में उन्हें सम्पत्ति पर तो पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था परन्तु राजनैतिक अधिकारों से वञ्चित रखी जाती थी। कहीं वे पारिवारिक योजना की तो निर्मात्री थीं परन्तु उन्हें आर्थिक महत्व न्यूनतम प्राप्त था। जैसे-जैसे पारिवारिक रूप परिवर्तित होते गये, सम्बन्ध-प्रणालियां विकसित होती गईं, गोत्रों का सूत्रपात होता गया, वैसे ही राजनैतिक सत्ता तथा अन्य सामाजिक शक्तियों का स्वरूप भी परिवर्तित होना प्रारम्भ हो गया। परिस्थितिया संस्कृति की जन्मदात्री होती हैं। संस्कृति तो एक दूसरे के प्रसार पर निर्भर होती हैं। मनुष्य अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देता है परन्तु उसकी संस्कृति सदैव पनपती हुई अपना प्रभाव आगामी सन्ततियों तक पहुँचाती चली जाती है। प्रभुता तथा सत्ता का तारतम्य भी सदा से अस्थायी रहा है। शक्ति का एक हाथ से दूसरे हाथ में जाना प्रकृति के अनुकूल है। प्रकृति का यह नियम भी परिस्थिति पर निर्भर है। अतएव संसार की सभी संस्कृतियां आदिकाल से परिस्थिति के अनुकूल ही पनपती और विकसित होती रही हैं। मातृसत्तात्मक पारिवारिक योजना के दिनों में मातृपक्ष का पितृपक्ष से अधिक महत्व था परन्तु समय-चक्र एवं परिस्थितियों ने मातृपक्ष को कई अधिकारों से वञ्चित कर दिया।

टोडा जाति को ही लीजिए। जहां एक ओर टोडा स्त्रियों का उचित मान

किया जाता था वहां उन्हें अनेक धार्मिक कृत्यों में भाग लेने की आज्ञा नहीं थी। अण्डेमान द्वीप की स्त्री सामाजिक स्थिति में मनुष्य के तुल्य समझी जाती थी और प्रतिदिन का बहुत सा कार्य उसके कन्धों पर सौंपा जाता। केन्द्रीय एशिया की किरगिज तथा अल्टेयन (Kirgiz and Altaian) जाति में स्त्रियों को हेय समझा जाता था। इस्लाम के प्रभाव से प्रभावित हुए २ किरगिज अपनी स्त्रियों से अल्टेयन तुर्कों से भी अधिक कठोरता का व्यवहार करते थे परन्तु जहा वैधानिक स्वतन्त्रता का प्रश्न था किरगिज स्त्रियों की स्थिति अल्टाई स्त्रियों से बहुत अच्छी थी। चूंकि वे उत्सव और त्योहारों पर, सार्वजनिक सभाओं में, गोष्ठियों तथा संगीत-समारोहों में स्वतन्त्रता से भाग ले सकती थीं। सैद्धान्तिक दृष्टि से चाहे किरगिज जाति में तलाक प्रथा प्रचलित थी, परन्तु क्रियात्मक दृष्टि से इस सिद्धान्त का पालन शायद ही कहीं होता हो।

मातृ-पक्षीय वंश का यह अभिप्राय कभी नहीं कि स्त्रियां परिवार और राज्य का स्वामित्व करती हैं। प्राचीन काल का सम्पूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि मातृपक्षीय परिवार के रहते हुए भी प्रायः सभी साम्पत्तिक व वैधानिक अधिकार एकमात्र मां को नहीं, अपितु उसके भाई व अन्य मातृपक्षीय सम्बन्धियों को प्राप्त होते थे। ब्रिटिश कोलम्बिया में टिलिंगिट (Tilingit) तथा आस-पास की अन्य जातियां मातृ-पक्षीय अवश्य थीं परन्तु भान्जे को सभी अधिकार मातुलद्वारा ही प्राप्त होते थे, न कि मां द्वारा।

इसमें सन्देह नहीं कि आसाम के खासी तथा इरावयुईज (Iroquois) व प्युब्लो इंडियन्स (Pueblo Indians) में चल तथा अचल सम्पत्ति का अधिकार मां अपनी लड़की को प्रदान करता है। स्त्रियों के हाथ में प्रभुता है परन्तु इतना होते हुए भी हम यह नहीं सकते कि पुरुषों को बिलकुल ही नगण्य माना जाता है। घर में स्त्री के स्वामित्व के स्थान पर स्त्री का बड़ा भाई ही परिवार का मुखिया माना जाता था और पति पत्नी गृह छोड़ने के बाद जब अपना पृथक् गृह-निर्माण करते थे तो वह उसका स्वामी माना जाता था। राजनैतिक दृष्टिकोण से भी राज्यसत्ता मातृपक्षीय तो अवश्य होती थी परन्तु वह भी पुरुष से पुरुष को प्राप्त होती थी न कि स्त्री से स्त्री को। इराक्युइज में भूमि, गृह, धार्मिक विधि-विधान, आदि सभी काम स्त्री के हाथ में होते थे परन्तु जहां तक इरावयुईज की धारा-सभा का सम्बन्ध था उसमें पुरुषों को ही सदस्यता का स्थान प्राप्त होता था, न कि स्त्रियों को। प्युब्लो इण्डियन्स में स्त्री घर की स्वामिनी अवश्य थी परन्तु राज्यसत्ता में उसका कोई हाथ न होता था। अतः यह मानना पड़ेगा कि समाज में विशुद्धरूपेण स्त्री की कहीं किसी रूप में प्रभुता नहीं रही।

प्राचीन काल में मातृ-गृह को निवास स्थान बना लेने की जो पद्धति प्रचलित थी उससे स्त्रियों की दशा पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। पत्नी द्वारा पति-गृह को अथवा मातृ-गृह को गृह स्वीकार कर लेने से पत्नी के सम्बन्धियों का महत्व तो अवश्य बढ़ जाता था परन्तु स्त्री का स्त्री-रूप में कुछ भी महत्व न बढ़ता था। क्योंकि स्त्री मातृ-गृह में तो माता के आधीन और पति-गृह में सास के आधीन ही रहती थी। स्त्री को तो प्रत्येक दशा में यह आधीनता स्वीकार करनी ही पड़ती थी।

आस्ट्रेलिया, मैलानीशिया, मोरीनिया तथा न्यू गाइना में स्त्री-पुरुषों को कई अवसरों, धार्मिक विधि-विधानों, तथा राजनैतिक कार्यों से इसलिए वंचित कर दिया जाता था क्योंकि उनकी सामाजिक स्थिति पुरुषों से हीन थी। उत्तरीय अथबस्कान्स ( Athabaskans ) में लड़कियों को लड़कों से पृथक् कर दिया जाता था और स्त्रियों को संगीत व नृत्य में सम्मिलित होने का निषेध होता था।

यदि हम आर्थिक दृष्टिकोण से भी स्त्रियों की स्थिति पर विचार करें तो हम उन्हें पुरुषों की तुलना में हीन ही पायेंगे। जिन जातियों में कृषि, बागवानी तथा शिकार आदि पेशे स्त्रियों के हाथ में थे वहां स्त्रियों की स्थिति अच्छी अवश्य थी। स्त्रियों को समाज का एक आवश्यक अंग समझा जाता था परन्तु पुरुषों की तुलना में फिर भी उन्हें हेय एवं तुच्छ समझा जाता था।

प्रो० हन (Hahn) का विचार था कि आदिकालीन संस्कृति से लेकर अब तक पशु-पालन तथा हल जोतने का श्रमयुक्त कार्य सदैव पुरुषों के ही हाथ में रहा है। सीरयान (Syryan) ओस्टयाक (Ostyak) किरगिज (Kirgiz) तथा अल्टायन (Altaian) आदि जातियां स्त्री को पराधीन तथा चल सम्पत्ति के रूप में समझती थी। चुक्ची जाति में स्त्री को पुरुषों के आधीन स्वीकार किया जाता था।

प्राचीन-काल के लोगों का यह भी विचार था कि स्त्री के प्रतिमास रजस्वला होने से चूंकि पवित्र धार्मिक विधि-विधान उच्छिष्ट हो जाते हैं अतः स्त्री का मासिक धर्म के दिनों में पुरुष से पृथक् वास करना तथा सार्वजनिक कार्यों से दूर रहना अनिवार्य है।

# विवाह

विवाह की परिभाषा :—

विवाह-ऐसे दो विरोधी लिंगों का सम्मिलन है जो सन्तान-प्राप्ति तथा परिवार-निर्माण के उद्देश्य पर आधारित होता है। धर्म, कानून तथा लिंग आदि सभी विचार गौण हैं। विवाह प्रारम्भ से ही एक ऐसा सामाजिक संगठन है जो परिवार के साथ अभिन्न रूप से ओतप्रोत है और यह संगठन उतना ही पुरातन है जितना परिवार।

समाज-शास्त्रवेत्ता स्पेंसर का कथन है कि विवाह का मुख्य उद्देश्य वह है जिससे समाज और राष्ट्र की उत्कर्षावस्था चिरकाल तक बनी रहे। जिससे दम्पति का, भावी सन्तति का और देश का कल्याण हो। अरस्तू (Aristotle) का कथन है कि स्त्रियों की उन्नति व अवनति पर सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्भर होती है।

कई विद्वानों के मत में विवाह दो विषमलिंगी व्यक्तियों का न्यूनाधिक रूप से स्थाई सम्मिलन है जो सर्वसम्मत रीत्यनुकूल है। दो विरोधी लिंगियों का सम्मिलन प्रत्येक समाज में पाया जाता है। विवाह मनुष्य के जीवन में नवयुग का प्रारम्भ करता है।

विवाह का अभिप्राय है कि दो योग्य आत्मायें सम्पूर्णावस्था में लाने के लिए संयुक्त कर दी जायें जिससे दोनों व्यक्तियों का सुख और स्वास्थ्य बढ़े तथा उनके द्वारा मनुष्य मात्र की सामाजिक उन्नति हो।

आदिकालीन जातियों की प्रचलित प्रथाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उनकी वैवाहिक पद्धति का इतिहास अत्यन्त मनोरंजक और शिक्षा-दायक है। मानव जाति की शैशवावस्था में न तो कोई राज्य-व्यवस्था थी और न ही कहीं सुदृढ़ एवं सुसंगठित समाज व कुटुम्ब-व्यवस्था। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध, एवं माता, पिता, पुत्र आदि के सभी नाते अनियमित तथा अव्यवस्थित थे। ज्यों-ज्यों राज्य-व्यवस्था और पारिवारिक योजना का विकास होता गया त्यों-त्यों विवाह की प्रणालियाँ भी सुव्यवस्थित होती गईं।

समाज की प्रारम्भिक अवस्था में लोग आखेट-प्रिय और युद्ध-प्रिय होते थे। विजयी जाति के लोग पराजित जाति वालों की स्त्रियों को पकड़

लाते और उन्हें निजू सम्पत्ति समझा करते थे। उनके साथ विवाह करने, उन्हें दासी बनाने, बेच डालने या दान करने की प्रथायें भी विद्यमान थी। स्त्रियों को कुटुम्ब के प्रधान पुरुषों की अधीनता में रहना पड़ता था।

इस प्राचीनकालीन व्यवस्था से प्रतीत होता है कि कामवासना की तृप्ति तो यों भी हो जाया करती थी। यौन-सम्बन्ध ( Sex Relation ) का महत्व नगण्य था। विवाह-प्रणाली की आवश्यकता को न केवल कामवासना की तृप्ति का साधन ही समझा गया, अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा व सामाजिक उच्चाकांक्षा की पूर्ति का साधन भी समझा जाने लगा।

१. विवाह समाज का आवश्यक अङ्ग है :– समाज को सुव्यवस्थित एवं सुचारुरूपेण उन्नत करने के लिए विवाह आवश्यक है। विवाह की अनिवार्यता परिवार को संगठित तथा सुदृढ़ बनाती है। समाज में विवाह को औचित्य प्रदान करने के लिए नानाविध व्यवस्थायें निर्मित की हुई है। यदि ये व्यवस्थायें न हों तो समाज अनाचार, उच्छृंखलता, पाप तथा कलुषित वृत्तियों से भरपूर हो जाये।

२. विवाह धार्मिक तथा संस्कार सम्बन्धी (Sacramental or Religious) व्यवस्था है :—इस व्यवस्था के अन्तर्गत पति-पत्नी का सम्बन्ध पवित्र समझा जाता है और उसे किसी भी रूप में छिन्न-भिन्न नही किया जा सकता। संसार की सभी प्राचीन जातियाँ इस नियम का पालन करती है। हिन्दू, पारसी, रोमन कैथोलिक आदि अनेक धर्म विवाह को पवित्र एव धार्मिक रूप देते हैं। हिन्दुओं का तो विश्वास है कि दाम्पत्य सम्बन्ध ईश्वरीय कार्य है। यह सम्बन्ध इहलोक तथा परलोक—दोनो के लिए धर्म की सुदृढ़ जंजीरो से जकड़ा हुआ है। पति-पत्नी जन्मजन्मान्तर के लिए एक दूसरे को साथी समझते हैं।

कतिपय प्राचीन जातियों की धारणा है कि जब दो प्राणी वैवाहिक बंधन में बंधते हैं तो यह किसी दैवीय शक्ति की स्वीकृति का प्रभाव होता है। वैवाहिक सूत्र में बधने तथा गृहस्थ जीवन में पदार्पण करने पर दोनो जीवन-संगियों के कर्तव्य व्यावहारिक रूप से पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। पत्नी की अस्थिर एव चञ्चल वृत्ति सन्तानोत्पत्ति पर सुप्तप्राय हो जाती है। पति-पत्नी तथा सन्तान का पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध धीरे-धीरे भावनामय बन्धन से सुदृढ़ होता जाता है। जातीय संरक्षण, कुल अथवा वंश-संरक्षण के लिए वैवाहिक सम्बन्ध को चिरस्थाई बनाया जाता है। अन्ततोगत्वा पति-परिवार तथा पत्नी-परिवार के सदस्य भी इस स्थायी बन्धन से आबद्ध हो जाते हैं।

३. विवाह एक प्रकार का पारस्परिक समझौता ( Contract ) है जो दोनों की सहमति द्वारा सम्पन्न होता है। इसमें भौतिक अभिलाषाओं को महत्व प्रदान किया जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत तलाक देने की स्वतन्त्रता दी जाती है। वैवाहिक-बन्धन को सुदृढ़ बनाने के लिए दोनों का अनुरूप होना अत्यावश्यक है।

४. विवाह एक सामाजिक-स्वीकृति है:—विवाह के लिए सामाजिक-स्वीकृति अत्यावश्यक मानी गई है। समाज द्वारा जब तक विवाह को आज्ञा न दी जावे तब तक विवाह को अवैधानिक स्वीकार किया जाता है। हिन्दुओं में अग्नि के समक्ष जब पति-पत्नी एक दूसरे को आत्मसमर्पित करने की शुभ शपथ ग्रहण करते हैं तो समाज नवदम्पति के सम्बन्ध को सहर्ष अनुमोदन करता हुआ नानाविध आशीर्वाद प्रदान करता है।

## विवाह से पूर्व की व्यवस्थाः—

विवाह सम्बन्ध किससे स्थापित किया जाये ? इसका निर्णय उन दो प्रमुख व्यक्तियों पर आधारित होता था जो विवाह में भाग लेनेवाले होते थे। कहीं-कहीं विवाह में भाग न लेने वालों को भी यह अधिकार प्राप्त होता था, परन्तु विवाह सम्बन्ध स्थापित करने के विषय में अनेक स्वतन्त्रतायें प्राप्त थी। कृषिप्रधान जातियों में भी विवाह की अन्तिम स्वीकृति लड़के तथा लड़की पर निर्भर होती थी। यह प्रेम-सम्बन्ध वैसा न होता था जैसा कि आधुनिक काल की पश्चिमीय सभ्य जातियों में पाया जाता है। उनका प्रेम सम्बन्ध पवित्रता का द्योतक था।

कई सभ्य एवं सुसंस्कृत जातियों में जीवन-साथी चुनने की प्रथा माता-पिता व वंश के निर्णय पर निर्भर होती थी और विवाह सूत्र में बधने वाले युवक और युवती की स्वीकृति अनावश्यक समझी जाती थी। कन्या का पिता 'कन्या-मूल्य' लेकर अपने सम्बन्धियों में बाट देता था। केन्द्रीय एशिया तथा पूर्वीय अफ्रीका में यह धन पशु-धन के रूप में तथा उत्तर-पश्चिमीय प्रशान्त समुद्र तट पर यह धन बहुमूल्य धातुओं के रूप में था।

## दम्पति की आयुः—

प्राचीन काल में परिवार का प्रत्येक बालक आखेट, कृषि तथा मत्स्य-व्यापार में दक्षता प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। बालिकाओं को स्त्रियो-

चित कार्य की शिक्षा दी जाती थी। यौवन प्राप्ति से पूर्व बालक-बालिकाओं को विवाह बन्धन में न बांधा जाता था। आयु की परिपक्वता ही विवाह सम्बन्ध में सहायक होती थी। विवाह के अयोग्य व्यक्ति जीवन भर अविवाहित रह जाते थे और कोई उन्हें अपनी कन्या प्रदान करने के लिए उद्यत न होता था। सामान्यतया परिपक्वावस्था प्राप्त होने पर सभी युवकों को विवाह करने पर बाध्य किया जाता था ताकि कोई युवा व्यक्ति परिवार पर भारस्वरूप न हो। विधवाओं और विधुरों के लिए भी पुनर्विवाह का प्रबन्ध कर दिया जाता था।

अनमेल विवाह के भी कतिपय उदाहरण प्राप्त होते हैं परन्तु समान आयुवाले युवा और युवती के विवाह को अत्युत्तम समझा जाता था। पुरुष की आयु स्त्री की आयु से अधिक न हो—ऐसा प्रयत्न किया जाता था।

जिन जातियों में भाई बहिन की सन्तति में विवाह (Cross Cousin Marriage) प्रणाली विद्यमान थी उनमें आयु सम्बन्धी विशेष नियम न थे। फिजी की कई जातियों में ऐसा भी देखा गया है कि २० वर्षीया कन्या का विवाह दो वर्ष के बालक से कर दिया गया। आस्ट्रेलिया की करियेरा (Kariera) जाति में भी यही प्रथा विद्यमान थी।

## दम्पति का निवास-स्थान—

दम्पति का निवास-स्थान 'मातृपक्षीय गृह' अथवा 'पितृपक्षीय गृह' नाम से स्मरण किया जाता था। जिन जातियों में पुरुष और स्त्री का पद समान होता था वहाँ दम्पति को पृथक् घर में भी रहने की स्वतन्त्रता प्राप्त होती थी। वे मातृपक्षीय अथवा पितृपक्षीय परिवारों में रहना अनुपयुक्त समझते थे। पितृपक्षीय निवास-स्थान यह स्पष्ट घोषित करता है कि स्त्री वस्तुतः क्रीत की गई है परन्तु सूक्ष्मतया यदि हम विचार करें तो हम देखेंगे कि स्त्री के पतिगृह में जाकर निवास करने के कई आर्थिक कारण भी थे। जो व्यक्ति जितना कार्य-दक्ष होता उतनी उसकी प्रतिष्ठा होती और वह परिवार का अनिवार्य अंग समझा जाता था।

## बहिर्विवाह तथा अन्तर्विवाह ( Exogamy & Endogamy )

वह प्रथा जिसके आधार पर एक पुरुष अपने ही वर्ग में से चाहे वह वर्ग ग्राम, परिवार व अन्य सामाजिक इकाई का ही क्यों न हो—अपनी जीवन-संगिनी

चुनता है—उसे अन्तर्विवाह प्रथा कहते है। इसके विपरीत जब एक पुरुष अपने वर्ग से बाहर अपनी जीवन-संगिनी चुनता है तो उसे बहिर्विवाह (Exogamy) प्रथा कहते हैं। इस प्रथा के अनुसार अपने गोत्र, कुल, वंश, समुदाय व जनजाति से बाहर विवाह करना आवश्यक होता है।

अन्तर्विवाह वहीं पनपता है जहाँ सामाजिक-श्रेष्ठता अथवा सामाजिक भेद-भाव विशेष महत्व रखते है। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था इसी का ज्वलित उदाहरण है। योरप की धनतन्त्र श्रेणियाँ भी इस प्रथा के पनपने की गवाही दे रही हैं। कालामाज़ू (Kalamazoo) जाति के युवक अपना विवाह अपने ही ग्राम की स्त्रियों से करना सर्वथा उपयुक्त समझते थे। एक कैथोलिक को प्रॉटेस्टेण्ट से विवाह करने से रोकना भी इस का ज्वलन्त प्रमाण है।

बहिर्विवाही वर्ग (Exogamous) तथा अन्तर्विवाही (Endogamous) वर्गों की योजना द्वारा विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाया जाता था। प्रत्येक समाज कुछ वर्गों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा देता था और कतिपय वर्गों से सम्बन्ध जोड़ने पर प्रतिबन्ध लगाता था।

इराक्युईज, तथा अफ्रीकन जातियों में सर्वत्र बहिर्जातीय-विवाह प्रथा प्रचलित थी। कई जातियों में तो इस पद्धति द्वारा अत्यन्त जटिलता उत्पन्न हो गई। तिलिंगित तथा हैडा जातियों में बहिर्जातीय विवाह प्रथा तो प्रचलित थी परन्तु उसकी उपजातियों में अन्तर्विवाह हो जाया करते थे। आस्ट्रेलिया की कमीलारोई जाति के दो उपजातीय विभागों में बहिर्जातीय विवाह प्रथा प्रचलित थी परन्तु जब उन दो उपजातीय विभागों के भी उपविभागों को देखते हैं तो उनमें अन्तर्विवाह प्रथा के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

भाई-बहिन के विवाह को व्यभिचार समझकर उसे वर्जित घोषित किया गया है परन्तु कई धनवान् श्रेणियों में—हवाई, प्राचीन मिस्र तथा कागो की कई जातियों में भाई-बहिन का वैवाहिक सम्बन्ध प्रचलित रहा है। सम्भवतः यह भी हो सकता है कि अपनी जातीय उच्चता एवं राज्याधिकार की भावना से वशीभूत होकर ही ऐसा किया जाता रहा हो, ताकि दूसरे कुटुम्ब से मिलकर वहीं मालिन्य न आ जाये अथवा वर्गीकरण न पैदा हो।

ब्लट का कथन है कि अन्तर्विवाह (Endogamy) को माननेवाला वर्ग अथवा अन्तर्विवाह माननेवाले वर्गों का संकलन ही जाति है जिसकी सदस्यता सदैव वंशानुगत होती है। अन्तर्विवाह द्वारा व्यक्तियों से सामाजिक सहवास सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। इस परिभाषा के आधार पर जाति के सदस्य बाहर विवाह नहीं कर सकते।

## वैवाहिक प्रतिबन्ध—

पुरुष और स्त्री को अपना जीवन-साथी चुनने के लिए कई प्रतिबन्धों पर विचार करना पड़ता है। यदि इन प्रतिबन्धों का उल्लंघन कर दिया जाय तो व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा कम हो जाती है। मानवीय समाज की असभ्य से असभ्य जाति भी एक ही परिवार के सदस्यों-अर्थात् भाई बहन, माता व पुत्र तथा पिता व कन्या में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा नही देती। प्राचीन-काल की सभी जातियाँ यह स्वीकार करती हैं कि यदि कदाचित् ऐसा हो भी जाये तो उसे छल या कपट का ही परिणाम समझना चाहिये।

प्रो० हॉबहाऊस (Hobhouse) का मत है कि विवाह में भावना का विशेष महत्व होता है। अपने इस कथन की पुष्टि में वे उस ब्लैकफूट (Black-foot) जाति का उदाहरण पेश करते हैं जो केवल निकटस्थ सम्बन्धियो के विवाह पर प्रतिबन्ध ही नही लगाती अपितु सम्पूर्ण जाति, वर्ग व कबीले के अन्दर विवाह का होना हेय समझती है। पवियोस्टो (Paviosto) जाति के लोगों का तो यह भी दावा है कि यदि इस प्रकार का कोई सम्बन्ध अकस्मात् हो भी जाये तो विवाह करने वाले दैवीय प्रकोप से बच नहीं सकते।

भावना के फल स्वरूप ही लोगों ने अन्तर्जातीय और बहिर्जातीय विवाह के स्वरूप निर्धारित किये हुए हैं। सामाजिक भेदभाव को प्रमुख महत्व देने वाली जातियाँ उच्चता व श्रेष्ठता के कारण अपने से निम्न जातियों से सम्बन्ध स्थापित करने में सकोच करती हैं। परिणामस्वरूप अन्तर्जातीय विवाह की भावना उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण हिन्दू जाति इसी भावना से ओतप्रोत है। योरुप की धनतन्त्रवादी श्रेणियाँ इसी सिद्धान्त की दुहाई देती हैं। कालामाज़ू (Kalamazoo) जाति का प्रत्येक सदस्य गांव से बाहर विवाह करने में अपना अपमान समझता है। एक कैथोलिक एक प्राटेस्टैण्ट से विवाह करने में समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। नीलगिरिवासी टोडा जाति का टर्थरोल (Tar-tharol) तथा टीवलियोल (Teivaliol) वर्ग भी इसी सिद्धान्त का पक्षपाती है और उल्लघनकर्ता को कानून का शिकार बन जाना पड़ता है।

आस्ट्रेलिया में एमू (Emu) वर्ग का एक व्यक्ति एमू-वर्ग की स्त्री से विवाह करने में सकोच करता है।

## बहु-विवाह प्रथा (Polygamy)—

एक पुरुष का दो अथवा दो से अधिक स्त्रियों से, तथा एक स्त्री का दो व

दो से अधिक पुरुषों से विवाह करना बहु-विवाह कहलाता है। पुरुष द्वारा एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने को बहुपत्नी प्रथा (Polygyny) तथा स्त्री द्वारा एक से अधिक पुरुष से विवाह करने को बहुपति प्रथा (Polyandry) कहते हैं। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि पुरुष और स्त्रियों की संख्या सदैव आनुपातिक रहती है। इस प्राकृतिक नियम में शिथिलता आने पर भी इस प्रथा का प्रादुर्भाव एवं विकास होता है।

बहु-विवाह प्रथा के दो रूप हैं। एक बहु-पत्नी विवाह और दूसरा बहु-पति विवाह। जहा बहुविवाह की स्वच्छन्दता प्राप्त थी वहा पत्नी की अविवाहित बहिन से भी विवाह कर लिया जाता था।

## बहुपत्नी प्रथा ( Palygyny )

जब स्त्री-पुरुषों की संख्या में विषमता हो जाती है तो इस प्रथा का जन्म होता है। स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं अधिक होती है। ऐसी धारणा है कि यदि पुरुष एक से अधिक स्त्रियां न रक्खें तो बहुत सी स्त्रियां अविवाहित ही रह जायेंगी। इस प्रथा का दूसरा कारण पुरुषों की विषयासक्ति भी है। पुरुष की विषयासक्ति एवं काम-वासना उन्हें एक से अधिक स्त्रियां रखने के लिए प्रेरित करती है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि आर्थिक लाभ के लिए पुरुष कई पत्नियां रख लेता है, चूंकि प्राचीन जातियों में स्त्रियां अपने धन्धों द्वारा पुरुष की आर्थिक वृद्धि का मुख्य साधन होती थीं। बहुत से धनवान् व राजा लोग अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए भी कई स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध कर लेते थे। इसके अतिरिक्त पुत्र की कामना भी पुरुष को बहुपत्नी-प्रथा का समर्थक बना देती है। जब एक स्त्री सन्तान के अयोग्य समझी जाती है तो पुरुष दूसरी स्त्री से विवाह करने पर विवश हो जाता है। इस प्रकार बहुपत्नी-प्रथा पनपने लगती है।

भोंगा जाति में एक युवक को अपनी सभी छोटी सालियों से पत्नीवत् व्यवहार करने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। बगण्डा जाति में युवक को एक से अधिक स्त्रियां रखने का अधिकार था।

नागा तथा प्राग्द्राविड़ियन जातियों में बहुपत्नी प्रथा पाई जाती है। अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड में भी बहुपत्नी प्रथा के कई रूप पाये जाते हैं। मुसलमानों को एक से अधिक पत्नियां रखने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। बगाल के पूर्वीय ज़िलों में अनेक पत्निया रखने की प्रथा अधिक फैली हुई है। बंगाल के कुलीन लोगों में बहुपत्नी-प्रथा तथा अनुलोम विवाह व कुलीन विवाह

( Hypergamy ) के अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्त्रियों की दशा तथा आर्थिक दशा में परिवर्तन होने से अब बहु-पत्नि प्रथा पर कई प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं—भारत के प्रायः सभी पर्वतीय इलाकों में बहुपत्नी-प्रथा विद्यमान है।

## बहुपति प्रथा ( Polyandry )

जन-संख्या के आधार पर पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की कमी तथा निर्धनता बहु-पति प्रथा के मुख्य कारण हैं। इन दोनों कारणों में आर्थिक कारण की प्रबलता होती है। आजीविका के लिए काम-धंधे भी बहुत कम होते हैं। एक पुरुष के लिए एक स्त्री का भार उठाना और उसकी सन्तान का पालन-पोषण करना सम्भव नहीं होता अतएव कई व्यक्ति मिलकर एक साझी पत्नी कर लेते हैं। इस से जहाँ एक साथ कई व्यक्तियों की मनोकामना व कामतृष्णा पूरी होती रहती है वहा भाइयो में सम्पत्ति का विभाजन भी नहीं हो पाता।

बहु-पति प्रथाका यथार्थ अभिप्राय यह है कि एक स्त्री और दो या दो से अधिक पुरुष जीवनकाल के लिये गार्हस्थ्य-सम्बन्ध स्थापित कर लें।

यद्यपि बहु-पति प्रथा पर पर्याप्त प्रतिबन्ध हैं तो भी उत्तरी अमेरिका के अलस्कान ( Alskan ) समुद्रतटवासी जातियों में तथा अमेरिकन इण्डियन्स में अब भी इस प्रथा के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। मैडागास्कर, मलाया जलडमरूमध्य तथा पूर्वीय अफ्रीका की वहूना ( Wohuna ) जाति में अब भी यह प्रथा फैली हुई है। मंगोल, टोडा, कोटा तथा तियान जातियों में यह प्रथा दृष्टिगोचर होती है। लंका में भी यह प्रथा विशेष रूप से पाई जाती थी परन्तु पिछली शताब्दि में इस प्रथा को समूल नष्ट कर दिया गया।

वेस्टरमार्क का कथन है कि यह प्रथा साधारणतया गैर-आर्यन, तिब्बत-वासी तथा द्राविड़ियन जातियो तथा वर्गों में फैली हुई है। जौनसार ब्यावर (देहरादून) तथा शिमला की पहाड़ियो में भी इस प्रथा की उपलब्धि होती है। भारत में यह पद्धति दो रूपों में पाई जाती है। एक पद्धति के अनुसार एक स्त्री के सब पति आपस में भाई ही होते हैं और दूसरी प्रथा के अनुसार एक स्त्री के सब पति आपस में भाई नहीं होते, जैसे टोडा तथा कोटा लोगों में। वे निकटस्थ सम्बन्धी होते हैं।

नायर जाति में मातृ-पक्षी परिवार होते हुए भी बहुपति प्रथा प्रचलित है। स्त्री के कई पति होते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे सब आपस में भाई ही हों।

प्राचीनकाल में कई जातियो में बहुपति प्रथा पाई जाती थी। एस्किमो,

पूर्वीय अफ्रीका, तिब्बत, दक्षिणी भारत की टोड जाति तथा अमेरिका की शोशोनीन जाति में यह प्रथा विशेष-रूप से प्रचलित थी। जो जातिया राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र एवं उन्नत थी उन्होंने इस प्रथा को अपने यहाँ पनपने का अवसर प्रदान नही किया। शोशोनीन लोग यह समझते थे कि स्त्री और पुरुष का पद एक है। पति की अनुपस्थिति में स्त्री को अन्य पुरुष का अस्थाई आश्रय लेने की स्वच्छन्दता प्राप्त है। कई मानव-शास्त्री शोशोनीन जाति की इस प्रथा को बहु-पति प्रथा का रूप स्वीकार नही करते। उनके मत में यह एक विशेष परिस्थिति-जन्य अस्थाई प्रबन्ध था जो जीवन के कठोर वातावरण के लिए आवश्यक तथा अनिवार्य समझा जाता था। परन्तु इतना अवश्य है कि पति की अनुपस्थिति में अस्थाई रूप से किसी को पति स्वीकार करना पारिवारिक जीवन का रूप अथवा वैवाहिक जीवन का अंग नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार एस्किमो दम्पति के यहाँ एक आगन्तुक व्यक्ति का अस्थाई रूप से रहना और स्त्री की इच्छा से उस अतिथि के साथ संयोग-सम्बन्ध स्थापित कर लेना बहुपति-प्रथा को सिद्ध नही करता क्योकि ऐसे अवसरों पर भी संयोग-सम्बन्ध के लिए आज्ञा लेना अनिवार्य होता था।

विवाह पद्धतियां:—

प्राचीन जनजातियों में ७ प्रकार की मुख्य विवाह-पद्धतियां प्रचलित थी :—

१. क्रय-विवाह (Marriage by Purchase)
२. सेवा-विवाह (Marriage by Service)
३. आदान-प्रदान-विवाह (Marriage by Exchange)
४. हरण-विवाह (Marriage by Capture)
५. गुप्त व पलायन-विवाह (Marriage by Elopement)
६. परीक्ष्यमाण-विवाह (Marriage by Trial)
७. अधिमान्य-विवाह

इसके अतिरिक्त देव विवाह, मृतक विवाह, गान्धर्व विवाह तथा बाल-विवाह आदि पद्धतियां भी अपने-अपने स्वतन्त्र रूप में पाई जाती थीं।

क्रय-विवाह (Marriage by Purchase)

"कन्या मूल्य" (Bride Price) देकर विवाह करने की प्रथा तो सर्वत्र

पाई जाती थी। दक्षिण-पश्चिमी साइबेरिया की किरगिज जाति में "कन्या-मूल्य" चुकाने के लिए बच्चे का छोटी आयु में विवाह कर दिया जाता था ताकि बच्चे की विवाह-योग्य आयु तक संपूर्ण धन एकत्रित किया जा सके। यह "कन्या मूल्य" ८१ पशुओं की कीमत के बराबर होता था। "कन्या मूल्य" का बहुत सा भाग चुका देने के बाद ही लड़के का लड़की के घर आना-जाना प्रारम्भ हो जाता और सम्पूर्ण धन दे देने पर विवाह कर दिया जाता था।

इस वैवाहिक प्रथा के कारण से बहुपत्नी प्रथा तथा तलाक प्रथा का विस्तार न हो सका। क्योंकि इतना धन कहाँ जो अनेक पत्नियां रखी जा सकें और इतना धन चुकाने के बाद तो स्त्री को तलाक देने की इच्छा भी न होती थी। अफ्रीका की हो (Ho) जाति में लड़की उत्पन्न होने से पहले ही सौदे हो जाते और सगाई कर दी जाती थी। लड़की पैदा होने पर 'कन्या-मूल्य' की किश्तें चुकानी प्रारम्भ कर दी जाती। कई बार तो लड़के के माता-पिता को लड़की के माता-पिता के कृषि सम्बन्धी कार्यों में सहायता भी करनी पड़ती थी।

न्यूगायना में कन्या-मूल्य लड़की के भाई व मामे को चुकाया जाता था। लड़की के भाग जाने अथवा अन्य पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर लड़के वालों को पूरा "कन्या मूल्य" वापिस कर दिया जाता। दक्षिणी अफ्रीका की थोंगा (Thonga) जाति में 'कन्या-मूल्य' (Lobola) चुकाने के बाद ही पति पत्नी को ले जा सकता था। पत्नी के भाग जाने पर पति-प्रदत्त 'कन्या मूल्य' को दावे द्वारा वसूल कर लिया जाता था। पत्नी के निस्सन्तान मर जाने पर भी पति का पूरा "कन्या मूल्य" वापिस मिल जाता था।

उत्तरीय डकोटा (Dokota) की हिदात्सा (Hidatsa) जाति में विवाह-समय पर ही कन्या-धन चुकाने की प्रथा थी। पति को अपने बच्चों और पत्नी पर पूर्ण अधिकार न होता था। त्लिंगित जाति में पति पत्नी के पार्थक्य हो जाने पर पति को 'कन्या-मूल्य' वापिस न दिया जाता था। केवल एक ही अवस्था में 'कन्या-मूल्य' पति को प्राप्त होता था जब वह पत्नी को चरित्र-भ्रष्टा सिद्ध कर सके।

कैलीफ़ोर्निया की यास्ता जाति में "कन्या-मूल्य" सभी भाई तथा सम्बन्धी विवाह के पर्याप्त समय पूर्व से ही चुकाना प्रारम्भ कर देते थे। पूर्वीय अफ्रीका की मकोन्डे जाति में 'कन्या-मूल्य' देने की प्रथा थी।

इसके अतिरिक्त हम उच्च वर्गों में कन्या-मूल्य देने की प्रथा के विपरीत एक ऐसी वैवाहिक पद्धति का भी अवलोकन करते हैं जिसके अनुसार विवाह के समय लड़के वालों को दहेज दिया जाता था।

## सेवा-विवाह (Marriage by Service)

सेवा द्वारा अथवा अनुचर रहकर पत्नी की सम्प्राप्ति करना एक पुरातन तथा विस्तृत प्रथा थी। बाइबल में भी इसका वर्णन उपलब्ध होता है। एक बार जैकब ने अपने मामे लैबन (Laban) से कहा कि मैं तेरी छोटी लड़की को पाने के लिए तेरी नौकरी करूंगा और सात वर्ष बाद इस सेवा के उपहार में तेरी कन्या पाऊंगा। इससे प्रतीत होता है कि विवाहेच्छुक (Suitor) को कन्या पाने के लिए ससुराल में नौकरी करनी पड़ती थी। यह भी आवश्यक था कि पति, विवाह के पश्चात् पत्नी के घर को ही अपना घर समझे।

विनेबागो (Winnebago) जाति में एक युवा पुरुष को दो वर्ष तक अपने ससुर की नौकरी करनी पड़ती थी। पशुओं का शिकार करना तथा मछली पकड़ना उसके लिए साधारण कार्य थे। हिदात्सा (Hidatsa) जाति में युवा पुरुष अपने श्वसुर पक्ष वालों को खिलाया करता था। दक्षिणी अमेरिका की किरचाफ़ (Kirchhaff) जाति में गुलाम, कैदी तथा दामाद आदि शब्द एक ही भाव में प्रयुक्त किये जाते थे। इससे प्रतीत होता है कि दामाद गुलामी के कार्य से मुक्त न समझा जाता था। चिरिगुआनो (Chiriguano) जाति में दामाद को एक वर्ष के लिए अपनी सास के पास रहकर कठोर कार्य करने पड़ते थे। जंगल से लकड़ी काटने, लकड़ी को ढोने तथा अन्य पारिश्रमिक कार्य दामाद को ही करने पड़ते थे। इन सब कठोर यातनाओं के बाद दामाद को दाम्पत्य-सम्बन्ध का अधिकारी बनाया जाता था।

पूर्वीय साइबेरिया की कोर्याक (Koryak) जाति में स्त्री को पाने के लिए स्त्री के घर में नौकरी करनी पड़ती थी और ससुराल में आने पर वह जितना चतुर और कार्यदक्ष जान पड़ता था उतनी उसकी प्रतिष्ठा भी अधिक होती थी।

जब वरपक्ष के लोग कन्यापक्ष वालों को 'कन्या-मूल्य' देने में असमर्थ रहते थे तब उन्हें ससुराल में अनुचर बनकर समय व्यतीत करना अनिवार्य हो जाता। पर्याप्त सेवा-वृत्ति करने के बाद ही वर को विवाह की आज्ञा दी जाती थी।

## आदान-प्रदान विवाह (Marriage by Exchange)

एक व्यक्ति विवाह में दूसरे व्यक्ति को अपनी बहिन दे देता और बदले में उसकी बहिन से विवाह कर लेता था। हम इस प्रथा को विनिमय-विवाह प्रथा

कह सकते हैं। आस्ट्रेलिया तथा टोरेस स्ट्रेट द्वीपसमूह में यह प्रथा विशेष रूप से पाई जाती थी। इस प्रथा के अन्तर्गत 'कन्या मूल्य' प्रदान करने की आवश्यकता न रहती थी।

## हरण-विवाह (Marriage by Capture)

प्राचीनकाल में एक जाति दूसरी जाति पर आक्रमण करके पराजितों को बन्दी बना लेती थी। अपराधी पुरुषों और स्त्रियों को कैद कर लिया जाता था और बन्दीकृत स्त्रियां विवाह द्वारा अपना-ली जाती थीं। कतिपय जातियों में इन बन्दी स्त्रियों को मार दिया जाता था या उनसे विवाह कर लिया जाता था। पूर्वीय आस्ट्रेलिया के मेरीबोरो नामक इलाके में यह प्रथा थी कि वे लोग जब अपने यजमान के यहां किन्हीं विशेष उत्सवों पर सम्मिलित होते तो उत्सव की समाप्ति के अन्तिम दिन जाते समय वे अपने साथ कुटुम्ब की स्त्रियां भी ले जाते थे।

अमेरिकन इण्डियन्स में यह प्रथा विशेष रूप से पाई जाती थी। उत्तरीय अथाबास्कन्स जाति में दो विरोधी दलों में दंगल हुआ करते थे। इस दंगल में जो विजय पाते वे पराजितों की स्त्री से विवाह करने के अधिकारी समझे जाते। एस्किमो जाति में यह प्रथा विद्यमान थी।

बहुत से मानव-शास्त्री 'हरण-विवाह' को विवाह का सबसे पुरातन रूप मानते हैं। जब मनुष्य योद्धाओं के रूप में प्रत्येक वस्तु को शक्ति द्वारा हस्तगत करने का अभ्यस्त था तो वह दूसरी जाति की स्त्रियों को भी हस्तगत कर लेता था। "कन्या मूल्य" न चुका सकने पर मनुष्य स्त्रियों को बन्दी बनाने का प्रयत्न करता था। 'कन्या-धन' एक विकट समस्या थी और स्त्रियों का हरण करना ही इस समस्या का हल सोचा गया। कई बार 'हरण-कार्य' में स्त्रियों की स्वीकृति भी ली जाती थी।

*आसाम की नागा जाति में यह सर्व-साधारण प्रथा थी* कि एक ग्राम के व्यक्ति दूसरे ग्रामवालों पर आक्रमण करते और पुरुषों को मारकर स्त्रियों से जबरदस्ती विवाह कर लेते थे।

## गुप्त एवं पलायन विवाह (Marriage by Elopement)

युवा तथा युवती में पारस्परिक प्रेम हो जाने पर भी विवाह कर लेना अत्यन्त कठिन था। विवाह के लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक थी। इन

परिस्थितियों में वे दोनों किसी को सूचित किये बिना गुप्त रूप से भाग जाते थे और विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। यह 'पलायन-प्रक्रिया' प्रायशः उत्सवों, त्योहारों तथा अन्य ऐसे अवसरों पर की जाती थी जब सम्पूर्ण ग्रामवासी विधि-विधानों में व्यस्त रहते। जैसे ही ग्रामवासियों को उनके भाग जाने की सूचना मिलती तो वे उनका पीछा करते और सीमा के अन्तर्गत पकड़े जाने पर उन्हें दण्ड दिया करते थे। यदि वे ग्राम की सीमा पार कर चुके होते तो उनका पीछा करना हेय समझा जाता था। इस अवस्था में कतिपय वर्षों बाद जब वे लौटकर आते तो उन्हें पति-पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया जाता था।

## परीक्षणमूलक-विवाह (Marriag by Trial)

प्राचीन जातियों में उत्सव, पर्व तथा त्योहार आदि अवसरों पर 'क्रीडा-साम्मुख्य' आदि का प्रबन्ध भी किया जाता था। इस साम्मुख्य में ग्राम के सभी अविवाहित युवा भाग लेते और अपनी वीरता तथा शारीरिक पराक्रम का प्रदर्शन करते थे। जो विजेता का पद ग्रहण करता उसका विवाह-सम्बन्ध कर दिया जाता। पराक्रम की परीक्षा युवा पुरुषों के लिए अनिवार्य समझी जाती थी। जो ग्राम की सुन्दर लड़कियां होतीं थी उन्हें पाने के लिए कई युवा पुरुष लालायित रहते थे अतः वे अपने शारीरिक पराक्रम के प्रदर्शन में विशेष उत्साह दिखाते थे।

ब्रिटिश गायना की अरावाक जाति में लड़के की परीक्षा ली जाती थी। एक चलती हुई नाव में खड़े होकर उसे निर्दिष्ट स्थान पर निशाना लगाना पड़ता था। कई कृषि-सम्बन्धी प्रदर्शन भी करने पड़ते थे। उत्तरीय अमेरिकन इण्डियन्स में अच्छे शिकारी होने पर दामाद को एक आदर्श दामाद समझा जाता था। कई बार एक दूसरे को साथ रहने तथा पारस्परिक स्वभाव को परख कर विवाह करने की भी आज्ञा होती थी।

## गन्धर्व विवाह—

इस पद्धति के अन्तर्गत युवक व युवतियाँ वृद्धजनों और प्रचलित प्रथाओं का बन्धन तोड़कर स्वयं ही विवाह कर लेते थे। मोन्टाना (Montana) प्रदेश के क्रो-इण्डियन्स (Crow Indians) लड़के और लड़की को प्यार बढ़ाने की पूर्ण सुविधा दी जाती थी। इसके लिए कई उत्सव भी रचाये जाते थे और वहीं-

कहीं दावतें दी जाती थीं। यों तो क्रो-इण्डियन्स म कई विवाह-प्रणालियां विद्यमान थी परन्तु प्रेम-विवाह का विशेष महत्व था।

## अधिमान्य विवाह

कतिपय प्राचीन जातियों में विवाह की कुछ ऐसी प्रणालियाँ भी प्रचलित थीं जिन्हें आधुनिक लोगो ने अभी तक नही अपनाया। वे लोग जीवन-संगी का चुनाव अन्य वर्गों की अपेक्षा अपने वर्ग में ही श्रेयस्कर समझते थे। भाई बहिन की सन्तान का विवाह (Cross Cousin Marriage) इस पद्धति का ज्वलन्त उदाहरण है।

## 'भाई-बहिन सन्तति' विवाह (Cross Cousin Marriage)

प्राचीन काल में चचेरे तथा ममेरे, मौसेरे तथा फुफेरे भाई-बहिनों में भी विवाह हुआ करते थे। भाई तथा बहिन के बच्चे (Cross Cousin) में विवाह पर कोई प्रतिबन्ध न था अपितु भाई भाई के बच्चे और बहिन बहिन के बच्चो (Parellel Cousin) में विवाह का निषेध था।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया तथा लेक आयर (Lakeyre) में प्रत्येक व्यक्ति को अपने मामे की लड़की से विवाह करने का पूरा अधिकार प्राप्त था। दक्षिणी एशिया की टोडा तथा वेड्डा (Toda and Vedda) जाति में सुदूर भारत-स्थित आसाम की तिब्बत-बर्मा सीमा पर, सुमात्रा तथा साईबेरिया में युवा पुरुष अपनी युवा ममेरी बहिन से विवाह करने में संकोच न करता था। जहाँ भाई तथा बहिन के बच्चों का अभाव होता था वहाँ काल्पनिक सम्बन्ध जोड़ कर भी यह विवाह-प्रथा पूरी की जाती थी। पश्चिमी आस्ट्रेलिया की करियेरा (Kariera) जाति मे इस प्रकार के कई वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। फिजी में भी यह प्रथा पाई जाती थी। इन वैवाहिक सम्बन्धों में आयु-सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध न होता था। अतएव ऐसा भी देखा गया है कि २० वर्षीय कन्या का विवाह दो वर्षीय बालक से हो गया हो।

दक्षिणी एशिया में यह प्रथा अत्यधिक फैली हुई थी। गिल्याक (Gilyak) कामचडल (Kamchadal) तथा टुंगस (Tungus) जातियों में ममेरी बहिन से विवाह करना साधारण-सी बात थी। यदि माँ का भाई अथवा मामे की लड़की न होती थी तो किसी दूरस्थ सम्बन्धी को मामा मान कर उसकी लड़की से विवाह करना उपयुक्त समझा जाता था। पश्चिमी

आस्ट्रेलिया की करियेरा (Kariera) जाति में इस प्रकार के विवाह श्रेष्ठ विवाह के रूप में स्वीकृत किये जाते थे।

बाल्य-विवाह—

कई जातियों में बाल्य-विवाह की भी प्रथा विद्यमान थी। करियेरा (Kariera) जाति के वृद्धजन इस कट्टर-पन्थी प्रथा के आधार पर कई विवाह रचाया करते थे। लड़के-लड़की का बचपन में ही विवाह हो जाया करता था। यदि दोनों में से कोई बाल्य-काल में ही मर जाता तो उसका पुनः प्रबन्ध कर दिया जाता।

भारत में यह कुप्रथा पुरातन काल से विद्यमान है। धर्म-ग्रन्थों की आड़ में उपदेशकों द्वारा माता-पिता को लड़की का विवाह छोटी आयु में करने के लिए बाध्य किया जाता है। कई स्थानों में तो बालक व बालिका के जन्म से पूर्व गर्भावस्था में ही विवाह सम्पन्न किये जाते हैं।

इंग्लैण्ड में १८वीं शताब्दि के प्रारम्भ तक यह प्रथा विद्यमान रही। फ़ांस के राजा फिलिप ने इंग्लैण्ड की राजकुमारी को १२ वर्ष की छोटी आयु में व्याहा था। दूसरी राजकुमारी का विवाह ९ वर्ष की आयु में हुआ। एलिज़ाबेथ हार्डविक का विवाह १३ वर्ष की आयु में हुआ। जब इंगलैण्ड के राजा रिचर्ड का विवाह फ़ांस की राजकुमारी से हुआ उस समय राजकुमारी की आयु कुल ८ वर्ष की थी।

मुसलमानों में भी यह प्रथा पुरातन-काल से चली आ रही है।

मृतक-विवाह—

टोडा तथा हिका जाति में यह प्रथा थी कि यदि किसी व्यक्ति का बड़ा भाई अविवाहित अवस्था म मर जाये तो छोटा भाई अपने विवाह से पूर्व ही मृतक अविवाहित भाई का विवाह रचाता था। इस विवाह द्वारा उत्पन्न हुई २ सन्तान भी उस मृतक भाई की परिगणित की जाती है।

देव विवाह—

कुछ स्त्रियां ऐसी होती थी जो मन्दिर में देवताओं के सुपुर्द कर दी जाती थी। एक रूप में उनका देवताओं से परिणय हो जाता था। भारत की कई

जातियों में यह प्रथा विद्यमान है कि अनेक कुमारी कन्याय मन्दिर के देवता के हवाले कर दी जाती हैं और वे सम्पूर्ण आयु देवता की दासी व स्त्री के रूप में अपना जीवन व्यतीत करती हैं। ये किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकतीं।

## तलाक-प्रथा तथा पुनर्विवाह—

किन्हीं विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत तलाकप्रथा भी विद्यमान थी। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् सन्तान के निरीक्षण का कार्य इतना उत्तरदायित्व-पूर्ण होता था कि दम्पति के लिए तलाक का प्रश्न जटिल बन जाता। अतएव सन्तानोत्पत्ति परिवार की स्थिरता का सर्व-प्रधान अंग समझा जाता था। जेठा के रूप में पति को पत्नी-परित्याग का विचार ही उत्पन्न न होता था। वह अपने आपको परिवार का नियन्त्रक समझता। पत्नी-पक्ष वाले भी तलाक का समर्थन न करते थे, क्योंकि उन्हें वह सारी सम्पत्ति वापिस कर देनी पड़ती थी जो उन्होंने कन्या-धन के रूप में प्राप्त की होती थी। बाँझपन घोर अभिशाप था क्योंकि *अन्ततोगत्वा इसका परिणाम तलाक तथा पुनर्विवाह ही होता था।*

सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् तलाक की सम्भावना कम हो जाती है क्योंकि पति-पत्नी के मन में सन्तान के प्रति विशेष अनुराग उत्पन्न हो जाता है।

थोंगा जाति में पति के मर जाने पर पत्नी को पति के सम्बन्धियों में से किसी को पति स्वीकार कर लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी।

## भारत की वैवाहिक पद्धतियां :—

प्राचीनकाल में भारत में विवाह की निम्न ८ प्रणालियां प्रचलित थीं:—

१. ब्राह्मविवाह, २. देव विवाह, ३. आर्ष विवाह, ४. प्राजापत्य विवाह, ५. असुर विवाह, ६. गन्धर्व विवाह, ७. राक्षस विवाह, ८. पैशाच विवाह।

वर और कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण, विद्वान्, धार्मिक और सुशील हों उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह करना ही ब्राह्म-विवाह कहलाता है। विस्तृत यज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलंकार युक्त कन्या का देना 'देव', तथा वर से कुछ लेकर विवाह कराना 'आर्ष" विवाह कहाता है। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के हेतु कराना 'प्राजापत्य' विवाह कहाता है। वर और कन्या को कुछ देकर विवाह कराना "आसुर" विवाह कहाता है। नियम विरुद्ध, अनमय किसी कारण वश वर-कन्या का इच्छापूर्वक परस्पर संयोग

होना "गन्धर्व" विवाह कहाता है। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन, झपट व कपट से कन्या का ग्रहण करना "राक्षस" विवाह कहाता है। शयन व मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना "पैशाच" विवाह कहाता है। इन सब विवाहों में 'ब्राह्म' विवाह सर्वोत्कृष्ट, 'देव' मध्यम 'आर्ष' 'असुर' और 'गन्धर्व' निकृष्ट, तथा 'राक्षस' अधम और 'पैशाच' महाभ्रष्ट है।

विवाह—प्रणालियों की समीक्षा—

१. ब्राह्म विवाह :—इस प्रथा के अन्तर्गत लड़की के माता-पिता विद्वान् तथा गुणी युवक को अपने घर आमन्त्रित करते और वस्त्र तथा आभूषण से युक्त कन्या को उसके सुपुर्द करते थे।

२. दैव-विवाह :—लड़की का पिता एक उत्सव आयोजित करता और विद्वान् ब्राह्मण को विधि-विधानादि सम्पन्न करने के लिए आमन्त्रित करता। दक्षिणा के स्थान पर उस ब्राह्मण को आभूषणादि से अलंकृत कन्या दी जाती थी।

३. आर्ष विवाह :—यह पद्धति आदान-प्रदान विधि पर आधारित होती थी जिसमें लड़के का पिता लड़की के पिता को कुछ निश्चित सामान व एक-दो पशुओं के जोड़े देता था।

४. प्राजापत्य विवाह :—इस विवाह के लिये कोई उत्सव न रचाया जाता था। उपयुक्त एवं निर्वाचित युवक को कन्या समर्पित की जाती थी और नवदम्पति से सदैव प्रसन्न रहने की आशा प्रकट की जाती थी। यह धर्म की वृद्धि के हेतु होता था।

५. असुर-विवाह :—यह पद्धति आदिवासियों में आज भी पाई जाती है। बहुत सी अस्पृश्य व पददलित जातियाँ भी इस पद्धति को अपनाती हैं। वर पक्ष वालों की ओर से कन्या पक्ष वालों को धन दिया जाता है। इस दिये जाने वाले धन की राशि निश्चित नहीं होती। आर्ष विवाह में 'कन्या मूल्य' पहले ही निश्चित कर लिया जाता है परन्तु इस विवाह में 'कन्या मूल्य' का प्रथम निर्धारण नहीं किया जाता और न हीं इस प्रकार का नियन्त्रण लागू हो सकता है।

६. गन्धर्व विवाहः—यह पारस्परिक अभिरुचि पर आधारित है। इसमें माता-पिता अथवा अभिभावक की सहमति एवं स्वीकृति लेने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

७. राक्षस-विवाह :—यह विवाह अपहरण वृत्ति पर आधारित है। अपहरण की योजना पहले ही निर्धारित हो जाती थी। विधान द्वारा इस विवाह को

स्वीकृति ले ली जाती थी। म जातियों में निरन्तर युद्ध होते रहने के कारण अपहरण की वृत्ति उत्पन्न होती थी। नागा जातियों में यह युद्ध-प्रथा अब भी विद्यमान है। वे शत्रु को मार कर उनकी स्त्रियों से विवाह कर लेते हैं और उसे वैधानिक एवं उप[illegible] समझते हैं।

८. पैशाच-विव[illegible]—इस पद्धति के अन्तर्गत बलात्कार की जाने वाली स्त्रियों को भी सामाजिक-पद प्राप्त होता था। जो व्यक्ति स्त्री को सोते वक्त अथवा असुरक्षा की स्थिति में ले जाता था वह भी उस स्त्री को वैधानिक रूप से अपनी स्त्री बना कर रख सकता था।

इस समय हिन्दू जाति में दो विवाह प्रचलित हैं। ब्राह्म-विवाह तथा असुर-विवाह। सवर्ण जातियाँ ब्राह्म-विवाह को विशेषता देती हैं। पददलित जातियाँ असुर विवाह को विशेषता देती हैं। बंगाल के कट्टरपन्थी कुलीन अब भी कुलीन जाति से इतर अपनी कन्या का विवाह नहीं करते। वे या तो अपनी कन्या के बदले में धन मांगते हैं अथवा कन्या को वर के घर भेज कर वहीं उसका विवाह करते हैं।

———

# रक्त-सम्बन्ध तथा गोत्र प्रणालियाँ

रक्त-सम्बन्ध (Kinship) का स्वरूप

रक्त-सम्बन्ध में उन व्यक्तियों अथवा सम्बन्धियों की परिगणना है जो एक दूसरे से रिश्तेदारी अथवा नातेदारी द्वारा सम्बद्ध हैं। यह सम्बन्ध एकवंशीय (Lineal), सगोत्र (Consanguine), सपिण्ड (Collateral), तथा दाम्पत्य (Affinial) विधियों द्वारा परस्पर जुड़ा होता है। रक्त सम्बन्ध को व्यवहृत करने के लिए हम इसका स्पष्टीकरण कई रूपों में कर सकते हैं। पिता तथा चाचा, पिता तथा श्वसुर आदि रक्त सम्बन्धियों का नाम करण (Nomenclature) और उनका पारस्परिक सम्बन्ध इतना जटिल होता चला गया है कि उनकी ठीक-ठीक व्याख्या करना सुगम नहीं रहा। श्वसुर तथा दामाद में, सास तथा दामाद में, श्वसुर तथा पुत्रवधू में, सास तथा पुत्रवधू में, भाई तथा बहिन में कौन सी प्रथायें वर्जित तथा कौन सी अवर्जित हैं? अमुक व्यक्ति से क्या सम्बन्ध होना चाहिये? अमुक व्यक्ति को किन बातों का आदेश दिया गया है? इत्यादि, इन सब प्रयोगों का इस प्रकरण में विशेष उल्लेख किया गया है।

समाज में जब काम (Passion) तथा उत्तेजना (Excitement) की अभिवृद्धि होकर स्त्री-पुरुषों में अवैधानिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो समाज कुछ प्रतिबन्धों द्वारा इस अवगुण को बाहर उखाड़ फेंकने के लिए नानाविध प्रतिबन्धों की सृष्टि करता है। कतिपय आवश्यक नियम बनाये जाते हैं। सम्मुख सम्भाषण, सम्मिलित आहार-व्यवहार, एकान्त शयन, परस्पर समागम आदि प्रथाओं के विरुद्ध कठोर नियम बनाये जाते हैं क्योंकि उन में समाज के दूषित होने की अन्तर्निहित भावना अभिव्यक्त होती है।

चाचा व मामा ( Avuncular ) के अधिकारः—

प्राचीनकाल में जिन व्यक्तियों के पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध होते थे उन्हें अपनी सन्तान पर उतने अधिकार प्राप्त न होते थे जितने अधिकार उनके चाचा व मामा को प्राप्त होते थे। मामा को भान्जे पर और चाचा व बूआ

का भतीजे पर जो अधिकार था सगे बाप व सगी माँ का अधिकार भी उसकी तुलना में नगण्य था। साम्पत्तिक अधिकारों के सम्बन्ध में उनमें विशेष प्रकार के नियम लागू हुआ करते थे जिनके आधार पर पारिवारिक जीवन की विभिन्नता स्पष्टता दृष्टिगोचर होती है।

काये ( Kai ) जाति में लड़के को सम्पत्ति पाने के लिए लड़की के मामा से स्वीकृति लेनी पड़ती थी और थोंगा ( Thonga ) जाति में भाञ्जे को माँ के भाई की स्त्री से विवाह करने का अधिकार था। विनेबागो ( Winnebago ) जाति में भांजा मामे के पास दास बनकर कार्य करता, युद्ध में उसके साथ जाना तथा मामे की सम्पत्ति पर उसे पूरा अधिकार था।

ओमाहा (Omaha) जाति में भाई का अपनी बहिन के अनाथ बच्चों पर पूरा-पूरा अधिकार होता था और बच्चों के माँ बाप के जीवित रहते भी उनका पितृवत् संरक्षण किया करता था। ब्रिटिश कोलम्बिया में भाञ्जा अपने मामे के यहाँ ही रहता था, उसके यहाँ काम करता, उसकी लड़की से विवाह करता और उसका कानूनी उत्तराधिकारी कहलाता। ओसीनिया (Oceania) में भी इस प्रकार के रीति-रिवाज प्रचलित थे। टारेस स्ट्रेट द्वीप ( Torres Straits Island ) में भाञ्जा मामे की आज्ञा को पिता से भी अधिक मानता था और सबसे बड़ा मामा ही भाञ्जे को पालता-पोसता और बड़ा करता।

अफ्रीका में भी यह प्रथा सर्वत्र व्याप्त थी। पूर्वी अफ्रीका की मकोण्डे ( Makonde ) जाति में मामा ही अपनी भाञ्जियों के विवाह की स्वीकृति देने का तथा 'कन्या-मूल्य' ( Bride Price ) का कुछ भाग पाने का अधिकारी होता था। अपर गायना में सगे पिता की अपेक्षा मामे का बच्चों पर अधिक अधिकार होता था। भाञ्जा सदैव मामे के यहाँ रहता और काम करता था। पूर्वीय अफ्रीका की हैमिटिक नाण्डी ( Hamitic Nandi ) जाति में बच्चे का खतना ( Circumcision ) मामे की आज्ञा बिना नहीं हो सकता था और यदि भाञ्जा युद्ध में जीत आये तो मामा उसे पारितोषक देता था। पिता का अधिकार मामे के बच्चों पर सौंपे जाने की यह विचित्र प्रथा प्राचीन जातियों में सर्वत्र पाई जाती थी। इस अवस्था में परिवार का क्या रूप एवं क्या स्थिति होती होगी ? इसकी कल्पना सुगमतया की जा सकती है।

जहाँ हमें मातृ-पक्ष में मामे के विशेषाधिकारों का पता चलता है वहाँ पितृ-पक्ष में पिता के भाई व बहिन के विशेषाधिकारों का भी पता चलता है। ओसीनिया ( Oceania ) में एक व्यक्ति सगी माँ की अपेक्षा बुआ (पिता

की बहिन) का अधिक मान करता था। फूफी ही अपने भतीजे का विवाह-सम्बन्ध निश्चित करती थी। बूआ को अपने भतीजे की सम्पत्ति खर्च करने व ले लेने का भी पूरा अधिकार था। मैलानीशिया ( Melanesia ) तथा पोलीनीशिया ( Polynesia ) की टोंगा (Tonga) जाति में सगे पिता तथा चाचा से भी फूफी का मान अधिक होता है। टोडा जाति में जब लड़की भी पैदा होती थी तो बूआ को ही उसका नाम रखने का अधिकार होता था। श्रो जाति में पिता के दूरस्थ भाई व बहिनें भी मान व प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखी जाती हैं। भतीजा, चाहे छोटा हो व बड़ा उनके सामने जाने में भी सकोच करता था। जब भतीजा शत्रुओं पर विजय पाकर आता था तो वह चाचे को विजयोपहार प्रदान करता था और चाचा उच्च स्वर में भतीजे का यशोगान किया करता। सन्तानोत्पत्ति पर नाम रखने का अधिकार भी बूआ तथा चाचा को प्राप्त था न कि सगे पिता को। हिदात्सा ( Hidatsa ) जाति में मृतक व्यक्ति के शव का क्रिया-कर्म पितृ-पक्ष के सम्बन्धी ही किया करते थे।

वर्जित प्रथायें (Taboos)—

प्राचीन काल की सामाजिक प्रणालियों में कुछ वर्जित तथा अवर्जित प्रथायें भी प्रचलित थीं जिनके आधार पर कई बार समीपस्थ सगे-सम्बन्धियों में घनिष्टता स्थापित होने के साथ-साथ असुरक्षा तथा पारस्परिक कलह की भावना भी उत्पन्न हो जाती थी। यदि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक शिष्टाचार के आधार पर ठीक-ठीक विधिपूर्वक जीवन यापन करता तो ये दुर्भावनायें न तो भयावह रूप धारण करतीं और न ही घृणा, प्यार, कलह, अत्याचार आदि भावनाओं का प्रकटीकरण होता। इन प्रथाओं से धीरे-धीरे पारस्परिक सम्बन्ध में कुछ कटुता एवं प्रतिशोध की भावना का सूत्रपात हुआ। परिणामतः बोलचाल में अपशब्दों का प्रयोग, चोरी अथवा किसी की बहुमूल्य वस्तुओं का विनाश, घोड़े को भगा ले जाना आदि कार्य आरम्भ हो गये।

कुछ वर्जित प्रथायें ऐसी थी जिनके अनुसार पति-पत्नी का अपने-अपने श्वसुर पक्ष वालों से अनोखा सम्बन्ध प्रदर्शित होना था। योकाघीर (Yokaghir) जाति में पुत्रवधू अपने श्वसुर तथा बड़े देवर को देख नहीं सकती थी और न ही दामाद अपने सास तथा श्वसुर को देख सकता था। इस जाति में पति सदैव पत्नीगृह में रहा करता था और श्वसुर को जब दामाद से कोई बात कहनी होती थी तो वह इशारों द्वारा बात किया करता था। पुत्र-वधू अपने श्वसुर तथा बड़े देवर के सम्मुख अपना शरीर सदैव तिरोहित रखती

थी। ओस्टयाक (Ostyak) जाति में विवाहित स्त्री अपने श्वसुर के सामने और विवाहित पुरुष अपनी सास के सम्मुख तब तक न जा सकते थे जब तक उनकी सन्तान न हो जाये। और जब भी कभी बोलने व मिलने का अवसर मिलता भी था तो मुँह ढांप लिये जाते थे और स्त्री तो आयु भर पर्दा किया करती। 'कन्या-धन' चुका देने से पूर्व, पत्नी के घर जाने वाला पति यदि अकस्मात् अपने श्वसुर से कहीं मिल जाता तो अपना मुँह ढांप लेता था अथवा पीठ कर लेता था।

बुरयात (Buryat) जाति में स्त्री को श्वसुर तथा बड़े देवर के सामने कपड़े बदलने, एक कमरे में सोने और बोलने का पूर्ण निषेध होता था। लंका की वेड्डा (Vedda) जाति में दामाद अपनी सास को नहीं छू सकता। यदि वह जंगल में अकस्मात् सास को देख लेता था तो अपना रास्ता भी बदल लेता था। अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उसे सास से बोलने का कोई अधिकार न था। मैलानीशिया में जहाँ दामाद को सास से बोलने की मनाही थी वहाँ सास भी उस पेड़ के पास से न गुजरती थी जिस पर उसका दामाद चढ़ा हो और न ही उस पात्र से पानी पीती थी जो उस के दामाद के हाथ में हो। यदि सास को दामाद की किसी वस्तु की आवश्यकता भी होती तो वह अपनी लड़की को कहती थी न कि दामाद को।

आस्ट्रेलिया में यह प्रतिबन्ध यहाँ तक लागू किया जाता था कि सास को दामाद का नाम सुनने की भी मनाही होती थी। यदि अकस्मात् कहीं भेंट हो जाये तो पति-पत्नी में तलाक तक की नौबत आ जाती थी। कहीं-कहीं तो इस निषेधाज्ञा को भंग करने पर प्राण-दण्ड की सजा भी दी जाती थी। करेरा (Kariera) जाति में सास और दामाद के मकान के बीच में एक झोंपड़ी बना दी जाती थी ताकि वे एक दूसरे को देख न सकें। परन्तु यह प्रतिबन्ध कुछ ही वर्षों तक लागू रहता था।

अफ्रीका की जुलु (Zulu) जाति में यह प्रथा थी कि यदि दामाद के भोजन करते समय अकस्मात् सास आ जाती तो वह मुँह का ग्रास बाहर फेंक देता और खाना छोड़ देता था। बाण्टू तथा मसाई जातियों में भी इसी प्रकार की निषेधाज्ञाएं लागू थीं।

अमेरिका की क्रो (Crow) जाति में दामाद को सास तथा ससुर से बोलने का निषेध था। हाँ! कभी-कभी अपनी पत्नी द्वारा वह सास से बातचीत कर सकता था। पत्नी की मृत्यु के बाद वह दामाद को पुत्रवत् पुकारने का भी अधिकार रखती थी।

निषेधाज्ञा सम्बन्धी सिद्धान्त :—अनुमान किया जाता है कि ये निषे-

धाज्ञायें दो जातियों के पारस्परिक सम्पर्क से प्रारम्भ हुई होंगी। ओशोनिया तथा अफ्रीका, मैलानीनिया तथा अमेरिका के बीच ऐसा सम्पर्क रहा होगा जिससे उन्होंने एक दूसरे की प्रचलित प्रथाओं को अपना लिया होगा। फ्रेजर (Frazer) का कथन है कि ये निषेधाज्ञाएं न केवल सास व दामाद तथा ससुर व पुत्रवधू के बीच में ही प्रचलित थीं, अपितु भाई-बहिन व सभी विरोधी लिंग वालों में भी पाई जाती हैं। अतः हो सकता है कि ये वर्जित आदेश इसलिए प्रचलित किये गए हों जिससे समाज में व्यभिचार की भावना उग्र रूप धारण न करे।

२. फ्रायड (Freud) का मत है कि सास पर लागू की गई निषेधाज्ञायें दो विरोधी भावनाओं—आकर्षण (Attraction) तथा अनाकर्षण (Repulsion), *आकांक्षा (Desire) तथा अनाकांक्षा (Hatred)* आदि के सम्मिश्रण पर आधारित हैं। जब किसी परिवार में दूसरे सम्बन्ध व गोत्र का व्यक्ति आकर कोई महत्वपूर्ण स्थान ले लेता है तो प्रतिक्रिया की भावनायें जागृत होती हैं। इस प्रतिक्रिया का परिणाम पारस्परिक सम्बन्ध में भेद का उत्पन्न होना ही है। अतएव सास तथा दामाद में इन वर्जित निषेधाज्ञाओं का प्रारम्भ भी इसी सिद्धान्त पर आधारित किया गया।

सास नवागन्तुक के प्रति जो सन्देह वृत्ति धारण करती है उसी की प्रतिक्रिया होती रहती है और उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता रहता है। सास के मन में दामाद के प्रति, दामाद के मन में सास के प्रति, ससुर के मन में पुत्रवधू के प्रति और पुत्रवधू के मन में श्वसुर के प्रति बुरी भावना न आने पाये अतएव ये प्रतिबन्ध लगाये गये।

यदि हम फ्रायड महोदय के कथन को सत्य मान लें तो सभी जातियों का इस रूप में पृथक्-पृथक् मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना पड़ेगा। यह आवश्यक नहीं कि सभी जातियों में व्यभिचार की मनोवैज्ञानिक भावना ही कार्य करती हो। नवाहो (Navaho) जाति में सास दामाद से बोलने में इसलिए नहीं कतराती क्योंकि उसके मन में दामाद के प्रति कोई व्यभिचार की भावना अथवा अन्य दुर्भावना होती है अपितु वह तो एक ऐसे समाज का अंग होती है जिसमें इस प्रकार के सम्बन्धियों को बोलचाल की मनाही कर दी जाती है। यदि वह इस निषेधाज्ञा का उल्लंघन करती है तो उसकी व्यक्तिगत हानि नहीं, *अपितु सम्पूर्ण सामाजिक आदर्श* (Social Norm) पर कुठाराघात होता है। अतः सामाजिक नियम, सिद्धान्त व आदर्श के पालन के लिए उसको कटिबद्ध होना पड़ता है न कि व्यभिचार की भावना की रोकथाम के लिए।

३. इस दिशा में टायलर (Tylor) का सिद्धान्त सबसे अधिक वैज्ञानिक एव ग्राह्य प्रतीत होता है। टायलर इस निषेधाज्ञा का प्रारम्भ "निवासगृह" (Residence) के नियम पर आधारित मानते हैं। उनका विचार है कि मातृपक्षीय परिवार में पति की सत्ता और पितृपक्षीय परिवार में पत्नी की सत्ता एक 'अनाहूत' आगन्तुक (Intruder) की भांति होती है। अत: जब तक उनके अस्थाई निवासगृह का यह रूप रहता है तब तक इस प्रकार की निषेधाज्ञायें विकसित होती रहती हैं। जैसे-जैसे निवास स्थान के रूप में परिवर्तन होता जायगा वैसे-वैसे निषेधाज्ञाओं में भी परिवर्तन होता जायगा। अत. निवास-गृह और निषेधाज्ञाओं का आपस में पर्याप्त सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। वे मातृ-निवास स्थान तथा दामाद और सासकी निषेधाज्ञाओं का आनुपातिक सम्बन्ध स्वीकार करते हैं।

उदाहरणार्थ साइबेरिया की जातियों में पुत्रवधू पर अनेक निषेधाज्ञाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु यदि वहा पितृपक्षीय परिवार तथा निषेधाज्ञा का स्वतन्त्र रूप होता तो सम्भवत: ये निषेधाज्ञायें इस सीमा तक न होती जितनी अब हैं।

४. *मैलिनोवस्की (Malinowaski) का मत है कि ये निषेधाज्ञाएं न तो* दो विरोधी भावों की उत्पत्ति के कारण हैं, और न ही नवागन्तुक के प्रति ईर्ष्या भाव के कारण हैं। इन प्रतिबन्धों की तह में सम्मान की भावना अन्तर्निहित है। सास दामाद के प्रति और दामाद सास के प्रति सम्मान की भावना रखता था। अत: उनमें पारस्परिक प्रतिबन्ध लगाये गये।

५. समाजवादियों का विचार है कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध ही ऐसे होते हैं कि यदि उनपर प्रतिबन्ध न लगाया जाये तो परिवार छिन्न-भिन्न हो जाएगा। परिवार की स्थिरता के लिए और इन सम्बन्धियों के व्यवहार को नियमित रखने के लिए प्रतिबन्ध आवश्यक है।

### अन्य निषेधाज्ञायें (Taboos)—

जहा तक निषेधाज्ञाओं का सम्बन्ध है वहां तक योकागीर (Yokaghir) जाति इस दिशा में सब से अधिक अग्रसर थी। दामाद और पुत्रवधू सम्बन्धी वर्जित प्रथाओं को छोड़कर उनमें कुछ अन्य सम्बन्धियों पर भी प्रतिबन्ध लगे हुए थे। बड़े भाई तथा चचेरे भाई को छोटे भाई तथा चचेरे भाई की स्त्री से बोलने की मनाही होती थी। बड़े चचेरे भाई को छोटे चचेरे भाई के लड़के की स्त्री से, बड़े भाई को छोटी बहिन के लड़के की स्त्री से और बड़े भाई को छोटी बहिन के पति से बोलने का अधिकार नहीं था। इतना ही

नहीं, भाई अपने सगे भाइयों, बहिनों तथा चचेरे भाइयों से निरंकुश एवं असंयमित बातचीत न कर सकता था। वे चाहे एक ही लिङ्ग के क्यों न हों एक दूसरे के सामने शरीर को नग्न नहीं कर सकते थे। काम-वासना सम्बन्धी बातें करना बिल्कुल वर्जित थी। न तो वे एक दूसरे को नाम लेकर पुकार सकते थे और न ही एक दूसरे के सम्मुख खड़े होकर देख सकते थे।

अण्डेमान द्वीपसमूह में यद्यपि दामाद व श्वसुर सम्बन्धी प्रतिबन्ध प्रचलित न थे परन्तु उनसे मिलती-जुलती निषेधाज्ञायें लागू हुआ करती थीं। वहां पर बड़े भाई को अपने छोटे भाई की स्त्री से बात करने का अधिकार न था। यदि उसे कोई बात करनी होती तो वह किसी को मध्यस्थ बना कर बातचीत किया करता था। बड़े भाई की स्त्री से बातचीत करने व मिलने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था।

मैलानेशिया में भाई तथा बहिन का पारस्परिक मिलन भी वर्जित था। लीपर द्वीप Leper Island) में जब एक लड़की युवावस्था को प्राप्त हो जाती थी तो सगा भाई उससे बात न कर सकता था। लड़की मामा के यहां चली जाती थी। यदि कोई व्यक्ति अपने भांजे से बोलना चाहता था तो उसकी बहिन उसके गृह-प्रवेश से पूर्व ही घर छोड़ कर बाहर चली जाती थी।

फिजी द्वीपवासियों में भी भाई और बहिन यदि बातचीत करना चाहते थे तो वे किसी मध्यस्थ द्वारा बातचीत कर सकते थे। न्यू आयरलैण्ड (New Ireland) में चचेरे भाइयों तथा चचेरी बहिनों पर भी इस प्रकार के प्रतिबन्ध लागू थे। बैंकस द्वीप-समूह (Banks Islands, में पिता और पुत्र को एक-साथ बैठकर खाने का अधिकार न था। पिता की बहिन को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। पति अपनी पत्नी को नाम लेकर पुकार सकता था परन्तु पत्नी, पति का नाम न ले सकती थी। अमेरिका की नॉ जाति में एक व्यक्ति यदि औरों से बात कर रहा होता तो वह अपने साले की उपस्थिति में कोई अशिष्ट भाषा प्रयुक्त करने का अधिकारी न होता था। यद्यपि भाई तथा बहिन को बातचीत करने का निषेध नहीं, तो भी युवावस्था प्राप्त होने पर वे एक दूसरे से पूर्णतया बातचीत करने के अधिकारी न होते थे। युवा हो जाने पर उन्हें एकान्त स्थान पर एक साथ बैठने व मिलने का भी कोई अधिकार न होता था। यदि कोई व्यक्ति घर में प्रवेश करता और उस घर में उसकी बहिन अकेली होती तो वह घर में प्रविष्ट ही न होता था और बाहर से ही वापस चला जाता था। जब तक विवाह किये अनेक वर्ष व्यतीत न हो जाते थे पति-पत्नी एक दूसरे का नाम न ले सकते थे।

विशेषाधिकारयुक्त मेलजोल (Privileged Familiarity)—

प्राचीन काल की जातियों में जहाँ हम यह देखते हैं कि भान्जे को मामा की जायदाद पर विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं वहाँ हम यह भी देखते हैं कि यदि भान्जा मामा की जायदाद का दुरुपयोग करे तो भान्जे को कई अधिकारों से वञ्चित करने का विशेष हक भी मामा को प्राप्त होता था। फ़िजी द्वीप में जहाँ एक ओर बहिन का लड़का अथवा भान्जा अपने मामे की जायदाद को पितृ-सम्पत्ति के रूप में समझता, अप्रतिवाध रूप से हँसी-खेल में उसके सूअरों को मार डालता तथा उसकी खेती को भी नष्ट करने का पूरा अधिकार रखता था वहां दूसरी ओर यह भी था कि जब वह अपने मामे के कबीले तथा दूसरे कबीले की लड़ाई में कुछ सामग्री अधिकृत कर लेता था तो उसे मामे के लड़कों से मार भी पड़ती थी। वे उसे मारने का तो पूर्ण अधिकार रखते हैं परन्तु जायदाद वापिस नहीं ले सकते। विनेबागो इण्डियन्स (Winnebago Indians) में भान्जे को अपने मामे की जायदाद खर्च करने का पूरा-पूरा अधिकार था। हाटनटाट (Hottentot) जाति में यदि भान्जा जायदाद को हानि पहुँचाता तो मामे को भी तबतक भान्जे की जायदाद ले लेने का पूरा अधिकार था जब तक वह क्षतिपूर्ति न कर दे।

ब्लैकफुट (Blackfoot) तथा क्रो-इण्डियन्स (Crow Indians) में साले और बहिनोई में अश्लील भाषा प्रयुक्त करने की कोई सीमा ही नहीं। अपने युवा पुत्र तथा पत्नी की उपस्थिति में भी वे जितना चाहें अश्लील मजाक कर सकते थे।

जिस प्रकार फिजी में भान्जे को मामे की जायदाद पर अधिकार होता था उसी प्रकार चचेरे भाई भी एक-दूसरे की वस्तुओं का निर्लज्जता से प्रयोग कर सकते थे। लुट जाने के बाद चचेरा भाई लुटेरे को गाली दे सकता था परन्तु सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने का अधिकारी नहीं था, क्योंकि इसमें उसकी नीचता प्रकट होती थी। भाई-बहिन के बच्चे एक दूसरे से स्वच्छन्दता-पूर्वक मिल सकते और उनके परस्पर सम्भोग को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। भाई-बहिन के बच्चों में गाली-गलौच को भी बुरा नहीं समझा जाता था।

वर्जित तथा अवर्जित अधिकारः—

हम देखते हैं कि प्राचीन काल में एक ही जाति में जो निषेधाज्ञा है वही

जाति में वही चीज दूसरे रूप में अवर्जित अधिकार स्वीकृत किया गया है। अण्डेमान द्वीप में जहाँ एक व्यक्ति अपने छोटे भाई की स्त्री से सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता वहाँ बड़े भाई की स्त्री से संभोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। मैलानीशिया में भाई-बहिन के बच्चों को आपस में मिलने की मनाही है परन्तु साला-बहनोई के मिलने में कोई प्रतिबन्ध नहीं। योंगा जाति में एक स्त्री को पति के छोटे भाई से विवाह करने तक का भी अधिकार प्राप्त है परन्तु पति के बड़े भाई से विवाह करने का उसे कोई अधिकार नहीं। इसके अतिरिक्त भान्जे को मामे के जीवित रहते हुए मामी से मिलने की भी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है। एक योंगा युवक अपनी स्त्री की बड़ी बहिनों से दूर रहता है परन्तु छोटी बहिनों से स्त्रीवत् व्यवहार कर सकता है।

साइबेरिया में एक स्त्री को अपने श्वसुर तथा बड़े देवर से बोलने की मनाही होती थी परन्तु साइबेरिया की योकागीर (Yokaghir) जाति को छोड़कर बाकी सभी जातियों में सास और दामाद में पुत्रवधू और श्वसुर में बोलचाल पर प्रतिबन्ध था।

'भाई बहिन-सन्तति' विवाह का विवेचन :—भाई बहिन की सन्तति (Cross Cousin Marriage) में जो विवाह होते थे उनके विषय में निम्न मत प्रचलित है :—

टायलर (Tylor) का मत है कि यह प्रथा ऐसी जातियों में जारी हुई जो गोत्र के निश्चित नियमों द्वारा बहिर्जातीय अर्धांशों (Moiety) में विभक्त थी। चूंकि भाई-भाई व बहिन-बहिन के बच्चे एक ही अर्धांश (Moiety) से सम्बन्ध रखते थे अतएव उन्हें विवाह सम्बन्ध से रोका गया और भाई व बहिन के बच्चे (Cross Cousins) पूरक अर्धांशों (Moieties) से सम्बन्ध रखते थे अत. उन पर इन प्रतिबन्धों का कोई प्रभाव न पड़ा।

स्वैन्टन (Swanton) का मत है कि भाई व बहिन के बच्चों (Cross Cousins) में पारस्परिक विवाह का मुख्य कारण सम्पत्ति का अधिकार ही था। चल व अचल सम्पत्ति को परिवार से बाहर दूसरे को सौंपने की भावना नहीं थी। परिणाम स्वरूप युवा पुरुष फुफेरी व ममेरी बहिन से विवाह कर लेता था। यद्यपि सम्पत्ति का अधिकार भाई-भाई के बच्चों में व बहिन-बहिन के बच्चों (Parallel Cousins) में विवाह कर लेने से तो सुष्ठुतया प्राप्त हो सकता था परन्तु चूंकि उन में विवाह करना व्यभिचार समझा जाता था अतएव परिवार में सम्पत्ति के संरक्षण और सामाजिक प्रतिष्ठा को स्थिर रखने के लिए भाई व बहिन के बच्चों (Cross Cousins) में विवाह सम्बन्ध का विधान बनाया गया।

### इस विवाह के दुष्परिणाम :—

१-इस विवाह-प्रणाली का प्रथम दोष यह है कि मामा ही श्वसुर कहलायेगा और फूआ ही सास कहलायेगी। मामा और श्वसुर के लिए, फूफी तथा सास के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होगा जैसा कि फिजी तथा वेड्डा जातियो में पाया जाता है। इतना ही नही, इसका प्रभाव तो और भी दूर तक पहुँचता है और वह यह कि हमें पति व पत्नी के लिय भी कोई स्पष्ट शब्द प्राप्त नही होता। पति तथा पत्नी के भाई व बहिन के लडको के लिये एक ही शब्द व्यवहृत होगा और स्त्री तथा पति के भाई बहिन की लड़कियो के लिये एक ही शब्द व्यवहृत होगा।

मैलानीशिया के सम्बन्ध में डा० रिवर्स का मत है कि सर्व प्रथम वृद्ध जनों ने-जो उन दिनों प्रमुख में थे—प्राप्तव्य स्त्रियो को अन्याय पूर्वक ग्रहण किया होगा और बाद में अपने वैवाहिक अधिकार (Marital Privileges) अपने भान्जो को सौंप दिये होंगे। मि० गिफर्ड ने भी ठीक इस से तुल्यता रखने वाला विचार पेश किया और बताया कि मिवोक (Miwok) जाति में भाई-बहिन के सन्तान के वैवाहिक सम्बन्ध की (Cross Cousin Marriage) प्रथा अपेक्षाकृत नवीन है और यह मनुष्य को उत्तराधिकार रूप में प्राप्त हुई है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों विद्वान् उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों का परिणाम ही इस प्रथा के विस्तार का कारण बतलाते हैं।

### देवर-सम्बन्ध (Levirate) तथा श्याला सम्बन्ध (Sororate) :—

देवर-सम्बन्ध (Levirate) तथा श्याला-सम्बन्ध (Sororate) प्रथा इसका परिणाम है। 'उपहास-सम्बन्ध' (Joking Relationship) प्रथा भी भाई तथा भाभी में और साली तथा बहिनोई में हँसी-मजाक की आज्ञा देती है। भाई चाहे कितना भी छोटा क्यो न हो वह अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद अपनी बडी भाभी का पति बन बैठता था। उत्तरीय अमेरिका के उत्तर-पश्चिमी समुद्रतटवर्ती प्रदेशो में एक विधवा स्त्री अपने मृतक पति की बहिन के लड़के की भी अर्धांगिनी हो जाती थी। इस प्रथा में एक यह प्रतिबन्ध अवश्य रहता है कि छोटा भाई बड़ी भाभी से विवाह कर सकता है परन्तु बड़ा भाई छोटी भाभी से विवाह नहीं कर सकता। इस प्रथा मे सौतेली माँ और सौतेले बाप की भावना अवश्य पैदा होती है।

कोर्याक (Koryak) तथा अण्डेमान द्वीपसमूह में पति के मर जाने पर छोटे देवर से पुनर्विवाह करने की आज्ञा नहीं थी। थोंगा जाति में पति के मर जाने पर पत्नी को पति के सम्बन्धियों में से किसी को पति स्वीकार कर लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी।

अब प्रश्न यह होता है कि भाई-भाई के बच्चों तथा बहिन-बहिन के बच्चों में विवाह क्यों निषिद्ध था? और भाई-बहिन के बच्चों में विवाह क्यों प्रचलित था? इस सम्बन्ध में यदि हम टायलर तथा अन्य विद्वानों के विचार देखें तो हमें इस प्रथा के विकास का कारण ज्ञात हो जाएगा।

टायलर का कथन है कि विवाह व्यक्तियों की अपेक्षा वर्गों के मध्य एक प्रकार की सन्धि व पट्टा होता है। अतः ज्योंही पति-पत्नी में से एक की मृत्यु होती है त्योंही मृतक के सम्बन्धी उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर देते हैं। देवर-सम्बन्ध व श्याला-सम्बन्ध प्रथा भी इसी सिद्धान्त का ही परिणाम है।

यदि हम इस प्रणाली का गहराई से विवेचन करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जहाँ स्त्रियों को खरीदा जाता था वहाँ यह प्रथा उत्तराधिकार रूप में भी पनपती रही। यथा किरगिज जाति में छोटा भाई चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, अपनी भावज को उत्तराधिकार रूप में पा लेता था। इसी प्रकार काये (Kai) विधवा अपने अविवाहित देवर की सम्पत्ति बन जाती थी। यदि कोई दूसरे परिवार का व्यक्ति उस विधवा से विवाह करना चाहता तो उसे पूरा 'कन्या-धन' चुकाने के बाद ही विवाह का अधिकार प्राप्त होता था। कैलीफ़ोनिया की शास्ता (Shasta) जाति में चूंकि 'कन्या-धन' सभी भाई तथा सम्बन्धी चुकाते रहते हैं अतः विधवा स्त्री देवर के हवाले कर दी जाती थी। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस 'देवर-सम्बन्ध' प्रथा के अन्तर्गत भी स्त्री को 'क्रीत-सम्पत्ति' स्वीकार करने की भावना अन्तर्निहित है। अर्थात् जो धन के उत्तराधिकारी हैं वे ही स्त्री को पाने के उत्तराधिकारी भी हैं।

श्याला-सम्बन्ध (Sororate) प्रथा का भी विस्तार वैसे ही हुआ जैसे देवर-सम्बन्ध प्रथा का। पत्नी की मृत्यु के बाद साली को ही बाल-बच्चों को सम्भालने के योग्य समझा जाता था। अतएव साली पत्नी का प्रतीक मानी जाती थी। पत्नी के संसार-विसर्जन पर साली ही पत्नी का स्थान ग्रहण कर लेती थी।

सपिर (Sapir) का विचार है कि देवर तथा श्याला सम्बन्ध प्रथा से सौतेली माँ और सौतेले बाप की भावना अवश्य जागृत होती थी। पत्नी तथा साली के लिए एक ही अभिव्यञ्जना होती थी।

भाई बहिन की सन्तति में विवाह का होना जहाँ आदिकालीन जातियों में पाया जाता था, वहाँ विकसित जातियों, मराठों आदि में भी पाया जाता

था। छोटा नागपुर की जनजातियों में जहाँ 'कन्या मूल्य' बहुत अधिक है—प्रायशः भाई-बहिन सन्तति विवाह प्रचलित है क्योंकि इससे 'कन्या-मूल्य' देना आवश्यक नहीं रहता। गोण्ड, कुकरी तथा अन्य कई जातियों में ये विवाह अत्यन्त सुविधाजनक जान पड़ते हैं।

## उपहास-सम्बन्ध (Joking Relationship)

समाज द्वारा कई सम्बन्धियों को हंसी मजाक तथा पारस्परिक छेड़खानी करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। जैसे—

छोटी बहिन + बड़ी बहिन का पति

छोटा भाई + बड़े भाई की पत्नी

बड़ी बहिन का पति + छोटे भाई की स्त्री

भान्जा + मामे की स्त्री

दादा + पोती

इनमें 'उपहास-सम्बन्ध' वर्जित न था। इस उपहास सम्बन्ध का कभी-कभी बुरा परिणाम भी होता था जिसके फलस्वरूप पारस्परिक सम्भोग की भावना जागृत हो जाती थी। डा० लोवी ने उत्तर पश्चिमी मैदानों में रहने वाले इण्डियन्स का उल्लेख करते हुए बताया है कि जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की गाड़ी को अपने घर के सम्मुख खड़ा देखता तो सहसा उसे उपहास करने का साहस हो जाता और वह गाड़ी के पहिये निकाल लेता। साधारणतया गाड़ीवान को इस मजाक से अप्रसन्नता तो होती पर जब उपहासकर्ता का नाम उसे मालूम पड़ता तो वह चुप हो जाता। अपनी भाभी व साली से मजाक करना तो साधारण बात थी।

## 'सन्ततिनाम' से सम्बन्ध-संस्मरण (Teknonymy)

प्राचीन काल में माता, पिता व चाचा आदि सम्बन्धियों को पुकारने के लिए नाम लेने की प्रथा नहीं थी अपितु 'अमुक का पिता' व 'अमुक की माता' इत्यादि द्वारा सम्बोधन किया जाता था। सबसे पूर्व टायलर (Tylor) ने इस शब्द की व्याख्या की थी। उनका विचार था कि यह प्रथा ही सर्वप्रथम मातृस्थानीय परिवारों में पनपी होगी क्योंकि मातृस्थानीय परिवारों में दामाद को एक अजनबी की भांति समझा जाता था। जब स्त्री-गृह में उसका बच्चा पैदा हो जाता और वह भी किसी बच्चे का पिता बन जाता

तो उसकी सामाजिक स्थिति उन्नत हो जाती और उसे 'अमुक का पिता' कहकर पुकारा जाता। अन्यथा स्त्री-गृह में वह दास की भांति समझा जाता था। टायलर ने इस सम्बन्ध में दक्षिणी अफ्रीका की बेचुआना (Bechuana) जाति, आसाम की खासी (Khasi) जाति तथा पश्चिमी कनाडा की क्री (Cree) जाति के उदाहरण भी पेश किये हैं जहां माता तथा पिता का नाम न लेकर उन्हें सन्तति के नाम से सम्मरण किया जाता था।

फ्रेज़र का विचार है कि आस्ट्रेलिया, न्यू गायना, चीन, उत्तरीय ब्रिटिश कोलम्बिया तथा पैटागोनिया आदि में भी यह प्रथा प्रचलित थी। अण्डेमान में, सियाली, हनेबेडा (Henebedda) तथा वेद्दा (vedda) जातियों में भी यह प्रथा थी। अमूर की गोल्ड जाति में तो स्त्री अपने पति को भी "अमुक का पिता" कहकर पुकारती थी, फिजी, मैलानीशिया, अमेरिका की कई जातियों में यह प्रथा पाई जाती थी। होपी (Hopi) जाति में स्त्री अपनी सास को "अमुक की दादी" और अपने श्वसुर को 'अमुक का दादा" पुकारती थी। दामाद भी सास और श्वसुर को इसी प्रकार सम्बोधित करता था। जब किसी का बच्चा न होता था तो उसे "अमुक का चाचा" आदि कहकर पुकारा जाता था। इस प्रकार इस प्रथा का भी धीरे-धीरे प्राचीनकाल की जातियों में विस्तार होता रहा।

## गोत्र व सम्बन्ध की परिभाषाः—

सर्वव्यापी पारिवारिक वर्ग के अतिरिक्त हम आदि कालीन जातियों में परिवार से मिलता-जुलता एक और वर्ग भी पाते हैं जो रक्त-सम्बन्ध ( Kinship ) के आधार पर तो परिवार से मिलता-जुलता है परन्तु मौलिक रूप से परिवार से बिलकुल भिन्न है। इस वर्ग का नामकरण ( Nomenclature) "एँग्लो-सैक्सन" भाषा के सम्बन्ध' ( Sib) शब्द के आधार पर किया गया है।

सम्बन्ध ( Sib ) की व्याख्या एकपक्षीय ( unilateral ) सम्बन्ध वर्ग के रूप में की गई है। ब्रिटिश तथा अमेरिकन मानव-शास्त्री इसे गोत्र ( clan ) नाम से भी स्मरण करते हैं। यों तो परिवार द्विपक्षीय ( Bilateral ) अर्थात् मातृ-नामी और पितृ-नामी होता है और प्रत्येक व्यक्ति परिवार के विशिष्ट पुरुष को पिता रूप में और स्त्री को माता रूप में समझता है। परन्तु गोत्र सम्बन्ध वर्ग ( Sib ) पिता और माता में से एक से सम्बद्ध होता है। यदि कोई जनजाति (Tribe) मातृ-पक्षीय गोत्र व सम्बन्ध (Mother Sib) पर संगठित है तो उस

जनजाति का प्रत्येक बच्चा—चाहे लड़का हो अथवा लड़की—मातृ-नामी पारिवारिक गोत्र ( Clan ) का सदस्य समझा जाएगा और यदि जनजाति पितृ-नामी परिवार के आधार पर सगठित है तो उस जनजाति का प्रत्येक पारिवारिक सदस्य पितृनामी गोत्र ( Gentes ) का नाम ग्रहण करेगा। इस प्रकार समान गोत्रवाले सभी व्यक्ति आपस में विशिष्ट गोत्रीय सम्बन्ध ( Sib ) द्वारा सम्बद्ध होंगे।

मातृ-गोत्र ( Mother Sib or Clan) पितृ-गोत्र ( Father sib or Gentes ) सम्बन्ध पद्धति (sib system) के अन्तर्गत है। प्रो०लावी ने यह गोत्र व सम्बन्ध ( Sib ) शब्द दोनों के लिए सामान्य रूप से ( Common ) प्रयुक्त किया है। उनके विचार में यह सम्बन्ध पद्धति एकपक्षीय रक्त सम्बन्ध वर्ग (Unilateral kinship Group ) से सम्बद्ध होती है चाहे वह मातृ-पक्षीय अथवा पितृ-पक्षीय हो।

## परिवार (Family) और 'गोत्र व सम्बन्ध पद्धति' (Sib) में भेद :—

जहाँ परिवार में अस्थिरता पाई जाती है वहाँ गोत्र व सम्बन्ध पद्धति (Sib) में स्थिरता होती है। तलाक तथा प्रव्रजन (Migration) परिवार की स्थिरता को नष्ट कर देते हैं परन्तु गोत्र व सम्बन्ध पद्धति (Sib) फिर भी सुदृढ़ बनी रहती है। सम्बन्ध पद्धति द्वारा सम्बद्ध सभी व्यक्ति साधारणतया अपने आपको एक दूसरे का सम्बन्धी ( Siblings ) समझते हैं और इसी से वे अन्तविवाह नहीं करते और सभी सम्बधियों में बहिर्विवाह (Exogamy) की भावना उत्पन्न हो जाती है। वे अन्तर्विवाह को पाप और व्यभिचार का साधन समझते हैं। आस्ट्रेलिया में तो इस नियम को भंग करने वाले व्यक्ति को अर्थात् अन्तर्विवाह करने वाले व्यक्ति को प्राण दण्ड की सजा दे दी जाती थी। उत्तरीय अमेरिका की क्रो जाति में भी अन्तर्विवाहेच्छुक (Suitor) को कुत्ते के समान नीच समझा जाता था। इरावयूइस (Iroquois) तथा मिवोक (Miwok) जाति में भी यही प्रथा थी। सम्बन्ध व गोत्र (Sib System) द्वारा पारिवारिक सदस्यता की जो आधार शिला एक बार स्थापित हो जाती है वही सदैव बनी रहती है। विवाह द्वारा भी उसमें अस्थिरता नहीं आने पाती। गोद लेने की प्रथा द्वारा भी सम्बन्ध व गोत्र (Sib) की सुदृढ़ता कम नहीं होती। दत्तक पुत्र को सगे पुत्र की न्याई मातृवंशीय परिवार में माता का और पितृ-पक्षीय परिवार में पिता का अंग समझ लिया जाता है।

परिवार में तलाक की भावना विद्यमान रहती है, परन्तु इस विशिष्ट गोत्र व सम्बन्ध पद्धति (Sib System) में तलाक की सम्भावना नहीं रहती। सभी सम्बन्धी एक-दूसरे को अपना रक्त सम्बन्धी समझते हैं।

सम्बन्ध प्रणाली के रूपों का संगठन :—

तिलंगित तथा हैडा :—अमेरिका की उत्तरपश्चिमी समुद्रतटवर्ती जातियाँ तिलंगित तथा हैडा के सामाजिक रीति रिवाज आपस में प्रायशः मिलते जुलते थे। तिलगित में दो सामाजिक वर्ग 'काकोल' (Ravens) तथा 'वृक' ( Wolf ) नाम से विख्यात थे। इन सामाजिक वर्गों का मुख्य कार्य अन्तविवाहों तथा अन्य विधिविधानों पर नियन्त्रण रखना था। अन्त्येष्टि क्रिया तथा गृहनिर्माण के समय में दोनों वर्ग एक दूसरे की सहायता करते थे। एक वर्ग दूसरे वर्ग को साल में एक बार बड़ा भारी सहभोज भी दिया करता था। 'काकोल' वर्ग २८ गोत्रों में तथा 'वृक' २६ गोत्रों में बँटा हुआ था। इन गोत्रों में बहिर्विवाह प्रथा प्रचलित थी। प्रत्येक गोत्र के 'गण चिन्ह' (Totems) पशु तथा पक्षी के नाम पर आधारित होते थे। दंसितान गोत्र ने उद्बिलाव को तथा किवसादी गोत्र ने मेंढक को अपना चिन्ह बनाया हुआ था।

तिलगित तथा हैडा लोगों में गोत्र का प्रभाव कला, राजनीति, धर्म तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी पाया जाता था।

इराक्युईज :—इराक्युईज का सामाजिक वर्गीकरण तिलगित तथा हैडा से कुछ भिन्न था। इनमें मोहाक, ओनीडा, आनोन्डगा, केयुगा, तथा सोनेका नामक पंच गोत्रों का एक संघ बना हुआ था। १६ वीं शताब्दि के अन्त में उत्तरीय कैरोलीन की ओर रहने वाला टुस्करोरा नामक एक गोत्र इस संघ में आ मिला जिससे उनकी सैनिक शक्ति भी बढ़ गई। इराक्युईज ने सर्वत्र शक्ति-स्थापना के विचार से अमेरिकन इन्डियन्स पर सैनिक आक्रमण किया। ये लोग एक विशेष भवन में सभा आयोजित करते और गोत्रों के मुखिया आपस में विचार विनिमय करते। इराक्युईज संघ में ५० मुखिया थे जिनमें मोहाक के ६, ओनीडा के ६, ओनोन्डगा के १४, केयुगा के १० तथा सनेका के ८ मुखिया थे। इराक्युईज जाति दो विभागों में बंटी होती थी और इन विभागों में जितने गोत्र होते थे वे अपने आपको भाई की भाई समझते थे और जो दूसरे विभाग के गोत्र होते थे उन्हें अपने भतीजे समझा करते थे। मोहाक तथा ओनीडा के अन्तर्गत ३ गोत्र थे और अन्य

तीन विभागों के अन्तर्गत ८-८ गोत्र थे। सेनेका में ये गोत्र भालू, वृक, उद्बिलाव आदि नामों पर चलते थे। प्रत्येक गोत्र का शासन पृथक् पृथक् होता था। वर्ष भर में पैदा हुए हुए सभी बच्चों का नामकरण-संस्कार साल में एक निश्चित तिथि पर हुआ करता था।

इराक्वुईज़ में सभी सामाजिक और राजनैतिक कार्य गोत्र के आधार पर होते थे।

## आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया के सामाजिक वर्गीकरण पर फ्रांसीसी समाज-शास्त्र वेत्ता डर्कहेम ने विशद वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रत्येक जाति कई गोत्रों में विभक्त होती थी जिनके नाम पशु-पक्षियों के नामों पर रक्खे जाते थे। ये लोग आधे मनुष्य और आधे पशु के काल्पनिक रूप को मानते थे। सभी गोत्रों में बहिर्विवाह प्रथा प्रचलित थी।

ब्राऊन ने आस्ट्रेलिया की सम्पूर्ण सम्बन्ध पद्धति (Sib System) को दो रूपों में विभक्त किया है। एक रूप तो पश्चिमी समुद्रतटवर्ती करियेरा लोगों का और दूसरा केन्द्रीय आस्ट्रेलिया के एरण्डा लोगों का। करियेरा में तीन प्रकार से भाई व बहिन के बच्चों में वैवाहिक सम्बन्ध हो सकता था।

१. एक व्यक्ति अपने मामे की लड़की तथा फूफी की लड़की से विवाह कर सकता था.—

२. दूसरा, मातृपक्षीय रूप था जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति अपने मामे की लड़की से तो विवाह कर सकता था परन्तु फूफी की लड़की से विवाह न कर सकता था।

३. तीसरा पितृपक्षीय रूप था जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति फूफी की लड़की से विवाह कर सकता था परन्तु मामे की लड़की से विवाह न कर सकता था।

सगा बाप तथा मामा दोनों को पिता कहा जाता था। सगी मां तथा पिता की बहिन—दोनों को मा कहा जाता था। पिता, चाचा, मौसा, दादे का भतीजा, नानी का भान्जा इत्यादि सभी पिता-रूप में व्यवहृत हो सकते थे और मां, मासी, चाची, नानी की भान्जी इत्यादि सभी मां के रूप में व्यवहृत हो सकती थी।

इस प्रकार यदि हम दादा, दादी नाना तथा नानी का विचार करें तो घोर चक्कर में पड़ जायेंगे। भाई बहिन के बच्चों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण रिश्तेदारी और भी जटिल हो जाती थी। दादा कहने में दादा

सम्बन्ध प्रणाली का उच्चतम विकास यदि कहीं हुआ है तो उत्तरीय अमेरिका में—मिसीसिपी (Mississippi) का पूर्वीय प्रदेश उत्तर-पश्चिमी मैदान, दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश तथा उत्तर-पश्चिमी समुद्रतट जिसमें केन्द्रीय तथा दक्षिणी कैलिफोर्निया भी सम्मिलित हैं।

त्रिनेवागो जाति :—इनमें दो पितृगोत्र हैं। दोनों पितृगोत्रों के कई विभाग हैं। मार्गन का विचार है कि गोत्रों के कई उपविभाग अपना एक ही नाम रख लेते थे और कई गोत्र विभिन्न नामों से चलते थे। मोहेगन (Mohagan) जाति में तीन उपविभाग थे। एक-तिहाई का 'गणचिन्ह' पेरूपक्षी (Turkey) के नाम पर तथा दो-तिहाई का 'गणचिन्ह' पेरूपक्षी, हंस तथा मुर्गी के नाम पर रक्खा गया था।

'गोत्र व सम्बन्ध-प्रणाली' सम्बन्धी सिद्धान्तः—

यदि हम इस गोत्र व सम्बन्ध-प्रणाली (Sib System) के प्रभावों पर विचार करें तो इसमें दोष स्पष्टतया दिखाई देता है। प्रथम यह कि प्राचीन काल में मातृपक्षीय परिवार में पिता और लड़की का तथा पितृपक्षीय परिवार में मा और पुत्र का वैवाहिक सम्बन्ध भी हो सकता था। जिन-जिन जातियों में यह सम्बन्ध-प्रणाली विद्यमान रही उन-उन में यह दोष भी व्याप्त रहा है चाहे वे जातियां व्यावसायिक दृष्टि से कितनी उन्नत भी क्यों न हो? एस्किमो लोग यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से कितने उन्नत थे। कृषि, शिकार तथा पशु-पालन में वे ऊँचे थे परन्तु सामाजिक जीवन में पिछड़े हुए थे। अतएव मार्गन का मत था कि भौतिक उन्नति ही सामाजिक उन्नति का माप नहीं। बर्बर से बर्बर जाति भी अपने में सामाजिक संगठन का एक अलग रूप रखती है।

डा० स्वैन्टन (Swanton) का मत है कि उत्तरी अमेरिका की सभी बर्बर जातियां पहले गोत्र व सम्बन्ध-प्रणाली (Sib System) से विहीन थीं परन्तु जैसे-जैसे उनमें सम्बन्ध-प्रणाली का विकास होता गया त्यों-त्यों उनमें आर्थिक, व्यावसायिक, सामाजिक व राजनैतिक उन्नति होती गई। आसाम के खासी, संस्कृति में उच्च माने जाते थे। उनमें भी यह सम्बन्ध-प्रणाली विद्यमान थी।

आस्ट्रेलिया में प्राचीन काल से गोत्र व सम्बन्ध प्रणाली (Sib System) का विकास हो चुका था। परन्तु हम इसे पारिवारिक पद्धति से पुराना नहीं मान सकते। आस्ट्रेलिया में पारिवारिक वर्ग और गोत्र सम्बन्ध वर्ग एक साथ चलते थे अत. दोनों वर्गों में कौन पुरातन है और कौन नवीन? इसका निश्चय नहीं हो पाया।

गोल्डनवीज़र ( Goldenweiser ) का विचार था कि 'गणचिन्हवाद' (Totemism) तथा गोत्र व सम्बन्ध-प्रणाली (Sib System) में कोई सम्बन्ध नही । कई जातियो में यह गणचिन्ह कला के प्रतीक होते थे । गणचिन्हो के साथ वर्जित तथा अवर्जित भावनायें सम्बद्ध न होती थी । विनेबागो (Winnebago) जाति के गोत्रो में गणचिन्ह (Totems) तो है परन्तु जिस पशु का नाम चिन्हित है उसे मारने व सेवन करने पर कोई प्रतिबन्ध नही । उनमें गणचिन्हो का कलात्मक महत्व तो है, परन्तु धार्मिक नही । इसी प्रकार इरावयुइज जाति में कई गोत्रों के गणचिन्ह पशु व पक्षी के नाम पर आधारित है परन्तु उन पशुओं के सेवन व हनन पर कोई प्रतिबन्ध नही । गोल्डन वीजर इन गणचिन्हों को गौण समझते हुए उन्हे ऐतिहासिक व कलात्मक महत्व देते है । वे धार्मिक महत्व नही देते । उनका यह भी मत था कि इस प्रकार के सम्बन्ध-सूचक चिन्ह रखना साधारण बात थी ।

सन् १७९१ में अंग्रेज विद्वान् मि० जे लांग (J. Long) ने उत्तरीय अमेरिकन इण्डियन्स में सबसे पूर्व इस गणचिन्हवाद का पता लगाया था । तत्पश्चात् आस्ट्रेलिया, अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका की जातियो में भी गणचिन्हवाद के अवशेष प्राप्त हुए ।

भारत में 'गणचिन्हवाद' (Totemism) अनेक रूपों में पाया जाता था । छोटा नागपुर में जिस पशु व पौधे के नाम पर गणचिन्ह रक्खा जाता था उसका सेवन व हनन करना वर्जित था । सन्थाल जाति में १०० से भी अधिक गोत्र है । उनका गणचिन्ह (Totem) पौदे व किसी पदार्थ के नाम पर आधारित है। मुण्डा लोग ६४ बहिर्जातीय गोत्रों में, भील २४ गोत्रों में विभक्त है परन्तु उन सबके गणचिन्ह पशु व पौदे के नाम पर चलते है । उडीसा के कुमार, कूर्मि तथा भूमिया लोग साप, गीदड़ तथा अन्य पशुओ के नाम पर गणचिन्ह रखते है । बम्बई प्रान्त के कटकारी तथा मध्य प्रदेश के गोंड वनस्पति-वर्ग तथा पशु-वर्ग के नामों पर ही अपने गोत्रो के नाम रखते है ।

कहीं-कहीं पेड़-पौदो और पशुओं को पवित्र एव धार्मिक दृष्टि से देखा जाता है परन्तु इसका गणचिन्ह व सम्बन्ध सूचक चिन्ह की दृष्टि से कोई महत्व नही । जैसे भारत में 'तुलसी' पवित्र वस्तु समझी जाती है परन्तु उसके साथ गोत्र नामो का कोई सम्बन्ध नही । हिन्दुओं के लिए गौ एक पवित्र पशु है । शिव बैल की सवारी करते थे अतः बैल को पवित्र समझा जाता है । मोर व चीते की खाल संध्या, यज्ञ व पूजा आदि के समय पवित्र समझकर बिछाई जाती है परन्तु ये सामाजिक वर्गों के सम्बन्ध-सूचक चिन्ह नही ।

नाम अपने वंशजों को दे सकती है परन्तु पुरुष अपना नाम दूसरे को नहीं दे सकता।

गोत्र का अस्तित्व :—यदि किसी सन्तति में सभी बच्चे एक ऐसे लिङ्ग से सम्बन्ध रखते हैं जो अपना गोत्र नाम दूसरों को नहीं सौंपते तो वह गोत्र समाप्त हो जाता है। एक छोटे समुदाय (Community) में तो ऐसा बहुधा हो जाया करता है। जब आदिकालीन वंश नष्ट होना प्रारम्भ होता है तो उस कुल के सदस्य अपने आप को किसी दूसरे कुल से सम्बद्ध करना चाहते हैं जैसा प्युब्लो इण्डियन्स में होता रहा। इसका अभी तक कारण नहीं मालूम हो सका कि गोत्र कल्पित तथा वास्तविक सदस्यों को बहुधा क्यों अपने अन्दर सम्मिलित करते हैं? कालान्तर में उनका विभिन्न मूल (Origin) भुला दिया जाता है और सर्वसाधारण नाम से एक ही मूल माना जाने लगता है। वंशावली (Padigree) का भेद उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

## गोत्र तथा परिवार (Clan and Family) में भेद :—

गोत्र तथा परिवार :—ये दोनों रक्त-सम्बन्ध पर आधारित होते हैं। दोनों में दत्तक सन्तान की सम्प्राप्ति का विस्तार पाया जाता है। दोनों में मुख्य भेद यह है कि गोत्र केवल उन सम्बन्धियों को परिगणित करता है जो या तो मातृ-पक्ष से अथवा पितृ-पक्ष से सम्बद्ध हो परन्तु परिवार माता और पिता दोनों के सम्बन्धियों को परिगणित करता है। परिवार एक क्षणभंगुर (Brittle) संस्था है परन्तु गोत्र परिवार की तुलना में वृहत्तर एवं सुदृढ़तर संस्था है। गोत्र कभी भी परिवार को खोखला नहीं बनाता और न ही स्वयं उसका स्थान ग्रहण कर सकता है। परिवार और गोत्र अपनी पृथक्-पृथक् विशेषतायें रखते हुए भी एक दूसरे के समीप हैं। यदि केवलमात्र गोत्र-सम्बन्ध को ही आधार माना जाये और परिवार की भावना छोड़ दी जाये तो एक विचित्र ही सम्बन्ध स्थापित हो जाये। यों मेरीकोपा (Maricopa) जाति में किसी व्यक्ति को अपनी किसी रक्त-सम्बन्धिनी स्त्री से विवाह करने का अधिकार नहीं परन्तु केवलमात्र गोत्र सम्बन्ध मान लेने से वह अपनी माँ से भी विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकारी हो जायगा।

संसार में ऐसी जातियाँ हैं, जो गोत्र-विहीन हैं। परन्तु कोई व्यक्ति परिवार-विहीन नहीं। चुक्ची (Chukchi), अण्डेमान वासी, अमेरिकन जन जातियां, गोत्र-विहीन हैं परन्तु परिवार-विहीन नहीं।

## अर्धांश (Moiety)

जब केवलमात्र दो विजातीय-विवाही (Intermarrying) गोत्र (clans) एक साथ वास करते हों तो उनमें प्रत्येक अर्धांश (Moiety) कहलाता है। यह फ्रेन्च शब्द (Moitie' से बना है जिसका तात्पर्य 'अर्ध' से है। आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश में श्वेत कोकेटू (White cockatoo) तथा श्री नामक दो बहिर्विवाही मातृवंशीय अर्धांश (Moieties) वास करते थे। आस्ट्रेलिया के उत्तर में वास करने वाली मुरंगिन (Murngin) जाति में पितृवंशीय अर्धांश थे। मिसीसिपी की चोक्टा (Choctaw) जाति दो बहिर्विवाही गोत्रों में विभक्त थी जिस में मातृवंशीय योजना पाई जाती थी। केन्द्रीय कैलीफ़ोर्निया के पितृवंशीय मिवाक अर्धांश (Moieties)—जल (water) तथा स्थल (land) नाम से सम्बद्ध थे। आस्ट्रेलिया, मैलानीसिया तथा उत्तरी अमेरिका में इस प्रकार के बहिर्विवाही अर्धांश प्रायन: पाये जाते थे और अफ्रीका में इनका सर्वथा अभाव था।

जहां सम्पूर्ण जनजाति दो आनुवंशिक तथा विजातीय-विवाही वर्गों में विभक्त हो तो गोत्र पद्धति में कुछ विलक्षणतायें समविष्ट हो जाती हैं। कुछ आस्ट्रेलियन जातियां अपने सम्बन्ध-सूचक विधि-विधान (Totemic Rites) तभी आयोजित कर सकती थीं जब विरोधी अर्धांश (Moieties) उनसे प्रार्थना करें। अन्यथा वे स्वेच्छा से कोई विधि-विधान सम्पन्न नहीं कर सकते थे। मिवाक जाति के अर्धांश मृत संस्कार तथा अन्य विशेष पर्वों पर पारस्परिक सहायता द्वारा कार्य सम्पन्न करते थे।

दोहरे गोत्र संगठन (Dual clan organisation) द्वारा सभी सम्बन्धियों की स्थिति निर्धारित हो जाती थी। कल्पना कीजिये यदि मैं पितृवंशीय होता हुआ "अ" अर्धांश से सम्बन्ध रखता हूं। मेरी मां और मां का भाई अर्धांश 'ब' से सम्बन्ध रखते हैं तो मेरा बाप और बाप की बहिन दोनों अर्धांश "अ" से सम्बन्ध रक्खेंगे। इस प्रकार मेरी मां का भाई (मामा) मेरे बाप की बहिन (फूफी) से विवाह कर सकेगा और उनके बच्चे मेरे दोहरे भाई-बहिन सन्तति (Cross Cousins) कहलावेंगे।

पितृवंशीय अर्धांश
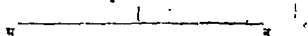
| अ | ब |
|---|---|
| मैं, मेरा बाप, बाप की बहिन | मेरी मा, मां का भाई |
| (२) | (१) |

इस पद्धति के अनुसार मैं अपने भाई-बहिन सन्तति (Cross cousins) से विवाह कर सकता हू । वर्णित चित्र के अनुसार मेरे पिता की बहिन(नं० २) की लड़की अर्धांश "ब" से सम्बद्ध होगी क्योंकि उसकी मां ( मेरे पिता की बहिन ) अर्धांश 'अ' से सम्बद्ध है और उसका पति (नं० १) अर्धांश "ब" से सम्बद्ध है ।

जब एक अर्धांश (Moiety) का उप-विभाजन हो जाता है तो उसका बहिर्विवाही नियम शिथिल पड जाता है । यथा इराक्युईज (Iroquois) की जनजातियो के अर्धांश जब कई उपविभागों में बँट गये तो गोत्र तो बहिर्विवाही रहे परन्तु अर्धांशों (Moieties) ने दोहरे संगठन (Dual organisation) की अन्य विशेषताओ को अपना लिया ।

## भ्रातृ-भाव ( Phratry)—

जहाँ अनेक गोत्र हो और उनमें कुछ गोत्रो का पारस्परिक सम्बन्ध तो अत्यन्त घनिष्ट हो जायें और अवशिष्ट गोत्रो का सम्बन्ध पूर्ववत् रहे, तब आपस में भ्रातृभाव (Phratry) पैदा करने वाले सभी गोत्र भाई-भाई समझे जावेंगे । ग्रीक शब्द (Phrater-brother) से इस शब्द की रचना हुई है । मेरीकोपा (Maricopa) तथा सम्बद्ध जनजातियो में लगभग १६ पितृ-गोत्र थे और प्रत्येक गोत्र का अपना-अपना एक गए चिन्ह था । उनमें से कुछ गोत्रों का भ्रातृत्व सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट था और वे एक दूसरे के विधि-विधानो में भी निरन्तर भाग लेते थे । क्रो जाति के १३ गोत्रो में २, २, गोत्रो के तो ५ जोडे थे और ३ गोत्रो का एक पृथक् जोड़ा था । प्रत्येक प्रधान वर्ग के सदस्य आपस में एक दूसरे को मित्र समझते थे और सभी उत्सवो में सम्मिलित होते थे । उपविभक्त अर्धांश भी आपस में भ्रातृभाव रखने वाले होते है । परन्तु भ्रातृभाव (Phratry) रखने वाले सभी गोत्र आपस में अर्धांश (Moiety) हो यह निश्चित नही था ।

क्रो जाति

१३ गोत्र

१-२ ३-४ ५-६ ७-८ ९-१० ११-१२-१३
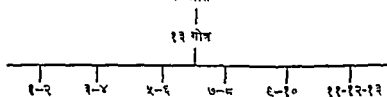
इस चित्र से स्पष्ट होता है कि २,२ गोत्रों के ५ जोड़े हैं और एक जोड़ा ३ गोत्रों का है । इन सब जोड़ों का पृथक्-पृथक् रूप से भ्रातृभाव-सम्बन्ध

स्थापित था और वे विधि-विधानों तथा उत्सवों में भी एक दूसरे को पारस्परिक सहयोग देते थे।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि भ्रातृभाव (Phratry) दो या दो से अधिक गोत्रों का मेल ही था जो अपने आप में अत्यन्त शिथिल और परिवर्तनशील था। यह प्रथा आदिवासियों द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी।

## पितृ प्रतिबन्ध ( Couvade )

सन्तान के संरक्षण, संतान की दीर्घायु तथा सन्तान को दैवीय प्रकोप से बचाने के लिए सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् पिता पर कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाये जाते थे जिन्हें (Couvade) कहा जाता था। इस प्रथा का विकास हम मातृपक्षीय तथा पितृपक्षीय–दोनों परिवारों में पाते थे। कनेला जाति में यह प्रथा सर्वत्र विद्यमान थी। उनमें बच्चा पैदा होने के बाद स्त्री की अपेक्षा पुरुष पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते थे। स्त्री-पुरुष को पृथक्-पृथक् घरों में वास करना पड़ता था और उन्हें एक साथ बैठने और खाने की भी स्वतन्त्रता न थी। कनेला जाति मातृसत्तात्मक परिवार-प्रथा की पक्षपातिनी थी।

# वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप:—

भारत के धार्मिक व राजनैतिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रारम्भ में जातियों के श्रम-विभाजन के साथ-साथ सामाजिक विभाजन भी अनिवार्य प्रतीत होने लगा। प्राचीन काल में जो जन जातियां श्रेष्ठ व्यवसाय को अपनाती थीं उनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त उन्नत समझी जाती थी। धीरे-धीरे कृषि, पशु-पालन, भाण्ड कला, उपकरण निर्माण, चित्र कला आदि कार्यों का विकास होता गया और भिन्न-भिन्न जातियों ने कतिपय धन्धों में योग्यता प्राप्त कर ली। कई धन्धे उत्कृष्ट और कतिपय धन्धे साधारण समझे जाने लगे। समाज में विषमता उत्पन्न हुई। उक्त विभाजन ने सामाजिक-स्तर में विषम स्थिति उत्पन्न कर दी। परिणामतः जातियों का वर्गीकरण हो गया। भारत में यह वर्गीकरण वर्णभेद का प्रमुख कारण बना। प्रो० रिस्ले के मतानुसार वर्ण भेद जाति-व्यवस्था का मुख्य कारण है। मानव जाति गौर और कृष्ण दो वर्गों में विभक्त है। गौर वर्ण के लोग द्विज और कृष्ण वर्ण के लोग शूद्र कहलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों भेदों की उत्पत्ति द्विज से हुई।

वर्ण (Caste) शब्द पुर्तगाली भाषा का है जिसका तात्पर्य सामाजिक विभाजन से है। मि० कॉडरिंगटन का कथन है कि सामाजिक वर्गीकरण की व्याख्या करने के लिए हमें संस्कृत शब्दों का सहारा लेना पड़ेगा। वर्ण शब्द का तात्पर्य वर्ण तथा वर्ग से है परन्तु तीन उच्च वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एक दूसरे से भिन्न वर्णों व रंगों द्वारा पहचाने जाते थे। आदि द्राविड़ियन और आदि मैडिट्रेनियल जातीय स्कन्धों तथा इण्डो आर्यन जाति के सम्मिश्रण के परिणाम स्वरूप वर्णों का यह भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। इस जातीय सम्मिश्रण में कई तत्व कार्य कर रहे थे—जैसे आक्रान्ताओं में स्त्रियों की कमी, फिरन्दर जातियों में स्थिर जीवन की भावना, मन्दिर में देवी की पूजा, द्राविड़ियन के विधि-विधान, शिक्षा, पुरोहित पद्धति आदि ने आक्रान्ताओं पर प्रभाव डाला। जातीय मिश्रण से सामाजिक वर्गीकरण की उत्पत्ति हुई और कुछ वर्ण ऐसे थे जिन्होंने निम्नकोटि के वर्णों तथा बाह्य तत्वों को अपने अन्दर मिलाने से इन्कार किया जिससे उनकी उच्चता कायम रहे।

ऋग्वेद में वर्ण-व्यवस्था की चर्चा—

ऋग्वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों का उल्लेख मिलता है। घ्राप्टे का मत है कि पुरुष सूक्त को छोड़कर कहीं भी चौथे वर्ण (शूद्र-वर्ण) का उल्लेख न होने का अभिप्राय यह नहीं कि यह शूद्र-वर्ण था ही नहीं। यदि ऋग्वेद के पूर्व और उत्तरकाल में सामाजिक वर्गों का प्रगति-सम्बन्धी भेद है तो अवश्य ही मध्यकाल में शूद्र-श्रेणी आदिवासियों के रूप में भारत में फैली होगी और आर्यन शाखा में विलीन हो गई होगी। ज़िन्दावस्था में इस वर्ण-पद्धति का उल्लेख पाया है। वहाँ ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय (योद्धा) वैश्य (कृषिकार) तथा शूद्र (कारीगर) के रूप में स्मरण किये गये हैं। इनका प्रारम्भ एक ही स्रोत से हुआ क्योंकि इण्डो-आर्यन जाति उस जाति की एक शाखा थी जो एशिया की ओर प्रव्रजन कर गई थी। आप्टे के कथनानुसार ऋग्वेद काल में भी शूद्रों की सत्ता विद्यमान थी। उस समय में वे 'दास' 'दस्यु' आदि नाम से कहे जाते थे।

यदि ऋग्वेद-काल में इन चारों वर्णों की सत्ता मान ली जाये तो यह भी सम्भव है कि यह वर्ण-पद्धति ऋग्वेद-काल में ही नहीं अपितु इससे पूर्व ही निर्मित हो चुकी होगी। रोम और ग्रीस के सामाजिक-वर्गों के साथ भारतीय वर्ण-व्यवस्था की तुलना करते हुए मि० एम० सेनार्ट ने वर्ण-व्यवस्था को पुरातन आर्यन संस्थाओं का एक विस्तृत रूप माना है। उन्होंने रोम, ग्रीस तथा भारत का एक गहरा सांस्कृतिक सम्बन्ध भी सिद्ध किया है।

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति—

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के विषय में प्रो० घुरे का मत कुछ विचित्र जान पड़ता है। उनका विचार है कि वर्ण-व्यवस्था सर्वप्रथम गंगा प्रदेश में पनपी और वहाँ से सम्पूर्ण भारत में फैली। प्रो० बैनर्जी के विचार में यह वर्ण-पद्धति इन्डो-यूरोपियन लोगों द्वारा भारत में फैली। क्योंकि इण्डो-यूरोपियन लोग धार्मिक अन्ध-विश्वासों और जादू-टोने में विश्वास रखते थे अतः उन्होंने आदिवासियों में भी अन्ध-विश्वास और जादू-टोने की विचारधारा उत्पन्न की। मि० बैनर्जी यदि अपनी इस युक्ति पर दृढ़ रहें तो वे अपने मतानुसार इसकी व्याख्या न कर सकेंगे कि भारत से बाहर सामाजिक-भेद के साथ-साथ आनुवंशिक एवं जन्मतः जातियों का वर्गीकरण क्यों नहीं ? मि० राय ने बैनर्जी के मत के विरुद्ध आक्षेप करते हुए कहा है न तो सुमेरियन पुरोहित

# वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप:—

भारत के धार्मिक व राजनैतिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रारम्भ में जातियों के श्रम-विभाजन के साथ-साथ सामाजिक विभाजन भी अनिवार्य प्रतीत होने लगा। प्राचीन काल में जो जन जातियां आखेट व्यवसाय को अपनाती थी उनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त उन्नत समझी जाती थी। धीरे-धीरे कृषि, पशु-पालन, भाण्ड कला, उपकरण निर्माण, चित्र कला आदि कार्यों का विकास होता गया और भिन्न-भिन्न जातियों ने कतिपय धन्धों में योग्यता प्राप्त कर ली। कई धन्धे उत्कृष्ट और कतिपय धन्धे साधारण समझे जाने लगे। समाज में विषमता उत्पन्न हुई। उक्त विभाजन ने सामाजिक-पद में विषम स्थिति उत्पन्न कर दी। परिणामतः जातियों का वर्गीकरण हो गया। भारत में यह वर्गीकरण वर्णभेद का प्रमुख कारण बना। प्रो० रैप्सन के मतानुसार वर्ण भेद जाति-व्यवस्था का मुख्य कारण है। मानव जाति गौर और कृष्ण दो वर्गों में विभक्त है। गौर वर्ण के लोग द्विज और कृष्ण वर्ग के लोग शूद्र कहलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों भेदों की उत्पत्ति द्विज से हुई।

वर्ण (Caste) शब्द पुर्तगाली भाषा का है जिसका तात्पर्य सामाजिक विभाजन से है। मि० कॉडरिंगटन का कथन है कि सामाजिक वर्गीकरण की व्याख्या करने के लिए हमें संस्कृत शब्दों का सहारा लेना पड़ेगा। वर्ण शब्द का तात्पर्य वर्ण तथा वर्ग से है परन्तु तीन उच्च वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एक दूसरे से भिन्न वर्णों व रंगों द्वारा पहचाने जाते थे। आदि द्राविड़ियन और आदि मेडिट्रेनियन जातीय स्कन्धों तथा इण्डो आर्यन जाति के सम्मिश्रण के परिणाम स्वरूप वर्णों का यह भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। इस जातीय सम्मिश्रण में कई तत्त्व कार्य कर रहे थे—जैसे आक्रान्ताओं में स्त्रियों की कमी, फिरन्दर जातियों में स्थिर जीवन की भावना, मन्दिर में देवी की पूजा, द्राविड़ियन के विधि-विधान, शिक्षा, पुरोहित पद्धति आदि ने आक्रान्ताओं पर प्रभाव डाला। जातीय मिश्रण से सामाजिक वर्गीकरण की उत्पत्ति हुई और कुछ वर्ण ऐसे थे जिन्होंने निम्नकोटि के वर्णों तथा बाह्य तत्वों को अपने अन्दर मिलाने से इन्कार किया जिससे उनकी उच्चता कायम रहे।

## ऋग्वेद में वर्ण-व्यवस्था की चर्चा—

ऋग्वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों का उल्लेख मिलता है। ग्राप्टे का मत है कि पुरुष सूक्त को छोड़कर कहीं भी चौथे वर्ण (शूद्र-वर्ण) का उल्लेख न होने का अभिप्राय यह नहीं कि यह शूद्र-वर्ण था ही नहीं। यदि ऋग्वेद के पूर्व और उत्तरकाल में सामाजिक वर्गों का प्रगति-सम्बन्धी भेद है तो अवश्य ही मध्यकाल में शूद्र-श्रेणी आदिवासियों के रूप में भारत में फैली होगी और आर्यन शाखा में विलीन हो गई होगी। जिन्दावस्था में इस वर्ण-पद्धति का उल्लेख आया है। वहाँ ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय (योद्धा) वैश्य (कृषिकार) तथा शूद्र (कारीगर) के रूप में स्मरण किये गये हैं। इनका प्रारम्भ एक ही स्रोत से हुआ क्योंकि इण्डो-आर्यन जाति उस जाति की एक शाखा थी जो पर्शिया की ओर प्रव्रजन कर गई थी। ग्राप्टे के कथनानुसार ऋग्वेद काल में भी शूद्रों की सत्ता विद्यमान थी। उस समय में वे 'दास' 'दस्यु' आदि नाम से कहे जाते थे।

यदि ऋग्वेद-काल में इन चारों वर्णों की सत्ता मान ली जाये तो यह भी सम्भव है कि यह वर्ण-पद्धति ऋग्वेद-काल में ही नहीं अपितु इससे पूर्व ही निर्मित हो चुकी होगी। रोम और ग्रीस के सामाजिक-वर्गों के साथ भारतीय वर्ण-व्यवस्था की तुलना करते हुए मि० एम० सेनार्ट ने वर्ण-व्यवस्था को पुरातन आर्यन संस्थाओं का एक विस्तृत रूप माना है। उन्होंने रोम, ग्रीस तथा भारत का एक गहरा सांस्कृतिक सम्बन्ध भी सिद्ध किया है।

## वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति—

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के विषय में प्रो० घूरे का मत कुछ विचित्र जान पड़ता है। उनका विचार है कि वर्ण-व्यवस्था सर्वप्रथम गंगा प्रदेश में पनपी और वहाँ से सम्पूर्ण भारत में फैली। प्रो० बैनर्जी के विचार में यह वर्ण-पद्धति इण्डो-यूरोपियन लोगों द्वारा भारत में फैली। क्योंकि इण्डो-यूरोपियन लोग धार्मिक अन्ध-विश्वासों और जादू-टोने में विश्वास रखते थे अतः उन्होंने आदिवासियों में भी अन्ध-विश्वास और जादू-टोने की विचारधारा उत्पन्न की। मि० बैनर्जी यदि अपनी इस युक्ति पर दृढ़ रहे तो वे अपने मतानुसार इसकी व्याख्या न कर सकेंगे कि भारत से बाहर सामाजिक-भेद के साथ-साथ आनुवंशिक एवं जन्मगत जातियों का वर्गीकरण क्यों नहीं? मि० राय ने बैनर्जी के मत के विरुद्ध आक्षेप करते हुए कहा है न तो सुमेरियन पुरोहित-

और न ही मिश्री फ़ैरोग्रा आपस में मिल पाये और न ही गैलिक तथा ड्रूड जातियों में पृथक् आनुवंशिक वर्ण बन सका।

मि० डब्ल्यू० एच० आर० रिवर्स ने दक्षिण में इस वर्ण पद्धति की कार्य-प्रणाली का सबसे प्रथम पता लगाया। उसने यह देखा कि दक्षिण की बहुत सी जातिया अपने आप में इस सामाजिक भेद को स्वीकार करती हैं।

पुरातन कालीन लोग ब्रह्म की सत्ता में विश्वास रखते थे। उनका यह भी मत था कि ब्रह्म ही उत्पादक और नियन्ता है और उसी ने इस वर्ण-पद्धति को जारी किया है। मनु ने भी इस विषय पर प्रकाश डाला है। जब तक धर्म में कट्टरपन्थियों का बोलबाला रहेगा तब तक लोग इस विचार का पोषण अवश्य करेंगे। इस सिद्धान्त के भी दो रूप माने जा सकते हैं। प्रथम काल्पनिक और दूसरा क्रियात्मक। यह सत्य है कि वर्णों में पारस्परिक वर्ण सकरता तो होती ही रही है क्योंकि अनुलोम और प्रतिलोम विवाहो का उल्लेख सर्वत्र पाया जाता है। इस वर्ण-पद्धति का धार्मिक स्वरूप चाहे कुछ भी हो परन्तु सामाजिक स्वरूप तो इसी से स्पष्ट है कि इन चारो वर्णों की कार्यप्रणाली बिल्कुल भिन्न-भिन्न थी।

कइयो का विचार है कि सामाजिक कार्यों के विभाजन से वर्णों की उत्पति हुई। वर्णों में ऊंच-नीच की भावना कार्यों के अनुसार हुई। समाज में उच्च कार्य करने वालो को उच्च पद तथा नीच कार्य करने वालों को नीच पद प्राप्त हुआ। इनमें जातीय भेद का कोई प्रश्न ही न उठता था। नैसफ़ील्ड इसी विचार के समर्थक थे। उनका कहना था कि हमें वर्ण व्यवस्था में जातीय भेद को नही अपितु कार्यों के महत्व को दृष्टि में रखना चाहिए।

इस में सन्देह नहीं कि भारत पर अनेक विदेशी जातियों के आक्रमण हुए और उन सभी विदेशी जातियों का भारत में सम्मिश्रण हुआ; परन्तु उच्च वर्णों ने अपनी रक्त-शुद्धता कायम रखी। जिस वर्ण का जो पेशा था उस की सन्तान ने वही पेशा अपनाया। तत्पश्चात् वर्ण आनुवंशिक आधार पर स्थापित हो गये और धार्मिक दृष्टि से भी इन वर्णों का अत्यधिक महत्व कायम रहा। अब प्रश्न यह होता है कि धार्मिक संघ तो सभी देशों में थे परन्तु वहा यह वर्ण-व्यवस्था क्यों नहीं जारी हुई? इस का स्पष्ट उत्तर यह है कि भारत में जहा वर्ण-व्यवस्था का धार्मिक महत्व है वहां ब्रह्म एवं परमात्मा से भी इसका सीधा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

### वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी सिद्धान्त—

सर हर्बर्ट रिजले ने जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त के आधार पर 'वर्ण पद्धति'-

के प्रारम्भ का कारण इन्डो आर्यन जाति के भारत आगमन को बताया है। उनका मत है कि प्रागैतिहासिक काल में ये लोग पर्शिया से भारत में आये जहा समाज के चार भाग विद्यमान थे। आक्रान्ताओं की सभ्यता उच्च थी। वे उपकरण भी प्रयुक्त करते थे। दोनों जातियों में सम्मिश्रण हुआ। आक्रान्ताओं तथा आदिवासियों की संस्कृति का पारस्परिक संघर्ष हुआ। इस प्रकार वर्ण पद्धति जारी हुई।

भारत के भूतपूर्व जनगणना कमिश्नर मि० जे० एच० हटन ने रिज़ले का खण्डन करते हुए कहा कि आदिवासियों में कुछ वर्जित प्रथाय प्रचलित थी। समाज का वर्गीकरण उनके काम-धन्धे पर निर्भर था। प्रत्येक अपरिचित एवं विचित्र वस्तु के सम्बन्ध में अन्ध विश्वास फैले हुए थे जिन का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। दूसरे शब्दों में वर्ण व्यवस्था के आधार-भूत तत्व प्राचीन संस्कृतियों में भी विद्यमान थे परन्तु इण्डो आर्यन जाति के बस जाने से कार्य धन्धों द्वारा भारत का सामाजिक रूप बदल गया। दक्षिण में जो अस्पृश्यता फैली वह केवल ब्राह्मणों की ओर से नहीं अपितु सभी सवर्ण जातियों की ओर से थी।

नैसफील्ड (Nesfield) ने यू० पी० की जन-गणना के आधार पर यह पता लगाया कि प्रान्त के सभी वर्णों के पुरोहित, जाट, ठाकुर, राजपूत खत्री, लोहार तथा भंगी आदि ने अपने-अपने पृथक् काम-धन्धे अपनाये हुए हैं। जैसे-जैसे भारत में श्रम-विभाजन का विस्तार होता गया वैसे-वैसे समाज की स्थिति अत्यन्त जटिल होती गई और समाज को विभिन्न वर्गों में विभक्त करना आवश्यक समझा गया। इस प्रकार कुछ ही समय में पेशेवर वर्गों ने सामाजिक पद ग्रहण कर लिया जो बाद में 'वर्ण' बन गए।

सर डैन्ज़िल इबेट्सन ने पंजाब के ग्रामों में ऐसे मध्य-कालीन संघों (Guild) का पता लगाया जो काम-धन्धों (Occupation) पर आधारित थे और सदैव अपने सदस्यों का हित दृष्टि में रखते थे। ये संघ बहिर्विवाह के विरोधी थे क्योंकि उनका विचार था कि बहिर्विवाह से उन के व्यापारिक रहस्य दूसरों तक पहुचते हैं। वे अपनी जाति से बाहर भोजन खाना भी उचित न समझते थे। परिणामस्वरूप वर्गों में घृणा की भावना उत्पन्न हुई और ऊंच-नीच का भाव पैदा हुआ। जिससे वर्ण की उत्पत्ति हुई।

रायबहादुर शरच्चन्द्र राय के शब्दों में हिन्दू वर्ण व्यवस्था—इण्डो-आर्यन वर्णपद्धति तथा आदि द्राविड़ियन जातीय पद्धति के बीच की व्यवस्था का परिणाम था। तीन शक्तियों—'ब्रह्म शक्ति' 'क्षात्र शक्ति' तथा 'वैश्य शक्ति' को स्वीकृत किया जाता था।

डा० स्मिथ के मत में वर्ण उन चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का नाम है जो कार्य पर आधारित है। ब्राह्मणों का काम पढ़ना और पढ़ाना, क्षत्रिय का काम युद्ध तथा शासन का कार्य करना, वैश्य का काम कृषि व व्यवसाय करना तथा शूद्र का काम तीनों जातियों की सेवा करना है।

वर्ण-पद्धति एक गतिमान एवं शक्तिशाली व्यवस्था है। अनेक विदेशी लेखकों का यह भी कथन है कि वर्ण व्यवस्था का राष्ट्रीयता से कोई मेल नहीं। यदि यह वर्ण व्यवस्था अज्ञान अथवा अविद्या पर आधारित नहीं तो पक्षपात पर अवश्य आधारित है।

कइयों का विचार है कि काम-धन्धे (Occupation) की उच्चता अथवा निम्नता वर्ण पद्धति की आनुवंशिकता से जानी जा सकती थी। यह वर्णों का दर्जा भी इसी बात पर आश्रित था कि अमुक जाति का रक्त कितना विशुद्ध है? विशुद्ध रक्तवालों का पद ऊँचा और मिश्रित रक्तवालों का पद नीचा होता था। जो जातीय मिश्रण से जितना दूर होता था वह उतना ही उच्च वर्ण कहलाता। बहुत से सामाजिक वर्ग ऐसे भी थे जो बीच की श्रेणी के माने जाते थे।

## जन्म से व कर्म से वर्ण-व्यवस्था—

यों वर्ण का अर्थ रंग से है परन्तु इसका परिभाषिक अभिप्राय मान, प्रतिष्ठा व पद से है। भारतीय समाजवाद का यदि हम गम्भीर दृष्टि से अध्ययन करें तो समाजवाद ने भी वर्ण को 'सामाजिक-पद' के आशय से अभिप्रेत किया है। अत हम वर्ण अथवा सामाजिक-पद को पृथक्-पृथक् नहीं मान सकते। जन्मतः इस व्यवस्था को स्वीकार करना कुछ तर्कगम्य एवं बुद्धिगम्य प्रतीत नहीं होता।

जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में प्रत्येक अंग अपने-अपने स्थान पर अपनी आवश्यकता को प्रकट करते हुए अपनी अनिवार्यता सिद्ध कर रहा है उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी एक ही शरीर के आवश्यक अंग हैं और अपनी-अपनी जगह पर अपनी महत्ता को प्रकट कर रहे हैं। एक के बिना दूसरे की गति नहीं।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत।
उरु तदस्य यद्वैश्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

यजुर्वेद का उक्त मन्त्र स्पष्टतया घोषित कर रहा है कि शरीर में सब से

श्रेष्ठ भाग मुख ब्राह्मणत्व का प्रतीक है। बाहू क्षत्रियत्व के, जाँघें वैश्यत्व की, तथा पैर शूद्रत्व के प्रतीक हैं। अंगों की क्रमिक श्रेष्ठता के आधार पर ही वर्णों का विभाजन किया गया है। यदि ब्राह्मण अपने कार्य ब्राह्मणत्व के अनुकूल नहीं करता तो गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल उसकी सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन होता चला जाता है। मनुस्मृति में यह स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।

शूद्रकुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यानुकूल कर्म करता है तो वह शूद्रत्व को छोड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हो सकता है और ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ भी कोई व्यक्ति यदि शूद्र का कार्य करता है तो वह शूद्र बन जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि कर्मादि पर ही वर्ण-व्यवस्था की भित्ति आश्रित है।

## दलित जाति-वर्ग—

दलित जाति-वर्ग वे हैं जो अनेक सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों से वंचित हैं। जो मलमूत्र उठाते हैं वे हरिजन कहलाते हैं। उन्हें सार्वजनिक सवारियों, कुओं, तालाबों, सड़कों, पूजा-स्थानों तथा स्कूलों आदि में प्रवेश की मनाही होती है। उनका मन्दिरों तथा पवित्र स्थानों पर जाना वर्जित होता है। कई स्थानों पर तो उनकी छायामात्र ही बुरी समझी जाती है। मद्रास प्रान्त के एक इलाके में अस्पृश्य लोग कड़कती धूप में ही सड़कों पर आवागमन कर सकते हैं क्योंकि उस समय अन्य लोग बाहर नहीं निकलते।

ब्राह्मण तथा अब्राह्मण का भेद तो सभी प्रान्तों में विद्यमान है। भारत में दलितों की संख्या अनुमानतः ५ करोड़ होगी। जिनमें से ४१,०००,००० प्रान्तों में तथा ९० लाख रियासतों में। यह हिन्दू-जन-संख्या का २१वाँ भाग तथा कुल जन-संख्या का १४ प्रतिशत भाग है। ब्राह्मण अपने पेशे से विमुख हो रहे हैं। निम्न जाति के लोग उच्च जाति का पेशा अपना रहे हैं। हुटन का कथन है कि बहुत सी जातियों ने राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए अपने आपको दलित जातियों में परिगणित कराया। हिन्दू महासभा ने इस कारण हिन्दूमात्र को संगठित करने और एक साथ मिलाने के आन्दोलन चलाये। चाहे वे किसी भी सिद्धान्त व पन्थ के अनुयायी क्यों न हों। बहिष्कृत जातियों के नेताओं ने दलितों से पृथक् रहने पर जोर दिया ताकि उनका महत्व बढ़ता रहे।

सामाजिक असमानता—

सामाजिक असमानता यूँ तो सभी देशों में पाई जाती है परन्तु भारत में सदा से ब्राह्मणों ने अपने आपको ऊँचा समझा है। उनका हुक्का-पानी भी पृथक् रहता है। ब्राह्मणों के पद पर किसी अन्य को बैठने की आज्ञा नहीं होती। ब्राह्मण अन्य जातियों पर विवाह के समय तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर एक प्रकार का कर भी लगा सकता है।

आसाम में बहिष्कृत जातियों की संख्या २१ प्रतिशत है। अन्य प्रान्तों में बहिष्कृत जातियों में आस्ट्रेलायड, मंगोलायड तथा आदि-द्राविड़ियन रक्त मिश्रित है। उत्तर प्रदेश में मिश्रित जनसंख्या है। रिज़ले के अनुसार ये लोग आर्यो-द्राविड़ियन हैं।

उत्तर प्रदेश में निम्न वर्ण हैं :—

| | |
|---|---|
| १. ब्राह्मण | ६. कुर्मि, कुम्भी, माली, मर, बंजोरा |
| २. भुइनहर, तगा | ७. थारु, राजिस, कलवार, तेली, कोल |
| ३. राजपूत, खत्री | ८. धनुक, दोसध, कोरी, पासी |
| ४. कायस्थ | ९. चमार, डोम, भंगी |
| ५. बनिया, जाट, गुज्जर, अहीर | |

प्रथम ५ वर्ग इण्डो-आर्यन वर्ग के हैं। छठा भी इण्डो-आर्यन से मिलता-जुलता है। सातवाँ वर्ग मंगोलियन अथवा आदि-द्राविडियन स्कन्ध का है परन्तु इण्डो-आर्यन स्कन्ध से पर्याप्त संपर्क रखता है। आठवाँ तथा नवाँ वर्ग मिश्रित हैं। इन्हें अस्पृश्य समझा जाता है।

अस्पृश्य वर्णों का सामाजिक वर्गीकरण :—

१. अस्पृश्य जातियाँ सभी प्रान्तों में अस्पृश्य नहीं। एक अस्पृश्य जाति को उत्तर प्रदेश में कई अधिकारों से वञ्चित किया हुआ है परन्तु मध्य-प्रदेश में उस जाति को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं।

२. जहाँ अस्पृश्य जातियाँ संख्या में कम हैं उन्हें वहाँ अनेक असुविधायें प्राप्त हैं। जहाँ स्वतन्त्र एवं सुदृढ़ वर्ण-संघ स्थापित किये हुए हैं और उनकी संख्या भी अधिक है वहाँ उन्हें स्वतः ही अनेक सुविधायें प्राप्त हैं।

३. जहाँ उच्च जाति वालों की संख्या कम है और अछूतों की संख्या अधिक है वहाँ उन्हें अनेक असुविधायें प्रदान नहीं की जातीं।

४. यदि कोई नीच जाति का और धनी है तो उसे उच्च माना जाता है

और वह अपना विवाह राजपूतों अथवा तथाकथित राजपूतों में स्थापित कर सकता है।

५. जन जातियां किसी सामाजिक चिन्ह का वहन नहीं करती। बंगाल तथा बिहार के सन्थाल किसी सामाजिक असमानता के शिकार नहीं। वे तो उच्च जाति के हाथ का भोजन व पानी भी अस्वीकार कर देते हैं। बंगाल के साहु तथा तेली लोग आर्थिक क्षेत्र में बहुत उच्च पद प्राप्त किये हुए हैं, जो उन्हें कहीं अन्य प्राप्त नहीं।

"बहिष्कृत" जातियों की सूची में कोरवा, थारु, भील, मुंडया, चेरो, कन्जर, कोल तथा वट आदि सम्मिलित है। कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो 'बहिष्कृत' होते हुए भी अपना ली गई हैं जैसे भूमिज, मलासार, पनिया आदि। अनेक जातियों को तो हिन्दू-धर्म में प्रविष्ट होते ही अस्पृश्य समझा गया, परन्तु फिर भी उन्हें सामाजिक अधिकार दिये गये। जो लोग कृषि सम्बन्धी अधिकारों से वञ्चित किये जाते उन्हें दास बना लिया जाता। ईसाई मिशनरियों ने इन्हीं में घुसकर ईसाई मत का प्रचार किया और उन्हें ईसाई बना लिया। उच्च वर्णों द्वारा सताये जाने पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण उन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिये।

भारत में ४ सामाजिक व्यवस्थायें कायम हैं:—

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

२. सवर्ण—जिनके हाथ का पानी तो ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पीते हैं, परन्तु कच्चा खाना नहीं खाते

३. असवर्ण—जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्जित समझते हैं।

४. वन जातियां अथवा जरायमपेशा लोग—अस्पृश्य तथा असवर्ण जातियां जो बहिष्कृत समझी जाती हैं।

बहुत सी जातियां अपने आपको ब्राह्मणों व क्षत्रियों में भी सम्मिलित करने लगी हैं। जैसे—बामन, बढ़ई, भाट तथा नाई अपने को ब्राह्मण, दसोद अपने को गहलोत राजपूत, सुनरी अपने को शौण्डिक क्षत्रिय तथा कलवार अपने को हैहय क्षत्रिय कहते हैं। इस प्रकार कई उपजातियां व उपवर्ण भी प्रचलित हो गये। यदि कोई निम्न श्रेणी का व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से उच्च है तो वह उच्च श्रेणी की कन्या से विवाह भी कर सकता है। बिहार तथा उड़ीसा में अनेक ब्राह्मण उपवर्ण भी धीरे-धीरे निम्नकोटि की जातियों में मिश्रित हो रहे हैं। उड़ीसा के ब्राह्मणों, बिहार के अहीरों, बंगाल के वैद्यों में मिश्रण की

भावना बढ़ती जा रही है। उत्तरीय भारत में बढ़ई, लोहार, अहीर आदि सभी अपना सामाजिक पद ऊंचा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश के नूनिया, गोला तथा खारवार लोग अपने को एक-एक करके राजपूत कहलाने की कोशिश कर रहे हैं।

---

# सम्पत्ति

सम्पत्ति का आदिकालीन स्वरूप—

आधुनिक युग में जहाँ पूंजीवाद का साम्राज्य सर्वत्र छाया हुआ है, संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को हड़प कर अपने अन्दर मिलाने की लालसा में लिप्त हैं। व्यक्ति की सामाजिक सत्ता का उपहास किया जाता है। कुबेर और धनपतियों का कानून ही ईश्वरीय विधान समझा जाता है। धनतन्त्र वाद के पुजारी संसार की सम्पत्ति को समेटने की धुन में लगे हुए हैं। वहां यह कल्पना ही नहीं हो सकती कि संसार की आदिकालीन जातियां सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के साथ-साथ सम्पत्ति के साम्यवादी स्वरूप की पूजा करती होंगी। एकत्रित की हुई खाद्य सामग्री सम्पूर्ण परिवार, जाति, कुल व ग्राम को बांट दी जाती होगी और संगृहीत वस्तु का बेचना असह्य एवं अपमानजनक समझा जाता होगा।

आज का संसार धन की पूजा करता है। भोग और ऐश्वर्य को प्रधानता देता है। सम्पत्ति के बल पर कानून और शासन-व्यवस्था की बागडोर हस्तगत करना चाहता है। जाति व राष्ट्र में साम्पत्तिक स्वामित्व के आधार पर कलह का बीज बोया जाता है। राष्ट्र आपस में लड़ पड़ते है, जातियां एक दूसरे का समूलोन्मूलन करने पर उद्यत हो जाती हैं। व्यक्तिगत बाजार को पूर्ण करना, व्यक्तियों पर प्रभुत्व कायम रखना और क्रय और विक्रय पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सम्पत्ति के विशेष अंग माने जाते हैं। जिस प्रकार भूमिपति सम्पूर्ण भूमि का स्वामित्व चाहता है, उसी प्रकार कुबेर अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा सम्पूर्ण संसार पर नियन्त्रण करना चाहता है। परन्तु आदिकालीन मानव जातियां साम्पत्तिक स्वामित्व के इस रूप को लेशमात्र भी स्वीकार न करती थीं।

वस्तुओं को सञ्चित करने तथा उन पर अधिकार करने की प्रवृत्ति मानव-स्वभाव की प्रमुख विशेषता है। पशु जगत् में भी हम स्वामित्व की भावना पाते हैं। पशु अपने तथा अपनी सन्तान के लिए लड़ता हुआ देखा गया है। मनुष्य का सबसे बड़ा पालतू पशु कुत्ता है। जहां कुत्ता मनुष्य से अन्य बातें सीखता है वहां मनुष्य के स्वामित्व सम्बन्धी विचारों को भी अपना लेता

वह अपने स्वामी की सम्पत्ति पर अपना पूरा अधिकार समझता और उस की सुरक्षा करता है। मनुष्य की यह स्वामित्व-भावना, प्रभुत्व पाने की शक्ति सीमित नहीं रहती। यदि सीमित रहे तो मानव समाज में इतनी विषमता ही न दिखाई दे। परन्तु जब यह प्रभुत्व-शक्ति उग्र रूप धारण कर अपनी सीमा को अतिक्रान्त कर जाती है तब मानव समाज की सुदृढ आधार-शिला खोखली होने लगती है। मनुष्य कुटुम्ब, ग्राम, जाति व सम्पूर्ण देश को भी हड़पने की आशायें लगा लेता है। जिसका परिणाम भयङ्कर युद्ध व संहार ही होता है। पूंजीवाद भी इसी भावना की उपज है। जहां तक जातियों व वर्गों के साम्पत्तिक अधिकार का सम्बन्ध है इतिहास में पग-पग पर उस का उल्लेख पाते हैं। व्यक्तिगत अधिकारों की सम्प्राप्ति व पूर्ति का इतिहास बहुत लम्बा है अतः हमें सभी साम्पत्तिक भावनाओं पर अत्यन्त विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करना होगा।

आदि काल में ओना (Ona) जाति का यह कानून था कि शिकार द्वारा पकड़ी हुई ह्वेल मछली सारे द्वीप वासियों को बाट दी जायें। डकोटा जाति का शिकारी जब अपनी यात्रा से सफलता पूर्वक वापिस लौटता था तो ग्राम के वृद्ध जनों को सहभोज देता था। क्रो जाति का युवक आयुभर कमाता और अपने पितृगोत्रीय सम्बन्धियों को अतिथि सत्कार के रूप में आमन्त्रित किया करता था। शिकार के सभी क्षेत्र सभी वर्ग वाले प्रयोग में ला सकते थे। आस्ट्रेलिया की कई जातियां, इराक्यूज तथा अफ्रीका के कृषिकार नीग्रो शिकार द्वारा सगृहीत सामग्री सभी वर्गों में वितीर्ण कर देते थे। इस प्रकार जन-जातियों में जब तक अन्न की विद्यमानता रहती कोई व्यक्ति भूखा न मर सकता था। आदि-कालीन जातियों की यह नैतिक भावना न केवल पारिवारिक अर्थों में ही प्रयुक्त होती थी अपितु इसे वे सामाजिक रूप में भी लागू करते और अपनी प्रतिष्ठा व मान बढाते थे।

दरिद्रता का अभिप्राय यह नहीं था कि मनुष्य भूखा व नगा है, उसके पास रहने को मकान नहीं, तन ढाकने को वस्त्र नहीं। उन के विचार में दरिद्रता का अभिप्राय उन भौतिक अथवा अभौतिक अधिकारों का अभाव था जो स्वात्माभिमानी मनुष्य को जीने के योग्य बनाते हैं और उसे सम्मान के योग्य जीवन प्रदान करते हैं।

दो एस्किमों जब एक साथ शिकार के लिए निकलते तो वे मृतक पशु पर दोनों शिकारियों का अधिकार स्वीकार करते थे। उनके विचार में जहां पशु मारने वाले का मृतक पशु पर कानूनी अधिकार होता था वहां दूसरे साथी का उस पशु पर नैतिक अधिकार भी माना जाता था। इतना ही नहीं, वे उस शिकार

का थोड़ा-थोड़ा हिस्सा सम्पूर्ण ग्रामवासियों में बांट देते थे। यह उनके साम्यवाद का कितना ऊंचा आदर्श था। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की विशुद्ध भावना भी उनमें कूट-कूट कर भरी होती थी। उन की पारिवारिक योजना में "क्याक" ( Kayak) का स्वामी पति और घर के बर्तनों की स्वामिनी पत्नी होती थी। वे एक दूसरे की सम्पत्ति को बेचने का अधिकार भी नहीं रखते थे।

यह था साम्पत्तिक-स्वामित्व का स्वरूप जिस पर आदिकालीन जातियों की सामाजिक आधारशिला स्थापित थी। व्यक्तिवाद और समष्टिवाद के सुन्दर सम्मिश्रण की झलक हमें यथार्थरूप में आदिकालीन जातियों में दिखाई देती है।

## व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्वामित्व ( Individual and Communal ownership )—

प्राचीन जातियों में यद्यपि पूर्णरूपेण साम्यवादी प्रवृत्तियों का प्रचार न हुआ था तथापि व्यक्तिगत अधिकारों के साथ-साथ सम्पत्ति पर सामूहिक स्वामित्व सामान्य रूप से पाया जाता था। सम्पत्ति का सम्बन्ध व्यक्ति की अपेक्षा समष्टि से अधिक समझा जाता था। सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) का विचार था कि भारत में सम्पत्ति पर "वैयक्तिक स्वामित्व" की अपेक्षा "संयुक्त स्वामित्व" (Joint ownership) की परिपाटी वस्तुतः पुरातन काल से चली आ रही है। सम्पत्ति के सभी रूपों का इससे अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है।

"संयुक्त स्वामित्व" के आधार पर भी साम्पत्तिक विभाजन के नानाविध रूप देखे गये हैं। संयुक्त स्वामित्व द्वारा परिवार के मुखिया व उसके बड़े लड़के, समुदाय, श्रेणी व संघ को ही संपत्ति पर प्रभुत्व स्थापित करने का पूरा-पूरा अधिकार होता है। इस प्रकार का सामूहिक स्वामित्व बहुधा प्राचीन जातियों में पाया जाता था। संयुक्त स्वामित्व की विद्यमानता में व्यक्तिगत साम्पत्तिक अधिकारों का विनाश नहीं होता अपितु सम्पत्ति पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों अधिकार साथ-साथ विद्यमान रहते हैं।

ग्रीनलैण्ड में जब एक शिकारी हारपून द्वारा ह्वेल मछली को पकड़ लेता था तो वह उसका उपयोग अकेला नहीं कर सकता था, अपितु सभी दर्शकों को मछली बांट देनी पड़ती थी। कोर्याक (Koryak) जाति के शिकारी जो कुछ शिकार में पाते थे, आपस में बांट लेते थे। शिकारी स्वयं थोड़े से अवशिष्ट भाग का प्रयोग करता था। चुक्ची शिकारी समुद्री घोड़े का शिकार करने के बाद मृतक पशु को समीपस्थ दर्शकों में बांट देता था।

इसमें सन्देह नहीं कि यह विशुद्ध साम्यवादी भावना है। परन्तु इतना होते हुए भी इन जातियों में व्यक्तिगत "साम्पत्तिक-स्वामित्व" की भावना विद्यमान रहती थी। चुकची लोग यद्यपि सम्पूर्ण ह्वेल मछली को बाँट देते थे परन्तु ह्वेल की सभी अस्थियों पर उसी व्यक्ति का पूरा-पूरा अधिकार होता था जो ह्वेल मछली को सर्वप्रथम देखता था। यदि और कोई स्वायत्तीकरण का अधिकार स्थापित करने लगता तो उसे अपराधी समझा जाता था और उसके लिए प्राणदण्ड तक सजा दी जा सकती थी। इसी प्रकार योकोगीर (Yokoghir) तथा कोर्याक जाति में कपड़े तथा आभूषण पर तो वैयक्तिक अधिकार माना जाता था परन्तु कई चीजें परिवारिक-स्वामित्व के अंतर्गत होती थीं। हो सकता है कि मनुष्य किसी रूप में समष्टिवादी हो परन्तु उसके व्यक्तिगत-स्वामित्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

फिजी प्रदेशान्तर्गत रीवा ( Rewa ) में जो व्यक्ति जितने पेड़ लगाया करता उन सब पर उसका वैधानिक अधिकार समझा जाता था। ओशीनिया में ग्राम की गलियों को छोड़कर अन्यत्र सभी स्थानों पर लोगों का व्यक्तिगत अधिकार होता था। ग्राम की एक जगह भी ऐसी न थी जिस पर किसी का अधिकार न हो। चट्टानों, तालाबों तथा नालियों पर भी लोगों के अधिकार थे। मार्शल द्वीप में वर्ण-व्यवस्था भी थी। ऊँच और नीच का भाव पाया जाता था। खेती पर काम करने के लिए दास और गुलाम नियुक्त किये जाते थे।

किरगिज जाति के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे व्यक्तिगत 'स्वामित्व' तथा 'सामुदायिक स्वामित्व' दोनों के पक्षपाती थे। एक ऋतु में तो वह समष्टिवादी होते और दूसरी ऋतु में वे व्यक्तिवादी स्वामित्व के सिद्धान्तों पर चलते थे।

काम-धन्धे की दृष्टि से सभी मानवों में समानता थी। जाति का सरदार चाहे उसके पास कितना ही सामान का भण्डार क्यों न हो—प्लाँटेशन-क्षेत्र में सर्वसाधारण व्यक्ति के साथ जाता और उत्सवादि में उनके साथ सम्मिलित होता। सम्पत्ति के होने पर भी उसका सामाजिक पद वही रहता। उसकी सम्पत्ति शक्ति व प्रभुत्व के लिए न होती थी। सम्पत्ति-सञ्चय का उद्देश्य बड़े-बड़े सहभोज कराना और अतिथियों को बहुमूल्य पदार्थ भेंट रूप में प्रदान करना होता था। इस प्रकार उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ जाती थी। प्रो॰ रेमण्डफ़र्थ ( RaymondFirth ) ने न्यूजीलैण्ड की मावरी जाति के सहभोज के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सम्पत्ति-सञ्चय का यह अनोखा ढंग था। अपार खाद्य-सामग्री को एकत्रित करने और उसे सहभोज द्वारा वितरण करने में

मावरी लोग अपनी शान समझते थे। कोलैन्सो ने तो यहाँ तक लिखा है कि पिरामिड (Pyramid) के रूप में खाद्य सामग्री को ८०-९० फ़ीट की ऊँचाई तक संगृहीत किया जाता था। अतिथि सत्कार को आर्थिक निमन्त्रण, प्रतिष्ठा तथा सामाजिक प्रभुत्व का प्रतीक समझा जाता था।

अफ़्रीका के पशु-पालक लोग अपने पशुओं को कभी आदान-प्रदान के रूप में प्रयुक्त न करते थे। वे अपने पशुओं की संख्या-वृद्धि करने में ही आनन्द और अभिमान अनुभव करते थे। उनके विचार में कोई व्यक्ति जितने अधिक पशुओं का स्वामी होता समाज में वह उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा पाता।

चल-सम्पत्ति ( Chattels )—

वस्त्र, पात्र, अस्त्र, शस्त्र, तथा पशु आदि चल सम्पत्ति में परिगणित किये जाते हैं। स्त्री निर्विवाद रूप से घर के पात्रों की स्वामिनी तथा पति अपने धनुष का स्वामी होता है। यदि मनुष्य के पास पशुओं को चराने के लिए बड़े-बड़े चरागाह नहीं तो पशु रखना भी बेकार है। अतएव चरागाहों का प्रबन्ध एक आवश्यक कार्य समझा जाता था। प्राचीन जतियों में यदि कभी कोई कलह उत्पन्न होती थी तो इन चरागाहों के प्रश्न पर। चरागाहों की सम्प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े युद्ध भी हुआ करते थे।

रूअण्डा ( Ruanda ) में सैद्धान्तिक रूप से राजा को देश के सभी पशुओं का स्वामी समझा जाता था। दासों को चल सम्पत्ति का एक विशेष रूप समझा जाता था। यद्यपि उन्हें समय २ पर ताड़न और भर्त्सन का अधिकार होता था परन्तु प्रायशः उन से पारिवारिक सदस्यों का-सा व्यवहार रक्खा जाता था। सभी दासों को युद्ध-बन्दी के रूप में स्वीकार न किया जाता था। उत्तर-पश्चिमी कैलीफ़ोर्निया में किसी को बन्दी रूप में ग्रहण करने का विधान न था परन्तु जो आदमी कर्ज़ अदा न करते थे उन्हें दास बना लिया जाता था। वे लोग अपने स्वामी के लिए रस्सी तथा मछली पकड़ने के जाल बनाया करते थे। पश्चिमी अफ़्रीका में कई लोग अपने आपको तथा अपने पुत्रों को भूमिपतियों के हवाले कर देते थे परन्तु जिस समय वह कर्ज़ चुका देते थे उन्हें मुक्त कर दिया जाता था और बन्दी-समय में भी उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता था।

ईव ( Ewe ) जाति में, जहाँ पुरुष स्त्री को खरीदता था, स्त्री भूमि की तो उत्तराधिकारिणी नहीं होती थी परन्तु वह बकरी, मुर्गी आदि चल सम्पत्ति सम्बन्धी पदार्थों पर स्वामित्व स्थापित कर सकती थी। इतना ही नहीं, खेत में

बोयी गई सम्पूर्ण रुई स्त्री अपने पति को तभी देती थी जब उसके बदले में वह पूरा धन पा लेती थी।

चल सम्पत्ति का अधिकार प्रायशः व्यक्ति पर आधारित होता था। यही कारण था कि एक ही घर में स्त्री स्वनिर्मित पात्रों की स्वामिनी और पति पशुओं का स्वामी था। योकाघीर (Yokaghir) जाति में शिकारी पति बन्दूक पर, तथा पत्नी कपड़ा सीने के उपकरणों पर पृथक्-पृथक् स्वामित्व रखते थे। परन्तु इसके साथ-साथ योकाघीर जाति में सामूहिक स्वामित्व की भी भावना होती थी और वे नावों, मकानों तथा शिकार के जालों को सम्पूर्ण परिवार की सम्पत्ति समझते थे।

चल सम्पत्ति में पशुओं का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था। मसाई जाति में परिवार का सब से बड़ा व्यक्ति अपने कुछ पशु पृथक्-पृथक् रूप में स्त्रियों को बाट देता था और वे उस की रखवाली करती थी। उन पशुओं पर स्त्रियों का स्वामित्व नही होता था, अपितु वे पति की सम्पत्ति का अंग समझे जाते थे। इस प्रकार चल सम्पत्ति में भी हम व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना को प्रमुख रूप से अन्तर्निहित पाते है।

## वास्तविक अचल सम्पत्ति (Real Estate)

"भूमि-अधिकार" का नियम (Land Tenure) आर्थिक नियमों के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। प्राचीन जातियों में भूमि को अविच्छेद्य समझा जाता था अतएव उन का स्वामित्व-भाव हमारे स्वामित्व-भावसे बिल्कुल भिन्न था। ओना तथा आस्ट्रेलियन जातियो में विजय द्वारा भूमि को अधिकृत करने की भावना कभी जागृत भी नहीं हुई। दूसरी ओर, मावरी जाति के लोग एक परिवार को कृषि का अधिकार देते थे तो दूसरे परिवार को शिकार का अधिकार देते थे। न्यूगाइना तथा पश्चिमी अफ्रीका में यदि एक जाति का पेड़ों पर स्वामित्व होता था तो दूसरी जाति का भूमि पर।

कई इण्डियन्स लोगो में भूमि-अधिकार के नियम की कोई सीमा न थी। जन जाति के सभी सदस्य स्वच्छन्दता से सम्पूर्ण भूमि पर विचरण और शिकार कर सकते थे। ओना तथा आस्ट्रेलियन जातियों में भी यह स्वतन्त्रता प्राप्त थी। परन्तु जन-जातियों के सदस्यों की संख्या अत्यल्प होने से उनके भूमि-अधिकार सम्बन्धी नियमों में लेशमात्र भेद था। ओना और आस्ट्रेलियन वर्गों की सदस्य संख्या केवल मात्र १०० तक थी परन्तु इण्डियन्स हजारों की संख्या में थे अतएव छोटे-छोटे वर्गों पर भूमि अधिकार सम्बन्धी साधारण नियम अवश्य लागू

होते थे। पूर्वीय कनाडा तथा अलगोन्कियन्स (Algonkians) में शिकार के क्षेत्र वंश-परम्परागत होते थे। यदि एक परिवार के सदस्य दूसरे परिवार के आखेट-क्षेत्र में घुस जाते तो उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। पैविप्रोट्सो (Paviotso) जाति में यह अधिकार समुदाय को प्राप्त होता था। ज़िले के सभी वासियों को आखेट का अधिकार होता था। क्वीन्सलैन्ड में भी भूमि का अधिकार परिवारों को ही प्राप्त होता था। अत यह कल्पना कभी नही की जा सकती कि सभी आखेट-प्रिय लोगों के लिये सामुदायिक भूमि-अधिकार हुआ करते थे।

साधारणतया फिरन्दर जातियो का चरागाहों पर सामान्य अधिकार होता था, परन्तु शरद्‌ऋतु में किरगिज़ जातिया इस नियम का पालन न करती थी। क्योकि शरद् ऋतु में उन्हें उपयुक्त चरागाह न प्राप्त होते थे। ऋतु-परिवर्तन के कारण ही उन का यह नियम बदल जाता था। कई बार पशुओं की सख्या में न्यूनता होने पर एक व्यक्ति अपने शरद् कालीन स्थान को बेच डालता था। दूसरे शब्दों में भूमि विच्छेद्य बन जाती थी।

अफ्रीका में राजनैतिक परिस्थितियां अचल साम्पत्तिक विधान पर अपना प्रभाव डालती थीं। युगन्डा (Uganda) तथा दहोमे (Dahomey) में राजाओं का सम्पूर्ण भूमि पर स्वामित्व माना जाता था। युगण्डा में बड़े-बड़े सरदार जागीर पाते थे और वे जागीर के छोटे-छोटे टुकड़े फ़ौजी सेवाओं के बदले में किसानों को बांट देते थे। अफ्रीका के टोगो (Togo) नामक प्रदेश में भूमि पर सम्मिलित परिवार का अधिकार होता था। किसी की व्यक्तिगत अचल सम्पत्ति नहीं होती थी। वंश का प्रत्येक सदस्य ज़मीन को बोने का अधिकार रखता था परन्तु वंश का मुखिया केवलमात्र प्रबन्धक के रूप में समझा जाता था। लोबे (Lobe) जाति में यह प्रथा थी कि खाली पड़ा हुआ कृषिक्षेत्र पहले कृषक की आज्ञा से बोया जा सकता था परन्तु वह कृषक खेत में भविष्य के लिए पेड़ उगाने का अधिकार पहले से ही हस्तगत कर लेता था। भूमि का वंश-परम्परागत स्वामी एक पुरोहित के साथ स्थानीय देवताओं को बलि देता और उन्हें भूमि-अधिकार को दूसरे को सौंपने की सूचना देता था। रुवण्डा (Ruanda) जाति में कृषकों का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था। भूमि के अधिपतियों को यदि चरागाहों के लिए भूमि की आवश्यकता पड़ती तो वे उनकी खेती को भी नष्ट कर देते थे।

इससे प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत भूमि का स्वामित्व भी बदलता रहता था और भूमि पर स्थाई स्वामित्व की भावना पनप न पाती थी। चोक्टा (Choctaw) जाति जबतक भूमि पर फसल बोती थी तब तक उसका अधिकार मान्य था परन्तु उनके प्रव्रजन कर जाने

के साथ-साथ उनके भूमि-अधिकार भी समाप्त हो जाते थे और परित्यक्त भूमि पर उनका कोई अधिकार न रहता था। चाको इण्डियन्स में भी यही प्रथा विद्यमान थी।

## भूमि-अधिकार का नियम (Land Tenure)—

'भूमि-अधिकार' का नियम लोगों की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति पर आधारित होता था। प्रारम्भ में यदि कोई लड़ाई होती थी तो वह आखेट-क्षेत्र के प्रश्न पर होती थी। लंका की वेड्डा जाति अपने आखेट-क्षेत्र पर किसी दूसरे का अधिकार न होने देती थी। यदि कोई उनके आखेट-क्षेत्र में घुस आता तो भयङ्कर लड़ाई हो जाती थी। हेनेबेड्डा (Henebadda) जाति में एक व्यक्ति को अपने भाई की भूमि में घुसकर शिकार करने का कोई हक न था। उसे शिकार के लिए पहले आज्ञा लेनी पड़ती थी। यदि शिकार पड़ोस के प्रदेश में घुस जाता तो उस भूमि के मालिक को भी शिकार का कुछ भाग लेने का अधिकार होता। वेड्डा लोग अपना साम्पत्तिक अधिकार अपने बच्चों तथा दामाद को दे देते थे; परन्तु इतना अवश्य था कि इसके लिए परिवार के सभी बालिग पुरुषों की स्वीकृति लेनी आवश्यक थी।

मसाई जाति में जब तक चरागाह होते थे तब तक सबका उस पर अधिकार होता था परन्तु जब घास समाप्त हो जाता था तो वे अन्य इलाकों में चले जाते थे। टोडा लोगों में भी चरागाह पर सामूहिक रूप से अधिकार होता था, व्यक्तिगत रूप से नहीं। हाटनटाट जाति में चरागाहों की रक्षा सामूहिक रूप से होती थी। उपयुक्त चरागाहों को अधिकृत करने के लिए युद्ध भी होते थे। जो पड़ोसी जन-जातियां दोषी होतीं उन्हें निर्दयता से मार दिया जाता था।

दहोमी (Dahomi) जाति में जागीरदारी प्रथा प्रचलित थी। राजा ही सम्पूर्ण भूमि का मालिक समझा जाता था। वह चाहे तो श्मशान भूमि को छोड़कर, बाकी सम्पूर्ण भूमि बेच सकता था। परन्तु जायदाद का स्वामित्व किसी दूसरे को नहीं सौंप सकता था। राजा लोग सरदारों को भूमि दे देते थे और वे सरदार किसानों को इस अभिलाषा से भूमि सौंप देते थे जिस से समय पड़ने पर उनकी सैनिक सेवायें प्राप्त की जा सकें।

उड़ीसा की कन्ध (Kandh) जाति में घर का सबसे बड़ा मुखिया ही सम्पत्ति का स्वामी होता था। पुत्र भी विवाह के पश्चात् उसके साथ रहते थे परन्तु पिता की मृत्यु तक उन्हें किसी प्रकार का साम्पत्तिक अधिकार

प्राप्त नहीं होता। पिता की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण सम्पत्ति समान रूप से विभक्त की जाती थी। इनमें सामूहिक एवं जातीय स्वामित्व का लेशमात्र भी नाम न था।

## 'सर्वाधिकार सुरक्षित' सम्पत्ति ( Incorporeal Property )—

अनेक प्राचीन जातियाँ देवी-देवताओं तथा प्रेतात्माओं द्वारा प्रशस्त साम्पत्तिक अधिकार पर भी विश्वास रखती थीं। उनका विश्वास था कि दैवीय शक्ति सम्पत्ति के बेचने, रखने व एकत्रित करने का आदेश देती रहती है।

लेसू (Lesu) आदिवासियों का जहाँ यह विश्वास था कि दूसरों को बेचने से मनुष्य धनवान् नहीं हो सकता, और उनके सभी धार्मिक तथा वैधानिक पथ इस प्रकार के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाते हैं, वहाँ उनमें यह धारणा भी थी कि कतिपय बुद्धिमानों द्वारा संगृहीत जादू-सम्बन्धी ज्ञान मनुष्य की धन-सम्प्राप्ति का साधन बन सकता है। वे युद्ध, प्रेम, रोग तथा आर्थिक कार्यों में जादू के प्रभाव को विशेष रूप से स्वीकार करते थे।

अनेक गीत अन्तर्जातीय समुदायों में गाने के लिए रचे जाते थे और उन्हें उत्सवादि पर उच्च स्वर से गाया जाता था। कुछ ही समय में ये गीत प्रसिद्ध हो जाते थे। परन्तु गीत के रचयिता के अतिरिक्त किसी को पृथक् रूप से उसे गाने का अधिकार न था।

क्योंकि लोगों का विश्वास था कि जादू-टोने द्वारा दिन-प्रतिदिन की घटनाओं को परिवर्तित किया जा सकता है। रोग आदि का दूरीकरण भी इन्हीं उपायों से हो सकता था। जादू, तन्त्र, यन्त्र आदि सब परमात्मा द्वारा रचे गये हैं। ये सब जादू सम्बन्धी ज्ञान बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के हाथ में था। यदि वे जादू का रहस्य सब के सामने खोल दें तो उसका प्रभाव नष्ट हो जाता था। जब जादू व तन्त्र-मन्त्र किया जाता था तो उसे बारहसिंघा आदि उपहार में मिलते थे। जब स्त्री कभी अपने जादू के मन्त्र को बेचती भी थी तो उसे स्वयं सदा के लिये उसे छोड़ देना पड़ता था और केवलमात्र क्रेता ही उस गुप्त शक्ति का अधिकारी होता था।

अण्डेमान द्वीप-समूह में कवि अपनी कृतियों को 'सर्वाधिकार सुरक्षित' रखता था। कोई उसके गीत उसकी स्वीकृति के बिना न गा सकता था। वह स्वीकृति देने के लिए भी अपनी फ़ीस ले लेता था। इसी प्रकार जादू के मन्त्रों का भी स्वामित्व स्वीकार किया जाता था। कई प्रकार की चित्रकारियों को बिना आज्ञा नकल न किया जाता था। व्यक्तिगत नाम भी एक प्रकार की

अधिकृत सम्पत्ति (Patent Property) थी। यदि कोई किसी का नाम ग्रहण करता तो उसे पहले उपहार देना पड़ता था।

डा० सपिर ने ब्रिटिश कोलम्बिया की नूटका (Nootka) जाति के इन सर्वाधिकार सुरक्षित अधिकारों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है। एक वे अधिकार हैं जिन्हें टोपती (Topati) कहा जाता है और पिता इन अधिकारों को अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपने के लिए बाध्य होता है। दूसरे वे अधिकार हैं जो पिता अपने पुत्र को बाध्य होकर नहीं अपितु अपनी खुशी से सौंपता है। इस सिद्धांत के अनुसार पिता यदि कई रहस्योद्घाटन भी करना चाहता तो कर सकता था। नूटका जाति में जादू-मन्त्रों को खरीदने के लिए जायदाद का बहुत बड़ा भाग दे देना पड़ता था। क्रो जाति में एक युवा ने एक विशेष प्रकार का रंग प्रयुक्त करने का अधिकार अपनी मा से खरीदा। हिदात्सा जाति में बेटा भारी रकम देकर अपने बाप से दवाइयों के थैले खरीदा करता था।

## साम्पत्तिक अधिकार को सौंपना—

साम्पत्तिक अधिकार को सौंपने के दो तरीके थे। या तो सम्पत्ति बेच दी जाती थी, या गिरवी रखाई जाती थी। यदि किसी जमींदार अथवा काश्तकार को मृतक संस्कार करने के लिए क़र्ज की जरूरत पड़ती तो वह साहूकार को अपना खेत जमानत के रूप में देकर क़र्ज ले लेता। साहूकार उसके खेत को तब तक प्रयोग में लाता जब तक उसे पूरा पैसा न मिल जाता। कर्ज लेने व देने के समय भी एक-दो मध्यस्थ अवश्य होते थे जिनके सम्मुख यह सौदा बनाया जाता था। जब सम्पत्ति बेची जाती थी तब भी सम्पूर्ण राशि को दस किश्तों में बाँटा जाता था। पहली दो किश्तें तो बहुत अधिक होती थीं। तत्पश्चात् धीरे-धीरे रकम पूरी की जाती थी। निश्चित समय तक सपूर्ण धन-राशि चुकानी पड़ती थी। जो लोग सौदा बनाया करते उन्हें बाकायदा फीस भी दी जाती थी। साम्पत्तिक अधिकार को सौंपने की कार्यवाही विशेष विधि-विधानों द्वारा सम्पन्न की जाती थी।

## उत्तराधिकार (Inheritance)—

सम्पत्ति को अधिकृत करना और वंश परम्परागत पद्धति द्वारा उत्तराधिकार में सम्पत्ति पाना, दोनों साम्पत्तिक स्वामित्व के बिल्कुल भिन्न रूप हैं। आनुवंशिक सम्पत्ति का विचार मानवीय इतिहास की उपज है जिसमें

मनुष्य के मस्तिष्क तथा आदर्शवाद की भावना कार्य कर रही होती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन करने पर प्रतीत होता है कि ममत्व भावना का विस्तृत रूप ही साम्पत्तिक-स्वामित्व का द्योतक है। ज्यों-ज्यों ममत्व बुद्धि विकसित होती जाती है त्यों-त्यों मनुष्य स्वयं-सञ्चित वस्तु को अपना और उस पर विशेषाधिकार समझता है। मनुष्य के मस्तिष्क में जब यह विचार उत्पन्न होता है कि मेरी सञ्चित सम्पत्ति मेरे मरने पर मुझसे छिन जाएगी तो वह सम्पूर्ण सम्पत्ति सदा के लिये सन्तान के हवाले कर देने की कोशिश करता है। इस प्रकार उत्तराधिकार की भावना उसके मन में पैदा होती है। जो जातीय सम्पत्ति होती है वह उस जाति के व्यक्तियों के मरने के बाद भी उस जाति की रहती है। जहाँ पितृ-प्रधान परिवार की विशेषता है वहाँ सम्पत्ति उसके लड़कों को और जहाँ मातृ-प्रधान परिवार की विशेषता है वहाँ सम्पत्ति लड़कियों को मिलती है।

प्रो० फ्रैन्ज ब्वास का मत है कि आनुवंशिक सम्पत्ति का एक अप्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि वह विशेष व्यक्तियों के हाथ में संगृहीत हो जाती है। जो आनुवंशिक रूप से सम्पत्ति प्राप्त करते हैं उनमें स्वामित्व की भावना पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है। जो अपने प्रयत्नों द्वारा सम्पत्ति सञ्चित करते हैं वे प्रारम्भिक नियमों के आधार पर स्वामित्व कायम करते हैं। वे उस सम्पत्ति को अपना समझकर उससे पृथक् नहीं होना चाहते।

कई जातियों में भौतिक सम्पत्ति को उत्तराधिकार में नहीं दिया जाता, अपितु मृत्यु के बाद उसे नष्ट कर दिया जाता है। कैलीफोर्निया की कई जातियों में ऐसा होता है। मोना जाति के लोग मृतक को कपड़े में लपेट कर श्मशान-भूमि में ले जाते और वहाँ उसकी कुटिया तथा उसकी अन्य सभी वस्तुओं को जला देते थे। केवल मात्र मृत प्राणी के कुत्ते ही उसके सम्बन्धियों के हवाले किये जाते थे।

जब सम्पत्ति सञ्चित की जाती है तब उसे बेचने के सम्बन्ध में नानाविध कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जब वंश का नियम विद्यमान होता है तब उत्तराधिकार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। कभी कभी मातुल तथा पितृ भावना के पारस्परिक विरोध से भी विरोधात्मक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वैक्स द्वीपवासियों तथा ब्रिटिश कोलम्बिया की मानव जातियों में मामे की विधवा स्त्रियाँ भान्जे को उत्तराधिकार में दी जाती हैं।

सम्पत्ति पर ज्येष्ठत्व (Primogeniture) रूप से अधिकार की भावना प्राचीन जातियों में सामान्यतया नहीं पाई जाती। दक्षिणी अफ्रीका में बड़ा भाई बाप की सम्पत्ति का प्रबन्धक अथवा निक्षेपधारी (Trustee) प्रबन्ध

होता था परन्तु सर्वेसर्वा उत्तराधिकारी न होता था। कभी-कभी तो छोटे भाइयों को भी सम्पूर्ण जायदाद का नियन्त्रण सुपुर्द कर दिया जाता था। जैसे कि किरगिज तथा कतिपय एस्किमो जनजातियों में छोटे पुत्र को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी (Ultimogeniture) माना जाता था क्योंकि बड़े भाई जैसे-जैसे बड़े होते जाते थे पितृ-गृह को परित्यक्त करते जाते थे।

आनुवंशिक रूप से प्राप्त सम्पत्ति अथवा स्वयं-संचित एवं संगृहीत सम्पत्ति में महान् अन्तर है। भला सोचिये ! वहां आनुवंशिक सम्पत्ति का क्या स्वरूप होता होगा, जहां बाप के मरने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जला दी जाती होगी और जहां बेटे को भी बाप की सम्पत्ति खरीदनी पड़ती होगी ? मैदू (Maidu) जाति में हमने देखा कि एक व्यक्ति के मरने पर उसकी सारी जायदाद जला दी जाती थी। एसिनिबोयन (Assiniboin) जाति में शस्त्र, कपड़े तथा पात्र मृतक शरीर के साथ ही रख दिये जाते थे। कई अमेरिकन जातियों में मृतक के घोड़े मार दिये जाते थे। पीमा (Pima) जाति में जिस घर में व्यक्ति मरता था उस घर को भी या तो छोड़ दिया जाता या जला दिया जाता था।

सामूहिक विवाह के कारण उत्तराधिकार का स्वरूप भी कुछ-कुछ परिवर्तित हो जाता था। मातृ-सत्तात्मक परिवारों में सम्पत्ति का अधिकार स्त्री-पक्ष को प्राप्त होता था। गोत्र-पद्धति द्वारा भी उत्तराधिकार का स्वरूप बदल जाता था।

अल्टेयन (Altaian) जाति में सम्पत्ति का अधिकार पुत्र को प्राप्त होता था। पुत्र न हो तो चाचे के पुत्रों को अधिकार मिलता था। यदि चाचे की भी कोई सन्तान न हो तो सम्पत्ति की अधिकारिणी लड़की होती थी।

वेड्डा में सम्पत्ति बालिग बच्चों में बांटी जाती थी। लड़कियों का हिस्सा उनके पतियों को दे दिया जाता था। उड़ीसा की कन्ध (Kandh) जाति में सभी पुत्रों में सम्पत्ति बाँट दी जाती है परन्तु परिवार के मुखिये का पद बड़े भाई को प्राप्त होता है। इफुगो जाति में सबसे बड़े पुत्र को सम्पत्ति का सबसे अधिक भाग प्राप्त होता है।

चुकची जाति में सभी पुत्रों को जायदाद बांट दी जाती थी परन्तु सबसे बड़े लड़के को जायदाद का बहुत बड़ा भाग विरासत में प्राप्त होता था। बहुपत्नी-विवाह की अवस्था में सबसे बड़ी स्त्री के लड़के को जायदाद का अधिकार प्राप्त होता था, चाहे उसकी आयु छोटी क्यों न हो। मसाई जाति में प्रमुख स्त्री का सबसे बड़ा पुत्र पिता की जायदाद प्राप्त करता था और परिवार की लड़कियों पर नियन्त्रण रखता था। मावरी (Moari) जाति में जहां तक पद का सम्बन्ध था, वह बड़े लड़कों को प्राप्त होता था। उसके मरने पर उसके बड़े

लड़कों को प्राप्त होता है और उसके मरने पर उसके बड़े लड़के को। परन्तु साम्पत्तिक अधिकार इस प्रकार विभाजित नहीं होता। मान लीजिये एक व्यक्ति के चार पुत्र हैं तो सम्पत्ति का अधिकारी बड़ा पुत्र होगा। बड़े पुत्र के मर जाने पर पुनः उसके पुत्र को सम्पत्ति का अधिकार न मिलेगा अपितु उसके भाई को मिलेगा। इस प्रकार दूसरे भाई के मरने पर तीसरे को और तीसरे के मरने पर चौथे को प्राप्त होगा। यदि चौथा भी मर जाएगा तब पहले पुत्र के लड़के को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होगा।

टोडा जाति के पड़ोसी बडगा (Badaga) लोगों में लड़के विवाह के पश्चात् पितृगृह छोड़ देते हैं और पृथक् घरों में वास करते हैं। सबसे छोटा लड़का माँ-बाप के पास रहता है जो वृद्धावस्था में उनकी सहायता करता है। जब माँ-बाप मर जाते हैं तो वह उनकी सम्पत्ति का अधिकारी बन जाता है। टोडा जाति में भी कुछ अंश तक यह प्रथा प्रचलित है। उनमें सबसे बड़ा और सबसे छोटा भाई सम्पत्ति का बराबर भाग पाते हैं। मान लीजिये एक परिवार में सोलह भैंसे हैं तो सबसे बड़ा और सबसे छोटा चार चार भैंसें लेंगे और तीसरा तथा चौथा तीन-तीन। अवशिष्ट दो भैंसे बेच दिये जायेंगे। इस प्रकार जो पैसा आयेगा उसे आपस में बराबर-बराबर बांट देंगे। मणिपुर की नागा जाति में भी छोटे भाई को पिता की चल अथवा अचल सम्पत्ति पाने का पूरा अधिकार है।

खासी (Khasi) जाति में छोटी लड़की को अधिकार प्राप्त होते हैं। सबसे छोटी लड़की परिवार के विधि-विधान सम्पन्न करती और पिता की चल तथा अचल सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है। परिवार के सब जेवर उसे प्राप्त होते हैं परन्तु वह अपनी बहिनों की आज्ञा बिना घर को बेच नहीं सकती। जब वह मर जाती है तो उसकी दूसरी छोटी बहिन सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है। यदि किसी परिवार में लड़की नहीं होती तो बहिन की छोटी लड़की को सम्पत्ति दे दी जाती है। यदि बहिन के भी लड़की न हों तो माँ की बहिनों को सम्पत्ति का अधिकार दे दिया जाता है। एक जिले में सबसे बड़ी लड़की को भी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होता है।

हिन्दू संस्कृति में सभी उच्च श्रेणियों में ऐसा पाया जाता है। मनुस्मृति में जहाँ सम्पत्ति का अधिकारी बड़े को माना है वहाँ छोटे को भी अधिकार देने का वर्णन उपलब्ध होता है।

भूमि का विच्छेदीकरण एक असाधारण बात थी। फिजी-स्थित रीवा (Rewa) में भी प्रकार से सम्पत्ति एक से दूसरे को सौंपी जाती थी। परन्तु छः उपाय ऐसे थे जिन के आधार पर विशेष विधि-विधान द्वारा सम्पत्ति को

पुनः खरीदने की सुविधाएँ प्रदान की गई थी। दहेज में जो सम्पत्ति लड़की वाले प्रदान करते थे उसका उपभोग पति तथा उसके बच्चे किया करते। यदि कोई लड़का न होता तो धन देने वालों को कई शर्तों पर पुनः सम्पत्ति खरीद लेने का अधिकार था।

२१८ ५०

# धर्म और जादू

धर्म की परिभाषा :—

दुर्खेम ( Durkheim ) के शब्दों में धर्म का निर्माण विश्वासों और विधि-विधानों से हुआ है। पवित्र वस्तुओं के प्रति विश्वास की भावना और उन के लिए किये गये विधि-विधान ही धर्म की रचना करते हैं। केवल मात्र विश्वास पर धर्म आधारित नहीं हो सकता। विधि-विधान धर्म को सजीव शक्ति का रूप देते हैं।

मैक्सश्मिड ( Max Schmidt ) के शब्दों में धर्म, पूजा ( Cultus ) तथा विधि-विधान ( Rites ) का संयुक्त रूप है। पूजा ( Cultus ) का तात्पर्य उन सभी कार्यों से है जिन के द्वारा मनुष्य धार्मिक विश्वास की शक्तियों के सम्पर्क में आता है। ये शक्तियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। अतएव पूजा (Cultus) विभिन्न रूप धारण कर लेती है। यदि कला—उन विचारों का—जो मानवीय भावना को प्रकट करते हैं, प्रतिनिधित्व करती है—तो सभी धार्मिक विचार भी कला के अन्तर्गत आते हैं और पूजा का प्रतिनिधित्व भी कला द्वारा हो सकता है। अतएव नृत्य, संगीत, गायन तथा मन्दिर का चित्रण पूजा के सहायक माने जाते हैं।

आदिकालीन पुरुष और आधुनिक पुरुष—दोनों प्रकृति के रहस्य का विभिन्न २ दृष्टिकोण से अनुशीलन करते हैं। मुण्डा लोगों का विश्वास है कि पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर पत्थर फेंकने से बिजली की-सी गड़गड़ाहट होती है और उससे वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। सिंहभूम के हो ( Ho ) लोगों का विश्वास है कि ईंधन के गट्ठे को जला देने से सम्पूर्ण ग्राम के ऊपर धुआं बादलों के समान मण्डराने लगता है और उससे मूसलाधार वर्षा होने लगती है। इतना विश्वास होने पर भी वर्षा तो अपने समय पर ही होती है। यदि उस समय वर्षा हो गई तो उनका विश्वास जादू-टोने में जमा रहता है अन्यथा असफल होने पर उसकी तन्त्र-मन्त्र द्वारा सिद्धि कराई जाती है और जादू के विघ्न के दूरीकरण तथा महान् देवी-देवता की आराधना का उपाय सोचा जाता है। तन्त्र-मन्त्र प्रार्थना का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार जादू और धर्म की समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों अलौकिक

५११४ ५०

# धर्म और जादू

धर्म का [illegible]प :—

डुर्खेम ( Durkheim ) के शब्दों में धर्म का निर्माण विश्वासों और विधि-विधानों से हुआ है। पवित्र वस्तुओं के प्रति विश्वास की भावना और उन के लिए किये गये विधि-विधान ही धर्म की रचना करते हैं। केवल मात्र विश्वास पर धर्म आधारित नहीं हो सकता। विधि-विधान धर्म को सजीव शक्ति का रूप देते हैं।

मैक्सश्मिड ( Max Schmidt ) के शब्दों में धर्म, पूजा ( Cultus ) तथा विधि-विधान ( Rites ) का संयुक्त रूप है। पूजा ( Cultus ) का तात्पर्य उन सभी कार्यों से है जिन के द्वारा मनुष्य धार्मिक विश्वास की शक्तियों के सम्पर्क में आता है। ये शक्तियां विभिन्न प्रकार की होती हैं। अतएव पूजा (Cultus) विभिन्न रूप धारण कर लेती है। यदि कला—उन विचारों का—जो मानवीय भावना को प्रकट करते है, प्रतिनिधित्व करती है—तो सभी धार्मिक विचार भी कला के अन्तर्गत आते हैं और पूजा का प्रतिनिधित्व भी कला द्वारा हो सकता है। अतएव नृत्य, संगीत, गायन तथा मन्दिर का चित्रण पूजा के सहायक माने जाते हैं।

आदिकालीन पुरुष और आधुनिक पुरुष—दोनों प्रकृति के रहस्य का विभिन्न २ दृष्टिकोण से अनुशीलन करते हैं। मुण्डा लोगों का विश्वास है कि पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर पत्थर फेंकने से बिजली की-सी गड़गड़ाहट होती है और उससे वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। सिंहभूम के हो ( Ho ) लोगों का विश्वास है कि ईंधन के गट्ठे को जला देने से सम्पूर्ण ग्राम के ऊपर धुआं बादलों के समान मण्डराने लगता है और उससे मूसलाधार वर्षा होने लगती है। इतना विश्वास होने पर भी वर्षा तो अपने समय पर ही होती है। यदि उस समय वर्षा हो गई तो उनका विश्वास जादू-टोने में जमा रहता है अन्यथा असफल होने पर उसकी तन्त्र-मन्त्र द्वारा सिद्धि कराई जाती है और जादू के विघ्न के दूरीकरण तथा महान् देवी-देवता की आराधना का उपाय सोचा जाता है। तन्त्र-मन्त्र प्रार्थना का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार जादू और धर्म की समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों सांसारिक

रहस्यों का उद्घाटन करते हैं और दोनों ही अनुकूल व्यवस्था (Adaptation) के उपकरण हैं। विचार शक्ति और ज्ञान शक्ति के कारण मनुष्य एक अलौकिक एवं दैवीय शक्ति (Supernaturalism) में विश्वास करने लगता है। वह तर्कणा के बल पर अविश्वसनीय सिद्धान्तों को भी कभी-कभी धर्म का अंग समझ लेता है। यदि वह उन अधार्मिक कृत्यों की ओर कदम बढ़ाता है तो दैवीय शक्ति का भय उसे आगे बढ़ने से रोकता है और वह चमत्कार पूर्ण शक्तियों का गुलाम बन जाता है।

टायलर (Tylor) के मत में आध्यात्मिक प्राणियों में विश्वास का नाम ही धर्म है। वे मानते हैं कि सभी निर्जीव पदार्थों में मनुष्य के गुण विद्यमान हैं और उनमें भी आत्मा का वास है। स्वप्नों, प्रतिबिम्बों, प्रतिध्वनियों, इन्द्रजालों (Hallucination) तथा आन्तरिक बल द्वारा दूरस्थ घटनाओं के दर्शन (Clairvoyance) से हम इन आत्मिक कार्यों की अनुभूति करते हैं। इस आत्मिक बल पर ही जीववाद (Aiaimism) सम्बन्धी विश्वासों और कार्यों की रचना हुई है। आत्मा का मृत्यु के समय प्रेतात्मा रूप में परिवर्तित हो जाना मानवीय सांस्कृतिक इतिहास की एक बहुत बड़ी घटना है। जब शरीर निद्रा में होता है तो आत्मा रिक्त स्थान पर परिभ्रमण करती है और शरीर को क्रिया-शील बनाने, जगाने तथा सजीव करने के लिए पुनः लौट आती है। आत्मा शरीर को छोड़ना नहीं चाहती अतएव वह मृतक के चारों ओर मण्डराती रहती है और यही मृतक पूर्वजों की आत्मायें धार्मिक विधि-विधानों को प्रेरित करती रहती हैं। यदि आगामी सन्ततियाँ इन मृतक पूर्वजों की आत्माओं की आज्ञा का पालन न करें तो नानाविध अनिष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। आदिवासी इसी भावना के आधार पर मृतक पूर्वज आत्माओं का मान व तर्पण करते थे।

कइयों का विश्वास है कि आत्मा मृत्यु के समय प्रेतात्मा बन जाती है। वे आत्मा के पुनः प्रत्यावर्तन में विश्वास रखते हैं। आदिकालीन जातियाँ आत्मा की अनित्यता को स्वीकार करती थीं। वे यह न बतला सके कि आत्मा शरीर को स्थाई रूप से छोड़ जाती है अथवा अस्थाई रूप से, जैसे कि नींद व स्वप्न में। अतएव वे अन्त्येष्टि संस्कारों में भी विश्वास करते थे। एक संस्कार तो वे मृत्यु के बाद सम्पन्न करते थे और दूसरा कतिपय वर्ष बाद, *जब वे आत्मा के लौटने की सभी आशायें छोड़ चुकते थे। नीलगिरि के* टोडा तथा सिंहभूम (बिहार) के हो (Ho) लोग इस दूसरे मृतक-संस्कार को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते थे जिसे वे जंगतोपा (Jangtopa) कहते थे। अनेक जातियाँ दो आत्माओं में विश्वास करती थीं; एक आन्तरिक तथा दूसरी बाह्य। उनके विचार में दोनों की कार्य-प्रणालियाँ भी पृथक् पृथक् होती थीं।

जादू और धर्म (Magic & Religion) सम्बन्धी सिद्धान्त—

जादू का विज्ञान और धर्म से क्या सम्बन्ध है ? इस विषय पर मि० जे० जी० फ्रेज़र ने बड़ी गम्भीरता से आलोचना करते हुए अपने विचार प्रकट किये हैं। इनका मत है कि जादू का संसार विज्ञान के साथ-साथ संपर्क रखते हुए है। वह जादू को प्रारम्भिक विज्ञान मानता है और उसका कथन है कि यह विज्ञान भी तथ्य और विशुद्ध है। जादू की क्रियायें एकरूपता से अभिन्न फल की आशा में अपना कार्य करती हैं और फिर हमें उन फलों का प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। जादू का सार दैवीय शक्ति का विश्वास है। यदि कोई जादू का कार्य असफल हो जाता है तो उससे दैवीय शक्ति में विश्वास की भावना किसी प्रकार कम नहीं होती अपितु पहले प्रभाव को दूर कर किसी दूसरी चामत्कारिक शक्ति द्वारा पुनः सफलता पाने का प्रयत्न किया जाता है।

यदि इसी का नाम जादू है तो विज्ञान के साथ इसकी अनुरूपता नष्ट हो जाती है। वैज्ञानिक कार्यों की अन्तर्निहित भावना वैज्ञानिक की इच्छा पर निर्भर होती है। वैज्ञानिक तो विरोधी अनुभव से लाभ उठाना चाहता है। वह अपनी असफलता पर पुनः विचार करता है और इस प्रकार अन्त में अपनी मनोकांक्षा को पूरा करता है। विज्ञानवेत्ता यथार्थता और विशुद्धता का लक्ष्य सामने रखता है जो कि एक जादूगर से बहुत परे की वस्तु है। इसके अतिरिक्त जादूगर का उपकरण अपरिवर्तनीय है परन्तु वैज्ञानिक का उपकरण अर्थात् उसका परीक्षण परिवर्तनीय होता है। अतः फ्रेज़र का यह कहना कि जादू और विज्ञान आपस में गहरा सम्बन्ध रखते हैं कुछ बुद्धिगम्य प्रतीत नहीं होता। मि० टायलर ने इन विचारों को अन्ध विश्वास का नाम दिया है। यह अन्ध विश्वास ऐसा धर्म है जो कोई भी व्यक्ति इसमें विश्वास नहीं ला सकेगा। जब हम यह कहते हैं कि जादू को धर्म से पृथक् नहीं किया जा सकता तो इसका अर्थ यह न लगाना चाहिये कि जादू का धर्म से भेद नहीं है।

मैलिनोवस्की ने धर्म और जादू का भेद प्रदर्शित करते हुए स्पष्ट बतलाया है कि जादूगर की एक विशेष श्रेणी होती है और जादू उस श्रेणी के हाथ में रहते हैं परन्तु धर्म सब के लिए स्वतन्त्र होता है यद्यपि पादरी, पुरोहित और धर्म-गुरू होते हैं परन्तु धर्म उनकी पैतृक आनुवंशिक सम्पत्ति नहीं। ऐतिहासिक विकास होने पर जादू में शास्त्रोक्त पद्धति का समावेश पाया जाता है परन्तु धर्म में शास्त्रोक्त पद्धति के साथ २ एक आदर्शवाद दिखाई देता है। मैलिनो-वस्की का कथन है कि विज्ञान प्रतिदिन के जीवन के अनुभव पर आश्रित है। वे अनुभव हैं जो मनुष्य ने प्रकृति से लड़कर अपनी सुरक्षा के लिए तर्क और

परीक्षण पर आधारित होकर प्राप्त किये हैं। जादू उन संवेगपूर्ण परिस्थितियों के विशिष्ट अनुभव पर आश्रित है जिसमें मनुष्य प्रकृति को नहीं अपितु अपने आपको देखता है। जिसमें सत्य का प्रकटीकरण तर्क के आधार पर नहीं, अपितु सवेग द्वारा होता है। ज्ञान के सिद्धान्त तर्क द्वारा आज्ञप्त होते हैं परन्तु जादू के सिद्धान्त अभिलाषा के प्रभाव के अन्तर्गत विचारों के संपर्क से आज्ञा पाते हैं।

## अलौकिक शक्ति में विश्वास ( Supernaturalism )—

आदिकालीन प्राणी के विचार में यह मानवीय शरीर रोग, शत्रु, भूख, यातना आदि से परिपूर्ण है। जड़ी-बूटियों, ओझाओं का चमत्कार, जादू आदि उपाय शारीरिक दुःखों का निराकरण नहीं कर सकते फिर भी मनुष्य संसार में सुख से जीवित रहना चाहता है। वह सभी कष्टों का सामना करता है, दुःख उठाता है—केवलमात्र जीने के लिए। उसकी जीवित रहने की तृष्णा किसी भी रूप में कम नहीं होती और न ही वह अपने आपको भाग्य के हवाले कर देना चाहता है। इन विषम परिस्थितियों में वह किसी अलौकिक शक्ति की शरण ले लेता है।

मि० आर० एच० कौड्रिंगटन (R. H. Codrington) ने सबसे प्रथम इस बात का पता लगाया था कि दक्षिण समुद्र की तटवर्ती विभिन्न जातियों में दैवीय शक्ति का विचार धार्मिक विचार के रूप में स्पष्ट और विशिष्ट स्थान रखता है। यह उस शक्ति का निर्देश करता है जो दैवीय और अकर्तृक (Impersonal) है। यह अकर्तृक दैवीय शक्ति (Impersonal Supernaturalism) न तो कोई भूत, प्रेत, मानव अथवा पशु है अपितु यह एक जादूमय शक्ति है जो स्वतः अकर्तृक है परन्तु भूत, प्रेत और मनुष्यों द्वारा अपने प्रभाव को उत्पन्न कर सकती है। इस अकर्तृक दैवीय शक्ति का एक प्रभाव तो हमें मारक्वीसस द्वीप-समूह के लोगों में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता था जबकि एक विद्वान् विद्वत्मण्डली में बैठकर अपनी योग्यता को सिद्ध करने के लिए ललकारता और जीतने पर सम्मान पाता तथा हारने पर कभी-कभी उसी उद्वेग में मृत्यु का शिकार हो जाता था। इसी जाति का एक सरदार जब लड़ाई लड़ने जाता तो पराजित व्यक्ति के मांस को खाता था, केवल मात्र इसलिए कि उसका प्रकोप विजेता को न लगे। विजेता उसकी हड्डी और खोपड़ी को भी अपने शरीर पर धारण करता था। जोन्स ने तो यहाँ तक लिखा है कि कभी-कभी विजेता पराजयी के हृदय को भी खाता था ताकि पराजयी की अकर्तृक दैवीय शक्ति उससे समूल नष्ट हो जाये।

पुरातनजातियों में सर्वनियन्ता की भावना विद्यमान रहती थी। उदाहरणार्थ केन्द्रीय आस्ट्रेलिया के अरुन्ता (Arunta) लोग अलजीरा नामक महान् नैतिक प्राणी में विश्वास रखते थे। उनके विचार में वह एक महान्, सुदृढ़, रक्तवर्ण व्यक्ति था जिसके हल्के बाल सदैव कन्धे पर पड़े रहते थे। वह आभूषणों से सुसज्जित होता था। उसकी सुन्दर और रक्तवर्ण स्त्रियां कुत्ते के सदृश टांगों वाली होती थीं। उसके बहुत से लड़के और लड़कियां होती थी। लड़कों की टांगें चिड़िया की भांति और लड़कियों की टांगें कुत्ते की टांग की भांति होती थीं। उसके पड़ोस में सुन्दर युवक और युवतियों का वास था। अलजीरा कभी मरता नहीं था और वह सदैव स्वर्ग में रहता था उसके राज्य में भांति-भांति के पशुओं प्राणियों तथा वनस्पतियों की अत्यधिकता थी। वे उसे मनुष्य का उत्पादक न मानते थे। उनमें इतना डर अवश्य था और वे समझते थे कि एक दिन आएगा जब कि यह स्वर्ग गिर जायगा और उसके गिरने से हम सब मर जायेंगे।

नारिन्येरी जाति के लोगों का विश्वास था कि एक महान् आत्मा ने संसार की सभी चीजों को निर्मित किया हुआ है और उसी ने मनुष्य को नियम पालन करना तथा शत्रुओं से लड़ना सिखलाया है। कुरनई जाति में भी इस प्रकार की भावना निहित थी। इससे स्पष्ट है कि वे सब विचार किसी प्राणि-विशेष में निहित समझे जाते थे। कुरनई जाति का विश्वास था कि इसी दैवीय पुरुष ने कुरनई लोगों को उपकरण, नाव, शस्त्र आदि बनाना सिखाया। गुप्त शास्त्रोक्त विधि-विधान भी उस महान् पुरुष की कृति हैं। जब कोई व्यक्ति इन गुप्त शास्त्रोक्त विधि-विधानों को स्त्रियों तक पहुँचाता तो यह दैवीय व्यक्ति क्रोध के वशीभूत हो जाता और बदला लेने के लिए अपनी आग को नीचे भेज देता, जो आकाश और पृथ्वी के मध्य फैल जाती। पुरुष भय से पागल हो जाते। भाई भाई को, पिता पुत्रों को, तथा पति पत्नियों को मारना प्रारम्भ कर देते और समुद्र पृथ्वी पर फैलकर सम्पूर्ण मानव जाति को अपने में निमज्जित कर लेता। जो बच जाते वे कुरनई जाति के पूर्वज रूप में समझे जाते और अवशिष्ट पशुपक्षियों का रूप धारण कर विचरते। यून जाति के लोग 'दारा मुलुन' नामक महान् आत्मा में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास था कि एक बार यह 'दारा मुलुन' पृथ्वी पर अपनी मां के साथ रहता था। पहले पृथ्वी भी आकाश की भांति नग्न रूप में थी। उस समय पशुओं, पक्षियों और कीड़ों के अतिरिक्त कोई और विद्यमान न था। 'दारा मुलुन' ने सबसे प्रथम पेड़ बनाये। इसके बाद उसने जल-प्रलय करदी। कुछ व्यक्ति सरकते-सरकते क्रोमेडरी पर्वत पर पहुँच गये। तब वह 'दारा मुलुन' आकाश में चढ़ गया जहां वह अब भी विद्यमान है।

दक्षिणी अमेरिका के कोलम्बिया प्रदेश स्थित कगाबा जाति का उदाहरण पेश करते हुए रेडिन ने लिखा है कि वे लोग एक महान् मातृ-शक्ति में विश्वास रखते थे। दक्षिणी अफ्रीका के लोग 'अन्कुलुन्कुलू' में विश्वास रखते थे। उनका कथन है कि पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह इसी अन्कुलुन्कुलू द्वारा दिया गया है। प्रारम्भिक जातियों का किसी दैवीय पुरुष में विश्वास रखना एक महत्वपूर्ण चीज थी।

## जादू ( Magic )—

मनुष्य के जीवन में अनेक घटनायें ऐसी भी होती हैं जिनकी नकल मात्र (Imitation) से मनुष्य अपनी मानसिक अभिलाषा पूरी कर लेता है। इस प्रकार मनुष्य को उसकी तथ्यता पर विश्वास होने लगता है। आस्ट्रेलियावासी युवक जब वर्षा की कामना करता था तो वह अपने मुंह में पानी भर कर उसे विभिन्न दिशाओं में उडेल देता था। मावरी जाति का युवक अपने शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसे मारता था—उस प्रतिमा में भी वह वास्तविक शत्रु की भावना कर रहा होता था। ओ जाति के सरदार ने तो एक बार अपने शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसे जमीन पर पटक डाला—उसका दिल निकाल लिया—केवल अपनी मानसिक शान्ति के लिए। इस प्रकार उसने उस काल्पनिक शत्रु में भी सत्यता की कल्पना की और अपने मानसिक आवेश को शांत किया।

इन भावनाओं को अभिव्यक्ति का तथा काल्पनिक वस्तु को तथ्य समझने का एक और भी साधन है जिसे हम दूसरे रूप की जादूगरी समझते हैं और तन्त्र-मन्त्र आदि के उच्चारण से जिसकी सिद्धि करते हैं। उत्तरी-पूर्वी साइबेरिया की कोर्याक तथा चुकची जातियों में रोग के ठीक करने लिए, आंधी-तूफान आदि को शान्त करने के लिए नानाविध तन्त्र-मन्त्र व सिद्धियां हुआ करती थीं जिन्हें वे आपत्तिकाल में व्यवहृत करते थे। ये तन्त्र-मन्त्र उनकी सर्वाधिकार सुरक्षित सम्पत्ति होती थी जिसे वे अनमोल समझते थे और बड़े लम्बे दामों पर यह सम्पत्ति दूसरों को सौंपा करते थे। न्यूजीलैण्ड में तो इन तन्त्र-मन्त्रों को जीवन के प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में प्रार्थना का स्थान दिया जाता था। यदि इन मन्त्रों के उच्चारण में कोई अशुद्धि हो जाती तो उसे अपशकुन समझा जाता था। इन तन्त्र-मन्त्रों का सम्बन्ध देवी-देवताओं तथा महात्माओं से जोड़ा जाता था। अतएव यह कहा जा सकता है कि आदि-कालीन लोग इन तन्त्र-मन्त्रादि को भी धर्म में परिगणित करते थे।

भविष्य कथन ( Divination )—

आदिकालीन लोग गुप्त मन्त्रों का प्रयोग न केवल भविष्य निर्माण के लिए करते थे अपितु इन मन्त्रों का सूक्ष्म निरूपण किया करते थे। आदिकाल से ही वे लोग भविष्य-कथन पर विश्वास रखते थे। साइबेरियन तथा मंगोल लोगों का विश्वास था कि बारहसिंघे तथा भेड़ की स्कन्धास्थि (Shoulder blade) को आग के ऊपर रखने से उसके फटने पर जो आवाज होती है उससे शुभ-अशुभ का भविष्य ज्ञात किया जा सकता है। एस्किमो लोग रोटी के सिर को रस्सी से बांध कर उसके बचने और मरने का भविष्य बतलाते थे। पश्चिमी अफ्रीका में ईव (Ewe) जाति का भविष्यवक्ता एक अण्डे पर थूककर उसे छत पर फेंकता था। यदि वह छत पर फेंके जाने पर भी न टूटता तो शुभ लक्षण समझा जाता है, अन्यथा अशुभ। दक्षिणी अफ्रीका तथा भारत में पासा ( Dice ) खेला जाता था। पासे के जमीन पर गिरने से शुभ और अशुभ का अनुमान किया जाता था। हवाई जाति के लोग हत्या किये जानेवाले सूअरों की अन्त-स्थिति से भविष्य का पता लगाते थे। कई नीग्रो जातियाँ इसलिए मुर्गे व बतखें पालती थीं ताकि उनसे शुभ-अशुभ का ज्ञान प्राप्त किया जाय।

धर्म सम्बन्धी निषेध ( Taboos )—

धार्मिक दृष्टि से जिन कार्यों में अपवित्रता झलकती हो अथवा जिन अपवित्र कार्यों से धार्मिक विधि-विधान सत्रासक होते हों उनका सदैव निषेध किया जाता था। निषिद्ध वस्तुओं का ग्रहण, निषिद्ध पशुओं का खाना व मारना, निषिद्ध व्यक्तियों से बोलना हेय समझा जाता था। आस्ट्रेलिया की मकाबू जाति में जब बालक धार्मिक दीक्षा (Initiations) ग्रहण करता था तो उसे भोजन के निर्वाचन की स्वतंत्रता न रहती। दीक्षा के बाद कुछ वर्षों तक वह आस्ट्रेलियन चिड़िया, श्वेत सारस, बत्तख, तथा साँप आदि पशु-पक्षियों का मांस नहीं खा सकता था। स्त्री गर्भवती अवस्था में तथा प्रसूति के पश्चात् मछली, सर्प तथा अनेक प्रकार के वानस्पतिक द्रव्य नहीं खा सकती थी। आज्ञा का भंग करना सामाजिक अपराध समझा जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि यदि गर्भवती स्त्री लोमड़ी का मांस खा ले तो उसके बच्चे के पैर तथा जिह्वा का निचला भाग फोड़ों से छलनी हो जाता है। यदि वह जंगली मुर्गी खा ले तो प्रेतात्मा उसका बच्चा ले जाती है और उसे पर्वतीय मौसम में डाल देती है। यदि वह साँप का मांस खा ले तो गर्भस्थित बच्चा मर जाता है। उनका विश्वास

था कि गर्भावस्था में स्त्री को अंगीठी पर पका हुआ साधारण भोजन खाना चाहिये। गर्भावस्था में तथा प्रसूति के बाद भी पति अपनी पत्नी को गहरे नाले से पानी भरने से रोकता था ताकि कहीं बच्चा मर न जाये। उनका विश्वास था कि यदि कोई बच्चा अपनी मा को गहरे पानी में से मछली पकड़कर खाता हुआ देख ले तो बच्चे की आत्मा शरीर से निकल जाती है और बच्चा मर जाता है।

आज्ञा भंग के प्रभाव का दूरीकरण और शमन भी किया जाता था। माता-पिता और पुत्र एक जादूगर के साथ उस नाले पर जाते जहा पिता अपनी स्त्री को एक टोकरी में पानी देता जिससे उस बच्चे की आत्मा को पुन: लौट आने का लालच मिलता। जादूगर बच्चे की आत्मा को पकड़कर मां के वक्ष-स्थल में डाल देता। मां का दूध पीकर आत्मा पुन. जीवित हो जाती। ब्रिटिश कोलम्बिया की कई जातिया एक वर्ष तक मृतक व्यक्ति का न तो नाम लेती थी और न ही उस नाम से मिलते-जुलते शब्द प्रयुक्त करती थी। मैदानों में रहने वाले स्यून ओमाहा लोगों को भैंस का सिर स्पर्श करने का निषेध होता था। इस जाति में कुछ लोग ऐसे भी थे जो कछुए को पकड़ तो सकते थे परन्तु उसे खा नही सकते थे।

पोलीनिशिया में तो निषेध का असाधारण महत्व समझा जाता था। किसी मुख्य सरदार का सिर छूना तथा उसके ऊपर अपवित्र पदार्थ रखना सबसे बड़ा अपमान समझा जाता था। किसी अपवित्र वस्तु से उसका मुकाबिला करना भी एक प्रकार का अपमान था। यह अपराध इतना महान् समझा जाता था कि इस पर युद्ध छिड़ जाते थे। एक सरदार के जन्म, मरण, रोग, विवाह, युद्ध तथा धार्मिक उत्सवों पर सभी जातियों पर प्रतिबन्ध होते थे। ऐसे अवसरों पर शोर करना मना था। लोगों को इधर-उधर आने-जाने की मनाही थी। आग जलाने और भोजन खाने पर भी रोक होती थी। जब तक देवी-देवता को प्रसन्न न किया जाता तब तक नई फसल, नवीन फल आदि के उपभोग करने की मनाही थी। बड़े-बड़े सरदार पेड़ों, जमीनों तथा मछली पकड़ने वाले इलाकों के अधिपति कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाते थे जिनसे लोग उनकी सम्पत्ति को हानि न पहुंचा सकें। वे लोग पैदावार होने पर जाति के सभी व्यक्तियों को अपनी पैदावार का भाग दे देते थे।

## तिलिस्मी तथा जड़ देवता (Amulets and Fetish) :—

प्राचीन लोगों का यह विश्वास था, कि पेड़ तथा नदियां आदि भी पवित्र और शक्तिमय हैं क्योंकि उनमें परियों तथा प्रेत और पिशाच

(Spirits) का वास होता है। जादू की शक्ति तो महान् है। कई बार तो उनकी शक्ति देवताओं से भी अधिक समझी जाती थी। अतः शरीर-संरक्षण के लिये कई पदार्थों का उपयोग किया जाता था। ग्राम पर भी कोई विपत्ति न आये इसके लिए कई प्रकार की प्रतिमायें रक्खी जाती थीं जो ग्रामों की दैवीय आपत्ति व प्रकोप से रक्षा करती थीं। कई जड़ वस्तुओं में भी एक रहस्यमय शक्ति का समावेश कल्पित किया जाता था। एक पुर्तगाली अन्वेषक ने जड़ देवता (Fetish) शब्द का प्रयोग सबसे प्रथम पश्चिमी अफ्रीका नीग्रो की काष्ठ-मूर्तियों के लिए किया था। असाधारण आकृति के पत्थरों तथा अन्य जड़ वस्तुओं की भी पूजा की जाती थी। जब तक जादूगर अपने जादू द्वारा इन जड़ वस्तुओं का पवित्र संस्कार (Consecration) न कर देता था तब तक इनकी पूजा न की जाती थी। जड़ वस्तुओं का पवित्र संस्कार करने के लिये जादूगर उन्हें या तो विशेष रंग से रंग देता था, अथवा विशेष ध्वनि द्वारा उसमें जादू फूंक देता था। जिससे उस जड़ वस्तु में भी अवर्तुक (Impersonal) शक्ति समाविष्ट हो जाती थी।

चेतनता का विचार ( Animation ):—

जड़ और चेतन का भेद प्राचीन लोगों के ज्ञान के लिए अगम्य था। वे जड़ में भी चेतन की कल्पना करते थे तथा निर्जीव में सजीव के गुणों का समावेश करते थे। वे सजीव और निर्जीव में चेतनता को पाते थे। मैक्सिको तथा अरिज़ोना के प्रदेश में एक वृद्ध 'अवावाला इण्डियन' को वर्षा के बादलों से बातें करते देखा गया। क्रो इण्डियन्स का विश्वास था कि चट्टान मनुष्य को जन्म देती है। सांप, भैंस, जीव तथा जन्तु, मनुष्य की भांति कार्य कर सकते हैं। उनका यह भी विश्वास था कि मनुष्य पशु से विवाह करता है। आदिकालीन लोगों का विश्वास था कि कोई भी जड़ पदार्थ कुछ समय के लिए चेतन प्राणी का रूप धारण कर सकता है।

अवैयक्तिक शक्ति (Mana)—

दक्षिण-सागर द्वीप वासियों ने अलौकिक शक्ति के सभी रूपों के लिए एक सारभूत विचार पैदा किया जिसे वे अकर्तृक शक्ति (Mana) कहते थे। उन्होंने सभी कर्तृक (Personal) तथा अकर्तृक (Impersonal)

शक्तियों के लिए एक समान इस शब्द का प्रयोग किया। अलगोन्क्यिन इण्डियन्स इससे मिलता-जुलता शब्द अवैयक्तिक शक्ति (Monitone) प्रयुक्त करते थे। पोलिनीशिया वासियों की सम्मति में अवैयक्तिक शक्ति (Mana) एक विद्युतीय द्रव पदार्थ था जो व्यक्तियों तथा पदार्थों को एक दूसरे के रूप में परिवर्तित कर सकता था। अवैयक्तिक शक्ति (Mana) के अभाव में असफलता, और इसकी विद्यमानता में सफलता प्राप्त होती थी। एक मार्विसन युवक यदि कुछ भूल जाता या तो यह माना जाता था कि अवैयक्तिक शक्ति (Mana) के अभाव में ऐसा हुआ है। एक योद्धा मारे गये शत्रुओं में अवैयक्तिक शक्ति (Mana) अन्तर्निहित करने के बाद ही शक्तिशाली हो सकता था। भाग्य, योग्यता, प्रतिभा आदि सब गुण अवैयक्तिक शक्ति (Mana) के कारण ही मनुष्य में पैदा होते थे।

## जीववाद ( Animism )

जीववाद का सिद्धान्त दो बड़े भागों में विभक्त था। प्रथम यह कि मनुष्य की आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी बना रहता है, और दूसरा यह कि शक्तिशाली देवताओं के अतिरिक्त अन्य भी आत्मायें हैं। पारलौकिक आत्मायें संसार की घटनाओं को नियन्त्रित व प्रभावित करती रहती हैं। मनुष्य स्वप्नों के अनुभवों से प्रभावित होता है। आदिवासियों का विचार था कि प्रत्येक मनुष्य में दो वस्तुएं हैं—जीव और प्रेतात्मा। इन दोनों का शरीर से निकट सम्बन्ध है। जीव से मनुष्य अनुभव, विचार एवं कार्य करता है तथा प्रेतात्मा इसी का प्रतिरूप है।

भारत में जनजातियों के धर्म को जीववाद के नाम से स्मरण किया गया है। जीववाद धर्म का एक ऐसा अंग है जिसमें जादू एक विशेष महत्वपूर्ण समझा जाता है। मनुष्य भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षसों के ऐसे ससार में विचरण करता है जिसकी कल्पना नहीं का जा सकती। लोग पर्वत की चोटियों पर, कन्दराओं में, जलप्रपातों तथा नदी-नालों पर प्रेतात्माओं के वास की अनुभूति करते हैं। संसार को रोग और महामारी से मुक्त करने वाली प्रेतात्माओं के विचरण की कल्पना करते हैं। मिर्जापुर की कोर्वा जाति में फसल, वर्षा, पशु आदि के सम्बन्ध में भिन्न २ प्रेतात्माओं का विचार पाया जाता है जो उन्हें समय २ पर आक्रान्त करता रहता है।

आदिकालीन प्राणी पत्थरों, पेड़ों, सूर्य, चन्द्र और तारों सभी की उपासना करता था। वह समझता था कि दैवीय शक्तियां तथा प्रेतात्मायें उनके भाग्य

डालती हैं। प्रत्येक आदिकालीन जाति अपना ही प्रभु, ईश्वर, नियन्ता और उत्पत्तिकर्त्ता स्वीकार करती थी। उनके विचार में यह उत्पत्तिकर्त्ता संसार की रचना करता है और प्रकृति की सभी वस्तुओं को नियन्त्रित किये हुए है। इस प्रकार उनका धर्म हिन्दू-धर्म के अधिक समीप जान पड़ता था आदिकालीन धर्मों ने जीववाद का स्थान ले लिया था। डा० हट्टन (Hatton) का मत है कि आदिकालीन धर्म इतनी अतिरिक्त सामग्री प्रदान कर सकते हैं जो अभी तक हिन्दू धर्म में निमित भी नहीं हुई। एल्विन (Elwin) का मत है कि आदिकालीन लोग कतिपय अन्य देवताओं की उपासना करने को उद्यत रहते यदि उससे उन्हें कुछ भौतिक अथवा सांस्कृतिक लाभ प्रतीत होता। दूसरी ओर हिन्दुओं को भी अपने धर्म में कुछ अन्य आदिकालीन देवताओं को मिला लेने में कोई आपत्ति न होगी। अतएव ऐसा माना जा सकता है कि आदिकालीन धर्म—जादू और धर्म, मिथ्या विज्ञान (Pseudo Science) तथा विज्ञान के बीच एक अनधिकृत स्थान व धर्म (Marginal religion) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

## पितृ-पूजा (Ancestor Worship)—

पितृ-पूजा भी आदिवासियों के लिए धर्म का अंग समझा जाता था। जग्गा जाति के लोगों का विश्वास था कि अपने पूर्वजों के तर्पण के लिए उनको खिलाना पिलाना आवश्यक होता है। अतः वे पशु की बलि दिया करते थे। उनका विचार था कि रुग्णावस्था में पितृ-तर्पण करने से रोग भी ठीक हो जाता है। एशिया तथा अफ्रीका के कई स्थानों पर यह प्रथा विद्यमान थी। बन्तु जाति के लोग इसे धार्मिक रूप देते थे। न्यूजीलैंड तथा केन्द्रीय एशियाई तुर्की में प्रेतात्मा को तर्पण का माध्यम समझते थे। आदिकालीन लोग मनुष्य और पशु के मध्य किसी प्रकार का वर्गीकरण करने में असमर्थ थे अतः वे अपने वंश का प्रारम्भ भी किसी पशु से जोड़ते थे। उस पशु की पूजा भी करते थे। जिस पशु का नाम वे अपने कुल से जोड़ते थे उसका हनन व भक्षण निषिद्ध समझा जाता था। प्राचीन चीन के बहुत से गोत्र अपने संरक्षक के रूप में पूर्वज मानव अथवा किसी कल्पित पूर्वज की पूजा किया करते थे। वे उनकी पाषाण व काष्ठ निर्मित मूर्ति स्थापित करते और पशुबलि द्वारा उसका तर्पण करते थे। आज भी चीन में जो पितृ-पूजा की प्रथा है वह इसीसे विकसित हुई है।

पश्चिमी अफ्रीकावासियों का मत था कि मृत प्रेत, पिशाच आदि भी प्राण-घातक हैं। पूर्वीय अफ्रीका वासियों का भी मत था कि यदि कोई व्यक्ति अपने

मृतक पूर्वजों का श्राद्ध द्वारा तर्पण नहीं करता तो प्रेत व पिशाच उसे नष्ट कर डालते हैं।

## पुरोहित तथा मिथ्याधर्मी ( Priests and Shaman )—

आदिकालीन जातियों का विश्वास था कि पुरुष को परमात्मा तक पहुँचाने के लिये दो व्यक्ति मध्यस्थ का कार्य करते हैं—एक पुरोहित तथा दूसरा मिथ्याधर्मी ( Shaman )। इनमें भी पुरोहित की प्रधानता है। परन्तु पुरोहित अपने सहायक के रूप में मिथ्याधर्मी को अपने साथ ले लेता है। यदि ये दोनों शक्तियाँ न हों तो मनुष्य का परमात्मा तक पहुँचना, व प्रेत लोक में विचरण करना भी दूभर हो जाय। ये दोनों देवताओं के मध्यस्थ अपनी पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हैं। पोलीनीशिया में पुरोहितों को शास्त्रोक्त विधि-विधानों ( Rituals ) का स्वामी समझते थे। तन्त्र-मन्त्र ( Spells ) के उच्चारण भी इन्हीं के सुपुर्द होते थे। तन्त्र-मन्त्र में यदि कोई ग़लती हो जाती तो इससे न केवल जटिलता ही पैदा होती अपितु देवताओं पर भी विपत्ति टूट पड़ती थी। अतएव धार्मिक विधि-विधान का कार्य भी तन्त्र-मन्त्र विशेषज्ञों को—जिन्होंने विधि पूर्वक शिक्षा ग्रहण की होती थी—सुपुर्द किया जाता था। हवाई, तहीती तथा मार्क्विसस के मन्दिरों के पुरोहित परमात्मा तक पहुँचने के लिए एक माध्यम के रूप में कार्य करते थे। एक व्यक्ति जो इस प्रकार के गहरे सम्बन्ध का उपभोग करता था उसे मिथ्याधर्मी ( Shaman ) कहा जाता था। यह एक साइबेरियन नाम है जो उपरोक्त विचार को प्रकट करता है। चूँकि पुरोहित को अपने धार्मिक संस्कार ( Rites ) सम्पन्न करने के लिए साक्षात् ईश्वरीय वचन (Revelation) की आवश्यकता नहीं होती अतएव मिथ्याधर्मी का शास्त्रोक्त विधान से रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं होता।

युगण्डा में पुरोहित तथा मिथ्याधर्मी दोनों की सत्ता पृथक्-पृथक् रूप में विद्यमान थी। ये दोनों परमात्मा और मनुष्य के बीच पंच व मध्यस्थ के रूप में अपना कार्य करते थे। युगण्डा के प्रत्येक मन्दिर में पृथक्-पृथक् पुरोहित विद्यमान थे और वे परमात्मा तक मनुष्य को ले जाते थे। मिथ्याधर्मी पुरोहित के सहायक के रूप में होता था और उसकी सत्ता एक ऐसे अस्थाई वाहन के समान थी जिसे परमात्मा कभी-कभी प्रयुक्त करता था। पुरोहित परमात्मा की स्थायी और मिथ्याधर्मी अस्थायी सवारी था। जहां युगण्डा में दोनों की सत्ता स्वीकार करते थे वहां प्यूब्लो इन्डियन्स ( Pueblo Indians ) में

केवल-मात्र पुरोहित को मानते थे, परन्तु मिथ्याधर्मी को नहीं। साइबेरिया के लोग ऐसा समझते थे कि ये पुरोहित मृतक व्यक्ति की आत्मा को प्रेत-संसार में ले जाते हैं।

ये मिथ्याधर्मी (Shamans) प्रायश: अस्थिर चित्त एवं अपस्मार रोग से युक्त होते थे। अतएव वे आवेश में कार्य करते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी प्रेतात्मा ने उसपर अधिकार कर लिया हो। यह कभी तो चिल्लाते और कभी रोते थे। उनके मुँह से सदा झाग निकलती रहती थी। वे आवेश पूर्ण और अस्पष्ट वाणी निकालते थे। साइबेरियन लोगों का विचार था कि जब प्रेतात्मा का बुलावा आता है तो यह मिथ्याधर्मी कांपता और उन्मत्तावस्था में कूदता है। अन्त में जमीन पर गिर कर पसीने से लथ-पथ हो जाता है। साइबेरियन वासी प्रेतात्मा से सदैव डरता और प्रेतात्मा उसे डराती तथा मृत्यु की धमकी देती थी। ओना जाति का मिथ्याधर्मी (Shaman) रोगी को रोग मुक्त करने के लिए रोता, चिल्लाता और शोर मचाता था। अफ्रीका तथा ओशीनिया की अन्य जातियों में भी मिथ्या-धर्मी का यही रूप उपलब्ध होता था।

स्वप्न तथा दृष्टि (Dreams & Vision) :—

कभी-कभी स्वप्नों का भी विशेष महत्व होता है। एक स्त्री रात के समय अपनी मां को स्वप्न में देखती है और प्रातःकाल उठते ही उसे अपनी मा की बीमारी अथवा मृत्यु का समाचार मिलता है। यह क्यों? इतने दिनों तक तो उस स्त्री ने कभी अपनी माँ का चिन्तन नहीं किया था। अचानक ही उसे क्यों बीमारी व मृत्यु का पत्र प्राप्त हो गया? क्या इन घटनाओं में अनुरूपता तो नहीं? इस प्रकार एक सन्देहवादी का सन्देहवाद जागृत होता जाता है और वह इसमें भी किसी दैवीय शक्ति की प्रेरणा का प्रभाव समझकर अपनी तर्कणा को सन्देहवाद से परे ले जाकर आत्म-संतुष्टि कर लेता है। लोगों का प्रायशः यह विश्वास है कि एक गर्भवती स्त्री अपने अनुभवों द्वारा अपने बच्चे पर विशेष प्रभाव डालती रहती है। हम सुनते हैं कि फ्रांसीसी क्रान्ति के दिनों में पैदा हुए-हुए सभी बच्चों के वक्षःस्थल व पीठ पर क्रान्तिकारी चिन्ह थे। एक मेंढक से डरी हुई स्त्री मेंढक से सादृश्य रखने वाले बच्चे को ही पैदा करती है। एक गर्भवती स्त्री, जिसकी कलाई गर्भवती अवस्था में टूट गई हो, वह ऐसे बच्चे को जन्म देगी जिसकी कलाई ठीक उसी स्थान पर टूटी हुई अथवा कमजोर होगी। इतना ही

न हो, और आगे देखिये। शुभ और अशुभ संख्याओं, दिनों तथा मासों का विचार तो अब भी प्रचलित है। संख्या १३ को बुरा समझना, सोमवार को कार्य प्रारम्भ न करना, इत्यादि कुछ ऐसे विचार हैं जिनसे हमारा आधुनिक समाज भी अछूता नहीं बचा है। जब हम असम्भव वस्तु को सम्भव हुआ देखते हैं तो हम प्राकृतिक शक्ति से ऊपर किसी अन्य सत्ता का विचार अपने अन्दर पैदा कर लेते हैं। यदि हम दर्शक को ऐसा भी कह दें कि अमुक वस्तु विद्युत् के कारण हुई परन्तु तो भी मनोवैज्ञानिक रीति से वह उसमें किसी दैवीय शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने लग जाता है। एक जुआरी को लीजिए! वह कितना ही बड़ा अंकगणित का विद्वान क्यों न हो, हिसाब-किताब द्वारा परिस्थिति की जाँच क्यों न कर लेता हो परन्तु जब वह जुए में उतर आता है तो वह अपनी जीत पर अपने गुणों की अपेक्षा भाग्य और अवसर को ही महत्त्व देने लगता है। एक मछियारे को ही देखिये! वह अपनी विद्या में कितना ही निपुण क्यों न हो परन्तु वह अपनी सफलता पर अपने भाग्य की सराहना करता है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि प्रतिभा, शिक्षा और योग्यता के अतिरिक्त मानवीय मस्तिष्क में भाग्य और शकुन, अपशकुन और अवसर सम्बन्धी विचार भी बहुत बड़ा भाग ले रहे होते हैं।

## रोग की चिकित्सा (Medicine Men)

आदिकालीन लोगों का विश्वास था कि संसार में कुछ ऐसी दुरात्मायें भी हैं जो मानव शरीर को ऐसे रोगों और दुःखों से आक्रान्त किये रहती हैं जिन्हें ओझाओं की चमत्कारपूर्ण औषधियों द्वारा ही ठीक किया जा सकता है। ओझाओं के उद्‌बिलाव की खाल के बने हुए थैलों, साँप की केंचुलियों, समुद्री चिड़िया के सिरों, गिलहरी की खालों, सफेद नेवले की खालों और जड़ी-बूटियों में वह शक्ति है जो मरे हुए को भी जीवित कर सकती है। ओझा का जादू-टोना ईश्वरीय देन है जिससे मनुष्य के भाग्य का सितारा चमक जाता है। मरते हुए को जीवित करना और रोगी को रोगमुक्त करना ओझाओं की अलौकिक शक्ति का ही परिणाम है।

जब कोई व्यक्ति रुग्ण होता तो दो ही धारणायें की जाती थीं। या तो यह कि रोगी में विजातीय द्रव्यों का प्रवेश हो गया है अथवा किसी ने रोगी की आत्मा का अपहरण कर लिया है। ओझा लोग जड़ी-बूटियों द्वारा विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालते और तन्त्र-मन्त्र व जादू द्वारा अपहृत आत्मा को पुनः रोगी के शरीर में प्रविष्ट करा कर उसे रोग-मुक्त कर देते थे।

रूस के प्रसिद्ध लेखक गोगोल (Gogol) ने अपने प्रारम्भिक लेखों में दक्षिणी रूस के कृषक जीवन का वर्णन करते हुए लिखा है कि रूस के कृषक इस प्रकार की प्रचलित प्रथाओं और अन्ध विश्वासों को मानते हैं, जिनमें किसी दैवीय शक्ति की सत्ता को स्वीकार किया जाता है। जारशाही रूस में कई स्थानों की पवित्रता भी इन्हीं दैवीय शक्तियों के आधार पर बनी हुई थी। उन लोगों में विश्वास था कि अमुक स्थान पर जाने से मुक्ति मिलती है। फ्रांस और कनाडा जैसे देशों में भी दैवीय शक्ति का चमत्कार स्वीकार किया जाता रहा है। आयरलैंड के टैम्पलमोर नामक स्थान पर हजारों आयरिश लोग थामस डाइवन की समाध पर इसलिए एकत्रित हुए कि उन्हें वहाँ जाकर शारीरिक दुःखों से मुक्ति मिलने का पूरा-पूरा विश्वास था और वैंजर और थर्स्टन जैसे प्रसिद्ध जादूगर की प्रसिद्धि को तो सब स्वीकार करते हैं जिन्होंने श्रोतागणों को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। मनुष्य को पशु रूप में और पशु को मनुष्य रूप में परिवर्तित कर देने से हम पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इन दृश्यों से हम उत्तेजित नहीं, अपितु प्रसन्न होते हैं। ये चीजें हमारे दिल पर इतना प्रभाव डालती हैं कि हम इन्हें कभी-कभी सत्य भी समझ लेते हैं और हम उनकी असत्यता को थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं। इसी प्रकार एक ओझा की शक्तियों को भी कई बार सर्वसाधारण व्यक्ति की शक्तियों से ऊपर समझा जाता है। जब कोई असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति उसके हाथों ठीक हो जाता है तो लोग उसके चमत्कार पर विश्वास करते हैं।

चिकित्सा का कार्य प्रारम्भिक काल में जादूगरों के हाथ में हुआ करता था। दक्षिणी अमेरिका की अनेक जातियों में विद्यार्थियों को चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन काल में आत्म ताड़न के रूप में अनिवार्य उपवास व व्रत आदि कठोर नियमों का पालन कराया जाता था। छात्र को भिन्न-भिन्न विषों व मादक द्रव्यों का पान, अन्य पशुओं को निगलना, लकड़ी के टुकड़ों को निगलना आदि क्रियायें सीखनी पड़ती थीं। वॉन डेन स्टैनिन ने बोरोरो चिकित्सकों का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे लोग अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी मरते हुए व्यक्ति में जान फूंक देते थे। एक बार जब एक रोगी की निकलती हुई आत्मा रोगी को छोड़कर दूसरे शरीर में घुस रही थी तो जादूगर ने उसे पकड़कर पुनः रोगी के शरीर में डालकर रोगी को स्वस्थ और चंगा कर दिया।

प्रेतात्मा का सिद्धान्त :—

अलौकिक शक्तियों के कर्तृक ( Personal ) और अकर्तृक

(Impersonal) विचारों का मानस में घनिष्ट सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कर्तृक अलौकिक शक्तियाँ—देवी देवता तथा प्रेतात्मायें—मानवीय इतिहास म महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इस सम्बन्ध में धर्म तथा दर्शन-शास्त्र का विषय एक है परन्तु समस्याओं के हल करने के उपाय भिन्न-भिन्न हैं। धर्म और दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों का परीक्षा-काल तभी होता है जब मनुष्य आपद्ग्रस्त अवस्था में अपने आचरण द्वारा समस्या को हल करता है। जब मनुष्य रोगग्रस्त होता है, विपत्ति से घिरा होता है, उसे भयंकर आर्थिक क्षति पहुँचती है तब उसकी *मानसिक शक्तियाँ संवेग प्रदर्शित करती हैं।* धर्म और तर्क में पारस्परिक होड़ पैदा होती है। मनुष्य आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए दोनों में से एक का आश्रय लेना चाहता है। मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं को हल करने के नये-नये उपाय सोचता है। देवी-देवता, प्रेतात्मा सम्बन्धी सभी विचार उसकी चेतना में एक विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। एक ही जन जाति में इन विषयों पर मतभेद उत्पन्न हो जाता है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित सब की विचारधारा में कुछ-कुछ भेद उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि पोलीनिशिया में जहां धनतन्त्रवादी श्रेणियों का विकास हुआ वहां धनतन्त्रवादियों के तथा सामान्य व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् देवता स्वीकृत किये गए। यही कारण है कि मावरी जाति की सामान्य जनता को उच्च वर्गों के देवताओं का ज्ञान तक न हो सका। प्रेतात्मा को फल-सिद्धि का माध्यम बनाया गया।

प्रेतात्मा का संसार :—

प्राचीन काल के लोगों का विचार था कि प्रत्येक पदार्थ बोलता, चलता-फिरता तथा कार्य करता है। जिस वस्तु की सत्ता है उसकी अपनी आवाज होती है। बारहसिंघे की खाल रात्रि के समय बारहसिंघे का रूप धारण कर लेती है और इधर-उधर घूमना शुरू कर देती है। छत्रक ( Mushroom ) के विषय में तो बड़े मनोरंजक विचार हैं। जब छत्रक उत्पन्न होते हैं तो सब पेड़ फट जाते हैं। ये छत्रक मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं। छत्रक के अधिपति उन्हें वास्तविक और काल्पनिक वस्तुओं का दर्शन कराते हैं। वे उन्हें उन स्थानों पर भी ले जाते हैं जहाँ मृतकों का वास होता है। एक थैले में बंद लकड़ी की ताबीजें चरवाहों का रूप धारण कर लेती हैं। ये चरवाहे भेड़ियों से अपने खेत की रक्षा करते हैं।

जंगल के राजा का लकड़ी का शरीर होता है जिसमें बाहु और टांगें नहीं होतीं। उसकी आँखें सदा अपने सिर पर रखे हुए ताज की ओर लगी रहती हैं और वह लकड़ी के शहतीर की भांति घूमता रहता है। जंगली बारहसिंघे का स्वामी 'पिचवुटचिन' है। वह जंगल की सीमा के आस-पास निवास करता है। जब वह प्रसन्न होता है तो बारहसिंघे को शिकारी के पास भेजता है और जब वह प्रकुपित होता है तो वह उसे शिकारी के पास भेजना बन्द कर देता है। वह आकार-प्रकार में मनुष्य की अंगुली से बड़ा नहीं होता। 'पिचवुटचिन' का स्वामित्व समुद्र पर भी होता है। कभी तो मनुष्य घर के सामने से गुजरने पर उसे कुतिया के रूप में देखता है और जब पैरों के निशान देखता है तो ऐसा मालूम होता है जैसे चूहा हो। इस अवसर पर लोग उसे भेंट चढ़ाते हैं और समझते हैं कि जिस घर के सामने से यह गुज़रा है वहाँ आनेवाले वर्ष में महान् ह्वेल मछली की प्राप्ति होगी। उसकी गाड़ी घास की बनी होती है। और बड़े-बड़े योद्धाओं से भी वह कुश्ती कर सकता है।

चुकची लोगों में तीन प्रकार की प्रेतात्मायें प्रसिद्ध हैं। एक तो वे दुरात्मायें हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से चलती-फिरती, रोग और मृत्यु को लाती हैं और मानवीय प्राणियों का शिकार करती हैं। रक्तपिपासु नरभक्षक चुकची योद्धाओं से लड़ते हैं। ये प्रथम प्रकार की प्रेतात्मायें पृथ्वी पर वास करती हैं। ये मछली, कुत्ता, पक्षी, लोमड़ी, कीट आदि का रूप धारण करती हैं। इन प्रेतात्माओं की एक विशेष जाति होती है। इन प्रेतात्माओं में विवाह-सम्बन्ध भी होते रहते हैं और बच्चे भी पैदा होते हैं। वे बच्चे शिकार भी खेलते हैं। अगर कोई प्रेतात्मा मानवीय प्राणी को पकड़ लेती है तो उसे टुकड़े-टुकड़े कर देती है और उसे स्वादिष्ट भोजन के रूप में बच्चों को खिला देती है। चुकची लोगों को प्राकृतिक मृत्यु का तो ज्ञान ही नहीं। जब उनके यहाँ कोई मरता है तो वे प्रेतात्मा का ही प्रभाव समझते हैं। प्रेतात्मा का दूसरा रूप उन योद्धाओं का है जो पृथ्वी पर रहते हैं, परन्तु इनका घर मानव प्राणियों के निवास-स्थान से बहुत दूर होता है। प्रेतात्मा का तीसरा रूप वह है जो भेड़ियों, बारहसिंघों, ह्वेल, पक्षियों, पौधों, बर्तनों आदि के रूप में वर्णित है। इन प्रेतात्माओं की आपस में बहुत लड़ाई होती है।

घर में वास करनेवाली प्रेतात्माओं का एक विशेष दल है। ये घर की चारदीवारी में अपने बाल-बच्चों समेत रहती हैं और वे नर मादे के रूप में रहतीं तथा सन्तानोत्पादन करती रहती हैं। उनके बच्चे रोगी होते हैं और मर भी जाते हैं। बोगोराज़ ने इस सम्बन्ध में अपना विवरण देते हुए लिखा है कि घर का अग्निकुण्ड सबसे पवित्र स्थान समझा जाता जाता था। इस अग्निकुण्ड

की आग वंश परम्परा से प्रज्वलित रक्खी जाती थी। यदि कोई व्यक्ति किसी पड़ोसी से अग्नि उधार लेता है तो उसे पाप लगता था। अग्निकुण्ड सम्बन्धी बर्तन भी अदल-बदल नहीं सकते। जो मांस एक अंगीठी पर पकता उसे दूसरी अंगीठी पर रखने की मनाही होती थी।

## संरक्षक प्रेतात्मा ( Guardian Spirit )—

संरक्षक प्रेतात्मा का विचार भी प्राचीनकाल की प्रायः सभी जातियों में पाया जाता था। उत्तरी अमेरिका के इण्डियन्स संरक्षक प्रेतात्मा की तलाश के लिए कठिन तपस्या किया करते थे। वे शरीर-शुद्धि तथा अल्प भोजन पर जोर देते थे। उनका विश्वास था कि कठोर व्रत, नियम आदि पालन करने के बाद संरक्षक प्रेतात्मा स्वप्न में दिखाई देती हैं। पशु, पक्षी, मानव तथा दानव सभी रूप सरक्षक प्रेतात्मा द्वारा प्रकट होते हैं। दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट पर बसे हुए क्वाक्युटल लोगों का वंश-परम्परा से सरक्षक प्रेतात्माओं पर विश्वास था। वे उन्हें समस्त भूमण्डल पर युद्ध-यात्रा करने वाला समझते थे। उनके मत में संरक्षक प्रेतात्मा अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को कष्ट निवारण की अनुभूति प्रदान करती हैं। कई प्रेतात्माएं मृतकों को भी जीवन प्रदान करती हैं। हैडा लोगों का विश्वास था कि जब कोई संरक्षक प्रेतात्मा मनुष्य पर अधिकार पा लेती है और उसके द्वारा बोलना शुरू करती है तो मनुष्य जादूगर का रूप धारण कर लेता है। वह सरक्षक प्रेतात्मा के वश में आया हुआ प्राणी प्रेतात्मा के कथन तथा इंगित पर नाचने लगता है। प्रेतात्मा जो चाहती है सो कराती है। जिस भाषा को अभिभावक नहीं जानता प्रेतात्मा वह भाषा भी उससे बुलवा सकती है। हैडा की अपेक्षा तिलिंगित लोगों पर संरक्षक प्रेतात्मा का प्रभाव तो और भी चिरस्थायी होता है। उनका विश्वास है कि संरक्षक प्रेतात्मा द्वारा वशीभूत जादूगर सहस्रों मील दूर स्थित व्यक्ति पर भी सम्मोहन विद्या द्वारा अपना प्रभाव डाल सकता है।

ब्रिटिश कोलम्बिया तथा अलास्का की जातियों में संरक्षक प्रेतात्मा का विचार पाया जाता था। वे लोग संरक्षक प्रेतात्मा के नानाविध रूपों में विश्वास करते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति परिपक्वावस्था आने पर संरक्षक प्रेतात्मा को पा लेता है। शुस्वप जाति का एक व्यक्ति जब स्वप्न में धनुष, शव तथा स्त्रियों के दर्शन करता था तो ऐसा समझा जाता था कि अब उसका संरक्षक प्रेतात्मा पाने का समय आ गया है। लिल्लूत जाति के युवक अपने बड़ों की प्रेरणा पर सरक्षक प्रेतात्मा सम्बन्धी नृत्य भी किया करते थे

जिसमें वे भाव-भंगी तथा अभिनय द्वारा अपने आपको संरक्षक प्रेतात्मा के रूप में प्रकट किया करते थे। विन्नेवागो जाति के लोग संरक्षक का निवास-स्थान एक घाटी, पहाड़ अथवा पहाड़ी चट्टान के पीछे का स्थान मानते थे। इरावयुइज लोगों का विश्वास था कि यह संरक्षक प्रेतात्मा चाहे पशु, पक्षी अथवा वस्तु-रूप में क्यों न हो परन्तु प्रकट होते समय मनुष्य का रूप धारण कर लेती है। अरावाहो लोग संरक्षक प्रेतात्मा को पाने लिए उपवास और कठोर व्रत का आश्रय लेते थे। कुरनई जाति का विश्वास है कि जादूगर लोग सरक्षक प्रेतात्मा के संसार में संगीत और नृत्य-कला सीखने जाते हैं और वहाँ से कला में पारंगत होकर अपने अनेक शिष्यों को शिक्षा देते हैं।

## देवता तथा शास्त्रोक्त विधि-विधान—

ब्रिटिश कोलम्बिया में रहने वाले बेलाकूला इन्डियन्स जाति के दैवीय संसार सम्बन्धी विचार अतीव विस्तृत एवं परिमार्जित हैं। वे क्रमानुसार पांच लोकों की कल्पना करते हैं। उपरि आकाश में महान् स्त्री देवता वास करता है और अधो आकाश में अन्य देवता वास करते हैं। पृथ्वी एक द्वीप है जो समुद्र पर तैर रही है। भूत और प्रेत को मरने के बाद पाताल लोक में भेज दिया जाता है जहाँ से वह पुनः लौट कर नहीं आता। उनका विचार है कि किसी समय ये पर्वत बहुत ऊँचे होते थे। स्त्री देवता कभी-कभी पृथ्वी पर उतरते समय रोग, मृत्यु, जरा आदि को अपने साथ ले आता है। बेला-कूला लोग सूर्य, अग्नि, फूल आदि सभी को पृथक्-पृथक् देवता के रूप में मानते हैं। उनके विचार में पृथ्वी के नीचे भूत-प्रेतों का देश है। जब पृथ्वी पर दिन होता है तो प्रेत देश में रात और जब पृथ्वी पर रात होती है तो वहाँ दिन। प्रेत लोग अपने पैर के बल पर नहीं अपितु सिर के बल पर चलते हैं। प्रेत लोक में एक नृत्य-भवन भी होता है जहा वे अपना शरत्कालीन उत्सव मनाते हैं। एक सीढ़ी द्वारा मनुष्य इस लोक में पहुँचता है जहाँ से वह वापिस लौट कर नहीं आता।

अफ्रीका की बगण्डा जाति के लोग कृषि तथा पशुपालन के कार्य में निपुण थे। ये लोहे का प्रयोग भी जानते थे। ये लोग जातीय देवताओं, प्रेतात्माओ, जादूगरों आदि में पूर्ण विश्वास रखते तथा उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनका विश्वास था कि राजा से देवी-देवताओं की पूजा का सीधा सम्बन्ध है। प्रत्येक जातीय देवता का अपना-अपना मन्दिर और अपने-अपने पुरोहित होते हैं। पुरोहित की आज्ञा के विरुद्ध द्रोह करने वाले को प्राणदण्ड दिया

जाता है। रोस्को ने वर्णन करते हुए लिखा है कि दैवीय उपदेश देने के लिए किसी को माध्यम बनाया जाता था और इस माध्यम व्यक्ति को पवित्र हुक्का पीना पड़ता था। मन्दिर में आग के समीप शान्त अवस्था में बैठने पर प्रेतात्मा माध्यम व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करती थी और उसके दैवीय उपदेश को केवलमात्र पुरोहित ही समझ सकते थे जो सम्पूर्ण संसार में उसका प्रचार करते थे। बगण्डा जाति के जादूगर चिकित्सक मन्दिरों तथा देवताओं से कोई सम्बन्ध न रखते थे।

पूर्वीय पाकिस्तान के पोलिया ( Polia ) बंगाल के 'भद्र लोग' वर्ग से संपर्क में आने के बावजूद भी किसी को अपना चित्र नहीं लेने देते क्योंकि उनका विश्वास है कि आदमी का चित्र उसकी वास्तविक आन्तरिक शक्ति को तिरोहित कर देता है। हो (Ho) अपने मृतक पूर्वजों का तर्पण दातुन और पानी से करते ताकि मृतक आत्मा प्रकुपित न हो।

### यौवन सम्बन्धी शास्त्र-विधियां ( Rituals )—

योवनावस्था तथा मृत्यु से अनेक शास्त्रोक्त विधि-विधानों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। दक्षिणी ओरेगान में क्लामथ ( Klamath ) कन्या प्रथम बार रजस्वला होने पर पांच दिन तक झाड़ी में सोती है। वह नहाती भी नहीं। पश्चिम दिशा की ओर मुंह करके उसे नाचना पड़ता है। पाच दिन बाद स्नान कराने के बाद उसके कपड़े जला दिये जाते हैं।

### श्मशान सम्बन्धी विधियां ( Mortuary Rites )—

आस्ट्रेलियन जातियों में यह प्रथा है कि मृतक व्यक्ति के सम्बन्धी विलाप करते थे और शोक-गीत को एक स्वर से उच्चारण करते थे। मृतक की स्त्री अपना मुंह सफेदी से पोत लेती थी और तीन दिन तक किसी से बोलती नहीं थी।

अमेरिका की आदिकालीन जातियां, मोन्टाना की क्रो जाति तथा टीरा डेल फ्यूगो की ओना जाति में दुःख प्रकट करने के लिए अपने आप को नानाविधि कष्ट देते हैं। क्रो लोग अपने बाल कटा देते हैं और ओना तथा ओवन्स लोग मृतक की सभी वस्तुएं भी जला देते हैं ताकि उसकी स्मृति उन्हें न सताये।

जादू की विशेषताएँ ( Characteristics )

१. जादू द्वारा मनुष्य किसी विशेष लक्ष्य की पूर्ति करना चाहता है। जादू में जादूगर का विशेष महत्व होता है। जादूगर के लिए संयमी, ब्रह्मचारी, एकान्तवासी तथा विशेष वस्त्र धारी होना अनिवार्य है। अन्यथा वह जादूगरी का कार्य नहीं कर सकता।

२. जादूगरी के कार्य में तीन तत्व विशेष होते हैं। प्रथम तो वे पदार्थ जिनका जादू के लिए प्रयोग किया जाता है। दूसरे, वे पदार्थ जिनकी हम कामना करते हैं। तीसरे, वे पदार्थ जिन्हें जादूगर बोलता व उच्चारण करता है।

अब प्रश्न यह होता है कि जब लोग जादूगरी सम्बन्धी सिद्धान्तों को गलत समझते हैं तो फिर जादू तथा जादूगरी की विद्यमानता संसार में क्यों है? और आदिवासी लोग इसे झूठा क्यों न समझते थे? इस सम्बन्ध में मि० टायलर ने चार कारणों पर प्रकाश डाला है। प्रथम यह कि मनुष्य अनेक बार जादू द्वारा वस्तुतः ही यथार्थ एवं अभीष्ट फल की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। अतएव मनुष्य सोचते हैं कि कोई चामत्कारिक शक्ति जादू में अथवा उन औषधियों में अवश्य होगी जिन्हें जादूगर प्रयुक्त करता है। द्वितीय यह भी सम्भव है कि जादूगर इसमें धोखा देने के लिए किसी छल का प्रयोग करता हो। परन्तु फिर भी जादूगर को अपने जादू में अत्यधिक दृढ़ विश्वास होता है। तीसरा यह है कि अवैयक्तिक शक्ति पर अगाध विश्वास किया जाता है। चौथा यह कि किसी विपरीत जादू की सत्ता में भी विश्वास हुआ करता है। यदि एक जादू असफल होता है तो कार्य-सिद्धि के लिए दूसरे जादू का प्रयोग किया जाता है।

सामाजिक जीवन में जादू सम्बन्धी नियम—

जादू सम्बन्धी योजना के आधार पर अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए कुछ कुछ समय के व्यवधान पर ही जादू का प्रयोग किया जाता है ताकि जादू एक लाभप्रद तथा सगठित शक्ति उत्पन्न कर सके।

जादू द्वारा प्रकृति पर मनुष्य का प्रभुत्व कायम कराया जाता है। पुनः मनुष्य जादू शक्ति के बल पर अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ता चला जाता है और अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टि से केवलमात्र जादू को झूठा कह देने से ही जादू की भावना को हटाया नहीं जा सकता। क्योंकि जादू मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत हो चुका होता है।

नाना प्रकार से समाज में जादू का वर्गीकरण ( Classification )

किया जाता है। कई फलदायक जादू ( Productive Magic ) होते हैं जिनके द्वारा वर्षा, खेती, शिकार फसल आदि की फल-कामना की जाती है। दूसरे रक्षक जादू ( Protective Magic ) होते हैं जिनके द्वारा मनुष्य रोग, दुर्भाग्य, यात्रा सम्बन्धी कष्ट तथा अन्य कतिपय अशुभ चीजों के दूरीकरण की कामना करता है। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य विनाशकारी जादू (Destructive Magic ) भी होते हैं जिनके द्वारा किसी के सम्पत्ति-विनाश, मृत्यु आदि की कामना की जाती है।

कल्पित कथा ( Myth )—

मनुष्य प्रारम्भ से ही जीवन में घटित होनेवाली प्रत्येक घटना की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। जब वह किसी चीज का वैज्ञानिक ढंग से उत्तर नहीं दे पाता तो वह कुछ न कुछ मनघड़न्त सिद्धान्त रचता है जिस पर अन्य लोग विश्वास करते हैं और जिन्हें हम कल्पित व पुराण (Myth) सिद्धान्त के नाम से कहते हैं। आदिकालीन जन जातियों में हम विभिन्न प्रकार के कल्पित सिद्धान्तों का समावेश पाते हैं। उनके अनेक कल्पित सिद्धान्त अलौकिक घटनाओं की भी व्याख्या अपने ढंग से करते थे। मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई, संसार कैसे बना ? आत्मा, परमात्मा और जीव क्या है ? इत्यादि प्रश्नों की सपूर्ण व्याख्या आदिकालीन जातियों द्वारा कल्पित आधार पर ही आधारित की जाती है। यदि हम इन कल्पित सिद्धान्तों का इतिहास पढ़ें तो हमें ऐसा प्रतीत होगा कि ये कल्पित सिद्धान्त किसी स्वस्थ मस्तिष्क ( Sane ) की उपज नहीं हो सकते अपितु ये अवश्य की भ्रान्त चित्त (Unsane) व्यक्तियों की उपज है। यह भी सम्भव है कि ये कल्पित सिद्धान्त उन लोगों ने घड़े हों जो दूसरे व्यक्तियों पर अपना प्रभुत्व कायम रखना चाहते थे जैसे भारत में ब्राह्मणों ने निम्न कोटि के वर्णों को अपनी आधीनता एव दासता के चंगुल में फसा रखने के लिए अनेक कल्पित सिद्धान्तों की रचना की और उन्हें निम्न वर्णों पर लागू किया।

इस सम्बन्ध में यह सम्भावना की जाती है कि किसी समय में इन कल्पित सिद्धान्तों का महत्व अत्यधिक रहा होगा। समाज में इनका मुख्य कार्य समझा जाता होगा। आज भी किसी न किसी रूप में समाज में इन कल्पित सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। इन्हें मानव जाति की मानसिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन समझा जाता है। ✓

# संस्कृति

संस्कृति का स्वरूप—

मनुष्य एक सांस्कृतिक प्राणी है। मनुष्य जहां कहीं भी रहता है अपनी संस्कृति का विस्तार अवश्य करता है। धर्म, सामाजिक तथा राजनैतिक रचना, कला, नैतिकता आदि सभी सिद्धान्त संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं। संसार की सभी जातियों का धर्म और कला के सम्बन्ध में अपना-अपना दृष्टिकोण होता है। बहुवाद, एकेश्वरोपासना, तन्त्र, शास्त्रोक्त विधि-विधान धर्म के अन्तर्गत माने जाते हैं। सामाजिक संस्कृति ( Social Culture ) के अन्तर्गत वर्गों, श्रेणियों, परिवारों, कुटुम्बों तथा ग्रामवासियों के आचार-विचार सम्बन्धी नियमों का लम्बा इतिहास निहित होता है और भौतिक संस्कृति ( Material Culture ) के अन्तर्गत मानवीय समाज के उपकरण, यन्त्र, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र, निवास स्थान, आभूषण, आदि सभी पदार्थों का परिगणन किया जाता है। वर्गों का यह विभाजन भी मानवीय मस्तिष्क की अपनी ही उपज है। मनुष्य-मनुष्य में पारस्परिक मनोवैज्ञानिक एकता है। मनुष्य चाहे कहीं का रहने वाला हो परन्तु मनुष्य रूप में वह अन्य मनुष्यों की भांति है। अतः सभी मनुष्यों का सभ्यता के विकास में हाथ रहता है। मनुष्य के जीवन की आवश्यकतायें भी एक समान होती हैं। भोजन, सुख, सुरक्षा, उपकरण आदि की खोज में वे सदैव एक दूसरे का साथ देते रहते हैं। सामाजिक जीवन स्वतः नहीं चल सकता। मनुष्य अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये कई उपाय निकाल लेता है। मनुष्य में ऐसी आकांक्षायें भी होती हैं जो उसे सदैव संचारी भाव से आगे बढ़ने को प्रेरित करती रहती हैं।

यदि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संस्कृति की परिभाषा पर विचार करें तो संस्कृति का अभिप्राय केवलमात्र असाधारण शिष्टता (Refinement) अथवा भाषा से नहीं अपितु संस्कृति के अन्तर्गत सम्पूर्ण सामाजिक परम्परा (Social Traditions) का समावेश किया गया है। टायलर का विचार है कि संस्कृति के अन्तर्गत वे सभी योग्यतायें तथा आदतें आ जाती हैं जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते से प्राप्त करता है। जब हम एक सामाजिक

वर्ग से एक दूसरे सामाजिक वर्ग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम दोनों वर्गों में ऐसा महान् भेद पाते हैं जो सामाजिक लोक सम्मति (Convention) के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं हो सकता। एक अमेरिका-वासी जब इंग्लैंड, ग्रीस, फ्रांस, डेन्मार्क तथा अन्य देशों का परिभ्रमण करता है तो वहाँ की उन विशेष-विशेष बातों पर ध्यान देता है जो अमेरिकन रीति-रिवाजों से भिन्न होती हैं तथा उस देश के सांस्कृतिक भेद को व्यक्त करती है। वह सहज ही इस परिणाम पर पहुँचता है कि प्रत्येक देश का अपना ही सांस्कृतिक इतिहास है जो उस देश का गौरव उन्नत किए हुए है। उन देशों के अपने ही जातीय तथा शारीरिक चिन्ह हैं जो उन्हें एक दूसरे से पृथक् घोषित कर रहे हैं। इसी सामाजिक संस्कृति ( Social Culture ) के आधार पर ही मनुष्य पनपता और विकसित होता है तथा अपने गुणों को दूसरों तक पहुँचाता और दूसरों के गुणों को स्वयं ग्रहण करता रहता है।

काकेशियन, नार्डिक, अल्पाईन, मेडिट्रेनियन तथा डिनारिक आदि जातियों के आकार-प्रकार में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। जब-जब इन जातियों का सम्मिश्रण हुआ और वर्ण-संकरता के कारण जातियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आईं तो जातीयता का रूप ही बदल गया। पोलीनीशिया को ही लीजिए। इसमें काकेशियन, नीग्रायड तथा मंगोलायड सभी रक्त मिश्रित अवस्था में हैं और इस रक्त मिश्रण का प्रभाव इनके आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। इसमें सन्देह नहीं कि कोई भी जातीयरक्त विशुद्ध नहीं रहा। कहीं कम व कहीं अधिक मात्रा में वर्ण-संकर होता ही रहा है।

### सामाजिक संस्कृति (Social Culture)—

जब हम जातियों की उच्चता व निम्नता का विचार करते हैं तो हमारा अभिप्राय उनके शारीरिक चिन्हों से नहीं अपितु मानसिक भावनाओं व उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं से होता है। शुभ्रशीर्ष तथा दीर्घ-शिरीय होना कोई वास्तविक महत्व नहीं रखता अपितु मस्तिष्क की विशेषता ही सम्पूर्ण प्राणिजगत् में उच्चता को प्रतिपादित करती है। जिस प्रकार हम शारीरिक चिन्हों ( Traits ) व विशेषताओं के आधार पर जातियों का वर्गीकरण करते हैं और किसी वर्ग को लम्बे और किसी वर्ग को छोटे कद में परिगणित करते हैं, उसी प्रकार मस्तिष्क

का भी ग्रानुपातिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। परन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण करने में भी हम मनुष्य के जन्मजात एवं स्वाभाविक ( Inborn ) जातीय भेदों का पता नहीं लगा सकते क्योंकि जन्म से जिस वर्ग को जो वातावरणजन्य शिक्षा प्राप्त होती है उसका प्रभाव उनके साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से पृथक्-पृथक् चला आता है। मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक दोनों ही जातीय वर्गों के जन्मजात शिक्षण के प्रभाव का स्पष्टीकरण नहीं कर सकते।

संस्कृति तथा नस्ल :—

हम देखते हैं कि सांस्कृतिक परिवर्तन, नस्ल व जाति के परिवर्तन की अपेक्षा तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं। अतएव अनेक सांस्कृतिक विशेषताओं अथवा गुणों की व्याख्या नस्ल के आधार पर नहीं की जा सकती। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व की संस्कृति कुछ और थी। मनुष्य अंगुलियों से खाना खाता था—न कोई हिन्दू था और न मुसलमान व ईसाई। परन्तु आज का मनुष्य छुरी-कांटे से खाना खाता है तथा अपने को किसी धर्म का अनुयायी कहता है। ऐसा परिवर्तन क्यों ? जन्म से अथवा जाति व नस्ल से तो इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। अतः नस्ल के आधार पर हम सांस्कृतिक परिवर्तन का कारण नहीं जान सकते। कल जो संस्कृति ऊँची थी आज वह अधोगत हो गई, कल जो अधोगत थी आज वह उन्नत हो गई। ग्रीस की प्राचीन सभ्यता के अवशेष आज भग्नावस्था में दिखाई देते हैं। कल की अवनत श्वेताग जातियाँ आज पृथ्वी के रंगमञ्च पर सिर ऊँचा किये हुए हैं। संस्कृतियों के उत्थान और पतन का यह क्रम तो इतिहास की अमूल्य निधि है। परन्तु इतना निश्चित है कि मनुष्य जाति की प्राणिशास्त्रीय विशेषतायें इतनी शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होतीं जितनी शीघ्रता से सांस्कृतिक विशेषतायें परिवर्तित हो जाती हैं। अतएव जाति के आधार पर संस्कृति की व्याख्या करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। हम सांस्कृतिक परिवर्तनों की व्याख्या व्यक्तिगत प्रतिभा, भौगोलिक स्थिति और मानवीय संपर्क के आधार पर तो कर सकते हैं परन्तु जातीय भेदों के आधार पर नहीं।

स्थान परिवर्तनः—

स्थान परिवर्तन भी सांस्कृतिक विस्तार में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह स्थान परिवर्तन सैनिक आक्रमण द्वारा अथवा अन्य कई

उपायों से संसार के इतिहास में होता रहा है। श्वेत अमेरिकन किसानों को ही लीजिये। आक्रमणकारियों ने अपनी उच्च संस्कृति, सैनिक शक्ति तथा संख्या की अधिकता के कारण जो कुछ उनके सामने आया सब अपनी लपेट में ले लिया। अन्ततोगत्वा परिणाम यह हुआ कि इण्डियन्स की संख्या कम हो गई। जहां तक मक्का की खेती का प्रश्न था श्वेतांग किसानों के लिए यह कार्य नया था। इण्डियन्स में उन्होंने खेती के कई तरीके पाये। श्वेतांग किसानों ने धीरे-धीरे उन्हें अपना लिया। वेलाकूला तथा नवाजो लोग यद्यपि सांस्कृतिक दृष्टि से पड़ोसियों के आधीन हो गये परन्तु अपनी भाषा को नहीं छोड़ा। मैडागास्कर को लीजिये। यहां की जनता में नीग्रॉयड तत्व विद्यमान थे परन्तु अफ्रीकन नीग्रो से वे बिलकुल भिन्न थे। सोलहवीं शताब्दि में पुर्तगाली पश्चिमीय अफ्रीका से नीग्रो दास वैस्टइण्डीज को भेजे गये और इधर उत्तरीय अमेरिका में नीग्रो बहुत संख्या में भेजे गये जोकि श्वेतांगों और इण्डियन्स में जाकर मिल गये। इस प्रवास के कारण आखिर नीग्रो लोगों की अपनी सभ्यता समाप्त हो गई। इनकी भाषा भी समाप्त हो गई। हो सकता है कि उत्तरीय नीग्रो की पुरातन सभ्यता की प्रथायें कुछ लेश मात्र रह गई हों, परन्तु फिर भी उसका कुछ पता नहीं चलता। नीग्रो की संस्कृति वही हो गई जो श्वेतांग अमेरिकन की थी। इसका कारण यह था कि नीग्रो सामूहिक अथवा पारिवारिक रूप से यहाँ न आये थे, अपितु व्यक्तिगत रूप से वे एक-एक करके श्वेत अमेरिकन संस्कृति के पन्जे में आबद्ध होते गये। जब दो सभ्यताएं आपस में मिलती हैं तो जो अत्यधिक प्रभावशाली होती है उसकी विजय होती है। समय था जब कि अरस्तू के शिष्य एलैक्जैण्डर ने ग्रीक सभ्यता का प्रसार किया। एशिया और भारत पर भी उस सभ्यता का प्रभाव पड़ा। क्या कारण था? केवल यह कि ग्रीक सभ्यता सर्वतोमुखी उन्नति प्राप्त कर चुकी थी।

पर-संस्कृति ग्रहण (Acculturation)—

कई बार एक जाति दूसरी जाति की सभ्यता को ग्रहण कर लेती है। एक ओर चीनियों और मंगोलों के सम्बन्ध को देखिये और दूसरी ओर चीनियों और मन्चू के सम्बन्ध को देखिये। मन्चूरिया मन्चू तथा मंगोल लोगों का देश है। मंगोल पशु चराने वाले तथा फिरन्दर रहे है। वे एक स्थान पर कभी भी स्थिर रूप से नहीं रहे। उनमें कई बड़े-बड़े विजेता भी हुए हैं। विजय पाना उनके लिए एक कला थी परन्तु इन विजयों से उन्होंने कोई

फायदा उठाया हो ऐसी बात नहीं। इन्हीं मंगोलो में और आबाद चीनियों में—जो कुछ अंश तक कृषिकार थे और कुछ शहरी थे—सदैव शत्रुता रहती थी। कभी तो वे मिल जाते और कभी शत्रुता कर लेते। जो चीज जिस को अच्छी समझते थे ग्रहण लेते थे। अनेक शताब्दियों तक पर-संस्कृति ग्रहण का यह कार्य चलता रहा। अगर चीनी लोग मंगोलों को बाहर खदेड़ने पर बाध्य करते तो वे चीनी जो आधे मंगोल बन चुके थे उनके साथ चले जाते। परन्तु मञ्चू और चीनियों में तो कोई झगड़ा न था। चीनी लोग मञ्चू इलाके में जाते और उनपर कब्जा करने की कोशिश करते। मञ्चू धीरे-धीरे चीनियों में मिलते गये और कालान्तर में बिल्कुल चीनी हो गये परन्तु मंगोलों ने अपनी भाषा की सुरक्षा की। जहां एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से सम्मिश्रण होता है वहां अन्य सांस्कृतिक चिन्हों ( Cultural Traits ) के साथ साथ भाषा को भी अपना लिया जाता है। आज से पांच शताब्दि पूर्व जब अफ्रीकन नीग्रो अमेरिकन लोगों के सम्पर्क में आये तो वे बन्तू तथा सुडानी भाषा बोलते थे, परन्तु उच्च संस्कृति के सम्पर्क में आकर धीरे-धीरे अपनी भाषा को भूल गये। अमेरिका में पैदा होने वाला आज का नीग्रो अपनी मातृभाषा बन्तू का एक शब्द भी नहीं समझ पाता। नीग्रो जाति का यह भाषा सम्बन्धी परिवर्तन जातीय विशेषता के कारण नहीं अपितु सांस्कृतिक विशेषता के कारण हुआ। शब्दों का ग्रहण तो सम्पर्क में आने वाली सभी जातियां करती हैं परन्तु नीग्रो का भाषा-परित्याग गहरे सांस्कृतिक सम्पर्क का ही परिणाम है जो इतिहास में बहुत कम उपलब्ध होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि अनेक जातियां उन्नति तो प्राप्त कर लेती हैं परन्तु यह उन्नति सदैव एक समान नहीं रहती। जो रोमन संस्कृति आज से हजारों वर्ष पूर्व उन्नत कही जाती थी आज अवनत अवस्था में पहुँच चुकी है। अरब लोग किसी जमाने में संसार के सभ्य लोग समझे जाते थे किन्तु अब पिछड़े हुए हैं। १३ वीं शताब्दि में जिन मंगोलों का साम्राज्य सम्पूर्ण योरप के ऊपर छा गया था आज वह भी पुरातन युग की बात बन गई है अतः हमें मानवीय समाज के उत्थान और पतन की कहानी को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अवश्य विचारना चाहिये।

### भौतिक संस्कृति का स्वरूप ( Material Culture )—

कृषि, वस्त्र निर्माण, पात्र निर्माण, आदि सभी भौतिक संस्कृतियों की प्रगति का इतिहास अपने आप में एक विशेषता रखता है। आस्ट्रेलिया

तथा पोलीनीशिया में जहां पात्र-निर्माण कला का अभाव था वहां अमेरिका, अफ्रीका तथा भारत में यह संस्कृति वैभव प्राप्त कर चुकी थी। अमेरिका तथा अफ्रीका में जहां कृषि की उन्नति थी आस्ट्रेलिया इस में भी बहुत पिछड़ा हुआ था। कला के क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। जहां मोरीनिया में लकड़ी पर कलात्मक चित्रकारी की जाती थी वहां पोलीनीशिया में इस कला का सर्वथा अभाव था। मैलानीशिया में जो रंग प्रयुक्त किया जाता था पोलीनीशिया में उसका अभाव था। फिजी की पात्र-निर्माण कला, न्यूगायना के कवच तथा भाले, हवाई जाति का पंखों का काम वहां की उच्च कला को प्रदर्शित करती है। सभी जातियों की अपनी भौतिक संस्कृति होती है जो उस जाति की प्राचीनता और महानता को प्रदर्शित करती है। प्रारम्भ में मनुष्य आखेटक के रूप में आया। धीरे-धीरे उसने पशु पालन, कृषि, कला, गृह निर्माण आदि का विकास किया।

भौतिक संस्कृति का विकास—

मानव जाति की भौतिक संस्कृति के इतिहास का पहला युग वह था जब मनुष्य ने आज से १००,००० पूर्व पाषाण का प्रयोग सीखा। पत्थर से पत्थर को तोड़ने की विधियां सीखी और एक नवीन भौतिक संस्कृति को जन्म दिया। एक नहीं, सौ नहीं अपितु हजारों वर्षों तक इसी संस्कृति का गुलाम रहा। आजीविकोपार्जन की वृत्ति ने उसे दूरस्थ देशों का यात्री बनाया। वह आखेट के लिए हजारों मील दूर निकल जाता और अपनी जन्म भूमि पर लौटकर वापिस भी न आता था। जहां आजीविका के साधन दृष्टिगोचर होते वहीं आबाद होने की कोशिश करता। प्रकृति में पाये जानेवाले प्राणी उसके आमोद-प्रमोद तथा भोजन-निर्वाह के साधन बनते। धीरे-धीरे उसने आग जलाना, कृषि करना तथा पशुपालन सीखा। जीवन के ये क्रूर और भयंकर शत्रु जिन्हें शिकार द्वारा हनन करने और खाने में वह संकोच न करता था, धीरे-धीरे उसके जीवन-साथी बन गये। आखेट तथा कृषि कार्य के लिए उसने उपकरण बनाये। जंगल की लकडी, पशुओं की अस्थियां तथा चट्टानों के बड़े-बड़े पत्थर, उसके उपकरणों के श्रृंगार का सामान बन गये और अब वह संसार में एक कुशल यन्त्रकार के रूप में अवतरित हुआ।

भौतिक संस्कृति के इतिहास का दूसरा युग वह आया जब उसने आज से १० हजार वर्ष पूर्व कृषि और पात्र-निर्माण कला को जन्म दिया। कृषिकार के रूप में उसने एक स्थान पर रहकर अपने स्थिर जीवन को अपनाने का अनुष्ठान

किया। पाषाण के नवीन उपकरणों का आविष्कार किया और धातु के प्रयोग का पता चलाया। मिस्र तथा बेबिलोनिया की मरुभूमियों को हरा-भरा बना दिया। कतिपय सहस्र वर्षों बाद कांस्य और ताम्र की उपलब्धि से पूरा-पूरा लाभ उठाया। खेती के लिए हल की रचना की, आवागमन के लिए पहिये वाली गाड़ी बनाई, पात्र-निर्माण के लिए चक्र (Wheel) का आविष्कार किया। जो मानव-संस्कृति आखेट तथा मत्स्य-व्यवसाय तक सीमित थी उसमें नवीन तत्व समाविष्ट हुए और मनुष्य यन्त्रकार और कलाकार के रूप में सर्वोत्कृष्ट प्राणी समझा जाने लगा।

सर्वप्रथम पत्थर तथा लकड़ी का प्रयोग किया गया। पुनः मिट्टी तथा कच्ची धातु का प्रयोग। धीरे-धीरे आग जलाने के साधन ढूंढ निकाले गये। इस प्रकार भौतिक संस्कृति का धीरे-धीरे विस्तार होता गया। इन वस्तुओं के उपयोग के लिए उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। अतएव उपकरणों के विकृत रूप सबसे पूर्व निर्मित हुए। तत्पश्चात् उनमें परिष्कृति हुई। बर्तन-निर्माण, वस्त्र-निर्माण, कृषि सम्बन्धी सभी वस्तुएँ भौतिक संस्कृति के काल को भी निर्धारित करती हैं।

प्रव्रजन प्रक्रिया द्वारा भौतिक संस्कृति के पनपने में अत्यन्त सहायता मिलती थी। लोग जब एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते तो अपने यन्त्र और उपकरण भी अपने साथ ले जाते थे। मावरी जाति के लोग जब केन्द्रीय पोलीनीसिया से न्यूज़ीलैण्ड की ओर गये तो वे अनेक चीजें अपने साथ ले गये। मिस्र, भारत, बेबीलोन के मध्य जब सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित था तो वे लोग गेहूँ और जौ की खेती करने के सभी तरीके एक दूसरे से सीखा करते थे। परन्तु जैसे-जैसे योरुपियन देश उनके सम्पर्क में आते गये तो वे भी खाद्य उत्पन्न करने के सभी साधन स्वयं अपनाते गये। तुर्कों तथा अन्य कतिपय किरन्दर जातियों में पशु-पालन के कारण ऊन की सम्प्राप्ति प्रचुर मात्रा में होती थी। अतएव वे लोग इसी ऊन से कम्बल व नमदे बनाया करते थे। जब चीनी तथा मंगोल तुर्कों के सांस्कृतिक सम्पर्क में आये तो उन्हों ने व्यवसाय को अपनाया। केन्द्रीय तथा दक्षिणी एशिया के अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जो उन्हों ने एक दूसरे के संपर्क में आने के बाद ग्रहण किये हैं। वल्कल वस्त्र बनाने की अनेक विधियां ऐसी थीं जो उन्हों ने एक दूसरे से ग्रहण कीं।

भारत की सम्पूर्ण वस्तु कला इस बात की साक्षी है कि किस प्रकार एक देश की भौतिक संस्कृति दूसरे देश में पनपी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के हज़ारों अवशेष मिस्र, बेबीलोनिया तथा भारत की भौतिक संस्कृति के सामञ्जस्य को भलीभांति प्रतिपादित करते हैं।

संस्कृति का तीसरा रूप ३००० वर्ष पूर्व का रूप है जिसे हम आधुनिक युग व लोह-युग के नाम से पुकारते हैं। आज से ३००० वर्ष पूर्व जब कृष्ण-सागर के दक्षिण में लोहे की उपलब्धि हुई तो संसार की तत्कालीन मानव-जाति को संस्कृति के विकास का एक और स्वर्णावसर प्रदान हुआ। मनुष्य ने कांस्य की अपेक्षा इस धातु को उत्कृष्ट कोटि का पाया और उस पर नवीन आविष्कार प्रारम्भ कर दिये। आज संसार में इसी भौतिक संस्कृति का बोल-बाला है। यह है हमारे भौतिक संस्कृति के इतिहास की संक्षिप्त कहानी जो मानव-जाति के विकास पर सुन्दर प्रकाश डाल रही है। संसार के जिस भाग में नवीन संस्कृति सर्वप्रथम विकसित हुई वह उच्च, और जहाँ बाद में सांस्कृतिक विकास हुआ वह निम्न समझा जाने लगा। इस प्रकार मानव-जाति की प्राणि-शास्त्रीय रचना का परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन की तुलना में बिल्कुल ही नगण्य माना जा सकता है। अगले अध्याय में हमने भौतिक संस्कृतियों के प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए यह अभिव्यक्त किया है कि जहां मनुष्य समाजिक संस्कृति का शिकार होता है वहां वह दूसरी जाति की उच्च भौतिक संस्कृति को अपनाने में संकोच नहीं करता। सामाजिक और भौतिक संस्कृतियों का विकास ही राष्ट्रों और जातियों के उत्थान का प्रमुख कारण होता है।

---

# प्राचीन कला तथा व्यवसाय

## कला तथा शिल्प का विकास

शिल्प विद्या के साथ-साथ प्राचीन काल में कला का भी प्रसार हो रहा था। जहाँ जहाँ व्यवसाय पनपता गया वहाँ कला की भी उन्नति होती गई। पोलीनीशिया की नावें, प्रशान्त सागर के तटवर्ती इलाकों के इण्डियन्स के बने हुए सन्दूक तथा चमचे, प्यूब्लोस तथा ह्यूपोन जातियों के बने हुए बर्तन, अरिज़ोना इण्डियन्स की बनी हुई टोकरियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में उनके शिल्प सम्बन्धी चातुर्य का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। नक्काशी के काम करने तथा सुन्दर वस्तु निर्माण करने में वे लोग सिद्धहस्त थे। सन्दूक, नाव, बर्तन तथा कुछ अन्य पदार्थों के ग्रीवाभाग पर नक्काशी का काम, कपड़ों तथा चटाइयों पर सुन्दर फूलदार पट्टी लगाना—इत्यादि सब उनकी कारीगरी के प्रतीक हैं। मैदानों में रहने वाली स्त्रियाँ, इरोक्वॉइस तथा अलगोन्क्वीन स्त्रियाँ कसीदाकारी में अपना प्रतिद्वन्द्वी न रखती थीं। दक्षिण पश्चिमीय इलाकों की स्त्रियाँ बर्तन बनाने में तथा पोलीनीशिया के लोग लकड़ी के काम में अतीव निपुण समझे जाते थे। भवन निर्माण कला में अंधे के भाग को सजाने का कार्य बड़ी बारीकी से किया जाता था। १४वीं, १५वीं और १६वीं शताब्दि में इटली के धार्मिक सुधार काल में चित्र कला में बहुत उन्नति हुई। उधर पश्चिमीय समुद्र तट पर रहने वाले इण्डियन्स लकड़ी पर जो चित्रकारी करते थे उसमें भिन्न भिन्न प्रकार के पशुओं तथा पक्षियों के चित्र बनाया करते थे। बर्तनों, टोकरियों, घरों की दीवारों, नाव के किनारे तथा तश्तरियों आदि पर पशुओं, पक्षियों, मीनों, वस्तुओं तथा वनस्पतियों के चित्रों के नमूने पेश किये जाते थे। जिस प्रकार रेखागणित के चित्र होते हैं उसी प्रकार सीधी टेढ़ी और मुड़ी हुई रेखायें चित्रकला में दर्शाई जाती थीं। मि० ए. सी. हेडन का कहना है कि कला का प्रारम्भिक रूप तो सत्य रूप में था परन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया त्यों-त्यों कला रेखांकित रूप में परिणत होती गई।

माओरी तथा हैडा लोगों के खुदाई द्वारा बने हुए अलंकृत चित्र, टोंगा द्वीपवासियों के गदा पर खोदकर बनाये गये चित्र, प्युब्लो तथा चिरिक्वी द्वारा बनाये गये चित्रांकित बर्तन, चिलकट तथा नवाजो के बुने हुए कम्बल, पेरु तथा भारत के काते हुए पदार्थ, एस्किमो द्वारा अस्थियों पर खुदी हुई चित्रकारी—ये सब पुरातन युग की वस्तुएँ कला के असली रूप को प्रदर्शित करती हैं।

## मनुष्य यन्त्रकार के रूप में

प्राचीन काल में मनुष्य ने अपने रहने के लिए कई प्रकार के गृहों की रचना की। वन्दराजीवन को तिलाञ्जलि देने के बाद पशु त्वचा निर्मित शामियानों के घर बनाये गये मैदानों में रहनेवाले इण्डियन्स तो भैंस की खाल के घर बनाया करते थे। केन्द्रीय तथा पश्चिमीय एशियाई लोगों तथा अरबों में कई प्रकार के शामियाने काम में लाये गये। एस्किमो के बर्फीले मकान गर्मी में जब पिघल जाते थे तो वे शामियानों के गृह निर्माण करते। अफ्रीका में कई प्रकार की झोंपड़ियों का निर्माण हुआ। दक्षिणी अमेरिका में तो कहीं-कहीं लकड़ी का भी प्रयोग होने लगा। मैदानों में बसनेवाले मण्डन तथा हिदत्सा जाति के लोग मिट्टी के मकान, मैक्सिकन लोग पत्थर के मकान, प्रशान्त महासागर तट के इलाकों में लकड़ी के मकान बनाने की प्रथा प्रचलित हुई। आधुनिक काल के अरब तो अब भी बकरे की खाल के बने हुए शामियाने प्रयोग में लाते हैं।

मनुष्य निवासस्थान की सम्प्राप्ति के बाद इधर-उधर परिभ्रमण करने की भी इच्छा रखने लगा। अमेरिका के मैदानों में रहनेवाले इण्डियन्स इण्डों का त्रिकोणाकार आश्रय स्थान बनाते जो पालतू कुत्ते की पीठ पर आश्रित होता था। उत्तरीय इलाकों में जहाँ बारहों मास बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर होती है एक खास प्रकार की बर्फ पर चलनेवाली बिना पहिये की गाड़ी आवागमन का साधन बनी। नदियों को पार करने व जलयात्रा करने के हेतु पशुओं की खाल से बनी हुई नाव प्रयुक्त की जाने लगी। कहीं-कहीं लकड़ी की नाव प्रयुक्त करने की प्रथा प्रारम्भ हुई और उसके साथ-साथ नौका दण्ड का प्रयोग किया जाने लगा।

ऋतुओं के कुप्रभाव से बचने के लिए अपनी नग्नवृत्ति को दूर करने के लिए मनुष्य ने अपने शरीर के आच्छादन का प्रबन्ध किया। बहुत से ग्रीष्म प्रदेशों में नग्न रहने की भी प्रथा प्रचलित रही। आस्ट्रेलिया में स्त्रियाँ शारीरिक

नग्नता को तिरोहित करने के लिए वस्त्र धारण करने लगी। जंगल के शिकारी इलाको मे पशुओं की जो खाल उपलब्ध होती उसके वस्त्र बनाये जाते। शरीर पर नानाप्रकार की तस्वीरें गोद देने की प्रथा पाई जाती थी। इतना ही नहीं शरीर के अंग प्रत्यंग को गोदने की क्रिया द्वारा सजाया जाता था। घर में तथा यात्रा में दोनो स्थानो पर मनुष्य अपने पास एक पात्र अवश्य रखा करता था। यह पात्र भी पशु की त्वचा से अथवा लकड़ी-हड्डी, पत्थर व शतुर्मुग के अण्डो के छिलके आदि का बना होता था। वे लोग भिन्न भिन्न प्रकार की टोकरियाँ बनाते थे। ब्राजील, कैलीफ़ोर्निया, फिलिपाइन्स तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के इलाको में इस कला का विस्तार हो चुका था। उत्तरीय प्रशान्त महासागर के सीमान्त इलाको के इण्डियन्स में सन्दूक बनाने की कला भी काफी जोरों पर थी। पत्थर के चाकू बनाये जाते थे जो उपकरण तथा शस्त्र—दोनो रूप में प्रयुक्त होते थे। एक प्रकार *की गदा बनाई जाती थी जो लकड़ी, पत्थर अथवा हड्डी की बनी होती थी* जिसका सिरा धातु का होता था। अफ्रीका में प्रायश इस का प्रयोग होता था। प्रारम्भिक काल का एक और शस्त्र था—भाला। एक प्रकार की छड़ी भी बनाई जाती थी जिसकी नोक बहुत तेज होती थी। आस्ट्रेलिया में इसका प्रयोग लड़ने तथा कागरू का शिकार करने के लिए होता था। बगाल में चीते का शिकार भाले से किया जाता है। कैलीफोर्निया की हूपा जाति तथा पश्चिमी प्रदेश की एस्किमो जाति में पाषाणशिरीय भाला पुरातन काल में प्रयुक्त किया जाता था।

कई फिरन्दर जातियों में तीर कमान का उपयोग भी होता था। यह धनुष बाण, भाले व गदा की न्याई होता था बाद में इसका प्रयोग बन्दूक के स्थान पर भी होता रहा। शत्रुओ तथा आक्रमण-कारियों से बचने के लिए कई यन्त्रो का आविष्कार किया गया। एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में एक प्रकार के कवचों का प्रयोग होता था जो शरीर, टाँग और सर की रक्षा के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये उपकरण व यन्त्र मनुष्य की उस सफलता और विजय के द्योतक हैं जो उसने प्राकृतिक साधनों को जुटाकर पशु जगत् पर पाई थी। यह उपकरण के निर्माण की कहानी का एक भाग है। मनुष्य ने तो प्रकृति पर भी विजय पाई है। वनस्पति जगत पर तथा पशुओ को पालतू बनाने के कार्य पर भी उस का पूरा पूरा हाथ रहा है। जहाँ मनुष्य ने पशु को पालतू बनाया वहाँ उस ने अपने आप को भी पालतू बनाया इस दृष्टि से मनुष्य वह प्राणि है जो मनुष्य द्वारा ही सांस्कृतिक

मावरी तथा हैडा लोगों के खुदाई द्वारा बने हुए अलंकृत चित्र, टोंगा द्वीपवासियों के गदा पर खोदकर बनाये गये चित्र, प्युब्लो तथा चिरिक्वी द्वारा बनाये गये चित्रांकित बर्तन, चिलकट तथा नवाजो के बुने हुए कम्बल, पेरु तथा भारत के काते हुए पदार्थ, एस्किमो द्वारा अस्थियों पर खुदी हुई चित्रकारी—ये सब पुरातन युग की वस्तुएँ कला के असली रूप को प्रदर्शित करती हैं।

## मनुष्य यन्त्रकार के रूप में

प्राचीन काल में मनुष्य ने अपने रहने के लिए कई प्रकार के गृहों की रचना की। कन्दराजीवन को तिलाञ्जलि देने के बाद पशु त्वचा निर्मित शामियानों के घर बनाये गये मैदानों में रहनेवाले इण्डियन्स तो भैंस की खाल के घर बनाया करते थे। केन्द्रीय तथा पश्चिमीय एशियाई लोगों तथा अरबों में कई प्रकार के शामियाने काम में लाये गये। एस्किमो के बर्फीले मकान गर्मी में जब पिघल जाते थे तो वे शामियानों के गृह निर्माण करते। अफ्रीका में कई प्रकार की झोपड़ियों का निर्माण हुआ। दक्षिणी अमेरिका में तो कहीं-कहीं लकड़ी का भी प्रयोग होने लगा। मैदानों में बसनेवाले मण्डन तथा हिदत्सा जाति के लोग मिट्टी के मकान, मैक्सिकन लोग पत्थर के मकान, प्रशान्त महासागर तट के इलाकों में लकड़ी के मकान बनाने की प्रथा प्रचलित हुई। आधुनिक काल के अरब तो अब भी बकरे की खाल के बने हुए शामियाने प्रयोग में लाते हैं।

मनुष्य निवासस्थान की सम्प्राप्ति के बाद इधर-उधर परिभ्रमण करने की भी इच्छा रखने लगा। अमेरिका के मैदानों में रहनेवाले इण्डियन्स इनका त्रिकोणाकार आश्रय स्थान बनाते जो पालतू कुत्ते की पीठ पर आश्रित होता था। उत्तरीय इलाकों में जहाँ बारहों मास बर्फ ही बर्फ दृष्टिगोचर होती है एक खास प्रकार की बर्फ पर चलनेवाली बिना पहिये की गाड़ी आवागमन का साधन बनी। नदियों को पार करने व जलयात्रा करने के हेतु पशुओं की खाल से बनी हुई नाव प्रयुक्त की जाने लगी। कहीं-कहीं लकड़ी की नाव प्रयुक्त करने की प्रथा प्रारम्भ हुई और उसके साथ-साथ नौका दण्ड का प्रयोग किया जाने लगा।

ऋतुओं के कुप्रभाव से बचने के लिए अपनी नग्नवृत्ति को दूर करने के लिए मनुष्य ने अपने शरीर के आच्छादन का प्रबन्ध किया। बहुत से ग्रीष्म प्रदेशों में नग्न रहने की भी प्रथा प्रचलित रही। आस्ट्रेलिया में स्त्रियाँ शारीरिक

नग्नता को तिरोहित करने के लिए वस्त्र धारण करने लगी। जंगल के निवासी इलाको मे पशुओं की जो खाल उपलब्ध होती उसके वस्त्र बनाये जाते। शरीर पर नानाप्रकार की तस्वीरें गोद देने की प्रथा पाई जाती थी। इतना ही नहीं शरीर के अंग प्रत्यंग को गोदने की क्रिया द्वारा सजाया जाता था। घर में तथा यात्रा में दोनों स्थानों पर मनुष्य अपने पास एक पात्र अवश्य रक्खा करता था। यह पात्र भी पशु की त्वचा से अथवा लकड़ी-हड्डी, पत्थर व शतुर्मुर्ग के अण्डों के छिलके आदि का बना होता था। वे लोग भिन्न भिन्न प्रकार की टोकरियाँ बनाते थे। ब्राजील, कैलीफ़ोर्निया, फिलिपाइन्स तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के इलाकों में इस कला का विस्तार हो चुका था। उत्तरीय प्रशान्त महासागर के सीमान्त इलाको के इण्डियन्स में सन्दूक बनाने की कला भी काफी जोरों पर थी। पत्थर के चाकू बनाये जाते थे जो उपकरण तथा शस्त्र—दोनों रूप में प्रयुक्त होते थे। एक प्रकार की गदा बनाई जाती थी जो लकड़ी, पत्थर अथवा हड्डी की बनी होती थी जिसका सिरा धातु का होता था। अफ्रीका में प्रायशः इस का प्रयोग होता था। प्रारम्भिक काल का एक और शस्त्र था—भाला। एक प्रकार की छड़ी भी बनाई जाती थी जिसकी नोक बहुत तेज होती थी। आस्ट्रेलिया में इसका प्रयोग लड़ने तथा कागरू का शिकार करने के लिए होता था। बंगाल में चीते का शिकार भाले से किया जाता है। कैलीफोर्निया की हूपा जाति तथा पश्चिमी प्रदेश की एस्किमो जाति में पाषाणनिर्मित भाला पुरातन काल में प्रयुक्त किया जाता था।

कई फिरन्दर जातियों में तीर कमान का उपयोग भी होता था। यह धनुष चाकू, भाले व गदा की न्याई होता था बाद में इसका प्रयोग बन्दूक के स्थान पर भी होता रहा। शत्रुओं तथा आक्रमणकारियों से बचने के लिए कई यन्त्रों का आविष्कार किया गया। एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में एक प्रकार के कवचों का प्रयोग होता था जो शरीर, टांग और सर की रक्षा के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये उपकरण व यन्त्र मनुष्य की उस सफलता और विजय के द्योतक हैं जो उसने प्राकृतिक साधनों को जुटाकर पशु जगत् पर पाई थी। यह उपकरण के निर्माण की कहानी का एक भाग है। मनुष्य ने तो प्रकृति पर भी विजय पाई है। वनस्पति जगत पर तथा पशुओं को पालतू बनाने के कार्य पर भी उस का पूरा पूरा हाथ रहा है। जहाँ मनुष्य ने पशु को पालतू बनाया वहाँ उस ने अपने आप को भी पालतू बनाया इस दृष्टि से मनुष्य वह प्राणि है जो मनुष्य द्वारा ही सांस्कृतिक

आधार पर पाला गया है। इतना ही नहीं बहुत से स्त्री और पुरुष संस्कृति के आधार पर इस तरह शिक्षित किये गये हैं कि वे अन्य पुरुषों के दास बन कर काम कराते रहे हैं। यदि पालतू बनाने का परिणाम अपनी इच्छाओं को मार कर दूसरे के सम्मुख हाथ पैर पसारना अथवा किसी स्वामी की गुलामी करना ही है तो दास प्रथा इस का सब से अच्छा उदाहरण है जो सब से ज्यादा भयंकर है।

## आखेट तथा मत्स्य व्यवसाय (Hunting and Fishing)

आधुनिक युग में जहाँ आखेट और मछली पकड़ना खेल समझे जाते हैं वहाँ प्राचीन काल में मानव जाति की आजीविका के साधन समझे जाते थे। आखेट के लिए विस्तृत भूमि प्रदेश हस्तगत किये जाते थे। आदिकाल में कैलीफोर्निया को शिकारियों का स्वर्ग कहा जाता था क्योंकि वहाँ १५०००० वर्गमील का क्षेत्र आखेट के लिए था। तस्मानिया में २६००० वर्गमील का क्षेत्र तथा आस्ट्रेलिया ३०००० वर्गमील का क्षेत्र शिकार के लिए प्रयुक्त किया जाता था। आखेटको का जीवन अत्यन्त कठोर, श्रमपूर्ण तथा स्वच्छन्द होता और वे अपना सारा समय परिभ्रमण में लगा दिया करते थे। अनेक जातियों के अपने अपने आखेट क्षेत्र होते थे वे लोग जंगली पशुओं तथा मत्स्य आदि को पकड़ कर आजीविका पूर्ति किया करते थे मछलियों को पकड़ने तथा जंगली पशुओं को मारने के लिए सदैव नवीन २ उपाय सोचे जाते और नवीन प्रकार के उपकरणों की खोज की जाती थी। दक्षिणी अमेरिकन इण्डियन्स तीरकमान से मछली का शिकार करते थे। सैमोअन्स (Samoans) लोग इन्हीं उपकरणों से कबूतरों तथा मछलियों का शिकार करते थे। काँगो तथा कैलीफोर्नियावासियों ने भी तो मछली पकड़ने के लिये जालियों का आविष्कार कर लिया था।

कुत्ता मनुष्य का पालतू पशु होने के कारण आखेट व्यवसाय में पर्याप्त सहायक होता था। टीराडिल फ्यूगो के घने पर्वतीय प्रदेशों में कुत्ता रखना अनिवार्य था। जहाँ कुत्ता शिकार के पता लगाने में सहायता पहुंचाता वहां वह घायल पशु को आक्रमण द्वारा भागने न देता था ताकि शिकारी शीघ्र ही पशु को हस्तगत कर ले, मैदानों में वास करने वाले इण्डियन्स इक्के दुक्के पशु का तथा समूचे पशु, समूह का शिकार करते थे। पशुओं को बाड़े के भीतर ले आकर घेरा डाल दिया जाता था। शिकारियों का मुखिया सब को सतर्क रहने का आदेश देता। यदि उनके

आदेश का कोई उल्लंघन करता तो उसे दण्ड दिया जाता था। कनाडा, लेपलैण्ड, साइबेरिया आदि में पशुओं को पकड़ने के बाड़े (Corrals) बनाये जाते थे। दक्षिणी अफ्रीका के झाड़वासी (Bushmen) लकड़ी से गड्ढे खोदते और उन्हें पेड़ की छोटी छोटी टहनियों से ढाप देते थे। हाथी को उस गड्ढे की ओर लाकर उस का शिकार करते। जब हाथी उस में गिर पड़ता तो उसे पकड़ लेते। अफ्रीकन आदि वासी अनेक प्रकार के अन्य फन्दों का भी प्रयोग करते थे। कई बार तो ये लोग पशुरूप धारण कर के शिकार करते थे ताकि पशु को सन्देह न हो। कैलीफोर्निया के इण्डियन्स हिरण तथा बारहसिंघे की खाल पहन कर जंगल में घास लाने के बहाने चले जाया करते थे।

पानी में रहने वाले प्राणियों के शिकार का तरीका निराला था। नीलनिवासी निलूक लोग हारपून से दरियाई घोड़े का शिकार करते। जहाँ समुद्री घोड़ा अपना सिर बाहर निकालता वहाँ ये लोग उस की गर्दन पर हारपून का प्रहार करते। ज्यों ही वह पुनः पानी में गोता खाकर किनारे की ओर जाने लगता तो वे उसका पीछा करते और नदी के किनारे पर लगे फंदों में उसे फांस लिया जाता था।

## मछली पकड़ना (Fighing)

कई जातियाँ मछली पकड़ने को आखेट से अधिक महत्व प्रदान करती थीं। समुद्र नदीतटवासी लोग मछली पकड़ने का कार्य अपनाये हुए थे। अलास्का से पुगेट साउन्ड (Puget Sound) तक का सम्पूर्ण प्रदेश मछलियों पर ही निर्वाह करता था। आस्ट्रेलियन लोग भाले, हारपून तथा फंदों आदि का प्रयोग करते थे। दक्षिणी अमेरिकन लोगों ने नशीले पौदों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त किया था क्योंकि ये शिकार के ऐसे साधन थे जो हानिप्रद न थे। कई आस्ट्रेलियन जातियाँ ढोल बजा २ कर मछलियों को डराती और फन्दों में फंसा लेती थीं। कई बार बड़ी २ चट्टानों के समीप छोटे छोटे बांध भी बना दिये जाते थे ताकि नदी की बाढ़ के साथ २ अनेक मछलियां भी वहाँ आकर फँस जायें।

## कृषि (Farming)

जैसे आदिकालीन पुरुष को आखेट-व्यवसाय का प्रारम्भकर्ता माना

जाता है उसी प्रकार स्त्री को कृषि व्यवसाय का उत्पत्तिकर्ता माना जा सकता है। सबसे प्रथम स्त्रियों ने ही वानस्पतिक जगत् का गहन निरीक्षण किया। आस्ट्रेलियन स्त्रियाँ कन्द मूल की खेती, पूर्वी अफ्रीकन स्त्रियाँ केले की खेती तथा पूर्वी अमेरिका की स्त्रियाँ गेहूँ की खेती किया करती थी। यद्यपि स्त्री पुरुषों का यह कार्य विभाजन वैधानिक रीति पर आधारित न था तथापि परिस्थितियों ने स्त्री और पुरुष के कार्यों का स्वतः विभाजन कर दिया था। पश्चिमी अफ्रीका तथा पोलीनीशिया में पुरुष भी कृषिकार्य में भाग लेते थे। जब आखेट व्यवसाय समाप्त होने लगा तब कृषि कार्य की प्रधानता स्वीकार की जाने लगी। पुरुषों ने भी अपना ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। न्यू मैक्सिको तथा अरिजोना प्रदेश के प्युब्लो इण्डियन्स तथा मैक्सिको और पेरु के इण्डियन्स ने भूमि का बहुत सा भाग उपजाऊ बनाया। कृषि के साथ-साथ जनसंख्या भी बढ़ने लगी। कृषि व्यवसाय को पनपते-पनपते भी हजारों वर्ष लग गये। प्रथम कृषि कार्य के लिए हल का प्रयोग न किया जाता था हल का आविष्कार कांस्ययुग में हुआ। इससे पूर्व खोंसनी व फाली (Dibble) का प्रयोग किया जाता था। यह एक नोकदार छड़ी होती थी जो जमीन में छेद करने के लिए पर्याप्त थी। मैडागास्कर की तनाला जाति में इस खोंसनी के अतिरिक्त कुदाली का प्रयोग भी किया जाता था। कई अन्य जातियों में फावड़े का प्रयोग प्रचलित था।

मिश्र में कुदाली के बाद हल का विकास हुआ। जैसे-जैसे पशु पालन का कार्य प्रारम्भ होता गया वैसे-वैसे पशुओं को भी खेती के कार्य में लगाया जाता था। कोलम्बस की अमेरिका—खोज से पहले वहाँ के लोग केवलमात्र खोसनी (Dibble) तथा कुदाली का प्रयोग ही जानते थे। उन्हें हल का तो ज्ञान ही न था। खेती के साथ आदिवासियों को पशु पालन का भी ज्ञान हुआ। मनुष्य पहले कृषिकार तथा बाद में पशुपालक बना। मिश्र में कृषि तथा पशु पालन का विचार एक साथ उत्पन्न हुआ। परिणामतः घोड़े तथा बैल को पालतू बनाया गया। अमेरिका में मक्का, पेरु में आलू, इण्डोनीशिया, ओशीनिया, पश्चिमी अफ्रीका और दक्षिणी एशिया में नारियल, केला आदि फलों की खेती की जाने लगी।

बैबीलोनिया में आज से २५०० वर्ष पूर्व सेव, अंगूर अंजीर आदि की खेती की जाती थी। मिश्र में खजूर की खेती प्रारम्भ हो चुकी थी, सीरिया तथा फिलस्तीन में जैतून के पेड़ तथा चीन में आड़ू तथा खुरमानी आदि फल बोये जाते थे।

प्राचीन काल के कृषि कार्य को हम वैज्ञानिक नहीं कह सकते।

शिलूक के पड़ोसी लेंगी लोग जंगली जानवरों से खेती की रक्षा करने के लिए ऊँचे ऊँचे खम्भों की पंक्ति खड़ी कर देते थे। मावरी लोग मधुर आलुओं की रक्षार्थ कक्ड़ी लाकर ऊँचे ऊँचे टीले बनाते थे। प्रोलीनिया वासी कृत्रिम बांध और खोन बनाकर अपने बगीचों की रक्षा करते थे। गेहूँ और जौ की खेती सब से प्रथम मिस्र, भारत, बेबीलोन तथा उत्तरी चीन में हुआ करती थी। योरुप में इन खास वस्तुओं के बोने का तरीका इन्हीं देशों द्वारा अपनाया गया। भारत में सब से प्रथम ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व गन्ने की खेती का पता चला।

जब जब प्रव्रजन प्रक्रिया द्वारा लोग इधर से उधर जाया करते तो वे कृषि सम्बन्धी चीजें अपने साथ ले जाते थे। मावरी जाति के लोग जब केन्द्रीय पोलीनीशिया से न्यूजीलैण्ड की ओर गये तो वे अनेक चीजें अपने साथ ले गये। वहाँ के जलवायु के कारण उन को कृषि कार्य में अनेक कठिनाइयां अनुभव हुईं।

## पशुपालन ( Domesticasion )

मनुष्य ने सब से पूर्व कुत्ते को पालतू बनाया होगा क्यों कि पूर्व और उत्तर पाषाण युगीय अवशेषों से भी यही ज्ञात पड़ता है कि कुत्ता ही ऐसा प्राणी होता होगा जो मनुष्य के आखेट कार्य में उसकी सहायता करता होगा। भेड़, बकरी, सूअर आदि को पालतू बनाने का कार्य तो आज से ६००० वर्ष पूर्व की बात है। कुत्तों को भेड़िये तथा गीदड़ का वंशज कहा जाता है। लंका की वेद्दा जाति में कुत्ते की सहायता से हरिणों का शिकार किया जाता था। इदाहो प्रदेश के शोशोनी लोग, पहाड़ी भेड़ों के, दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका के हाटनटाट लोग बारहसिंगे के शिकार के समय कुत्तों को सदैव साथ में रखते थे।

कई जातियों में कुत्तों को खाने की प्रथा थी। पोलीनीशियावासी, पेरुवियन, हराकयुइज लोग कुत्तों का मांस खाया करते थे। मेरीकोपा जाति के लोग कुत्ते को मानवीय रूप देते तथा उनके साथ एकसा करते थे। कुत्तों को पालतू बनाने से ही वह सरक्षण करने के योग्य होता है और उस से कई प्रकार के कार्य लिये जा सकते हैं। एस्किमो लोग बर्फ पर चलनेवाली गाड़ी को खींचने का कार्य भी कुत्तों से लेते थे। व्यापार तथा खाद्यसामग्री की तलाश के लिए इनका प्रयोग करते थे। फ्रांसीसी कैनेडियन तो अब भी सवारी के लिए इस का प्रयोग करते हैं। कई स्थानों पर कुत्ते के बालों की भी कपड़ों

के शृगार में प्रयुक्त किया जाता था। एस्किमो तथा ओना जातियों के लिए कुत्ता जन्म और मरण का प्रश्न था।

कुत्ते के बाद सूअर तथा अन्य पशुओ केपालन की बारी आती है। चीन तथा भारत में सूअर को पालने की प्रथा पर्याप्त पुरातन है। अभी हाल ही के उत्तर पश्चिम भारत के अनुसन्धानों से प्रतीत हुआ है कि ईसासे ३००० वर्ष पूर्व भारतवासी भेंड, बकरी, भैंसा तथा सूअर को पाला करते थे। चीन में नवपाषाण कालीन सस्कृतियों के जो अवशेष उपलब्ध हुए हैं उससे प्रतीत होता है कि वहाँ नवपाषाणयुग में सूअर को पाला जाता था। इन जगली पशुओ के पकड़ने के लिए वे नानाविध के फदे प्रयोग में लाते थे। कई जातियो में सूअर को खाया जाता था। यहूदी तथा मुसलमान इसके भक्षण पर रोक लगाते है। मिश्र तथा बैबीलोनिया में ईसा से ३००० वर्ष पूर्व गौ से दूध निकालने की प्रथा विद्यमान थी। चीन व जापान कोरिया तथा हिन्द चीन में किसी मादा पशु से दूध निकालने की प्रथा न थी। चीन के लोग जब बैबीलोनियन सस्कृति के सपर्क में आय तब से इन्होंने पशु पालने का कार्य अपनाया। जब खेती के लिए हल का प्रयोग शुरू हुआ तब बैल साड आदि को भी पालतू बनाया गया। शिलुक जाति में गोपालन अच्छा समझा जाता था। जब से गौ का आर्थिक महत्व मालूम हुआ, अनेक जातियाँ उसे सुरक्षित रखने लग गईं। पशुओं की उपयोगिता के साथ साथ पशु हनन प्रक्रिया कम होती गई।

तिब्बत के आदिवासी सुरा गाय को पाला करते थे। वे इसे खाते और प्रयोग में लाते थे। इसके बाल रस्से, शामियाने तथा कम्बल बनाने के कार्य में लाये जाते थे। इसकी खाल से थैले व जूते आदि बनाये जाते थे। तिब्बत वासियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी पशु माना जाता था।

भेंड, बकरी तथा भैंस आदि का प्रयोग भी साथ साथ प्रारम्भ हुआ। दक्षिणी योरुप तथा मिश्र में इनका प्रयोग बहुत पहले से चला आ रहा था। नवपाषाणयुग में योरुप के अनेक देशो में बकरी की अपेक्षा भेंड का प्रयोग अधिक किया जाता था और कांस्ययुग में इसकी खाल से ऊन का निर्माण भी होने लग गया था। तुर्किस्तान में पशुपालन की दृष्टि से भेंड़ का अत्यन्त महत्व है। व्यापार तथा खाद्य सामग्री के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। अफ्रीका में भेंड और बकरी का अत्यधिक महत्व नही। वे इसका मांस नही खाते केवल मात्र इसकी खाल को प्रयोग में लाते है।

इसके बाद ऊँट, घोडे तथा गदहे पालतू बनाये गए और उन्हे आवागमन का साधन बनाया गया। बैबीलोनिया से ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व

ऊँट को आवागमन के लिए प्रयुक्त किया जाता था। बेबीलोनियों में ईसा से २३०० वर्ष पूर्व, मिस्र में २८०० वर्ष पूर्व घोड़े का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। तुर्किस्तान, अरब तथा अन्य एशियाई देशों में भी ऊँट को आवागमन का साधन समझा जाता था। अरब लोग घोड़ियों का न तो दूध निकालते थे और न ही उसका मांस खाया करते थे। मंगोल तथा किरगिज़ लोग दिन में ६,७ बार घोड़ियों का दूध निकालते थे। बेबीलोनिया में घोड़ों को युद्ध के रथ के लिए उपयोग में लाया जाता था। अमेरिकन इण्डियन्स लोग न तो घोड़ों का मांस खाते थे और न ही उनका दूध निकाला करते थे।

मैडिट्रेनियन संसार में गधे का अत्यन्त महत्व था। वे आवागमन के साधन के लिए गधे का प्रयोग करते थे। फिलस्तीन तथा सीरिया में इसे खेती में भी प्रयुक्त किया जाता था। अमेरिका के कई भागों में बारह-सिंघे को भी पाला जाता था। एस्किमो लोग इसे अपनी बर्फ पर चलनेवाली गाड़ियों में जोता करते थे। साइबेरिया की गाड़ियों में भी इसका प्रयोग किया जाता था।

### आग तथा पाक विज्ञान

आग मनुष्य के संरक्षण का सर्वोत्तम साधन है। जब मनुष्य नग्नावस्था में रहता था तो आग उसे सर्दी से बचाती और उसके शरीर का संरक्षण करती थी। आग द्वारा आदिवासी उपकरण बनाया करते थे। जंगल के जानवरों को आग से डरा कर उनका निवार किया करते थे। धातु गलाने, तथा मृत्तिकापात्र बनाने के कार्य भी आग के बिना न हो सकते थे। अतएव आदिकाल में आग का कितना महत्व रहा होगा इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है।

पुरातन युग में आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रोम, ग्रीस तथा मिस्र आदि सभी देशों में आग की उत्पत्ति के लिए छेदने का बरमा (Firedrill) का प्रयोग किया जाता था। इस छड़ी द्वारा १० सैकेण्ड के अन्दर ही आग पैदा की जा सकती थी। इस प्रक्रिया द्वारा एक व्यक्ति नीचे का हिस्सा पकड़ता और दूसरा व्यक्ति छेदनेवाले बरमे को घुमा देता था। एस्किमों तथा उत्तरी साइबेरियन में इससे कुछ परिष्कृत विधि प्रचलित थी। वे लोग डण्डे को हाथ द्वारा वेग से घुमाने के स्थान पर छड़ी के चारों ओर धनुष की रस्सी को मोड़ लेते थे और तब वे उसे चक्कर देकर घुमा देते थे। इससे चमक पैदा हो जाती थी। पुरातन मिस्रवासियों को भी यह तरीका ज्ञात

था। हिन्दुओं में तो यह विधि बहुत समय तक जीवित रही। १६वीं शताब्दि में इस दिशा में प्रगति हुई और यह अनुसन्धान किया गया कि यदि लकड़ी की पतली सपाची पर गन्धक और पोटाशियम क्लोरेट चढ़ा दिया जाये और साल्फूरिकएसिड के सने टुकड़े से सुलगाया जाय तो एकदम आग पैदा हो जाती है। कुछ समय बाद इस प्रकार की दियासलाइयों की भी अनुपयोगिता सिद्ध हुई। तत्पश्चात फास्फोरस को एक घोल के साथ मिश्रित किया गया जो हानिप्रद न होता था। उसके प्रयोग करने पर यह प्रतीत हुआ कि अब दियासलाई किसी भी रूप में हानिप्रद नहीं। सन् १८४४ में जॉन एडवर्ड लण्डस्ट्रोम ने स्वीडन में दियासलाई का कारखाना खोला।

## पाकशास्त्र (Cooking)

आग के निर्माण के साथ साथ माँस के स्वादिष्ट भोजन बनाने के तरीके भी प्रारम्भ हो गये। जिन जिन जातियों में पात्र निर्माण की सुविधा नहीं थी वहाँ खाद्य वस्तुओं को उबालना भी दूभर हो जाता था। आस्ट्रेलिया में आग के ऊपर रखकर माँस को पकाया जाता था। मछलियों और पक्षियों को गढ़े में दबाकर भूना जाता था। पोलीनीशिया तथा न्यूज़ीलैण्ड में बर्तनों के अभाव के कारण एक गढ़ा खोद कर मांस पकाया जाता था। मैमोन जाति के लोग भट्टी को मिट्टी से न ढापते थे। पोलीनीशिया के लोग भी भट्टी का प्रयोग करते थे। प्रोशीनिया में भी भट्टी का प्रयोग होता था। हवामुपई जाति के लोग खाद्यपदार्थों को उबाला करते थे। मेरीकोपा जाति के लोग आटा पीसा करते थे और नानाविध बीजों को पीस कर उसका खाना बनाते थे। शिलुक लोग आटा पीस कर उसमें दूध भी मिलाया करते थे। कई आदिकालीन जातियां नमक का प्रयोग न करती थी परन्तु पूर्वी अफ़्रीका में नमक का व्यापार किया जाता था। न्यूगायना के आदिवासी समुद्र के पानी से नमक का काम लेते थे। पोलीनीशिया में नारियल की क्रीम बनाई जाती और स्वादिष्ट भोजन तैयार किये जाते थे।

स्पेन तथा मैडिट्रेनियन के अनेक इलाकों में जैतून के तेल का व्यवहार भी किया जाता था। तिब्बत में चाय में मक्खन डालने की प्रथा थी। खाद्य-सामग्री को बड़े बड़े मिट्टी के पात्रों में भर रखने की भी प्रथा प्रचलित थी। उत्तरी डकोटा के हिदात्सा लोग अनाज के ढेर जमा करते थे। दक्षिणी ओरेगान की क्लामथ जाति में मछलियों को सुखाकर इकट्ठा कर दिया जाता

था। मावरी जाति के बड़े बड़े सरदार सहभोज देने के लिए अनाज के ढेर एकत्रकर दिया करते थे।

## वेशभूषा तथा आभूषण

शरीर के संरक्षण तथा शरीर को सुन्दर बनाने के लिए प्राचीन जातियां वेशभूषा तथा आभूषणों का प्रयोग भी करती थीं। जब मानवजाति ने नग्नावस्था का परित्याग किया तो सर्व प्रथम पेड़ों की छाल, पशुओं की खाल, बड़ी बड़ी मछलियों की खाल शरीर को ढांपने के लिए प्रयुक्त की जाती थी। कैलीफोर्निया के इण्डियन्स प्रायशः नग्नावस्था में रहते थे। नील नदी-वासी शिलुक जाति की स्त्रियां चमड़े का वस्त्र पहनती थी परन्तु आदमी बिलकुल नंगे रहते थे। मैलानीशिया में युवावस्था में तो वस्त्र पहनने की प्रथा थी परन्तु उससे पूर्व सब लोग नंगे रहते थे। भारत में ईसा से २७०० पूर्व कपास की खेती होने लग गई थी अतः भारत का वस्त्र व्यवसाय बहुत पुराना है। अफ्रीका बैबीलोनिया, मिश्र तथा अन्य देशों में यहां से इस व्यवसाय का विस्तार हुआ। मोहेन्जोदड़ो में खुदाई के समय सूती और ऊनी वस्त्र भी उपलब्ध हुए।

वल्कल वस्त्र पहनने का रिवाज कई देशों में पाया जाता था। परन्तु धीरे धीरे जब पशुओं को खाल का उपयोग वस्त्रों के स्थान पर होने लगा तो उसे आकार प्रकार के अनुसार सुई से भी सिया जाता था।

मैसोपोटामिया में ईसा से ३००० वर्ष पूर्व आदमी अपने बायें कन्धे पर वस्त्र रखा करते थे। पुरातन मिश्र में पुरुष लुङ्गी का तथा स्त्रियां घुटने तक के घाघरे का प्रयोग किया करती थी। ईसा से १५०० वर्ष पूर्व मैसोपोटामिया में कमीज पहनने का रिवाज भी प्रारम्भ हो गया था। रोम और ग्रीस में भी शरीर पर कपड़ा पहनने की प्रथा पाई जाती थी।

शरीर पर आभूषण पहनने की प्रथा तो १५००० वर्ष से प्रचलित है। हाथी दांत के बने हुए गले के हार व मालायें प्राप्त हुई हैं। अमेरिकन *इण्डियन्स स्त्रियां अपने कपड़ों पर कसीदाकारी का काम किया करती थी।* फिलिपाइन्स में स्त्री और पुरुष के पृथक् पृथक् आभूषणों की उपलब्धि हुई है। बगोबो जाति की स्त्रियां अपनी भुजाओं को पीतल के कंगनों से सजाया करती थीं। आस्ट्रेलियावासी स्त्री पुरुष कंगारू के दांत के बने आभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित करते थे। बोलीविया की चकोबो जाति में वक्ष-स्थल के आभूषण बन्दर के दांतों से निर्मित होते थे। कई बार तो इन दांतों

की संख्या १५०६ होती थी। इस प्रकार १८६ बन्दरों को मार कर इन दांतों की संप्राप्ति की जाती थी और वक्षस्थल का आभूषण अलंकृत किया जाता था।

शृंगार का एक रूप अंगच्छेदन विधि भी थी। नाक व कान आदि अंगों का छेदन किया जाता था। कांगो प्रदेश की नीग्रो स्त्रियाँ उपरी ओष्ठ में हाथी दांत की बनी हुई मुद्रायें तथा गोल टिकलियाँ (Disk) पहना करती थीं। मुखाकृति के साथ साथ सिर को भी अलंकृत करने की प्रथा थी। शरीर को गोदने (Tattooing) की प्रथा भी प्रचलित थी। पोलीनीशिया में गोदने को पवित्र दृष्टि से देखा जाता था। मावरी स्त्रियाँ ओठों तथा ठोडी को देवी देवताओं के चित्रों से गुदवा लेती थीं। पुरुष जाँघों तथा नितम्ब प्रदेशों को गुदवा लेते थे। हवाई तथा समोन जातियों में गोदने को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता था। मुसलमानों और यहूदियों के लिए खतने की प्रथा भी एक धार्मिक चिन्ह के रूप में विद्यमान थी। परन्तु आदिकालीन जातियों में इस प्रथा को धार्मिकरूप में न समझा जाता था। आस्ट्रेलियन, पोलीनीशियन तथा कतिपय अफ्रीकन जातियों में यौवनावस्था की प्राप्ति पर यह कार्य कराया जाता था। अन्यथा उनका विवाह भी न हो सकता था।

## गृह तथा नगर निर्माण

पूर्वपाषाणयुग के प्रारम्भ में पश्चिमी योरुप का जलवायु ग्रीष्म था अत. लोग बाहर खुले मैदानों में भी रह सकते थे परन्तु धीरे धीरे ऋतु परिवर्तन होने से सर्दी के कारण लोगों का बाहर रहना असम्भवप्राय हो गया अतएव सबसे प्रथम मानवों ने कन्दराओं में शरण ली। लंका के वेड्डा लोग अभी भी कन्दराओं में वास करते हैं। मानव जाति ने सबसे प्रथम आखेट व्यवसाय को अपनाया अतः मनुष्य को एक स्थान पर रहकर जीवन-व्यतीत करना भी कठिन जान पड़ता था। यदि वह एक स्थान पर रहता तो उसकी आजीविका—समस्या हल न हो सकती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस आर्थिक प्रश्न के साथ साथ भौगोलिक परिस्थितियों ने भी मनुष्य को आश्रय ढूंढने पर बाध्य कर दिया होगा। आँधी, तूफान, वर्षा जंगल, पेड़ पत्ते आदि सभी प्राकृतिक वस्तुओं का मनुष्य को मुकाबला करना पड़ता था अतः वे अपने लिए कहीं न कहीं आश्रय स्थान बनाने का प्रयत्न करते थे। जिस प्रदेश में जंगल बहुत थे वहाँ पेड़, आदि के घर बनाये गए। जहाँ पाषाण की अधिकता थी वहाँ गृहनिर्माण कला में भी पाषाण का प्रयोग

अधिक पाया जाता था। जहाँ लकड़ी की पैदाइश अधिक थी वहाँ गृहनिर्माण में भी लकड़ी का प्रयोग अधिक पाया जाता था। डेनमार्क में मकान लकड़ी से बनाए जाते थे। नार्वे का ट्रोंधजम नगर अब भी मुख्यतया शहतीरों का बना हुआ है। वहाँ का राजप्रसाद लकड़ी का बना हुआ है। मलाया के आदिकालीन मकान तो इतनी ऊँची मचानों पर बने होते थे कि नीचे से हाथी भी आसानी से गुजर सकता था। वहाँ पेड़ के सहारे चबूतरा बना दिया जाता था।

एस्किमो के बर्फीले मकान पाषाण खण्डीय चाकू द्वारा काट काट कर बनाये जाते थे। गृहप्रवेश द्वार पृथ्वी की सतह पर बर्फ को बीच में से काटकर बनाया जाता था। उत्तर पश्चिमी साइबेरिया की चुक्ची जाति के मकान शामियानों के बने होते थे क्योंकि उन्हें आखेट के लिए इधर उधर जाना पड़ता था अतः वे स्थाई मकान न रख सकते थे। प्राचीनकाल में मकानों के अतिरिक्त सार्वजनिक स्थानों का भी निर्माण किया जाता था। भावरी जाति के लोग घरों में खाना पसन्द न करते थे। वे एक स्थान पर बैठकर भोजन किया करते थे। बड़े बड़े सभाभवनों, मण्डपों तथा विश्राम गृहों का निर्माण किया जाता था। संमोन्न लोगों में अतिथियों के सम्मानार्थ विशाल अतिथिगृह तथा धारासभा-भवन भी बनाये जाते थे। इन भवनों में बड़े बड़े सरदार बैठकर पारिवारिक परामर्श किया करते थे। धार्मिक विधि विधानों के सम्पन्न करने के लिए विशेष स्थानों का निर्माण किया जाता था इससे जहाँ संस्कृति का प्रसार हो रहा था वहाँ शिल्पकला का भी ज्ञान विकास हो रहा था।

मोन्टाना की जो जाति के लोग सूर्य-नृत्य करने के लिए विशेष भवन निर्माण करते थे। हवाई जाति ने २२४ फीट लम्बी और १०० फीट चौड़ी पाषाणभित्तिका का निर्माण किया था। वाको इण्डियन्स के मकान आयताकार होते थे। इण्डोनीशिया तथा पोलीनिया में भी साधारणतया सभी मकान आयताकार होते थे। ब्रिटिश कोलम्बिया के मकानों की दीवारें काष्ठ-निर्मित तथा छतें नरकट (Reeds) की बनी होती थीं। ग्रीक मन्दिरों का मुख्य भाग पहले ईंटों का बनाया जाता था परन्तु बाद में वह भी संगमरमर के पत्थर से निर्मित किया गया। रोम तथा ग्रीसवालों ने यह भवन-निर्माणकला मिश्र से ली थी।

ग्रोना जाति में धन सम्पत्ति व अन्य घरेलू सामान कुछ भी न होता था। वे लोग घास के बिछौने पर सोया करते थे। काफी लोग ३, ४ शहतीरों को जमीन पर बिछा कर सो जाया करते थे। चटाई व कम्बल

आदि की उपलब्धि नहीं हुई । एस्किमो लोग घर में प्रकाश करने के लिए सील मछली की चर्बी काम में लाते और बर्फ का चबूतरा बनाकर उस पर सोया करते थे । कामेरन ( Kamerun ) के बन्यागी ( Banyangi ) नीग्रो लकड़ी के बर्तन रखते थे । प्रवेशद्वार के दोनों ओर मिट्टी की तिपाइयां होती थी जो रात्रि को सोने के लिए भी काम में लाई जाती थी । इण्डियन्स में चबूतरा बनाकर लेटेन की प्रथा सर्व सामान्य थी । शिलुक जाति के लोग मिट्टी का चबूतरा बनाते और उस पर बैठा करते थे । अनेक अफ्रीकन जातियां तिपाइयों का प्रयोग किया करती थी । कई अमेरिकन इण्डियन्स जातियां सरपत का बना हुआ दामना भी प्रयोग में लाती थी जो स्नायु निर्मित तागों से बँधा हुआ और तिपाई के साथ लटका रहता था ।

आबादियाँ बसाने के लिए आखेट क्षेत्रों तथा जल आदि की सुविधा का विशेष ध्यान रक्खा जाता था । जहाँ इन की सुविधा न होती थी वहां जनसमुदाय प्रव्रजन द्वारा अन्यत्र वास करना प्रारम्भ कर देता था । मनुष्य को जहां प्रकृति से मुकाबला करना पड़ता था वहां अपने शत्रुओं—भयङ्कर और खूंखार पशुओं से भी टक्कर लेनी पड़ती थी । होपी जाति के लोग लूट खसोट करनेवाले बञ्जारों से सताये जाने पर अपने गृहों का निर्माण ढालुवा जमीन पर किया करते थे । उनकी स्त्रियों को पानी लाने के लिए बहुत ऊँचा जाना पड़ता था । पूर्वी इलाकों के इण्डियन्स अपने ग्रामों की रक्षा के लिए चारों ओर खम्भे खड़े कर दिया करते थे । मावरी जाति में भी ग्राम की आबादियाँ चारों ओर खम्भों से घिरी होती थीं । कई ग्रामों में तो किलाबन्दी का भी प्रबन्ध होता था । एक ही मकान में कई परिवारों के रहने की भी योजना थी । उत्तर पश्चिमी एमेजान इलाके में २०० व २०० से भी अधिक व्यक्ति एक ही मकान में रहते थे ।

## मावरी जाति का सभा भवन

कृषि, नावनिर्माण, जल और स्थल के कौशलपूर्ण कार्य, सैनिक वीरता किलाबन्दी आदि विषयों में न्यूजीलैण्ड की मावरी जाति की प्रसिद्धि किसी से छिपी नहीं । सबसे शानदार इमारत "वारे वकेरो" (Whare Whakairo) थी जो एक मावरी गाँव के सार्वजनिक स्थान पर बनी हुई थी । यह भवन ग्रामीणों के लिए एक प्रकार का सभाभवन था । इस भवन को देखने से प्रतीत होता है कि यह किसी विशेष मस्तिष्क की उपज का परिणाम था ।

## शिल्प व दस्तकारी (Handicraft)

प्राचीन जातियों में कुछ कार्य स्त्रियों तथा कुछ पुरुषों में बंटे होते थे। यह श्रम विभाजन रुचि पर निर्भर न होता था। स्त्री की रुचि कुछ भी हो परन्तु उसे वही काम करना पड़ता था जो उसे सौंप दिया जाता था। कुछ पेशे पुरुषों ने कुछ पेशे स्त्रियों ने अपना लिये थे। यद्यपि चमड़े का व्यवसाय स्त्रियोचित नहीं तथापि हम देखते हैं कि उत्तरीय अमेरिका में चमड़े का प्रायः सम्पूर्ण व्यवसाय स्त्रियों के हाथ में है। उत्तरी अमेरिका में टोकरी बनाने का काम स्त्रियों के हाथ में है परन्तु दक्षिणी अमेरिका में पुरुषों ने इस व्यवसाय को अपना रक्खा है। अरिज़ोना में होपी जाति के पड़ोस में रहनेवाले नवाहो जाति की स्त्रियां इस पेशे को अपनाती थीं पुरुष नहीं।

प्राचीन काल में कई जातियों ने अपने पेशों में योग्यता प्राप्त कर ली थी। कला जाति विशेष की सम्पत्ति समझी जाती थी। न्यूगायना में अनेक जातियां मृत्तिका-पात्रों का निर्माण करती थीं परन्तु यह व्यवसाय उन्हीं ग्रामों में होता था जो बाहर माल भेजने में सहायक होते थे और माल तैयार करने के केन्द्र बने होते थे। कई कलाओं का विस्तार भौगोलिक आधार पर भी होता था। एण्डम से कुछ मील दूर चाको नामक स्थान पर पाषाण काल का एक भी अवशेष प्राप्त नहीं हुआ। इस पाषाण के स्थान पर अस्थियों का प्रयोग किया जाता था।

प्रत्येक दस्तकार को उपकरणों की आवश्यकता जान पड़ती थी अतः *इस युग में अनेक उपकरणों का भी निर्माण हुआ। पश्चिमी योरुप में आज* से एक लाख वर्ष पूर्व सर्वप्रथम पाषाण उपकरणों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। आन्तरक (Core) तथा शल्कल (Flake) व्यवसाय का श्रीगणेश हुआ जिसका सम्पूर्ण वर्णन हमने तृतीय भाग के प्रारम्भ में प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का विशद वर्णन करते हुए किया है। पाषाणमण्डीय शल्कल व्यवसाय धीरे-धीरे नवपाषाणयुग के प्रारम्भ तक जीवित रहा परन्तु ज्यों ज्यों नवीन और परिष्कृत उपकरणों का श्रीगणेश हुआ त्यों त्यों पाषाणनिर्मित उपकरणों की *विलुप्ति होने लगी।*

संस्कृतियों की प्रगति के साथ २ चमड़े का व्यवसाय, कम्बल व नमदा का कार्य, वल्कल वस्त्र निर्माण, टोकरी तथा पात्रों का निर्माण, चित्र-कला, धातु को गलाने का कार्य आदि अनेक धन्धे पृथक् पृथक् रूप से विकसित हुए। पेरू में कताई बुनाई तथा वस्त्र व्यवसाय मछवियों के हाथ में था। पश्चिमी ब्रिटिश कोलम्बिया के लोग सुघड़ बढ़ई होते थे। उत्तरी अमे-

आदि की उपलब्धि नहीं हुई। एस्किमो लोग घर में प्रवाश करने के लिए सील मछली की चर्बी काम में लाते और बर्फ का चबूतरा बनाकर उस पर सोया करते थे। कामेरुन ( Kamerun ) के बन्यांगी ( Banyangi ) नीग्रो लकड़ी के बर्तन रखते थे। प्रवेशद्वार के दोनों ओर मिट्टी की तिपाइयां होती थी जो रात्रि को सोने के लिए भी काम में लाई जाती थी। इण्डियन्स में चबूतरा बनाकर लेटने की प्रथा सर्व सामान्य थी। सिमुक जाति के लोग मिट्टी का चबूतरा बनाते और उस पर बैठा करते थे। अनेक अफ्रीकन जातियां तिपाइयों का प्रयोग किया करती थी। कई अमेरिकन इण्डियन्स जातियां सरपत का बना हुआ ढामना भी प्रयोग में लाती थी जो स्नायु निर्मित तागों से बंधा हुआ और तिपाई के साथ लटका रहता था।

आबादियां बसाने के लिए आखेट क्षत्रों तथा जल आदि की सुविधा का विशेष ध्यान रक्खा जाता था। जहां इन की सुविधा न होती थी वहां जनसमुदाय प्रव्रजन द्वारा अन्यत्र वास करना प्रारम्भ कर देता था। मनुष्य को जहां प्रकृति से मुकाबला करना पड़ता था वहां अपने शत्रुओं—भयङ्कर और खूंखार पशुओं से भी टक्कर लेनी पड़ती थी। होपी जाति के लोग लूट खसोट करनेवाले बञ्जारों से सताये जाने पर अपने गृहों का निर्माण ढालुवां जमीन पर किया करते थे। उनकी स्त्रियों को पानी लाने के लिए बहुत ऊँचा जाना पड़ता था। पूर्वी इलाकों के इण्डियन्स अपने ग्रामों की रक्षा के लिए चारों ओर खम्भे खड़े कर दिया करते थे। मावरी जाति में भी ग्राम की आबादियां चारों ओर खम्भों से घिरी होती थी। कई ग्रामों में तो किलाबन्दी का भी प्रबन्ध होता था। एक ही मकान में कई परिवारों के रहने की भी योजना थी। उत्तर पश्चिमी एमेजान इलाके में २०० व २०० से भी अधिक व्यक्ति एक ही मकान में रहते थे।

## मावरी जाति का सभा भवन

कृषि, नावनिर्माण, जल और स्थल के कौशलपूर्ण कार्य, सैनिक वीरता किलाबन्दी आदि विषयों में न्यूज़ीलैण्ड की मावरी जाति की प्रसिद्धि किसी से छिपी नहीं। सबसे शानदार इमारत "वारे वकैरो" (Whare Whakairo) थी जो एक मावरी गांव के सार्वजनिक स्थान पर बनी हुई थी। यह भवन ग्रामीणों के लिए एक प्रकार का सभाभवन था। इस भवन को देखने से प्रतीत होता है कि यह किसी विशेष मस्तिष्क की उपज का परिणाम था।

## शिल्प व दस्तकारी (Handicraft)

प्राचीन जातियों में कुछ कार्य स्त्रियों तथा कुछ पुरुषों में बंटे होते थे। यह श्रम विभाजन रुचि पर निर्भर न होता था। स्त्री की रुचि कुछ भी हो परन्तु उसे वही काम करना पड़ता था जो उसे सौंप दिया जाता था। कुछ पेशे पुरुषों ने कुछ पेशे स्त्रियों ने अपना लिये थे। यद्यपि चमड़े का व्यवसाय स्त्रियोचित नहीं तथापि हम देखते हैं कि उत्तरीय अमेरिका में चमड़े का प्रायः सम्पूर्ण व्यवसाय स्त्रियों के हाथ में है। उत्तरी अमेरिका में टोकरी बनाने का काम स्त्रियों के हाथ में है परन्तु दक्षिणी अमेरिका में पुरुषों ने इस व्यवसाय को अपना रक्खा है। अरिज़ोना में होपी जाति के पड़ोस में रहनेवाले नवाहो जाति की स्त्रियां इस पेशे को अपनाती थीं पुरुष नहीं।

प्राचीन काल में कई जातियों ने अपने पेशों में योग्यता प्राप्त कर ली थी। कला जाति विशेष की सम्पत्ति समझी जाती थी। न्यूगायना में अनेक जातियां मृत्तिका-पात्रों का निर्माण करती थीं परन्तु यह व्यवसाय उन्हीं ग्रामों में होता था जो बाहर माल भेजने में सहायक होते थे और माल तैयार करने के केन्द्र बने होते थे। कई कलाओं का विस्तार भौगोलिक आधार पर भी होता था। एण्डम से कुछ मील दूर चार्की नामक स्थान पर पाषाण काल का एक भी अवशेष प्राप्त नहीं हुआ। इस पाषाण के स्थान पर अस्थियों का प्रयोग किया जाता था।

प्रत्येक दस्तकार को उपकरणों की आवश्यकता जान पड़ती थी अतः इस युग में अनेक उपकरणों का भी निर्माण हुआ। पश्चिमी योरप में आज से एक लाख वर्ष पूर्व सर्वप्रथम पाषाण उपकरणों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। आन्तरक (Core) तथा शल्कल (Flake) व्यवसाय का श्रीगणेश हुआ जिसका सम्पूर्ण वर्णन हमने तृतीय भाग के प्रारम्भ में प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का विशद वर्णन करते हुए किया है। पाषाणखण्डीय शल्कल व्यवसाय धीरे-धीरे नवपाषाणयुग के प्रारम्भ तक जीवित रहा परन्तु ज्यों ज्यों नवीन और परिष्कृत उपकरणों का श्रीगणेश हुआ त्यों त्यों पाषाणनिर्मित उपकरणों की विलुप्ति होने लगी।

संस्कृतियों की प्रगति के साथ २ चमड़े का व्यवसाय, कम्बल व नमदा का कार्य, वल्कल वस्त्र निर्माण, टोकरी तथा पात्रों का निर्माण, चित्र-कला, धातु को गलाने का कार्य आदि अनेक धन्धे पृथक् पृथक् रूप से विकसित हुए। पेरु में कताई बुनाई तथा वस्त्र व्यवसाय लड़कियों के हाथ में था। पश्चिमी ब्रिटिश कोलम्बिया के लोग सुघड़ बढ़ई होते थे। उत्तरी अमे-

रिका में चमडे का व्यवसाय विशेष उन्नति पर था। खाल से चमड़ा बनाने की विधि उन्हे भली भाँति मालूम थी। चमडे पर नानाविध चित्रकारी भी की जाती थी। एशिया के बन्जारे व फिरन्दर लोग चमडे की बनी बोतलों अथवा सुराइयों का व्यापार किया करते थे। दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीकन नीग्रो शरीर के परिधान के लिए तथा कवच के रूप में चमडे का प्रयोग करते थे। अमेरिकन इण्डियन्स के उपवस्त्र, कमीजें, कालीन आदि सभी वस्तुएँ चमडे की बनी होती थी। भारत तथा अन्य देशों में भी चमडे का प्रयोग किया जाता था।

तुर्कों ने कम्बल तथा नमदे बनाने के कार्य को भलीभाँति अपना लिया था। तिब्बत तथा अन्य फिरन्दर जातियों में पशुपालन के व्यवसाय के कारण ऊन की सम्प्राप्ति प्रचुर मात्रा में थी अतएव वे लोग इसी ऊन से कम्बल व नमदे बनाया करते थ। तुर्कों से यह व्यवसाय चीनियों तथा मंगोलों ने भी अपनाया। तिब्बत के लोग तो ऊन के जूते तथा ऊन की टोपियाँ भी प्रयोग में लाते थे। एशिया और योरुप से बाहर इस व्यवसाय की उन्नति न हो सकी। मिश्र तथा पेरु में यद्यपि भेड़ो को पाला जाता था। परन्तु उनकी ऊन से कम्बल व नमदे बनाने की परिपाटी न थी।

वल्कल वस्त्रो का व्यवसाय अफ्रीका, केन्द्रीय तथा दक्षिणी एशिया में पाया जाता था। अमेरिका, इण्डोनीशिया, पोलीनीसिया में भी यह व्यवसाय पाया जाता था। दक्षिणी कांगो के लोग विशेष उत्सवो पर ही वल्कल वस्त्रो का परिधान करते थे। युगण्डा में प्रतिदिन के व्यवहार में वल्कल वस्त्र प्रयुक्त होते थे। उत्तर पूर्वी बोलविया इस व्यवसाय का केन्द्र था। कमीजें, थैले आदि इसी वल्कल के बने होते थे। पोलीनीशिया में वल्कल वस्त्र व्यवसाय स्त्रियो के हाथ में था।

## कताई-बुनाई (Spinning and Weaving)

जहाँ आस्ट्रेलिया तथा पोलीनीशिया में इस व्यवसाय का सर्वथा अभाव था वहाँ अनेक अफ्रीकन तथा अमेरिकन जातियाँ इस व्यवसाय में भी निपुण समझी जाती थी। ऊन, सूत, रेशम तथा बाल को पतले तागे के रूप में कातना बडे परिश्रम का काम था। एशलुस्ले (Ashluslay) जाति की स्त्रियाँ पेड़ के पत्तो के पतले तन्तु को खुरच कर सुखा देती थी। तत्पश्चात् उसे अपनी जाघो पर रखकर बहुत वेग से घुमा देती थी। न्यूगायना में भी कई पेडों के वल्कल से रस्सी बनाने की प्रथा पाई जाती थी।

प्राचीन विश्व के मानवों ने पत्तों व फूलों की माला ( Whorl ) के साथ साथ एक धुरे का भी आविष्कार किया जिस पर ऊन का धागा लिपट सकता था। इस प्रकार बुना हुआ धागा करघे पर ले जाया जाता और उससे नानाविध वस्त्र तैयार किए जाते। मिश्र, चीन तथा भारत में हाथ के करघों की सम्प्राप्ति हुई है।

## पैरुवियन का करघा व्यवसाय

दक्षिणी अमेरिका के इण्डियन्स तथा समुद्रतटवासी पैरुवियन्स लोग कई प्रकार के वस्त्र बुनने में भारत का मुकाबला करते थे। इस कार्य के लिए मुख्यतया वे रुई और ऊन को प्रयोग में लाते थे। पेरु के इलाके में कई प्रकार की रुई उत्पन्न होती थी। यहाँ की रुई बहुत सुदृढ़ और चिरस्थाई होती थी। इनसे जो धागा तैयार होता था वह भी सुदृढ़ होता था। रुई को धुनने के बाद उसे पेचने के लिए थामने की लकड़ी पर लगा दिया जाता था। यह उपकरण एक मुड़ी हुई लकड़ी होती थी जो एक अँगुली से कम मोटी और एक फुट लम्बी होती थी। इसके एक सिरे पर छोटा छल्ला होता था इसमें रुई को लगा दिया जाता था और बाँये हाथ से उस लकड़ी को रोक थाम की जाती थी। अब रुई को धागे के रूप में धुरे की ओर चढ़ा दिया जाता था। यह धुरा रंगा हुआ होता था। ऊन के धागे को भी रुई के धागे की तरह तैयार किया जाता था। ऊन को पहले पानी से साफ किया जाता था। इसे उतना साफ किया जाता था जिससे खाल का स्निग्ध पदार्थ अलग न हो। प्रत्येक जुलाहा अपने हाथों और अँगुलियों से करघा चलाता था। यह करघा कई बार तो जुलाहे के शरीर से पेटी द्वारा बंधा होता था ताकि पीछे मुड़ने पर इस को कसा जा सके। जब कपड़े के बड़े बड़े टुकड़े तैयार हो जाते थे तो दूसरा करघा इस्तेमाल में लाया जाता था। करघे कई प्रकार के होते थे। एक फ्रांसीसी विशेषज्ञ एम वैसेंट ने कई नमूनों की जाँच करने के बाद यह परिणाम निकाला कि नील को भी प्रयुक्त करने की प्रथा प्रचलित थी जो निम्नश्रेणी के लोग होते थे वे निम्नकोटि की ऊन को और साम्राज्य के अमीर व्यक्ति बढ़िया ऊन को व्यवहार में लाते थे। मारकोई का मत है कि रंगाई की यह पद्धति पंजाब में भी प्रचलित थी।

## पात्र निर्माण ( Pottery )

मिट्टी को पका कर पात्र बनाने का काम भी प्राचीन जातियों का एक प्रमुख व्यवसाय था। जब तक लोगों का जीवन आखेट प्रिय तथा अस्थिर था तब तक यह व्यवसाय बिल्कुल नहीं पनपा क्योंकि प्रजनन प्रक्रिया में

मिट्टी के पात्रों के टूट जाने की भी सम्भावना हो सकती थी। सर्वप्रथम कच्ची मिट्टी के पात्र बनाये गये। जब आखेट व्यवसाय की समाप्ति पर छोटी छोटी बस्तियाँ आबाद हुईं तो इस व्यवसाय को भी प्रोत्साहन मिला। यही कारण है कि श्रोना तथा कतिपय आस्ट्रेलियन जातियों में—जिनका मुख्य पेशा आखेट था—मृतिका पात्रों का अभाव पाते हैं। पात्रों के निर्माण के लिए अच्छी मिट्टी को ढूंढा जाता था। यदि मिट्टी में रेत मिली होती थी तो उसे चिकना बनाने के अनेक उपाय निकाले गये। अच्छी मिट्टी पाने के लिए पात्र निर्माता दूरस्थ प्रदेशों का भ्रमण करते थे। जहाँ विशुद्ध मिट्टी प्राप्त न होती थी वहाँ उसमें कुछ कुछ मिलावट भी कर दी जाती थी। मिश्र-वासियों ने बिल्लौरी पत्थर ( Quartz ), चीनियों ने एक विशेष धातु तथा ग्रीकवासियों ने चूने की मिलावट की। नाइगेरिया के नीग्रो कुछ कुछ रेत भी मिला देते थे। मिट्टी बनाने का यन्त्र ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मिश्र में आविष्कृत किया गया था। वहाँ से यह कला योरप में आई। पात्रों को हाथ से बनाने के एक या दो ही उपाय बर्ते जाते थे। या तो मिट्टी के छोटे ढेर को पात्र की आकृति के अनुसार बना लिया जाता था अथवा चक्कर देकर पात्र का आकार बनाया जाता था। दक्षिण केन्द्रीय कैलिफोर्निया में मोनो तथा योकुत जाति की स्त्रियाँ एक गेंद के रूप में मिट्टी के ढेर को हाथ से घुमाती जाती थी और पात्र बनाती जाती थी। जिस प्रकार टोकरियाँ कई आकार प्रकार की निर्मित हुआ करती थी उसी प्रकार मृत्तिका-पात्र भी कई आकार प्रकार के होते थे। खाना खाने के बर्तन, पानी भरने के बर्तन, धार्मिक विधिविधानादि के पूजापात्र, तम्बाकू पीने के हुक्के आदि सभी बनाये जाते थे। उत्तरीय चाको (Chaco) में स्त्रियाँ परिवार के आभूषण मिट्टी के बर्तनों में रक्खा करती थीं। जहाँ तक मिट्टी के पात्रों पर चित्रकारी करने का सम्बन्ध है— यह विषय कला के अन्तर्गत वर्णित किया गया है। प्यूब्लो इण्डियन्स की भाण्डकला के सम्बन्ध में कुमारी बन्जेल ने बर्तनों के बनाने, पॉलिश करने और मोड़ने आदि के तरीकों पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। उसका कथन है कि इस सारी प्रक्रिया में केवलमात्र एक चाकू तथा थोड़े पत्थर का सहारा लिया जाता था। जब बर्तन तैयार होनेवाला होता था तो उसी गीली मिट्टी पर पॉलिश कर दिया जाता था और धरातल को एक चिकने पत्थर से घिसा दिया जाता था। पत्थर से पालिश का काम बड़ी चतुराई से लिया जाता था। धरातल पर किसी प्रकार की धार न पड़े इसका विशेष ध्यान रक्खा जाता था और कहीं निशान पड़ जाता तो मिट्टी की एक और तह फिर से चढ़ाई जाती थी। एस्किमो लोग रंग पर बहुत जोर देते थे और होपी लोग रंग की अपेक्षा आकार

प्रकार पर विशेष ध्यान देते थे। एस्किमो लोग लाल, काला और धारीदार नमूना रक्खा करते थे। मिस वन्ब्रेन का कथन है कि सन इल्लिफान्सो में जूलियन तथा उसकी बहिन मरिया ने कला सम्बन्धी जो सुधार किये वे सचमुच प्रशंसनीय थे। इनको अपने नमूनों के लिए कई पुरस्कार भी मिले। होपी में एक उल्लेखनीय कलात्मक सुधारणा हुई।

## लकड़ी पर खुदाई का काम ( Wood carving )

काष्ठ निर्मित पदार्थों पर खुदाई द्वारा चित्र बनाये जाते थे। तिलंगित, हैडा, क्वेनाकूला, त्सिम्शियन तथा क्वाक्युटल जातियों की मुख्य कला लकड़ी की कारीगरी थी। लाल और पीले देवदार के वृक्ष की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। ये लोग तख्तों के बने हुए लम्बे मकानों में रहा करते थे और उनकी छत भी तख्तों से तैयार की जाती थी। तिलिंगत जाति को छोड़कर अन्य सभी जातियों में वर्तन तथा टोकरी बनाने की कला का प्रभाव था। पुरुष लकड़ी के ऊपर जो नमूने बनाते थे उन्हीं को देख देखकर चिलकट जाति की स्त्रियां कम्बल पर चित्र काढ़ा करती थी। हैडा लोग उदविलाव की आकृति से मिलता जुलता एक डण्डा तैयार करते थे जिसका ऊपरी भाग मानवीय आकृति का और दोनों दिशाओं से बने हुए कान पशु आकृतिवाले होते थे। नथने लम्बे तथा चक्राकार होते थी। इस प्रकार मछली, बाज, गीदड़ तथा भिन्न भिन्न प्रकार के पशु आकृतिवाले चित्रनिर्मित किये जाते थे।

पयूलोइण्डियन्स सबसे उत्कृष्ट कारीगर माने जाते थे। मैलानीसिया में झोंपड़ियों को, नावों, अस्त्र शस्त्रों तथा पात्रों को अलंकृत किया जाता था। पश्चिमी अफ्रीका में दरवाजों और काष्ठनिर्मित उपकरणों पर भी अनेक चित्र खुदे होते थे। मगबेटू (Mangbettu) जाति में विशाल तिपाई पर सुन्दर खुदाई की जाती थी। अजतों ( Aztee ) जाति के लोग लकड़ी के उपकरणों पर खुदाई का काम करते थे। टोम टोम (Tomtoms) जाति के लोग भालों तथा अन्य अस्त्रों पर सुन्दर खुदाई किया करते थे।

## धातु शोधन (Metalurgy)

जब ताम्बा, कांस्य तथा लोह का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो उन्हें शुद्ध करने की भी विभिन्न विभिन्न प्रणालियां प्रचलित हुईं। मिश्र तथा बेबीलोनिया में ईसा से ४००० वर्ष पूर्व ही धातु प्रयोग अथवा धातुशोधन का कार्य प्रारम्भ हो गया था। सबसे प्रथम ताम्बे का प्रयोग आभूषण बनाने के लिए किया गया। पाषाण को अब भी कई दृष्टियों से ताम्बे से अधिक महत्व प्रदान किया जाता था अतएव ताम्बे के प्रयोग के साथ साथ पाषाण

का प्रयोग भी जारी रहा। परन्तु जब कास्य का उपयोग होने लगा तो कास्य की श्रेष्ठता के कारण पाषाण का प्रयोग समाप्तप्राय हो गया। कास्य ताम्बे और टिन का सम्मिश्रण ही है। ताम्बे के परिशोधन के साथ साथ कास्य का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। बैबीलोनिया में कांस्ययुग का प्रारम्भ ईसा से ३००० वर्ष माना जाता है। पेरु और बैबीलोनिया इस व्यवसाय के केन्द्र माने जाते थे। कास्य में ९० प्रतिशत ताम्बा तथा १० प्रतिशत टीन मिश्रित होता था। यह अनुपात विभिन्न विभिन्न देशों म विभिन्न रूपों में पाया जाता था। पेरुवियन लोग टीन का मिश्रण केवल ६ प्रतिशत तक ही किया करते थे। लोहे में चूंकि अधिक कठोरता पाई जाती है अतएव बाद में लोहे को ताम्र और कांस्य से अधिक महत्व प्रदान किया गया। लोहे के उपकरण व अस्त्रशस्त्र अधिक सुदृढ़ बनने थे। कृष्ण सागर के दक्षिणी प्रदेशों में लोह उपकरणों का निर्माण ईसा से १५००वर्ष पूर्व प्रारम्भ होगया था।

## व्यापार और आवागमन (Trade and Transportation)

प्राचीन काल में एक देश से दूसरे में आवागमन के साधनों के साथ-साथ व्यापार व वाणिज्य भी प्रारम्भ हो गया। आदान प्रदान तथा क्रय विक्रय की पद्धतियां जारी थी। जातियां एक माल देकर बदले में दूसरा माल लेती थी। लंका की वेड्डा जाति तो 'शान्त-व्यापार' भी करती थी। वे शिकार को लाकर रात को सुनार की झोंपडी के आगे डाल देते थे और उन्हें प्रातःकाल उसके बदले में नोकदार धनुष वहां रक्खे हुए मिलते थे। इसके लिए वे कुछ मांगते न थे परन्तु चुपचाप ही यह सौदा हो जाया करता था। कुछ ऐसे उपहार भी दिये जाते थे जिन्हें निश्चित अवधि तक लौटा देने की प्रथा थी। ब्रिटिश कोलम्बिया के तट पर यह प्रथा मनुष्य अपनी मान, प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए इसे आवश्यक समझते हैं। मावरी सरदार अपनी शान रखने के लिए सम्पत्ति का बहुत सा भाग सहभोज (Pollatch) आयोजित करके बांट देते थे। इस प्रकार आदान प्रदान विधि द्वारा चाहे सम्पत्ति उन्हें वापिस मिल जाती थी, परन्तु उनकी मान प्रतिष्ठा बनी रहती थी। वे लोग अपना व्यापार लाभ की दृष्टि से न करते थे। लेसू (Lesu) में अपने धन के प्रदर्शन के लिए एक अमीर यदि सूअर को अधिक दामों में खरीद लेता था। अफ्रीका के कई प्रदेशों में एक निश्चित दिवस पर हज़ारों खरीदार और विक्रेता एकत्रित होकर व्यापार किया करते थे। दक्षिण पश्चिमी कोनो में बेकुबा (Bakuba) जाति के लोग प्रति तीसरे दिन बाजार आयोजित किया करते थे। वोल्टा जिले से लोबी (Lobi) लोगों

में पुरोहितों के हाथ मण्डी की स्थापना की जाती और देवी देवताओं को उसका संरक्षक समझा जाता। नमक, पशु, धातु आदि की बिक्री हुआ करती थी। विवाह के समय कन्याधन पशुरूप में दिया जाता था। सिक्के का प्रचलन अभी तक नहीं हुआ था। बेबीलोनिया में सिक्के की सम्प्राप्ति ईसा से ७०० साल पूर्व हुई पश्चिमी एशिया में लीडिया के राजाओं ने अपने यहाँ सिक्कों का मूल्य निर्धारण किया था।

पूर्व पाषाणयुग में पशुपालन का कार्य प्रारम्भ न होने से पशुओं पर चढ़ने व माल को ढोने की प्रथा न थी। मेरीकोपा (Maricopa) जाति की स्त्रियाँ अपने सिर पर माल ढोकर ले जाया करती थी। पोलीनीशिया में कन्धे पर एक डण्डे द्वारा भारवाहन करते थे।

ईसा से ३३०० वर्ष पूर्व बेबीलोनिया के लोगों ने पहिए का आविष्कार किया था। वहाँ से इसका विकास मिश्र, भारत, चीन तथा योरुप में हुआ अफ्रीकन नीग्रों, एशियाई तथा ओसीनियन लोगों को इसका ज्ञान न था। प्राचीनकाल में पुलों का भी निर्माण किया जाता था। ये पुलें शहतीरों द्वारा तैयार की जाती थी। रास्ता में पेड़ काटकर उससे नदी का पुल बनाया जाता था। कांगो के बड़े बड़े जंगलों में इस प्रकार की अनेक पुलें थी। पेड़ों से काटे गये शहतीर छोटे बड़े सभी आकार प्रकार के होते थे।

जलयात्रा—जिन प्रदेशों में बड़ी बड़ी नदियाँ थी वहाँ नौकाओं व डुगियों द्वारा जलयात्रा की जाती थी। मिसूरी (Missouri) नदी को पार करने के लिए हिदात्सा लोग काष्ठनिर्मित ढाँचे पर भैंस की खाल को लपेट देते और उसमें नाव का काम लिया करते थे। एस्किमो लोग शिकार के समय खाल की बनी हुई नावों का प्रयोग करते थे। ब्रिटिश कोलम्बिया में भी शहतीरों की बनी हुई नावें प्रयोग में लाई जाती थी। ओसीनिया में खजूर के पेड़ की बनी चटाई से भी नदी में आवागमन किया जाता था।

## मनोविनोद (Amusement)

बच्चों के धनुर्विद्या तथा निशाना लगाना भी सिखाया जाता था। लड़कियों को खाना बनाना तथा अन्य घरेलू कार्य सिखाये जाते थे। सबा की वेड्डा जाति में बच्चों को दानों से शहद एकत्रित करना सिखाया जाता था और अफ्रीकन बच्चे फरा बनाने में निपुण होते थे। मावरी जाति के बच्चे घासों की किलाबन्दी के नमूने बनाया करते थे। सैमोन (Samon) जाति की लड़कियाँ जमीन पर पत्थर रख देतीं और एक दूसरे पत्थर को हाथ से ऊपर फेंकतीं और उसी हाथ से नीचे के पत्थर को

उठाकर ऊपर फेंके गये पत्थर को पकड़ लेनी थी। चाकी जाति की लड़कियाँ आँख मिचौली भी खेला करती थीं। ओना बच्चों को प्रारम्भ में ही कुश्ती सिखाई जाती थी। एस्किमो में मुक्केबाजी का खेल भी खेला जाता था। ओना तथा होपी लोगों में लम्बी दौड़ लगाई जाती थी। दक्षिण पश्चिमी इण्डियन्स बच्चे भी दौड़ लगाया करते थे।

कई आस्ट्रेलियन जातियों में रस्साकशी का खेल भी खेला जाता था। पोलीनीशिया में युवकों को तैरने का भी बहुत शौक था। मावरी लोग तैरने तथा नाव चलाने में प्रसन्नता अनुभव करते थे। वे जल की वेगवती धारा को तेजी से लाघ सकते थे तथा बहुत ऊँचाई से छलांग भी मार सकते थे। ये कुशल तैराक माने जाते थे।

जूआ :—( Gambling ) नील नदी से नाइजेरिया तक वास करनेवाले सभी नीग्रो लकड़ी के तख्ते पर खेली जानेवाली "मंकाला" ( Mancala ) नामक खेल- के बहुत शौकीन थे। यह खेल कौड़ियाँ फेंककर खेला जाता था। अमेरिकन इण्डियन्स भी जूए के बहुत शौकीन थे। पासा फेंकने के खेल सेरी कोवा तथा इदाहो शोशोन जातियों में भी खेले जाते थे। जब कोई अतिथि आता था तो उसके मनोरंजन के लिए सारी रात जूए का खेल खेला जाता था। आस्ट्रेलिया में पहेली द्वारा प्रश्नों का समाधान करने की प्रथा भी प्रचलित थी। शिलुक (Shilluk) जाति में जब कोई प्रश्नकर्ता श्रोताओं के सम्मुख पहेली का जवाब न पाता तो वह अपने आपको विजयी समझता था।

## नृत्य (Dance)

नृत्य का विधान विशेष उत्सवों, धार्मिक विधि-विधानों व पूजादि के अवसर पर किया जाता था। नृत्य को मनोरंजन के साथ साथ धार्मिकरूप भी प्रदान किया जाता था। हवाई जाति के पुरोहित पवित्र भवन में नृत्य (Haka) की शिक्षा देते थे। छात्रों को कठोर ब्रह्मचारी और संयमी बनना पड़ता था। मावरी लोग नृत्य (Haka) को पवित्र रूप देते थे। यदि गायन में कुछ अशुद्धि हो जाती तो उसे भयंकर अपशकुन समझा जाता था। अफ्रीकन राजा अपनी प्रजा के साथ नाचा करते थे। स्त्री पुरुष कभी कभी एक साथ भी नृत्य किया करते थे। अमेरिकन इण्डियन्स सैनिकों के पृथक पृथक् नृत्य हुआ करते थे। नेवदा तथा उताह जातियों में स्त्री पुरुष वर्तुलाकार खड़े होकर एक साथ नृत्य किया करते थे। शिलुक जाति के स्त्री पुरुष नृत्य करते समय एक दूसरे को छूते न थे। वे ढोल के चारों ओर पृथक्

पृथक् वृत्त बनाकर घूमते जाते थे। उत्तरी साइबेरिया की याकूत (Yakut) तथा योकागीर (Yokaghir) जातियों के स्त्री पुरुष एक दूसरे की बाँह में बाँह डालकर गोल घेरे में नाचा करते थे। कई आस्ट्रेलियन जातियों में मनुष्य नृत्य के समय अपने शरीर तथा सिर को पत्तों से अलंकृत करते थे। पशु और पक्षियों का रूप धारण किये हुए अनेक व्यक्ति नृत्य का उपक्रम करते और बीच बीच में नानाविध आवाजें बोलकर जनता को मन्त्र मुग्ध किया करते थे। कभी कभी नाटकों का भी आयोजन किया जाता था। दक्षिणी अफ्रीका में कई साम्प्रदायिक उत्सव भी रचाये जाते थे। गिलुक लोग नृत्य को धार्मिक रूप न देकर मनोविनोद का साधन समझते थे। जाति का सरदार जनता को नृत्य के लिए आमन्त्रित करता था।

## चित्र संकेत कला (Pictographs)

'चित्र संकेत' लेखन विधि को कला मानने के सम्बन्ध में मानव शास्त्रियों के विभिन्न-विभिन्न मत हैं। कला का उद्देश्य सौंदर्य का प्रजनन है जो 'चित्र संकेत' लेखनविधि द्वारा पूरा नहीं होता। अतः इसे कला का रूप तो नहीं दिया जा सकता परन्तु क्योंकि इन चित्रों द्वारा पवित्र मानसिक स्फूर्ति प्राप्त होती है अतः इसे कला का रूप देना भी अनुपयुक्त नहीं।

दक्षिणी अफ्रीका में दहोमे (Dahomey) का प्रत्येक राजा अपने महल की दीवार पर अपने पूर्ववर्ती राजाओं के समस्त इतिहास को अथवा उनके शाही फरमानों को रंगीन चित्रों में प्रदर्शित करता था। कहीं कहीं शत्रु राजाओं को नीचा दिखाने के लिए उनका सिर एक फंदे में फंसा हुआ दिखाया जाता था जिससे प्रतीत होता था कि दहोमे का राजा उनसे घृणा करता है। उत्तरी साइबेरिया तथा ब्रिटिश कोलम्बिया के अन्तवर्ती प्रदेशों में भी इस प्रकार के अनेक चित्र मिले हैं।

## साहित्य (Literature)

साहित्य एक ऐसी कला है जो भाषा रूपी माध्यम द्वारा अभिव्यक्त होती है। यह भाषा रूपी माध्यम, चित्रकार के चित्रविचित्र रंगों तथा गायक के मधुर शब्दों से बिल्कुल भिन्न है। साहित्य कला द्वारा मनुष्य एक दूसरे के सम्पर्क में आता तथा अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाता है। श्रोतागणों को प्रभावित करने के लिए मनुष्य ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो साहित्य को जन्म देती है।

साहित्य में शैली का विशेष स्थान होता है पुरातन ग्रीक तथा रोमन कविता में अनुप्रास और यमक का अभाव है परन्तु उसमें ऐसे नियमित छन्दों

का प्रतिबन्ध अवश्य लागू होता है जो उच्चारण पर नहीं अपितु अक्षरों की संख्या पर आधारित होते हैं। अरबी कविता में अनुप्रास यमक के प्रयोग के साथ साथ स्वरों की एकता का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। स्पैनिश कविता में भी स्वरों की एकता विशेष महत्व रखती है परन्तु अंग्रेजी कविता में इसकी महत्ता नहीं। मंगोल, तुर्क तथा फिनो उग्रियन्स भाषाओं में स्वरों की एकता पाई जाती है। मिस्री तथा हिब्रू (Hibrew) साहित्य में पुनरावृत्ति पाई जाती है। नवाहो तथा एस्किमो कविता में पुनरावृत्ति दोष पाया जाता है। हवाई भाषा में वाक्शैली के परिवर्तन के साथ साथ विचारों की पुनरावृत्ति सर्वसामान्य रूप में उपलब्ध होती है। दक्षिणी अफ्रीका के साहित्यिक रूपों में पहेलियों की प्रमुखता पाई जाती थी। एस्किमो जब अपनी 'कयाक' पर शिकार के लिए निकलता तो गाने गाया करता था जिसमें मानवीय चरित्र सम्बन्धी कहानियों का उल्लेख होता। पोलीनिशियन का सम्पूर्ण साहित्य कहानियों और पहेलियों से भरा हुआ होता था।

## संगीत (Music)

लय तथा स्वर की एकता में भेद हो जाने से संगीत प्रणाली में विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। ग्रीक संगीत सप्त स्वर पर आधारित है परन्तु चीनी संगीत पचस्वर पर ही चलता है। आस्ट्रेलिया तथा न्यू गायना के आदिवासी लोग लकड़ी के अण्डाकार टुकड़ों को दोनों सिरों पर नोकीला बनाकर रस्सी से लटका लेते और उसे लम्बे धुरे के चारों ओर घुमाते तो उसमें गड़गड़ाहट का शब्द पैदा होता था। यही उनका वाद्ययन्त्र था इस गर्जनकारी वाद्ययन्त्र (Bull Roarer) का प्रयोग वे तभी करते थे जब एक बालक को यौवन सम्प्राप्ति की दीक्षा दी जाती थी। इस वाद्य यन्त्र का गर्जनकारी शब्द उसे प्रेतात्माओं की आवाज की याद दिलाता था। प्युब्लोइण्डियन्स इसी उपकरण का प्रयोग वर्षा सम्बन्धी विधि विधान के समय किया करते थे। परन्तु उत्तरी अमेरिका में इसे एक खिलौना ही समझा जाता था। मैक्सिको तथा दक्षिणी अमेरिका में भी एक प्रकार के नगाड़े (Tom-tom) का प्रयोग किया जाता था। पेरु, बोलिविया तथा ब्राजील में भी वाद्य यन्त्रों (Pan-pipes) का प्रयोग किया जाता था। उत्तरी अमेरिका तथा साइबेरिया में खंजड़ी (Tambourine) का प्रयोग किया जाता था।

---

# जनजाति-समुदाय

## जनजातीय निर्माण व संगठन (Tribal Organisation)

भारत में जनजाति, वर्ण, सम्प्रदाय तथा वर्ग आदि विभिन्न विभिन्न सामाजिक श्रेणियां पाई जाती है। भारत के प्रसिद्ध मानव शास्त्री डा॰ मजूमदार ने जनजाति की अत्यन्त रोचक एवं सुन्दर परिभाषा की है। उनके मत में जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक ऐसा समूह है जो सामान्य नाम धारण किये हुए है। जनजाति के सभी सदस्य सामान्य भूमि पर वास करते है और सामान्य भाषा भाषी तथा विवाह की वर्जित प्रथाओं, और कारोबार सम्बन्धी सामान्य नियमों का पालन करते हैं। वे आदान प्रदान सम्बन्धी पारम्परिक व्यवहार को विकसित करते रहते हैं। साधारणतया जनजाति अन्तर्विवाही सिद्धान्त का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते है। कई गोत्र मिलकर जनजाति की रचना करते है। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त सम्बन्ध जुड़ा होता है। जनजातियों में या तो अनेक लघुवर्ग एक वृहत्वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं अन्यथा उनका वंशपरम्परागत जनजातीय सरदार होता है। इस दृष्टि से जनजाति को एक राजनैतिक संघ भी माना जाता है। प्रत्येक जनजातीय विभाग की वृद्धजनों द्वारा निर्मित परामर्शदातृ समिति (Council of elders) होती है जो वंशानुगत सरदार को जनजातीय मामलो में उचित सहायता पहुंचाती है। मि॰ डब्ल्यू जे॰ पैरी ने जनजाति की संक्षिप्त परिभाषा करते हुए लिखा है कि जनजाति सामान्य भाषा भाषी तथा सामान्य प्रदेशीय वर्ग है। जनजाति तथा नीच वर्ण में प्रमुख भेद यह है कि जनजाति अन्तर्विवाही होती है परन्तु नीच वर्ण में अन्तर्विवाही नियम का दृढ़ता से पालन नहीं होता। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि दो व दो से अधिक नीच वर्ग एक ही सामाजिक वर्ग के रूप में अन्तर्विवाही नियम को तोड़कर सम्मिलित होगए परन्तु ऐसी भी जातियां हैं जिन्होंने अन्तर्विवाही नियम का पालन किया। प्रारम्भ में जनजातियां थी भी अन्तर्विवाही परन्तु बाद में धीरे-धीरे अन्त-र्जनजातीय विवाह होने के कारण इनमें बहिर्विवाही प्रथा जारी हो गई। डा॰

रिवर्स ने जनजाति की परिभाषा में भौगोलिक तत्व-पर्यात् सामान्य निवास स्थान को आवश्यक नहीं माना। उनका विचार है कि बहुत सी जनजातियों में फिरन्दर रहने की प्रवृति होती है अतः हम उनका निवासस्थान सामान्य नहीं मान सकते। यह ठीक है कि जनजातीय जीवन के साथ फिरन्दर जीवन का सम्पर्क है परन्तु फिर भी एक विशिष्ट स्थान के कारण एक जनजाति की पहचान करना सम्भव है। अतः रिवर्स का मत भी ठीक नहीं। डा० रिवर्स की परिभाषा इसलिए भी मान्य नहीं हो सकती क्योंकि वे जन जातियों की एकता केवलमात्र युद्ध के लिए ही स्वीकृत करते है, वैसे नहीं। इसके विपरीत हम देखते है कि बहुत सी जनजातियां ऐसी है जिनमें कोई जनजाति सरकार नहीं होती और न हीं कोई मुखिया होता है और यह भी ठीक नहीं कि जितने भी युद्ध होते थे वे सब अन्तर्जनजातीय थे। प्रो० ब्राऊन का मत है कि एक ही जनजाति के दो भागों के पारस्परिक युद्ध हुए अतएव डा०रिवर्स का मत उचित प्रतीत नहीं होता। प्रारम्भ से ही जनजाति वर्ण की ओर क्रमिक तथा अविवेक पूर्ण रीति से परिवर्तित होती चली आई है। आज के प्रायः सभी निम्नकोटि वर्गों का कोई न कोई जनजातीय मूल अवश्य है। रिजले ने उन चार प्रणालियों का उल्लेख किया जिनके द्वारा जनजातियां वर्गों में परिवर्तित होती गई। प्रथम यह कि मूल जातियों के प्रमुख व्यक्ति जैसे जैसे स्वतन्त्र भूमिपति बन बैठे वैसे वैसे उन्होंने अपना नाम उच्चवर्ग में लिखा लिया। सबसे प्रथम जनजाति सरदारों ने अपने को राजपूत लिखवाया तत्पश्चात् ब्राह्मण पुरोहित की तलाश की गई जो उनके वंश का सम्बन्ध उसी उच्चवर्ग के साथ जोड़ दे जिससे उन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है। दूसरा यह कि अनेक मूलवासियों ने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो को स्वीकार किया इससे वे अपना जनजातीय नाम खोते गये। तीसरा यह कि मूलवासियों की समूची जनजाति ने अथवा जनजाति के बहुत बड़े भाग ने अपने आप को हिन्दू लिखाया। नवीनवर्ण के रूप पर यह जनजाति अपने नाम से पहचानी जाने लगी। चौथा यह कि मूलवासियों की सम्पूर्ण जनजाति धीरे धीरे हिन्दू बन गई परन्तु उसने जनजातीय पद का परित्याग न किया। इसके अतिरिक्त एक पांचवी प्रणाली भी स्वीकृत की गई जिसके अनुसार मूलवासी जनजाति के प्रत्येक सदस्य ने एक विशिष्ट वर्ण के उपनाम व गोत्र को अपना लिया और जनगणना के समय उसी विशिष्ट वर्ग के सदस्य के रूप में अपना नाम लिखाया। धीरे धीरे उसी वर्ण विशेष से अन्तर्विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। अन्ततोगत्वा वह उसी वर्ण का स्थाई सदस्य माना गया। निर्धनता के कारण ब्राह्मणों में भी कुछ कमजोरियां आ गई और उन्होंने स्वयं ही इन जनजातियों के आदिस्रोत को उच्च बतला कर

धार्मिक विधिविधानों द्वारा उन्हें हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया। पनामऊ तथा मिर्जापुर के खारवारों का दावा है कि वे उच्च कुल से सम्बद्ध हैं अतएव वे यज्ञोपवीत भी पहनते हैं। दीनाजपुर, रंगपुर, जलपाईगुरी तथा कूचविहार के पोलिया अपना उद्गम क्षत्रिय कुल से बतलाते हैं और अपने को राजवंशी कहते हैं।

अभी हाल ही में प्रगतिशील सांस्कृतिक वर्गों के सपर्क में आने से अनेक जनजातियाँ—जो पर्वतीय प्रदेशों में अविच्छिन्न रूप से रहती थीं—बिखर गईं। इससे उनकी प्रादेशिक अथवा भौगोलिक एकता समाप्त हो गई है। परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर्गत अब यह सम्भव भी नहीं रहा कि जनजातियाँ एक ही स्थान पर रह पावें। भारतीय सामाजिक संगठन के आधार पर उच्च वर्ग तथा जनजातियाँ दो विरोधी श्रेणियाँ हैं। इन दोनों का कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं परन्तु इन दोनों के मध्य हम उन वर्गों को रख सकते हैं जो या तो जनजाति से वर्गों में परिवर्तित हो गये अथवा उच्चवर्ण होते हुए विधि विधानों को न करने अथवा धर्मत्यागी होने से नीच पद को प्राप्त हो गये।

## जनजाति की सामाजिक स्थिति का विवेचन (Tribal Demography)

ज्यों ज्यों जनजातियों की रचना में प्रति दिन परिवर्तन होता जा रहा है त्यों त्यों उनकी सामाजिक स्थितियां भी परिवर्तित हो रही हैं। बहुत सी जनजातियां तो ऐसी हैं जो मानुवंशीय हैं परन्तु अब मानुवंशीय से पितृवंशीय होती जा रही हैं। जनजातियों की भलाई के लिए राज्य की ओर से पर्याप्त प्रयत्न किये जा रहे हैं परन्तु फिर भी उन्हें हीन भावना (Inferiority Complex) के कारण पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। 'दक्षिण भारत की नीच जातियों की सर्वत्र यही दशा है। उन्हें कृषि के लिए अच्छी जमीनें नहीं मिलती और पशु चराने के लिए अच्छे चरागाह नहीं दिये जाते। उनके लिए पानी, बिजली, चिकित्सा, शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध नहीं किया जाता। हैदराबाद तथा मद्रास राज्य यथा शक्ति उनके लिए बहुत कुछ कर रहे हैं परन्तु उनमें से कुछ जनजातियां तो विलुप्त हो होती चली जा रही हैं।

मध्यभारत के अन्तर्वर्ती प्रदेशों की जनजातियां भारत के पूर्वीय समुद्र-तट से लेकर कच्छ तथा गुजरात के पश्चिमी समुद्र तट तक फैली हुई हैं। बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र तथा बम्बई तक इन जातियों की शृंखला चली गई है। इनमें आदिवास में अनेक सामाजिक परिवर्तन होते रहे हैं। गोंडों का भारतीय इतिहास में प्रमुख स्थान है।

वे अनेक उपजातियों में बंटे हुए हैं। बैगा जनजाति में अब भी अस्थायी खेती होती है। उन भीलों ने जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व है ऐसे रीति रिवाज ग्रहण किए हुए हैं जो अज्ञान और अविवेकपूर्ण हैं। उनके उत्सव तथा विधिविधान हिन्दुओं जैसे हैं। उनकी सम्पूर्ण संस्कृति पर हिन्दुत्व की छाप है। वे मुर्दों को गाड़ने तथा कब्र पर पाषाण शिला स्थापित करते हैं वे पितृसत्तात्मक पद्धति को माननेवाले हैं। कुछ समय पूर्व स्त्रियों की हत्या भी किया करते थे। दूसरी ओर छोटानागपुर की जातियाँ हैं। मुण्डा, उरांव, हो, सन्थाल इत्यादि— जिनमें मुन्डा तथा उरांव और संथालों ने ईसाइयत को अपना लिया है। ये सब पितृसत्तात्मक सूर्यचन्द्रवादी जनजातियाँ हैं। उनमें भौतिक संस्कृति का अत्यधिक विकास नहीं। यद्यपि वे शिकार तथा मछली पकड़ने के लिए लकड़ी के फन्दे तथा उपकरण आदि बनाते हैं तो भी उनकी भौतिक संस्कृति इतनी उच्च नहीं। इनमें ग्राम-शासन पद्धति अतीव सुसंगठित है। इनके अनुसार २० व २० से अधिक ग्राम एक ही संघ में सम्मिलित होते हैं तथा वे सब धार्मिक मुखिया के अन्तर्गत होते हैं जिन्हें 'मुण्ड' व 'सभी' कहते हैं और जो सभी दीवानी, फौजदारी तथा राजनैतिक मामलों का निपटारा करते हैं। इन में बहुतों ने अस्थायी खेती (Shifting Agriculture) को छोड़कर स्थाई खेती प्रारम्भ कर दी है। अब बहुत से लोग तो छोटा नागपुर की खानों में काम करने लग गये हैं जिससे उनका अपना मुख्य पेशा समाप्तप्राय सा हो गया है। इसके अतिरिक्त कोर्वा जाति को लीजिए। ये लोग किसी समय में अच्छे शिकारी माने जाते थे परन्तु अब यह जनजाति ह्रास की ओर जा रही है। वे लोग अब भी नग्न रहते अथवा बहुत कम कपड़े पहनते हैं। मिर्जापुर की अनेक जन जातियों का बिहार, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी भारत की अनेक जनजातियों से सांस्कृतिक सम्मिश्रण होता रहा है।

**अन्त: समीकरण** ( The stage of Assimilation ):—जब जनजातियां प्रगतिशील सांस्कृतिक सम्पर्क में आती हैं तो वे सर्व प्रथम सांस्कृतिक चिन्हों (Cultural traits) को अपनाती हैं। वेशभूषा, आहार विहार, धार्मिक विधिविधान, शास्त्रोक्त रीतियों और विवाह सम्बन्धी नियमों को ग्रहण किया जाता है। तत्पश्चात वे जनजातियां या तो उस संस्कृति में विलीन हो जाती हैं अन्यथा सांस्कृतिक गुणों को अपनाने लगती हैं। जन-जातियों का वर्गों में परिवर्तित हो जाना भी इसी सिद्धान्त का परिणाम है। जो वर्जित प्रथायें उच्च संस्कृति में विद्यमान होती हैं उन्हें वे जनजातियां भी अपना लेती हैं और यह परसंस्कृति ग्रहण (Acculturation) की क्रिया जारी रहती है। उच्च संस्कृति के उपकरण, औजार, सिद्धान्त, विचार, प्रचलित रीति

त्योहार देवी देवताओं की पूजा के विधान सभी को अपना लिया जाता है। जनजातियों ने हिन्दू संस्कृति की बहुत सी चीजें इसी प्रकार अपनाईं। काली तथा शिव की पूजा, यज्ञोपवीत का धारण करना, पशुबलि देना आदि सभी हिन्दू प्रथाओं को अपनाने का तात्पर्य यही था कि जनजातियाँ भी उसी पद पर आरूढ़ हो जायें जिस पर हिन्दूसमाज आधारित था। परसंस्कृति ग्रहण (Acculturation) इस परिवर्तन का मुख्य तरीका है। भारत में जब जब जनजातियाँ परसंस्कृति ग्रहण करती रही तब तब जनजाति-समुदायों पर इस का भिन्न भिन्न विधियों से प्रभाव पड़ता रहा। कभी कभी ऐसा भी हुआ कि परसंस्कृति ग्रहण के साथ साथ पुरातन संस्कृति और नवीन संस्कृति का संघर्ष भी हो गया जिसके परिणामस्वरूप जनजाति समुदाय के अनेक सदस्यों ने अपने अधिकारों की माग की और परसंस्कृति का विरोध (Contra-Acculturation) की भावना उत्पन्न हुई। आसाम के खासियों ने क्रिश्चियन संस्कृति को अपनाया परन्तु वे अपने उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून के लिए लड़ते रहे जिसके आधार पर सम्पत्ति का अधिकार सब से छोटी कन्या को प्राप्त होता है। कई बार जनजातियाँ सांस्कृतिक चिन्हों को अपनाने के साथ साथ जनजाति के रूप में अपनी मान्यता (Identity) को नहीं खोती जैसे सन्थालों ने हिन्दुओं के अनेक सांस्कृतिक चिन्हों को अपनाया परन्तु जनजाति रूप में उनकी सत्ता बनी रही और वे किसी में विलीन न हुए। दूसरी ओर हम देखते हैं कि बिहार के वे भूमिज-जिन्होंने अपने आपको क्षत्रिय मान लिया था। वे अब भी अनेक कष्ट भोग रहे हैं क्योंकि उन्होंने उच्चश्रेणियों में मिल जाने की कोशिश की। यही हाल मध्यप्रदेश के राज गोंडों तथा राजवंशी जनजातियों का हुआ।

इसके बाद सांस्कृतिक-संपर्क का एक और युग आया जब कि जनजातियों ने धर्मपरिवर्तन (Conversion) कर लिया। वे या तो ईसाई बन गईं अथवा उन्होंने हिन्दू या मुस्लिम में से कोई धर्म ग्रहण कर लिया। यह धर्म परिवर्तन उपदेश, प्रलोभन प्रचार तथा बलपूर्वक सभी उपायों से किया गया। आदिवासियों में सहानुभूति प्रकट की गई और उन्हें अपने में मिला लिया गया।

## जनजातीय सरकारें (Tribal Governments)

जनजातियों की शासन प्रणाली मुख्यतया जनमत (Public opinion) पर आश्रित होती थी। बड़े से बड़ा शासक व मुखिया अधिकारों की सीमा के बाहर न जा सकता था। कुछ सामाजिक अपराधों (Crimes)

तथा व्यक्तिगत अपराधों (Torts) का विचार सभी जातियों में भिन्न भिन्न रूप में पाया जाता था। एस्किमों लोग चोरी और हत्या को महान् पाप न समझते थे परन्तु जादू टोने (Witchcraft) को वे भयंकर सामाजिक अपराध समझते थे। कैलिफोर्निया की युरोक जाति में हत्यारे को धनराशि चुकाने पर निरपराधी स्वीकृत किया जाता था। किसी विवाहित स्त्री से व्यभिचार करने पर यदि उचित धनराशि (weregild) दे देता तो उसे छुटकारा मिल जाता था। आदिकाल में जनजातियों के नियमित व्यवसाय न होते थे। कठोर परीक्षाओं (Ordeals) जल व अग्नि परीक्षाओं द्वारा झगड़े का फैसला हुआ करता था।

## शासन प्रणालियाँ

अनेक आदिकालीन जनजातियों पर वैधानिक सत्ता की अपेक्षा जन-सत्ता का प्रभाव अधिक दिखाई देता था। अफ्रीका तथा पोलीनीशिया में शासन की बागडोर व्यक्तिगत शासकों के हाथ में नहीं अपितु प्रमुख व्यक्तियों के हाथ में थी।

शासन की शक्ति में कभी कभी धार्मिक आज्ञा का स्थान विशेष रूप से परिगणित किया जाता रहा है जैसा कि पोलीनीशिया तथा माइक्रोनीशिया में। वहाँ मुखिया की आज्ञा का उल्लंघन करना किसी पवित्र वस्तु को दूषित करने (Sacrilege) के समान था और उसकी आज्ञा का पालन करना सबसे उत्तम कर्तव्य माना जाता था परन्तु यह बात सभी प्रधान वर्गों में न पाई जाती थी। एकतन्त्र राज्य (Autocracy) सदैव अस्थिर रहे हैं। जैसा कि हम देखते हैं कि आज से एक शताब्दि पूर्व जब जुलु जाति के अकेले व्यक्ति चाका (Chaka) ने जुलु के सीमित राजतन्त्र(Monarchy) को स्वेच्छाचारी व निरंकुश शासन (Despotism) के रूप में परिवर्तित कर दिया और परिणामस्वरूप जुलु जनजाति दक्षिणी अफ्रीका की अग्रणी शक्ति बन गई परन्तु उसके अयोग्य एवं निर्दयी उत्तराधिकारियों ने जुलु जनजाति की सञ्चित सत्ता को भी खो दिया।

युगण्डा का इतिहास इससे भी भिन्न चित्र चित्रित कर रहा है। वहाँ धनतन्त्र शासन (Aristocracy) का नाम भी नहीं। राज्यसत्ता अधिकारियों—राजा के मन्त्रियों, १० प्रान्त के राज्यपालों तथा सरदारों के हाथ में है जिन्हें किसी भी रूप में उच्च कुलीन (Blue Blood) नहीं कहा जा सकता। दक्षिणी कांगो की बकूबा (Bakuba) जनजाति का राजा नाममात्र का ही सर्वोपरि शासक है परन्तु सम्पूर्ण शासन तो उसके मन्त्रियों के

हाथ में है। पश्चिमी अफ्रीका में शासन की बागडोर गुप्त संस्थाओं के हाथ में होती थी। लिबेरिया (Liberia) वासी क्पल्ले (Kapelle) लोगों में सम्पूर्ण जनजाति समुदाय का एक प्रधान स्वामी (Grand Master) माना जाता है जिसे जादू द्वारा मारने और पुनः जिलाने ( Resuscitate ) का पूरा अधिकार प्राप्त होता है। उसकी सत्ता राजा की सत्ता के साथ साथ ही विद्यमान रहती है।

पॉलीनीशिया में राजा की सत्ता कुछ विचित्र ही थी। राजा को इतना दिव्य व पवित्र समझ लिया जाता था और पीड़ाजनक एवं कठोर विधि-विधानों पर सम्मिलित होने की आज्ञा न थी। बेनिन राज्य में मृतक पति की सम्पत्ति पानेवाली विधवा (Dowager) को १७ ग्रामों का स्वामित्व प्राप्त था। वह अपने एक महल में न्यायालय लगा सकती तथा सभी प्रमुख विषयों पर अपनी राय दे सकती थी परन्तु वह और उसका शासक पुत्र एक दूसरे को देख न सकते थे।

राजनीति में तो यह चीज और भी स्पष्ट हो जाती है—राजा क्रियात्मक दृष्टि से कठपुतली ( Puppet ) होता है और शासन की वास्तविक बागडोर राजा के मन्त्रियों तथा स्वतन्त्र गुप्त सभाओं के हाथ में होती है अतः जनता के शासन सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा न्याय विधानों की प्रणालियाँ जानना आवश्यक है।

## पुनर्वास सम्बन्धी योजनायें (Rehabilitation Measures)

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात् अनेक जनजातियाँ बाह्य संसार के सम्पर्क में आईं। परिणामतः जनजातियों की सामाजिक स्थिति में नानाविध परिवर्तन हुए। कृषि तथा आखेट के स्थान पर श्रमकार्यों को विशेष स्थान दिया जाने लगा। अनेक आदिवासी श्रमिक कार्य अपनाने लगे। पहले तो बाह्य समाज ने इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा परन्तु कुछ समय बाद उन्होंने भी जनजातियों के साथ मनुष्यवत् दया का व्यवहार प्रदर्शित किया। सन् १९४६ में जब कांग्रेस सरकार ने प्रान्तों में शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तो परिगणित जनजातियों और परिगणित वर्गों ( Sheduled Castes ) की समस्याओं को सुलझाने का विशेष प्रयत्न किया गया और उनकी भलाई तथा पुनर्वास (Rehabilitation) के लिए अनेकों योजनायें बनाई गईं। कांग्रेस सरकार ने उन सरकारी अफसरों, ठेकेदारों, व्यापारियों तथा अन्य व्यक्तियों से जो इन जनजातियों के इलाकों में बाहर से आकर बस जाते थे—निवारित की कि वे इन जनजातियों से सद्व्यवहार करें। साहूकारों के फन्दों से इन्हें छुटकारा दिलाने के लिए अनेक कानून बनाए गए।

कृषि, शिक्षा, चिकित्सा, सफाई, तथा कारोबार के सम्बन्ध में उन्हें अनेक सुविधायें प्रदान की गई। जंगलों पर उन जनजातियों का अधिकार स्वीकृत किया गया। भारत के गणतन्त्र शासनविधान द्वारा उन्हें विशेषाधिकारों के आधार पर अनेक सुविधायें प्रदान की गयी और सरकारी नीति में यह स्पष्ट घोषणा की गई कि इन परिगणित वर्गों तथा जनजातियों के साथ सद् व्यवहार किया जायगा। नौकरी व सरकारी पदों पर उन्हें विशेष स्थान दिए जायँगे ताकि १० वर्ष के भीतर वे भारतीय ग्रामवासियों के समान पद को प्राप्त हो सकें। शासन विधान के परिवर्तन के साथ साथ जनजातियों के दुःखों, कष्टों और अनर्थों के निवारण का समुचित प्रबन्ध किया गया। सरकार इस बारे में अत्यन्त सतर्क है और उनकी समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दे रही है। संसद, धारासभा तथा विधान परिषद् आदि में उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है ताकि वे इस बात को भली भाँति समझ जायें कि जिस देश में वे रहते हैं वह देश उन्हीं का है और उस देश के वासी सब एक हैं। जब से स्वायत्तशासन तथा प्रजातन्त्रवादी विचारों की भावनाओं का विकास हुआ है हम जनजातियों में भी असन्तोष की भावना देख रहे हैं। छोटा नागपुर के आदिवासी आज अपने लिए पृथक् आदिवासी राज्य की माँग कर रहे हैं। सम्पूर्ण दक्षिण भारत में अस्पृश्यता तथा वर्णव्यवस्था की भावना तो सामाजिक तथा राजनैतिक प्रश्न बन गई है। असवर्ण जातियों के अन्तःकरण में सवर्ण जातियों के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी है। आज कोई भी नीच से नीच जनजाति भी किसी अन्य जाति की आधीनता स्वीकार नहीं करती। यह चिन्तनीय और गम्भीर प्रश्न है। यही कारण है कि वर्तमान सरकार ने समूचा ध्यान जनजातियों के मध्य समानता की भावना उत्पन्न करने तथा दलित जातियों को अधिक से अधिक सुविधायें देने में लगा दिया है। सरकार के अतिरिक्त ए० वी० ठक्कर का 'भारतीय आदिम जातिसंघ' इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहा है। प्रान्तीय सरकारों ने भी पृथक् मंत्री नियुक्त किये हुए हैं और उन्हें सब प्रकार की सुविधायें दी जा रही हैं। सरकार निम्न बातों की ओर विशेष ध्यान दे रही है—१. आर्थिक सहायता के रूप में कम सूद पर कर्ज, तकावी। जलसिंचन के लिए कूओं तथा नहरों आदि का प्रबन्ध। २. स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी सहायता का प्रबन्ध। ३. आदिवासियों को सुसंस्कृत तथा सभ्य बनाने के लिए सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है। ४. जंगलों व खानों में श्रम करने की सुविधा तथा उनके रीति रिवाज का संरक्षण किया जाता है। ५. आवागमन के लिये सड़कों और शारीरिक उन्नति के लिये स्वास्थ्य केन्द्र की व्यवस्था की जाती है।

भारत की प्रमुख जातियों का भौगोलिक वर्गीकरण

**आसाम**—गारो, लुशाई कुकी, मिश्मि, अबोर, दफला, नागा (अंगमी नागा, सेमानागा, कछनागा, लोटा नागा, कोन्यक नागा) खासी।

**बंगाल तथा बिहार**—पोलिया, मलेर, उरांव, सन्थाल, मुण्डा, हो।

**उड़ीसा तथा मद्रास**—खोंद, सावोरा, चेन्चू, लम्बडी, सुगाली कोटा, बडगा।

**बम्बई**—भील, कटकारी, कोली।

**मध्यप्रदेश**—गोंड (मुरिया मरिया, भत्रा, प्रजा) कोया तथा कोर्कू।

**हैदराबाद**—गोंड (मरिया, मुरिया, राजगोंड) भत्रा, ध्रुव, गदाबा, चेन्चू।

**उत्तर प्रदेश**—थारु, भोक्सा, खासा, कोर्वा, खियार, भुइय्या, मझी, चेरु, खरवार, राजी।

भाषा सम्बन्धी वर्गीकरण

**आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार**—मुन्डा, हो, सन्थाल, खरिया, कोर्वा, गदाबा।

**द्राविडियन भाषा परिवार**—उरांव मलेर, गोंड, सावोरा, प्रजा, कोया, पनियाँ, चेन्चू, इरूला, कदर, मलसर, मलाय्यन।

**तिब्बत-चीनी भाषा परिवार**—नागा गारो, कुकी, मिश्मि, दफला अभोर, खासी।

नट ( जरायमपेशा जनजाति )

ये लोग उत्तर प्रदेश में विस्तृत रूप में निवास करते हैं। ये लोग अनेक तमाशे खेल दिखानेवाले होते हैं तथा इन की स्त्रियां वेश्यावृत्ति करती हैं। उनके प्रारम्भ का निश्चित पता नहीं चला। मिर्जापुर के इलाके में नटों के अनेक गणचिन्हवादी गोत्रों की उपलब्धि होती है। इनका संगठन अतीव जटिल है। बहुत से नट हिन्दू हो गये हैं परन्तु इनमें कुछ मुस्लिम भी हैं। नट-मध्यप्रदेश, बम्बई तथा बंगाल में भी पाए जाते हैं। इनका मुख्य पेशा गाना, नाचना, खेल दिखाना, मदारी के खेल दिखाना तथा घास फूस की कई चीजें बनाना है। ये लोग असाध्य रोगों तथा शारीरिक कमजोरी की दवाइयाँ भी देते हैं। उनकी स्त्रियां उनकी आय का साधन बनी हुई हैं। ये लोग कुत्ते पालते तथा छोटे छोटे प्राणियों का शिकार करते और समय पड़ने पर उनका भक्षण करते हैं। रस्सों पर इनका नाच देखने योग्य होता है।

**खासी**

यह आसाम की मातृसत्तात्मक जनजाति है। यह चार सामाजिक वर्गों में विभक्त है। १—शाही गोत्र 'की सेम' (Ki Siem) २—पुरोहित गोत्र की 'लिंगोह' (Ki lingoh), ३—मन्त्री गोत्र, ४—सामान्य गोत्र। इन गोत्रों में अन्तर्विवाह हो सकता है। जेन्टिया तथा खासी की पहाड़ियों और शिलांग में उनकी मुख्य आबादियाँ हैं। अभी हाल ही में खासी-प्रदेश में आलू की खेती होने लगी है इससे उनकी आर्थिक स्थिति बहुत उन्नत हो गई है। इस प्रदेश में वर्ष भर में ४०० इन्च वर्षा होती है। इनकी कृषि प्रणाली को झुम (Jhum) कहा जाता है। इस प्रणाली द्वारा पहाड़ी इलाका अस्थाई रूप से उपजाऊ बनाया जाता है। चावल भी थोड़ी मात्रा में बोया जाता है। गृह निर्माण में लकड़ी, पत्थर, खजूर के पत्ते, शहतीर आदि का प्रयोग किया जाता है। पहले गृह निर्माण में पत्थर का प्रयोग वर्जित था परन्तु अब इस पर कोई आपत्ति नहीं। खासी में सबसे छोटी लड़की की स्थिति बहुत मुख्य है। उसे सम्पत्ति की अधिकारिणी स्वीकार किया जाता है। सभी धार्मिक विधिविधान छोटी लड़की द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। ये लोग मुर्दों को जला देते हैं परन्तु जो व्यक्ति हैजा चेचक आदि संक्रामक रोगों से मरते हैं उन्हें गाड़ दिया जाता है। अभी हाल ही में इन लोगों ने ईसाई धर्म की शरण ले ली है।

**राजी**

अलमोड़ा तथा असकोट (कूर्मान्चल-पर्वतीय प्रदेश) में राजियों की आबादियाँ हैं। हिमालय के निम्नप्रदेश में भी उनकी कुछ संख्या उपलब्ध होती है। ये बहिर्विवाही गोत्रों में विभक्त हैं। ये एक विवाह के पक्षपाती होते हैं। इनमें 'कन्याधन' देने की प्रथा विद्यमान है। चरित्रहीना तथा कुष्ठ रोगी स्त्री को तलाक भी दिया जा सकता है। विधवा का पुनर्विवाह तथा देवर सम्बन्ध भी प्रचलित है। यद्यपि मृतकों को गाड़ने, श्राद्ध न करने, पुरोहित न रखने तथा पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् पवित्र संस्कार न करने की प्रथायें इनमें पाई जाती हैं तो भी ये अपने आप को हिन्दू ही कहते हैं। जंगलों को काटना और साफ करना इनका मुख्य पेशा होता है। कार्य में अपशकुन न हो इसके लिए ये कई विधिविधान करते हैं। ये लोग फिरन्दर होते हैं। राजी काष्ठपात्रों का निर्माण करते और उन्हें पड़ोसी जातियों को बेच देते हैं तथा उसके बदले में अनाज और कपड़ा खरीदते हैं। ये अपने व्यापारियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते। आधीरात के समय में अपना माल

व्यापारियों के घर के आँगन में रखकर चले जाते हैं और अगले दिन उस माल के बदले में जो कुछ चाहते हैं उसे ले जाते हैं।

नागा

नागा लोग आसाम के पर्वतीय प्रदेशों में रहते हैं। इनकी अनेक उप-जातियाँ १. अंगामी, २. सेमा ३. रंगमा ४. लोटा ५. कोन्याक ६. आओ नाम से प्रसिद्ध हैं। नग्नावस्था में रहनेवाले ये लोग भारत की उत्तर पूर्वीय सीमावर्ती पहाड़ियों के साथ बस्तियाँ बनाये हुए हैं। नागा जाति के लोग कद में लम्बे, मुखाकृति में पीतवर्ण मंगोलों से मिलते जुलते हैं। नग्न रहते हुए भी आभूषणों से इन्हें प्यार होता है। काष्ठनिर्मित आभूषण, काच तथा कौड़ियों के बने हुए मनके आभूषण के रूप में प्रयुक्त करते हैं। पेड़ के पत्तों से भी अपने शरीर का शृंगार किया करते हैं। नागा जातियों के ग्रामों की रचना कतिपय परिवारों के सम्मिश्रण पर आधारित होती है जिन्हें "खेल" नाम से पुकारा जाता है। एक ही ग्राम में गोत्र सम्बन्ध द्वारा सभी सम्बन्धी एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। पितृ सत्तात्मक परिवारों की प्रधानता है। प्रत्येक परिवार का एक मुखिया भी होता है। ग्राम में रहनेवाले सभी व्यक्ति विशिष्ट धन्धे को अपनाते और उसी में दक्षता प्राप्त करते हैं। पर्वतीय प्रदेशों में जो स्थान अत्यधिक ऊँचाई पर होते हैं उनमें प्राचीन ढंग से कृषि की जाती है जिसे "झूमा" कहते हैं। यह कृषि परिवर्तनशील होती है। स्थान परिवर्तन के साथ साथ कृषिक्षेत्र भी परिवर्तित होते रहते हैं। नागा जाति के लोग बास्केट व्यवसाय में भी अतीव निपुण होते हैं। उन लोगों का विश्वास है कि यदि हम "पृथ्वी देवी" को बलि द्वारा प्रसन्न न करेंगे तो पृथ्वी माता हम पर प्रकोप दिखायेगी। परिणाम स्वरूप हमारा अनाज भी नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। पृथ्वी देवी का रूप मानने से उन्हें कृषिकार्य में उत्साह मिलता है। जहाँ वे पृथ्वी को देवी मानते हैं वहाँ वे अन्य प्राकृतिक पदार्थों की भी पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि संसार में एक अलौकिक शक्ति कार्य करती है जिसे वे 'अरेन' कहते हैं इस अलौकिक शक्ति की पूजा करने से प्रेतात्मा का प्रकोप दूर हो सकता है। उनका सबसे प्रिय शस्त्र "दाओ" है जिसका रूप युद्ध में प्रयुक्त होनेवाली कुल्हाड़ी से मिलता जुलता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद इनका सम्पर्क बाह्य समाज से भी होने लगा है।

मुण्डा

बिहार स्थित रांची जिलान्तर्गत मुण्डा जनजाति वास करती है। ये लोग कद में छोटे, समतल नासिकावाले, कृष्णवर्णीय तथा गहरे बाल वाले

वाले होते है। इनके हाथ और पैर छोटे तथा शरीर गठीला होता है। वे वस्त्र बहुत कम पहनते है। कांस, मनके, बनई तथा चांदी के अनेक आभूषणों में शरीर का शृंगार करते है। वे कृषिकार हैं और कृषि उनकी आर्थिक उन्नति का साधन है। ईसाइयत के प्रचार के कारण इनमें शिक्षा का प्रचार अत्यधिक पाया जाता है। इनके पितृसत्तात्मक परिवार गणचिन्हवादी गोत्रों में बंटे हुए है और शासन-प्रबन्ध "पाड़ा" (Parha) पद्धति पर आधारित हैं। ये अपने आपको उच्च समझते हैं अतएव अपने आपको 'मुण्डा' कहते हैं। हिन्दू विधि-विधान द्वारा 'क्रीत विवाह' करने के पक्ष में हैं। ये लोग अपने प्रिय पेय को 'हली' नाम से पुकारते हैं जिसका रसास्वादन धार्मिक विधिविधानों तथा उत्सवों पर किया जाता है। वे सूर्य देवता के उपासक है जिसे वे 'सिहबोगा' कहते हैं। आधुनिक रीति रिवाजों से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ग्रामो में भी ये नगर वासियों के समान जीवन व्यतीत करते हैं। वे मृतक प्राणी को गाड़ते तथा कब्र पर पाषाणखण्ड (Stoneslab) खड़ा करते हैं जिसे वे 'संसोम डिरी' कहते हैं। वे मृतक पूर्वजों की पूजा करते और उनकी कब्र पर भेंट पूजा चढ़ाते हैं। प्रेतात्माओं में उनका अटल विश्वास होता है।

## सन्थाल

भारत की सबसे बड़ी जनजाति सन्थाल है जिनकी संख्या २० से ३० लाख तक है। ये लोग प्रायशः बिहार में फैले हुए हैं परन्तु अभी हाल ही में इधर उधर के इलाकों में भी फैल गये हैं। उत्तरी बंगाल में कृषिकार के रूप में, आसाम के चाय के बगीचों में तथा जूट मिलो व कपड़ा मिलों में कुलियो के रूप में भी पाये जाते हैं। वैसे तो ये मुण्डा भाषा भाषी है परन्तु अब कई भाषाओं को बोलने लग गये हैं। ये बहिर्विवाही गणचिन्हवादी गोत्रो में विभक्त है। इनका प्रादेशिक सगठन 'पाड़ा' (Parha) पद्धति पर आधारित होता है और सभी सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार गाव के मुखिया के हाथ में होते हे। कुछ ग्रामों में पञ्चायत भी अधिकारिणी संस्था मानी गई है परन्तु वहां गाव के मुखिया का सभी कार्यों में मुख्य हाथ होता है। प्रति वर्ष मध्य अप्रैल में य लोग शिकार करने लगते है। चावल, ज्वार तथा मक्का आदि की खेती की जाती है। जगलों को काटने और साफ करने में ये सब से अग्रणी हैं। सन्थाल लोग अच्छे कृषिकार है परन्तु सिंचाई द्वारा कृषिवृद्धि करने के लिए इनमें व्यग्रता नही पाई जाती। खाद पर भी कोई विशेष ध्यान नही दिया जाता।

### सओरा

मद्रास के खोंड प्रदेश की यह जनजाति खोंड लोगों से बिल्कुल भिन्नता रखती है। गंजम प्रदेश में रहने वाले सओरा प्राचीनकालीन सभ्यता को अपनाने वाले हैं और स्त्रियां नग्नावस्था में देखी जाती हैं। ये अत्यन्त मिलनसार नहीं होते अपितु हठी तथा सन्देहवादी प्राणी हैं। ये लोग बहि-विवाही हैं और अनेक द्राविडियन जन-जातियों की भांति इनमें 'भाई बहिन सन्तति विवाह' ( Cross Cousin Marriage ) प्रणाली नहीं पाई जाती। ये लोग विशेषतया धान की खेती करते हैं। ये लोग पत्थर व गारे से घर बनाते तथा सागू और खजूर की शाखाओं का भी प्रयोग करते हैं। ईंटों का प्रयोग इनके यहां वर्जित माना जाता है। तीर कमान, चाकू तथा कुल्हाडी आदि का भी प्रयोग आखेट के समय किया जाता है। स्त्री और पुरुष नृत्यकला में प्रवीण होते हैं। संगीतप्रिय होने के कारण इनमें घण्टे, नगाड़े आदि वाद्ययन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

### चेन्चू

निज़ाम के इलाके में घने जंगलों में चेन्चू जनजाति बसी हुई है। गत जन-गणना के समय ये लोग ५३ बस्तियों (पेण्टा-Penta) में विभक्त पाये गए थे। प्रत्येक बस्ती में १५ से २५ घर होते हैं। ये लोग शहद तथा मूलकन्द भरबेरी(Berries)आदि संगृहीत करते हैं। तीर कमान के अतिरिक्त इनके पास और कोई उपकरण नहीं होता। ये लोग ईमानदार, सच्चे, दयालु तथा अतिथि-सत्कार करने वाले होते हैं। यद्यपि वे बकरी, मुर्गे आदि पशु पालते हैं परन्तु कृषिविद्या से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। कुत्ता उनका प्रिय साथी है। मूलकन्द आदि इनका मुख्य आहार है। महुआ इनके भोजन और पेय का काम देता है। पशु मांस भी खाया जाता है। ये ५ गणचिन्हवादी बहिर्विवाही गोत्रों में विभक्त हैं। सगोत्र विवाह को व्यभिचार माना जाता है। इनमें कुछ लोग मुर्दा गाड़ते और कुछ जला देते हैं। मुर्दा गाड़ने और जलाने की दोनों विधियां प्रचलित हैं।

### कदर ( कोचीन )

कदर(Kadar)का तात्पर्य वनवासी से है। वे जंगलों में रहते हैं और मैदानों में कभी आवागमन नहीं करते। इन्हें विशुद्ध जातिसम्प्राणी नहीं कहा जा सकता। ये लोग युद्धप्रिय नहीं होते। १५,२० झोंपड़ियों से एक ग्राम की रचना की जाती है। इस प्रकार ये लोग कई ग्रामों में फैले हुए हैं। कदर लोग सर्व मांस भक्षी तथा मत्स्य भक्षी हैं परन्तु सूअर व जीवित जंगली सांड और गीदड़ का मांस नहीं

खाते। शहद एकत्रित करने के बहुत शौकीन होते हैं। ये लोग यौवनावस्था में शादी करते हैं। यों तो वहिर्विवाह के पक्षपाती हैं परन्तु कहीं कहीं अन्तर्विवाह के उदाहरण भी मिले हैं। भाई बहिन के बच्चों में विवाह जायज है। बहुपति तथा बहुपत्नी विवाह से बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं। शहद, मोम और इलायची एकत्र करते तथा हाथी पकड़ने का कार्य करते हैं। यद्यपि उन्हें कृषि—कर दिये बिना ही सरकार द्वारा जंगलों में खेती करने का पूरा अधिकार है परन्तु इसमें वे कोई विशेष लाभ नहीं उठाते। बड़े पैमाने पर खेती करने को वे व्यर्थ कार्य समझते हैं। केले, जिमीकन्द तथा सब्जी आदि बोने के शौकीन हैं। अभी हाल ही में मैदानी इलाकेवालों से सम्पर्क में आने के कारण इनमें पतनोन्मुखी प्रवृत्ति पैदा हो चुकी है। अब वे अनेक संक्रामक रोगों के शिकार होने लग गये हैं।

## कुकी

आसाम की लुशाई पहाड़ियों में मंगोलायड जाति से मिलती जुलती जनजाति कुकी वास करती है। ये बीटेकुकी ( Biete Kukis ) तथा खेल्मा कुकी (Khelma) नाम से पुकारे जाते हैं। कुकी गोत्रों में लुशाई सबसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लुशाई मुखिया सम्पूर्ण इलाके पर राज्य करते हैं। मिपेरा तथा चिटागाग की ओर भी फैले हुए हैं। ये लोग शहतीर और लकड़ियों से घरों का निर्माण करते हैं। इनकी एक आबादी में ४, ५ मकान होते हैं। सम्पत्ति का अधिकार सबसे छोटे पुत्र को प्राप्त होता है। वे आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर रहते हैं। लुशाई तथा कुकी गोत्रों की पोशाक साधारण होती है। इनके सरदार की पोशाक यों तो सामन्य होती है परन्तु वह पगड़ी पहनता है जिसमें वह पंख लगाता है। स्त्रियाँ गुप्तांगों को छोड़कर शरीर का अवशिष्ट भाग नग्न रखती हैं। गुदवाने ( Tattoo ) के भी शौकीन होते हैं। स्त्री पुरुष दोनों आभूषण पहनते हैं। स्त्री पुरुष तम्बाकू पीते हैं। तीर, कमान, भाला तथा फलक आदि का प्रयोग करते हैं। वहां बांसों के बड़े बड़े जंगल हैं जिनमें दिन के समय भी प्रकाश नहीं दिखाई देता। हाथी तथा जंगली पशुओं का शिकार किया जाता है। कुत्ते तथा सुअर इनके पालतू पशु हैं। आपत्ति पड़ने पर कुत्ते का मांस भी खाते हैं। 'देवताओं को पशुबलि' दी जाती है। ये लोग बांस की टोकरियाँ, चटाइयाँ, हुक्के की नलियां, मछली पकड़ने के फन्दे तथा बुनने के करघे बनाते हैं। सभी वाद्ययन्त्र भी बांस के बने होते हैं। ये लोग 'झूम' (Jhum) विधि द्वारा खेती करते हैं। जंगल को साफ करके एक साल तक खेती करते हैं फिर इसे छोड़कर दूसरी जगह खेती करते हैं सम्पूर्ण खेत में एक पेड़ छोड़ देते हैं जिसमें प्रेतात्मा

आकर काम करती है। जितना अनाज उत्पन्न होती है ले लेते हैं बाकी पशुओं को खिला देते हैं।

## गोंड (बस्तर)

मध्यप्रदेश स्थित बस्तर के इलाके में यह जनजाति बसी हुई है। मुरिया गोंड कुशल लोहार होते हैं। मरीगी लोग अच्छे जुलाहे तथा कुण्डल लोग टोकरी बनाते हैं। इनमें बहिर्विवाह करने की प्रथा नहीं। इनमें वर्ण व्यवस्था पाई जाती है। कुरख, केवट तथा धीमर केवल मत्स्य मछली पर ही निर्भर रहते हैं। चित्रकूट के कुरख, केवट मरिया गोंड से मिलते जुलते हैं। बस्तर के रावत लोग पशु चराते तथा उनका दूध बेच देते हैं। तीर, कमान, कुल्हाड़े, फलक आदि सभी उपकरण ये लोग प्रयोग में लाते हैं। गोंड लोग शरीर को आभूषणों से सजाते हैं। 'हल्वा' तथा 'धकर' को छोड़ कर बाकी सब उपजातियाँ गुदवाने (Tattoo) के बहुत शौकीन हैं। बास की बनी कंघियां भी स्त्रियां प्रयुक्त करती हैं। इनका मुख्य पेशा खेती करना है। कृषि प्रणाली को डिप्पा (Dippa) कहा जाता है। देवी तथा मृतक पूर्वजों की प्रेतात्माओं को बलि दी जाती है। नृत्य भी किया जाता है। इस प्रकार वे लोग समझते हैं कि फसल अच्छी होगी। बलि के लिए लाये गये पशु का रक्त खेती में सिञ्चित किया जाता है ये लोग इमानदार तथा अकृतघ्न होते हैं। अपने स्वामी की गुलामी नहीं छोड़ना चाहते। यदि बाप कर्जा नहीं चुका सकता तो बेटे को कर्जा देना पड़ता है। इस प्रकार वह भी जीवन भर स्वामी की गुलामी करता है जिसे 'कबड़ी' (Kabadi) कहते हैं। कोंडागाव तथा बीजापुर की तहसीलों में मालिक से पेशगी रुपया लेने की प्रथा नहीं। ४) प्रति मास मजदूरी मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कपड़े और इनाम आदि भी दिये जाते हैं। ये लोग उत्तरी हैदराबाद, बिहार तथा उड़ीसा की पश्चिमी सीमा पर फैले हुए हैं। ये लोग अपने को रानी दुर्गा बाई की सन्तान बतलाते हैं। बहुत से अपने को राजगोंड कहते हैं जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं। अविवाहित लड़के लड़कियों के लिए एक संस्था है जिसे गोतुल (Gotul) कहते हैं। इसमें वे नृत्यकला सीखते हैं।

## बैगा

मध्यप्रदेश के उत्तरीय जिलों—जबलपुर तथा मड़ला के प्रदेशों में इन लोगों का वास है। यह आदि आस्ट्रेलायड रूप कद में मध्यम, गहरे, कृष्ण-वर्णीय, समतल नासिकावाले तथा दक्षवेशीय एवं दक्षत्वचीय हैं। इनके दो विभाग हैं। एक वे जो मैदानों में कृषिकार का जीवन व्यतीत करते हैं दूसरे वे जो सरकारी उपनिवेशों—"बैगा चकों" में स्थाई खेती करते हैं। ये

पितृसत्तात्मक गणाचिन्हवादी परिवारों में बँटे हुए हैं। वे बड़देव (Burha Deo) को अपना सबसे बड़ा देवता मानते हैं कृषि व फसल के समय पृथ्वी देवी की पूजा करते हैं। युवक स्वयं 'कन्याधन' देकर बड़ी आयु में विवाह करते हैं। हिन्दू सम्पर्क में आने से कहीं कहीं बाल्यविवाह की प्रथा भी पाई जाती है। ये हिन्दू रीति से विवाह करते हैं। इनमें उपहास सम्बन्ध भी निषिद्ध नहीं। वे मृतकों को जला देते हैं। अब वे पशुओं का मांस खाना धीरे धीरे छोड़ते जा रहे हैं।

टोडा

दक्षिण भारत के नीलगिरी प्रदेश के चरवाहे कद में लम्बे, स्वस्थ, सुन्दर, प्राचीन रोमन तथा सुमेरियन से मिलते जुलते हैं। पशु चराने के अतिरिक्त दूसरा कोई पेशा नहीं अपनाते। इनमें बहुपति प्रथा प्रचलित है। इनकी पारिवारिक योजना मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक रूप में परिवर्तित होती जा रही है। इनमें सन्तानोत्पत्ति पर पितृप्रतिबन्ध ( Couvade ) प्रथा प्रचलित है। वे अपने देवताओं को भेंट भी चढ़ाते हैं और पशुओं के लिए बनाये गये बाड़ों को पवित्र स्थान समझते हैं। मृतक को गाड़ने की प्रथा है। अभी हाल ही में खुदाई से एक कब्र में तलवार, चाकू, बर्तन आदि उपलब्ध हुए हैं। उन पर की गई चित्रकारी इनका पश्चिमी भारत से पुराना सम्बन्ध दर्शा रही है। अब धीरे धीरे इनकी संख्या कम होती जा रही है।

## मिर्जापुर की जनजातियाँ—कोर्वा

इस छोटे से प्रदेश में कोर्वा, भुंइया, चेरू, खरवार तथा अन्य अनेक जनजातियाँ रहती हैं। इनमें कोर्वा सबसे अधिक जंगली और खारवार हिन्दू-धर्मानुयायी हैं। ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर कृषि करते हैं जिसे दोहिया (Dohiya) कहते हैं। बांस, बीड़ी के पत्ते, सबाईघास, आवला, हर्र तथा अन्य अनेक फल मूलकन्द आदि एकत्रित करते हैं। पानी की कमी के कारण यहाँ नियमित खेती नहीं की जा सकती अतएव साल में ६ मास वे जंगली फलों पर निर्वाह करते हैं। महुआ की शराब इन लोगों का सर्वोत्तम पेय है। गोंड तथा बैगा की भांति ये लोग भी प्रेतात्मा और जादू आदि में विश्वास रखते हैं। जादू टोने द्वारा रोग की चिकित्सा भी करते हैं। वे अपना सबसे महान् देवता "भूरादेव" (Bhura Dev) मानते हैं। शिव, हनुमान, सूर्य, आदि अनेक देवी देवताओं की उपासना भी उनमें सामान्य रूप से पाई जाती है।

## कोर्वा

जिला मिर्जापुर, बुन्देलखण्ड, मध्यभारत तथा बरार के इलाके में यह जनजाति वास करती है। कोर्वा लोग कद में छोटे, वर्ण में काले व भूरे शरीर में सुदृढ़, गठीले तथा फुर्तीले होते हैं। इनकी टांगें भी छोटी होती हैं। मझवार, खरवार, भुइय्या चेरू तथा उरांव से इनके शरीर की भिन्नता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। दूधी तथा पलामऊ के कोर्वा नस्ल में कोई सम्बन्ध नहीं रखते परन्तु सरगुजा के कोर्वा नेग्रायड स्कन्ध से स्पष्ट सम्बन्ध रखते हैं। उनकी आंखें छोटी तथा पलकें मुड़ी हुई होती हैं। यू० पी० के कोर्वा मिर्जापुर जिले के दूधी नामक स्थान पर वास करते हैं। इनका मुख्य पेशा खेती है। चट्टानी प्रदेश होने से खेती गहराई से नहीं की जा सकती। फसल अच्छी होने पर देवताओं की पूजा करते हैं। वे नदी में भी प्रेतात्मा का विश्वास करते हैं और उसे खुश करने के लिए नृत्य करते हैं। दूधी के जंगलों में लकड़ी, बांस, महुआ, रुई तथा मूलकन्द आदि अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। ये लोग जादू में विश्वास रखते हैं। गुदवाने (Tattoo) को शरीर का आभूषण न मानकर उसे धार्मिक महत्व प्रदान करते हैं। वे मोर तथा चीते का भी शिकार करते हैं। ये तलवार, लाठी तथा अन्य शस्त्रों का भी प्रयोग करते हैं। ये लोग मृतक शरीर को पहाड़ों की कन्दराओं व नदी नालों में फेंक देते हैं। अविवाहित मृतकों को गाड़ा जाता है। शक्ति भवानी, शीतला माता, भवानी देवी आदि में विश्वास रखते हैं।

## खासा (जौनसार बावर)

देहरादून जिले के जौनसार बावर (हिमालय प्रदेश) में यह जनजाति फैली हुई है। इसे हम बहुपतिविवाही खासा जनजाति का देश कह सकते हैं। देखने में ये लम्बे, सुन्दर, गोरी मुखाकृतिवाले तथा आकर्षक देहधारी हैं। उनकी पोशाक विशेष नमूने की होती है। स्त्रियां सोने और चांदी के आभूषण पहनती हैं। सभी भाइयों का निवास स्थान, भूमि, सम्पत्ति, सन्तान और पत्नी सब सामान्य होते हैं। बाल-विवाह प्रथा भी प्रचलित है। 'कन्याधन' देने की प्रथा विद्यमान है। तलाक प्रथा भी पाई जाती है। एक स्त्री आधे दर्जन से अधिक विवाह कर सकती है। जन्म संख्या बहुत कम है। ये कृषि कला में अतीव निपुण होते हैं। पहाड़ी इलाकों को साफ करने और उनमें खाद द्वारा खेती करने में अत्यन्त कुशल और परिश्रमी माने जाते हैं। इनका सब से महान् देवता 'बहासू' (Wahasu) कहलाता है और इसे खून भेंट किया जाता है। शरद ऋतु में जब सम्पूर्ण प्रदेश हिमाच्छादित होता है और बेहद

करना कठिन हो जाता है तो वे अपने त्योहार मनाते हैं। इन अवसरों पर महभोज, दावतें, मद्यपान आदि का भी विधान है। खासा लोग अपने आपको महाभारत के पाण्डवों की सन्तान कहते हैं और बहुपतिविवाह का उद्गम भी उसी से सम्बद्ध करते हैं। उनका "लाक्षा मण्डल" वही है जो पाण्डवों के समय का लाक्षागृह था।

### भील

भीलो में कई जन जातियाँ सम्मिलित हैं। ये केन्द्रीय तथा दक्षिण पश्चिमी भारत, विंध्य प्रदेश तथा बम्बई के इलाके में फैले हुए हैं। संस्कृत में तीर और कमान उठानेवाले को भील कहते हैं। वर्णव्यवस्था के अनुसार इन्हें निम्नकोटि का माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भीलों का अत्यन्त महत्व है क्योंकि इन्होंने मुसलमान शासकों के विरुद्ध अपने राजाओं की सेवा की थी। भील लोग आकार प्रकार में छोटे तथा मध्यम दर्जे के माने जाते हैं। इनका रंग गहरा काला, स्थूल तथा रूक्ष केश, आँखें रक्तवर्ण और जबड़े उभरे हुए होते हैं। खेती करने में अत्यन्त निपुण, अच्छे शिकारी तथा अपराधी कहे जाते हैं। स्त्रियों का पद अत्यन्त निम्न समझा जाता है। कभी कभी तो वे स्त्रियों की हत्या भी कर देते हैं। इनमें पितृसत्तात्मक परिवार प्रथा तथा विस्तृत गोत्रप्रणाली प्रथा पाई जाती है। वे मृतकों को गाड़ते तथा कब्र पर विशाल पत्थर खोदकर खड़ा कर देते हैं। भील जनजाति के सभी सदस्य शिव के उपासक माने जाते हैं। उसे मांस और शराब भी भेंट करते हैं। शादी के समय दुल्हा तेज औजार से अपना अंगूठा काटता है तथा गरम गरम खून की बूंदे दुलहिन के बालों में डालता है। तलाक तथा पुन-विवाह दोनो पाये जाते हैं।

### थारू

ये लोग कद में छोटे और मध्यम, पीत श्वेत वर्णीय, चौड़ी मुखाकृति-वाले तथा समतल नासिकावाले होते हैं। थारु लोग यू०पी०तथा विहार के तराई के इलाकों में रहते हैं। इनमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर मानी जाती हैं। ऐतिहासिकों का विचार यह है कि जब मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया तो राजपूत गोत्रों से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक स्त्रियां इस नीचवर्णवाले नौकरों के साथ भाग आई होंगी और तराई के इलाकों में उन्होंने शरण ली होगी। यही कारण है कि इनकी पारिवारिक योजना में स्त्रियों की प्रधानता रहती है और पुरुषों पर स्त्रियों का शासन होता है। थारु स्त्रियां मेहनती और कार्य में अत्यन्त दक्ष होती हैं। पुरुषों का पद निम्न होने के कारण घर का सब काम काज पुरुषों

को ही करना पड़ता है । आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में स्त्री
का प्रभुत्व होता है । "कन्याधन" देकर विवाह किया जाता है और स्त्रियों
को ही एक मात्र तलाक का अधिकार प्राप्त होता है । वे कृषिकार और
मछली पकड़नेवाले होते हैं । आर्थिक जीवन में आत्म निर्भर होते हैं । हिन्दू
देवी देवताओं की पूजा करते हैं । उन पर हिन्दू धर्म की गहरी छाप है ।
१९५१ में इन्होंने जनगणना में अपने आपको ठाकुर लिखाया । यह है कतिपय
प्रमुख भारतीय जनजातियों का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन । अब हम
संक्षेप में कतिपय भारतेतर ,विदेशी जनजातियों की सामाजिक तथा आर्थिक
दशा का भी संक्षिप्त वर्णन करते हैं ।

**कतिपय अन्य विदेशी जन जातियाँ :—फ्यूगियन (Fuegian)**

इस्लाग्रेण्डे डी टीरा डेल फ्यूगो ( Isla Grande de Tierra
del Fuego) तथा केपहार्न जलडमरूमध्य में ओना (Ona) तथा यघन
(Yaghan) नामक दो जनजातियां रहती थीं । यह बर्फीला प्रदेश अतीव
सुन्दर प्रतीत होता था । इन दोनों जातियों की भाषा एक दूसरे से भिन्न थी ।
ओना लोग जलयात्रा से भय खाते थे जबकि यघन अपने जीवन का
बहुत सा भाग नाविक जीवन के रूप में व्यतीत करते थे । यघन पुरुष नाव
बनाता और स्त्री नाव को चलाती तथा मछली पकड़ने का काम करती
थी । परन्तु ओना स्त्री खाना बनाने तथा टोकरी बनाने का कार्य करती थी
सका यघन स्त्री के मुकाबले में आर्थिक महत्व नहीं । अतएव यघन युवक
ना लड़की से विवाह करने में घृणा करता था, यघन जाति में स्त्रियों का
मान नहीं था । दोनों जातियों के लिए आग प्रधान और मकान गौण था ।
न हो या न हो परन्तु आग बिना उनका जीवन नहीं चल सकता ।
यघन लोगों के सभी उपकरण पाषाणयुगीय हैं । उनमें धातु का प्रयोग
होता था । इन लोगों में पशुपालन का अभाव था अतएव ये मांस को
ते न थे अपितु पका लेते थे । ओना पितृवंशीय होते थे । पितृसत्तात्मक
 की प्रधानता मानी जाती थी । बहिर्विवाह के पक्षपाती होने के साथ
 विधिविधानों को भी महत्व देते थे । यघन लोग सिद्धान्त रूप में दूर
रने के पक्ष में न थे । देवर सम्बन्ध, स्याला सम्बन्ध, उपहास सम्बन्ध
ाह से पूर्व दीक्षा ग्रहण करने के विषय में दोनों जातियों की प्रथायें
थी । सन्तानोत्पत्ति के बाद ओना लोग माता पिता पर आहार विहार
तिबन्ध (Couvade) भी लगाया करते थे । फ्यूगियन जाति में
बचपन से ही लड़कियों से पृथक रखा जाता था । यघन लोग सो

साथ में भी दोनों को इकट्ठा न बैठने देते थे। श्रोना लोग स्त्री जाति से द्वेष करने वाले (Misogynist) तथा यघन स्त्रियों और पुरुषों को तुल्य दर्जा देते थे। दोनों जातियां एक महान् दैवीय शक्ति में विश्वास करती थीं। यघन इस दैवीय शक्ति को 'वताईनेवो' (Watauinewa) तथा श्रोना इसे तेमाकेल (Temaukel) नाम से पुकारते थे। ये लोग प्रेतात्मा में विश्वास रखते थे।

## मुरगिन (Murngin)

उत्तरी आस्ट्रेलियान्तर्गत कार्पेन्टरिया खाड़ी के पश्चिम में ८ विभिन्न जनजाति समुदाय रहते थे जिन्हें 'मुरगिन' नाम से पुकारा जाता था। "मुरगिन" जनजाति समुदाय न केवल आखेट प्रिय था अपितु फिशिंग भी था। ये लोग ३६० वर्ग मील के प्रदेश में फैले हुए थे। स्त्रियां जिमीकन्द तथा कन्द मूल बीनती और पुरुष आखेट के लिए बाहर निकल जाते थे। अन्य आस्ट्रेलियन की भांति इनमें तीर व धनुष आदि उपलब्ध नहीं होते। ये बीज को चक्की पर पीसते और खाना तैयार करते थे। पात्रों के अभाव के कारण ये भोजन को उबालते नहीं थे। ये अत्यन्त सुन्दर नमूने की टोकरियां प्रयोग में लाते थे। ये लोग शरीर पर वस्त्र धारण नहीं करते। आग जला कर सर्दी से बचाव करते थे। केवलमात्र उत्सवादि अवसरों पर ही वस्त्र का प्रयोग किया जाता था। अपने शरीर का शृंगार आभूषणों द्वारा किया करते थे। मलाया वासियों से अनेक शताब्दियों तक सम्पर्क रहा। धार्मिक विधि विधानों को सम्पन्न करने वाले सभी पुरोहितों का पद बहुत उच्च माना जाता था। विधिविधानों के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर वृद्ध जनों का निमन्त्रण स्वीकार किया जाता था, इनमें पितृसत्तात्मक परिवारों की महानता मानी जाती थी। मुरगिन युवक को सगोत्र में विवाह करने का किसी रूप में अधिकार न प्राप्त था। एक ही अर्धांश के गोत्रों में पारस्परिक कलह हुआ करती थी। इनके दो विभाग थे। एक का नाम 'दुआ' (Dua) तथा दूसरे का नाम यिरित्जा (Yiritza) था। मुरगिन जाति का जब एक लड़का ६ व ८ साल का हो जाता था तो उसे दीक्षा दी जाती और अविवाहितों के साथ रख दिया जाता था। लड़के पर आहार विहार-सम्बन्धी कई प्रतिबन्ध लगाये जाते थे। मुरगिन लोग मुर्दे को ४ फीट की गहराई पर गाड़ देते थे और कुछ मास बाद मृतक की हड्डियां को लाकर साफ करते और उन्हें निवास स्थान से बाहर पड़े हुए शहतीर के खोल में सुरक्षित रख देते थे। मुरगिन जाति के लोग दो आत्माओं में विश्वास रखते थे। एक अन्तरात्मा और दूसरी "छाया-आत्मा।" मृत्यु के बाद छाया-आत्मा जंगल में

चली जाती है और छलात्मा (Trickster Soul) का रूप धारण कर ले
है। जन्म से पूर्व बच्चे की आत्मा गोत्र के पवित्र कुए में लघु-मत्स्य के रूप
वास करती है और पिता को कभी कभी यह आत्मा स्वप्न में भी दिखा
देती है। ये लोग गणचिन्हवाद (Totem) को भी मानते और प्रेतात्मा
में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास था कि जादूगर रोग निवारण कर
सकता है।

## कनेला (Canella)

उत्तरी पूर्वीय ब्राजील के आन्तरिक प्रदेशों में ३ जनजाति समुदाय वास
करते थे जिन्हें 'कनेला' नाम से स्मरण किया जाता था। इनमें १५ छोटी-
छोटी जातियां थी। ये लोग शारीरिक शृंगार पर विशेष ध्यान देते। सिर
के बालों का विशेष प्रकार से कर्तन करते थे। बच्चों के कान के लटकते हुए
भाग को छेद दिया जाता और उसमें काष्ठनिर्मित आभूषण पहनाया जाता
था। शरीर तथा गालों को एक विशिष्ट झाड़ी के बीजों से निकले हुए लाल
रंग से सजाते थे। यह रक्त वर्ण पुष्प (Urucu) नाम से कहा जाता है।
ये लोग मछली के शिकार पर अपना निर्वाह करते और मत्स्य-आखेट के लिए
धनुष तथा विशेष बूटियों का प्रयोग करते थे।

कनेला लोग जलमार्गों के समीप अपना निवास स्थान बनाते थे।
मकानों की रचना अतीव सुन्दर ढंग से की जाती थी। चटाई से बन्धन का
काम लेते। स्त्री पुरुषों के शयन स्थान पृथक् पृथक् होते थे। स्त्री और पुरुष
का पद समान समझा जाता था और वे प्रतिदिन 'नृत्य-भवन' में एक साथ
नृत्य करते थे।

कनेला जाति के सभी विधिविधान आमोद प्रमोद के लिए किए जाते
थे। धार्मिक विधिविधानों का अभाव था। ये लोग जादू में विश्वास रखते
थे। सूर्य और चन्द्रमा की उपासना की जाती थी। वन्ध्यास्त्री सूर्य देवता से
पुत्र कामना के लिए प्रार्थना करती थी। भयंकर रुग्णावस्था में वे मृत
मृतक पूर्वज आत्मा से सम्पर्क स्थापित रखने और उसके पास पहुँचने के लिए
एकान्तवास किया करते थे। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् पति पत्नी को कुछ
समय के लिए पृथक् रहना पड़ता था। ये लोग खेल, नृत्य तथा नाटकों के
अत्यन्त शौकीन थे। लम्बी दौड़ के लिए कई प्रतियोगिता भी हुआ करते थे। खेल
के मैदान में प्रतियोगिता के प्रारम्भ होने पर तालियां बजाई जाती थीं। दौड़
समाप्त पर युवक पुरुष के शरीर को रक्तवर्ण से सजाया जाता था।

## होपी (Hopi)

उत्तरीय अरिजोना के इलाके में ७ ग्रामों में होपी जनजाति वास

करती थी। स्पेन तथा सिकन्दर-इण्डियन्स के आक्रमण के कारण शरण पाने के लिए जब बहुत से लोग इस प्रदेश में आये तो यहां केवल मात्र होपी जाति का ही वास था। ये लोग पाषाणनिर्मित घरों में रहते और कृषिकार्य करते थे। ज्वार और रुई की खेती विशेष रूप से की जाती थी। कुत्तों को पालने की प्रथा विद्यमान थी। अकाल में कभी कभी कुत्तों का मांस भी खाया जाता था। भेड़ों से कृषि का काम न लिया जाता था अपितु उनकी ऊन को प्रयोग में लाया जाता था। परिवार प्रथा मातृवंशीय तथा घर पर स्त्रियों का अधिकार होता था।। पवित्र विधिविधान भी स्त्रियों के हाथों से सम्पन्न किए जाते थे। होपी लोग वस्त्र व्यवसाय, चित्रित पात्रों के निर्माण, कृषि तथा पाषाणगृह निर्माण आदि कार्यों में अत्यन्त सिद्ध हस्त थे।

गाँव का एक मुखिया भी नियत किया जाता था जो पारस्परिक झगड़ों का फैसला किया करता था। ये लोग मसौवी (Masauwii) नामक देवता में विश्वास रखते और उसे रक्षक, दाता और निर्माता का रूप समझते तथा अग्नि, युद्ध, मृत्यु आदि का निर्णायक समझते थे। उनका विश्वास था कि पर्वत की चोटियों पर प्रेतात्माओं का वास है। देवता लोग दूर बैठे फसल की रक्षा करते रहते थे।

होपी में कतिपय गुप्त संस्थायें (Secret Societies) भी स्थापित थीं। ये संस्थायें पुरुषों द्वारा सञ्चालित होती थी परन्तु तीन स्त्री सभों का भी वर्णन पाया जाता है।

नक्षत्रों तथा ग्रहराशियों आदि पर उन्हें पूरा विश्वास था। वे जब कोई कार्य करते तो मुहूर्त, शकुन, अपशकुन आदि का विचार कर लिया करते थे। मास को वे दो भागों में विभक्त करते थे। नव वर्ष नवम्बर से प्रारम्भ किया जाता था। कन्या के रजस्वला होने पर उसे ४ दिन तक चक्की पीसनी पड़ती थी।

**बगोबो (Bagobo)**

डवाओ (Davao) खाड़ी के पश्चिम में तथा मिण्डानाओ (Mindanao) के दक्षिणी प्रदेश में दस हजार लोगों की एक जनजाति वास करती थी जिसे बगोबो नाम से स्मरण किया जाता था। ये लोग फिलिपाइन्स की सबसे ऊँची चोटी माऊण्ट आपो के पूर्वी तथा दक्षिणी मैदानों में फैले हुए थे। बगोबो जनजाति का सम्बन्ध मलाया-पोलीनिशिया परिवार से जुड़ा हुआ था। इनके कई पड़ोसी इस्लाम धर्म के शिकार होगए थे परन्तु इन्होंने अपने आप को इस्लाम के प्रभाव से दूर रखा। ये लोग घोड़े और भैंस रखने के बहुत शौकीन हैं। अपनी आजीविका के लिए वे लोग आखेट तथा अन्य व्यवसाय

पर निर्भर रहते थे। पुरुष जमीन खोदना जाता और स्त्री बीज डाल[illegible]
जाती थी। धातुशोधन का कार्य तथा गृह निर्माण, पुरुषों के हाथ में होत[illegible]
था, पटुए का व्यापार और निर्यात प्रचुर मात्रा में पाया जाता था[illegible]
चाकू तथा पटुए का यहाँ से निर्यात होता था और बोनियों से हाथी दांत[illegible]
के बने आभूषणों का बाहर से आयात होता था। चीन के बने घड़ियाल सिंगापुर
से फिलिपाइन्स में भेजे जाते थे। शत्रुओं को मारने और उनपर विजय प्राप्त
करने में ये लोग श्रेय समझते थे। जिस व्यक्ति ने जीवन में एक भी हत्या
न की हो उसे न तो सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और न
ही उसे आदमी समझा जाता था। कम से कम जिस व्यक्ति ने जीवन में
दो हत्यायें की हों उसे बहादुर समझा जाता तथा उसे गौरव प्रदान किया
जाता था, जो व्यक्ति जुर्माना देने में असमर्थ होते अथवा जो पकड़
लिए जाते थे उन्हें दास बना लिया जाता था। इन दास स्त्री को
भी मुखिया से विवाह करने का अधिकार था। उससे उत्पन्न
हुआ बच्चा ही ग्राम का मुखिया हो सकता था। स्त्रियों की सामान्यावस्था
अच्छी थी। ये लोग दो आत्माओं में विश्वास रखते थे सव्यपार्श्वी
आत्मा (Right hand soul) आमरण स्वामी को न छोड़ती थी और
वाम्पार्श्वी आत्मा (Lefthand soul) स्वप्न में मनुष्य को छोड़कर चली
जाती थी। यह दूसरी आत्मा अपने लिए और स्वप्नद्रष्टा के लिए भयावह
थी। यदि इसे भ्रमण करते हुए पकड़ लेता तो स्वप्नद्रष्टा का जीवन खतरे
पड़ जाता। यह आत्मा पानी में प्रतिबिम्ब पड़ने से पहचानी जा सकती थी।

## शिलुक (Shilluk)

"आंग्लमिश्र-सूडान (AngloEgyptian Sudan) की नील नदी-
वासी शिलुक तथा शिलाहूम जनजातियाँ नमीदार तथा शुष्क जलवायु में रहती
थीं। वहाँ इस प्रदेश में जलवायु सम्बन्धी विरोधाभास थे वहाँ इनकी आर्थिक
स्थिति भी एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत जान पड़ती थी। शिलुक लोग भेड़
और बकरियाँ प्रचुर मात्रा में रखते थे। ये बाजरा, व ज्वार से मिलते जुलते
पौधे "सोरघम" (Sorghum) की खेती करते थे। यहाँ इन लोगों की
बस्तियाँ पर्याप्त घनी थीं। स्त्रियाँ सुन्दर पात्रों तथा चटाइयों का निर्माण
करतीं और पुरुष गृहनिर्माण करते और सिरे की विभिन्न शीशों
से अलंकृत करते थे। इस प्रदेश में लकड़ी का अभाव होने से एक मकान
निर्माण में महीनों लग जाते थे। इनका सामाजिक जीवन कुछ विचित्र सा
था। पति और पत्नी पृथक् पृथक् माने जाते थे। पशुओं को चराना और

उनका दूध निकालना पुरुषों का काम था। नृत्य के अवसर पर युवक और युवतियाँ एक दूसरे के साथ नृत्य करती थीं। भाई और बहिन के एक साथ नाचने को भी बुरा नहीं समझा जाता था। इनमें पितृसत्तात्मक परिवार की प्रधानता होती थी। ये बहु पत्नी प्रथा को माननेवाले होते थे तथा इनके गोत्रों के साथ पशु नाम जुड़ा होता था। स्त्री बन्ध्या ही मर जाती तो उसे 'कन्या-मूल्य' वापिस कर देना पड़ता था। वैवाहिक पद्धति की जटिलता के कारण इनमें अनाचार की भावनायें जागृत हो जाया करती थीं। स्त्री की बहिन को पूरी कीमत चुका देने के बाद द्वितीय पत्नी के रूप में रक्खा जा सकता था। पुरुष और उसके श्वसुर में बोलचाल नहीं हो सकता था। विवाह के अनेक वर्षों बाद वे आपस में बोल पाते थे। लड़का लड़की के मामा से भी नहीं बोल सकता। इनमें राजा की सत्ता सर्वोपरि मानी जाती थी। एक राजा और उसके कई सरदार होते थे। राजा जिससे चाहे विवाह कर सकता था। राजा को अपनी लड़कियों से भी अनुचित प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार था परन्तु विवाह का अधिकार नहीं था। राजा की सर्वोपरि सत्ता होने के कारण उसे अनेक विशेषाधिकार प्राप्त होते थे। राजा की सत्ता जीवन पर्यन्त सर्वोच्च मानी जाती थी। परन्तु जब राजा राजकार्य में शिथिल पड़ने लगता तो उसे जनता की भलाई के लिए विधानात्मक रीति से अलौकिक शक्ति की आज्ञा से मार भी दिया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि वे लोग राजसत्ता तथा अलौकिक शक्ति के बीच गहरे सम्बन्ध को स्वीकृत करते थे। उनका विश्वास था कि यदि राजा बीमार अथवा बूढ़ा (Senile) हो जाता है तो देश के सब पशु बीमार पड़ जाते हैं, देश की फसल नष्ट हो जाती है और प्रजा मरने लग जाती है अतः उसका जिन्दा रहना भी एक भारी खतरा है।

### अलबानियन्स (Albanians)

एड्रियाटिक समुद्र के पूर्व में अलबानिया स्थित है। इसके उत्तर और पूर्व में यगोस्लाविया और दक्षिण तथा पूर्व में ग्रीस फैला हुआ है। यहाँ पर कई शताब्दियों तक तुर्कों का साम्राज्य रहा। भाषा की दृष्टि से इन जनजातियों के दो वर्ग हैं। यहाँ जलवायु मैडिट्रेनियन की भाँति गर्मी में शुष्क तथा शरद ऋतु में ठंडी होती है। यहाँ जैतून के पेड़ तथा वट वृक्ष के बड़े-बड़े जंगल हैं। अल्बानियन भाषा में अन्य अनेक भाषाओं के शब्दों का समावेश है। इसमें ७० प्रतिशत लोग इस्लाम के अनुयायी हैं अवशिष्ट लोग ग्रीक तथा कैथोलिक मतावलम्बी हैं।

# तृतीय भाग

१—प्रागैतिहासिक संस्कृतियां

२—प्राचीन वस्तु कला

# प्रागैतिहासिक संस्कृतियां

## हिमयुग का प्रारम्भ–मनुष्य की प्राचीनता

प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के अध्ययन का भूगर्भशास्त्र तथा प्राचीन-सत्वशास्त्र से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। संस्कृतियों के काल निर्णय के हेतु हमें भूगर्भशास्त्र का सहारा लेना पड़ता है। अतः हमारे लिए प्रागितिहास सम्बन्धी कुछ विशेष भूगर्भशास्त्रीय पहलुओं पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। भूगर्भशास्त्र वेत्ता मनुष्य के सम्प्राप्ति-काल को प्रतिनूतन-काल के नाम से स्मरण करते हैं। इस काल की अवधि के सम्बन्ध में भिन्न २ मत प्रचलित हैं। प्रो० सोलास प्राप्त अवशेषों के आधार पर प्रतिनूतन-काल को ४ लाख वर्ष पुराना मानते हैं। प्रो० स्टोट के मत में इस काल का प्रारम्भ १ लाख ४० हजार वर्ष पूर्व हुआ था। प्रो० कीथ के मतानुसार हिमयुग ४ लाख ५० हजार से लेकर ७ लाख वर्ष के पूर्व का समय है परन्तु इतना अवश्य है कि जलवायु के परिवर्तनों के कारण इस प्रतिनूतन-काल में समय समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे। समशीतोष्ण-काल में योरप के बड़े २ जंगल और जलसिञ्चित प्रदेश शिकार क्षेत्र और चरागाह के रूप में परिवर्तित हो गये। तत्पश्चात् उत्तर की बेगवती हवा के साथ पुनः शीत का आधिक्य हो गया और पृथ्वी हिमाच्छादित दिखाई देने लगी। अनेक पशु, नष्ट हो गये। कुछ अवशिष्ट पशु दक्षिण दिशा में उष्ण कटिबन्धों की ओर चले गए और हिमावस्था की समाप्ति तक वहीं वास करते रहे।

बानबिटेल का विचार है कि शीत प्रिय प्राणियों का प्रवास ध्रुव प्रदेशों में प्रारम्भ हुआ। जैसे जैसे हिमखण्ड घटते बढ़ते रहे वैसे वैसे ये पशु भी दक्षिण और उत्तर की ओर आते जाते रहे। अन्त. हिम युगों में (Inter Glacial Phase) ये पशु योरप के सुदूर उत्तर में पुनः आये। ज्यों-ज्यों हिमखण्ड की रेखा नीचे खिसकती जाती थी और जलवायु में परिवर्तन होता जाता था त्यों-त्यों भूमि-उपजाऊ तथा निवास योग्य बनती जाती थी। हिमखण्ड की अन्तिम प्रगति का प्रभाव इतना हुआ कि हिमरेखा १००० फीट नीचे खिसक आई और उस भूभाग पर जंगन आबाद हो गये।

## आदिप्रतिनूतन कालीन अवशेष

पृथ्वी पर मानवीय जाति के प्रारम्भ की कहानी हिमयुगों के आदिकाल से सम्बन्ध रखती है। मानवशाखा का सबसे पुराना निखातकावशेष जावा का वानर मानव है जिसके अनुसन्धानकर्ता डा० डुवायस ने इसे अन्तिम प्रतिनूतनकालीन माना है। मस्तिष्क रचना की दृष्टि से सभी विद्वानों ने वानर मानव को पूर्णरूपेण मानव सम प्राणी मानने से इन्कार कर दिया है। वस्तुतः जावा के सभी अवशेष वानर और मनुष्य के बीच की परिवर्तनावस्था में परिगणित किए गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जब इस मानवाकार प्राणी की सम्प्राप्ति हुई तो मानवीयशाखा का बहुत पुराना इतिहास विद्वानों ने खोज निकाला परन्तु इसके काल निर्णय के सम्बन्ध में सभी विद्वान् सहमत न हो सके। सन् १६०६ में फ्रालैनोर सर्लेका तथा प्रो० मैक्स ब्लैंकनहार्न ने ट्रिनिल प्रदेश की यात्रा की। डा० स्टेमें ने इस मानवावशेष के प्रतिनूतन (Pleistocene) तथा प्रो० कीथ ने अतिनूतन (Pliocene) तथा प्रतिनूतन (Pleistocene) काल का मध्यवर्ती बतलाया।

अभी हाल ही में जो अनुसन्धान हुए हैं उनके आधार पर वानर-मानव को पूर्व पाषाणयुगीय मानव के पुरातन रूप से असम्बद्ध किया गया है क्योंकि यदि हम इसे अन्तिम अतिनूतन (Upper Pliocene) कालीन प्राणी माने तो हमें उसके मस्तिष्क विकास सम्बन्धी क्रम का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता। अतएव यह मानना पड़ेगा कि यह प्राणी अन्तिम अतिनूतन कालीन नही अपितु इसके बाद का प्राणी है।

मानवीय शाखा सम्बन्धी विकास का आगामी क्रम तभी ज्ञात हुआ जब चार्ल्स डॉसन को पिल्टडाऊन के उपःमानव की सम्प्राप्ति हुई। प्रागैतिहासिक काल का यह कपाल विद्वानों के लिए अचम्भे का विषय बन गया। पिल्टडाऊन के इन्हीं अवसादों (Deposits) से पाषाण निर्मित उपकरणों तथा 'चैलियन' रूप के कतिपय अन्य उपकरणों की भी सम्प्राप्ति हुई। प्रो० कीथ ने उपःमानव को अतिनूतन कालीन अवशेष मानने पर जोर दिया परन्तु अन्य कतिपय विद्वानों ने इसका खण्डन करते हुए उप.मानव को आदि प्रतिनूतन काल का ही प्राणी माना।

## मध्य प्रतिनूतन कालीन अवशेष

इसके बाद हम मध्य प्रतिनूतन कालीन अवसादों से प्राप्त मानवाकार

अवशेषों की ओर आते हैं। पूर्व पाषाण युगीय प्राणी के अवशेषों के प्रथम अनुसन्धान का श्रीगणेश नियन्डरथल मानव की सम्प्राप्ति से हुआ। जब इस प्राणी के अवशेषों को बोन के अद्भुतालय में सुरक्षितावस्था में भेजा गया तो विरचोव महोदय ने यहाँ तक कह डाला कि यह कपाल किसी रोगी का है। हक्सले ने इसे मानवसम घोषित किया। चूँकि इसी कन्दरा में से रीछ की अस्थियाँ तथा दाँत भी उपलब्ध हुए थे अतः यह अनुमान किया गया कि नियन्डरथल प्राणी अतिनूतन कालीन पशुओं के साथ विचरण किया करता था। १९ वीं शताब्दि के मध्य में संसार इस निर्णय को मानने के लिए उद्यत न था क्योंकि यह अवशेष अपने ढंग का निराला और अपूर्ण अवशेष था अतः इसका सम्बन्ध किसी लुप्त जाति से जोड़ा जाय अथवा आधुनिक मानव के किसी रुग्ण व विकृत रूप से—यह कहना कठिन था। इसके बाद जब नियन्डरथल मानवों के अन्य रूप दृष्टिगोचर हुए तो यह स्वीकार किया गया कि नियन्डरथल जाति की सत्ता विद्यमान थी और अतिनूतन काल के प्रारम्भ में योरप में सर्वत्र फैली हुई थी।

जब वैज्ञानिक संसार प्राप्त अवशेषों की गवेषणा कर रहा था तो मध्यप्रति नूतन कालीन कतिपय अन्य अवशेष फ्रांस, बेल्जियम तथा जिब्राल्टर के इलाकों में भी उपलब्ध हुए जो पूर्व पाषाणयुगीय और नियन्डरथल जाति से सम्बन्ध रखते थे। ये प्राणी पृथ्वी पर सीधे चल सकते थे और हिमयुक्त जलवायु से अपनी रक्षा करने के लिए खाल तथा आग आदि का प्रयोग करते थे। इनकी अस्थि परीक्षा से तो यहाँ तक भी पता चलता है कि ये आधुनिक युग की श्वेत, मंगोल तथा आस्ट्रेलियन जातियों से भी सम्पर्क रखते थे।

### अन्तिम अतिनूतन काल के अवशेष

अन्तिम अन्त हिमयुग के दिनों में योरप में नियन्डरथल जाति का लोप हो गया। इसके लोप होने के साथ-साथ मानव शाखा का एक अन्य रूप विभिन्न आकार प्रकार धारण किये हुए प्रकट हुआ। फ्रांस तथा कतिपय अन्य प्रदेशों में यह नवीन मानव रूप वास करता चला गया। मौस्टेरियन' संस्कृति की समाप्ति पर योरप में एक नवीन जाति 'आरिग्नेशियन' का दृष्टिगत के सामने से प्रवेश हुआ। इसके अतिरिक्त नौमायड स्टाक (Stock) के लोग फ्रांस तथा इटली में प्रविष्ट हुए।

सन् १८६८ में डोरडोन प्रदेश स्थित एक घाटी से 'क्रोमैग्नन' मानव

की सम्प्राप्ति हुई। 'आरिग्नेशियन' संस्कृति के कुछ अवशेष भी इसी स्थान से प्राप्त हुए। 'क्रोमैग्नन मानव' की सम्प्राप्ति से संसार के मानवशास्त्री यह दावा करने लग गये कि अब हमें आधुनिक मानव के वास्तविक आदि रूप का पता चल गया है। 'क्रोमैग्नन मानव' की सम्प्राप्ति मानव शास्त्रियों के लिए सचमुच ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात थी परन्तु ठीक इसी समय प्रो० कीथ का ध्यान 'गेली हिल' में पाये जानेवाले कपालावशेष की ओर आकृष्ट हुआ। प्रो० कीथ का विचार था कि यह कपाल सचमुच मानव जाति के नवीन रूप की ओर सकेत कर रहा है जिसके अवशेष अब भी ब्रिटेन के आधुनिक लोगो में पाये जाते हैं। ये पूर्व पाषाण युग के अन्तिम तथा नव-पाषाण युग के प्रारम्भिक अवशेष आधुनिक मानव की भांति पूर्ण विकसित अवस्था में थे। 'चैलियन संस्कृति' के कुछ पूर्वपाषाणयुगीय उपकरण भी इस अवसर पर उपलब्ध हुए।

सन् १९११ में मि० रीडमायर को इप्सविक में तथा प्रो० गाड्री को मैण्टोन में जो अस्थिपंजरो के कतिपय अवशेष प्राप्त हुए थे उनके आधार पर उन्होंने "ग्राइमाल्डी जाति" के विकास का पता चलाया।

प्रो० क्लाट्स्च का मत है कि वानरो तथा मनुष्यों के एक ही पूर्वज थे जिन्हें प्रथम वानर मानव (Propithecanthropi) कहते हैं। ये पूर्वज सामूहिक रूप में सभी दिशाओं में फैल गये और इनसे भिन्न-भिन्न जातियाँ प्रारम्भ हुई। ये लोग एशिया में घूमा करते थे। हिमकाल में इनकी मुख्य जाति योरुप में आई जिससे आरिग्नेशियन जाति की उत्पत्ति हुई। नियन्डरथल मानव मिश्र में अफ्रीका के रास्ते से आक्रमणकारी के रूप में प्रविष्ट हुए। कीथ का विचार है कि ये नियन्डरथल मानव ही आधुनिक मानव रूप के पूर्वज थे। परन्तु शैम्बर्गर तथा स्च्वाले का विचार है कि नियन्डरथल मानव जाति का एक बिल्कुल पृथक् रूप था। स्च्वाले के आधार पर हम मानव जाति को दो भागो में विभक्त कर सकते हैं। १. आधुनिक मानव तथा २ प्राचीन मानव

| | | | |
|---|---|---|---|
| नियन्डरथल अवशेष<br>स्पाई ,,<br>क्रपिना ,,<br>जिब्राल्टर ,, | प्राचीन मानव | अवस-मानव<br>गैलीहिल मानव<br>क्रोमैग्नन ,,<br>आस्ट्रेलियन ,,<br>यूरोपियन ,, | आधुनिक मानव |

इस प्रकार यह मानना पड़ेगा कि वानर मानव तथा नियन्डरथल मानव मानवजाति के विकृत रूप थे और कालान्तर में इनका लोप हो गया।

आधुनिक मानव का विकास अति नूतन काल से प्रारम्भ हुआ है। उत्तरीय भारत की शिवालिक पहाड़ियों के समीप नूतनिक काल के प्राचीन वानर मानव के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो गिगान्टो, गोरिल्ला तथा गिब्बन से सम्बद्ध हैं। दक्षिण भारत में भी मानव रूपों के चार वर्तमान रूपों की सम्प्राप्ति हुई है। हमारे विचार में वानर मानव का उच्च मानव से कोई अन्तर नहीं। वानर मानव का विकास अपने ही रूप में हुआ। यह असम्भव है कि उच्च मानव तथा जिंजान्थ्रप मानव ट्रिनिल के वानर मानव से विकसित हुए हों। नियण्डरथल मानव वानर मानव का विकसित रूप नहीं। हिमयुग की समाप्ति पर नियण्डरथल मानव लुप्त हो गये जब कि उच्च मानव, गैली पर्वतीय जाति ग्रारिग्नेशियन तथा क्रोमेग्नन मानव के रूप जीवित रहे।

'मौस्टेरियन-संस्कृति' की समाप्ति पर योरप में नवीन जातियों का प्रवेश हुआ। एक ओर तो वे उच्च मानव सादृश्य थी और दूसरी ओर नीग्रायड जाति से उनकी सादृश्यता थी। इन्हीं के साथ संस्कृति का विकास हुआ। ज्यों ही शुष्क और शरद् जलवायु पुनः प्रकट हुआ त्यों ही एक नवीन जाति "मगडलेनियन" योरप में घुस आई। इनके पास पशु तथा अस्थिनिर्मित उपकरण भी थे। ये लोग अपने घरों को चित्रों से सुशोभित किया करते थे। पूर्व पाषाण युग के अन्त में बर्फ ध्रुवों तक ही रह गई अतः पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग जातियों के विस्तार के लिए पर्याप्त था। इस परिवर्तन तथा जातीय प्रगति द्वारा पुरातन पाषाण युग के स्थान पर नवीन पाषाण युग का प्रारम्भ हुआ। एक नवीन और उच्चतमरूप का प्राणी नव पाषाण युग में योरप में प्रविष्ट हुआ।

यह है मानव की प्राचीनता का इतिहास जिस पर आज का वैज्ञानिक संसार अब तक भी अनुसन्धान कर रहा है। मानव सम्प्राप्ति सम्बन्धी सभी गवेषणायें क्योंकि तर्कणा पर आधारित हैं अतः धार्मिक विचारों का इसमें कोई स्थान नहीं। हमारी समस्त प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ मानव की प्राचीनता को स्वीकार करती है। यदि हमें आधुनिक मानव का द्वितीयक व तृतीयक काल सम्बन्धी कोई निर्णायक अवशेष प्राप्त हो जावे तो हमें उस काल में भी मनुष्य की सत्ता को स्वीकार करना पड़ेगा। अब क्योंकि सभी वैज्ञानिक गवेषणायें मनुष्य की सत्ता को अतिनूतन काल तक स्वीकृत कर चुकी हैं अतएव मनुष्य की प्राचीनता का इतिहास भी उतना ही पुराना मानना होगा।

सांस्कृतिक दृष्टि से प्रागितिहास का विभाजन तीन कालों में किया जा सकता है।

१. पाषाण युग (Stone Age)
२ कांस्य युग (Bronze Age)
३ लौह युग (Iron Age)

पाषाण युग

१. पूर्व पाषाण युग (Paleolithic)
२. नव पाषाण युग (Neolithic)

पूर्व पाषाण युग को पुन: तीन भागों में विभक्त किया गया है। आदि-कालीन पूर्व पाषाण युग, मध्यकालीन पूर्व पाषाण युग तथा अन्तकालीन पूर्व पाषाण युग। जिन-जिन स्थानों पर जो जो पाषाण निर्मित वस्तुएँ उपलब्ध हुईं उनका स्थान भेद से पृथक् पृथक् वर्णन किया गया है। यदि हम सम्पूर्ण पाषाण युग का विभाजन करे तो हम निम्न विभाजन कर सकते हैं.—

१. उप: पाषाण युग (Eolithic Period)
२. पूर्व पाषाण युग (Paleolithic Period)

(क) आदिकालीन पूर्व पाषाण युग (Lower Paleolithic)
आदि चैलियन संस्कृति (Pre Chellean)
अथवा स्ट्रैपियन संस्कृति

(ख) मध्यपूर्व पाषाण युग (Middle Paleolithic period)
१. चैलियन संस्कृति (Chellean Culture)
२. एशूलियन संस्कृति (Acheulean Culture)

(ग) अन्तिम पूर्व पाषाण युग (Upper Paleolithic period)
मौस्टेरियन (Mousterean culture)

मध्य पाषाण युग (Mesolithic Period)

(क) आदिमध्य पाषाण युग
१. आरिग्नेशियन (Aurignacian culture)

(ख) मध्य मध्य पाषाण युग
१. साल्यूट्रियन
२. मगडलेनियन

अन्तिम मध्य पाषाण युग
१. एजिलियन, टार्डेनोसियन, मगलेमोसियन, कैम्पियन।

नव पाषाण युग (Neolithic period)

आदि नव-पाषाण युग
१. कैम्पिग्नियन
२. आस्टूरियन
टोवेनहोसियन संस्कृति तथा सम्पूर्ण उत्तर पाषाणयुगीय संस्कृति
कांस्य युग (Bronze Age)
लौह युग (Iron Age)

उप:पाषाण युग (Eolithic phase)

तृतीयक काल के अन्त में और प्रतिनूतनकाल के प्रारम्भ में उप: पाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ हुआ। यह काल पाषाणयुग से कुछ पूर्व का काल है। १८८३ में मि० जी० डे० मार्टिलेट ने इसे "व्यवसाय" का नाम दिया और बेल्जियम के प्रो० ए० रुटोट ने इस काल में पाये जाने वाले निम्न उपकरणों का उल्लेख किया है।

१. हथौड़ा (Hammer)
२. कुल्हाड़ी (Chopper)
३. चाकू (Knife)
४. खुरचन यन्त्र (Scraper)
५. वेधनयन्त्र (Perforator)

और कभी कभी फेंके जाने वाले पत्थर तथा सूमें (Anvil) भी इस काल में उपलब्ध होते हैं। सन् १९६३ में मि० एम० डेस्नोयर ने आदि नूतनकालीन कन्दराओं—'सेन्टप्रेस्ट' तथा 'पूये-एट-लायर' में अनुसन्धान किये। इसके साथ अन्य ८० स्थानों पर भी अन्वेषण किये गये। डेनमार्क में १, जर्मनी में ७, हालैंड में १, इंगलैण्ड में १७, बेल्जियम में २०, फ्रांस में १६, स्पेन में १, पुर्तगाल में २, इटली में १, ग्रीस में १, उत्तरीय अफ्रीका में २, दक्षिणी अफ्रीका में ४, मिश्र में १ तथा भारत में ३ स्थानों पर अनुसन्धान किये गये। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका तथा मंगोलिया में भी कई चीजें उपलब्ध हुई। फ्रांसिस बॅण्टल में 'पाईकोनों' तथा 'पाई के बार्ऊडयू' नामक स्थानों पर तथा इग्लैण्ड में केण्ट नामक स्थान पर भी पर्याप्त अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये सब मध्य, नूतन-काल तथा आदि नूतन काल के अवशेष हैं। अभी हाल ही में ईस्ट एन्लिया

१. पाषाण युग (Stone Age)
२. कांस्य युग (Bronze Age)
३ लौह युग (Iron Age)

पाषाण युग

१. पूर्व पाषाण युग (Paleolithic)
२ नव पाषाण युग (Neolithic)

पूर्व पाषाण युग को पुनः तीन भागो में विभक्त किया गया है। आदिकालीन पूर्व पाषाण युग, मध्यकालीन पूर्व पाषाण युग तथा अन्तकालीन पूर्व पाषाण युग। जिन-जिन स्थानों पर जो जो पाषाण निर्मित वस्तुएँ उपलब्ध हुई उनका स्थान भेद से पृथक् पृथक् वर्णन किया गया है। यदि हम सम्पूर्ण पाषाण युग का विभाजन करे तो हम निम्न विभाजन कर सकते हैं—

१. उपः पाषाण युग (Eolithic Period)
२. पूर्व पाषाण युग (Paleolithic Period)

(क) आदिकालीन पूर्व पाषाण युग (Lower Paleolithic)
आदि चैलियन सस्कृति (Pre Chellean)
अथवा स्ट्रैपियन संस्कृति

(ख) मध्यपूर्व पाषाण युग (Middle Paleolithic period)
१. चैलियन संस्कृति (Chellean Culture)
२. एशूलियन संस्कृति (Acheulean Culture)

(ग) अन्तिम पूर्व पाषाण युग (Upper Paleolithic period)
मौस्टेरियन (Mousterean culture)

मध्य पाषाण युग (Mesolithic Period)

(क) आदिमध्य पाषाण युग
१. आरिग्नेशियन (Aurignacian culture)

(ख) मध्य मध्य पाषाण युग
१. साल्यूट्रियन
२. मगडलेनियन

अन्तिम मध्य पाषाण युग
१. एजिलियन, टार्डेनोसियन, मगलेमोसियन, कैप्सियन।

## नव पाषाण युग (Neolithic period)

आदि नव-पाषाण युग
१. कैम्पिनियन
२. आस्टूरियन
टोवेनहौसियन संस्कृति तथा सम्पूर्ण उत्तर पाषाणयुगीय संस्कृति
कांस्य युग (Bronze Age)
लौह युग (Iron Age)

## उप:पाषाण युग (Eolithic phase)

तृतीयक काल के अन्त में और अतिनूतनकाल के प्रारम्भ में उप पाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ हुआ। यह काल पाषाणयुग से कुछ पूर्व का काल है। १८८३ में मि० जी० डे० मार्टिलेट ने इसे "अवसाय" का नाम दिया और बेल्जियम के प्रो० ए० रुटोट ने इस काल में पाये जाने वाले निम्न उदाहरणों का उल्लेख किया है।

१. हथौड़ा (Hammer)
२. कुल्हाड़ी (Chopper)
३. चाकू (Knife)
४. खुरचन यन्त्र (Scraper)
५. बेधनयन्त्र (Perforator)

और कभी कभी फेंके जाने वाले पत्थर तथा गूमें (Anvil) भी इस काल में उपलब्ध होते हैं। सन् १९६३ में मि० एम० हेम्नोयर ने आदि नूतनकालीन कन्दराओं—'सेन्टप्रेस्ट' तथा 'पुवे–एट–नायर' में अनुसन्धान किये। इसके साथ अन्य ८० स्थानों पर भी अन्वेषण किये गये। डेनमार्क में १, जर्मनी में ७, हालैंड में १, इंगलैण्ड में १७, बेल्जियम में २०, फ्रांस में १६, स्पेन में १, पुर्तगाल में २, इटली में १, ग्रीस में १, उत्तरीय अफ्रीका में २, दक्षिणी अफ्रीका में ४, मिश्र में १ तथा भारत में ३ स्थानों पर अनुसन्धान किये गये। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका तथा मंगोलिया में भी कई चीजें उपलब्ध हुईं। फ्रान्सिस बेंस्टल में 'पाईकोर्नी' तथा 'पर्ई के बार्ज़ैक्यू' नामक स्थानों पर तथा इंग्लैंड में केंट नामक स्थान पर भी पर्याप्त अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये सब मध्य, नूतन-काल तथा आदि नूतन काल के अवशेष हैं। अभी हाल ही में ईस्ट एन्लिया

नामक स्थान पर आदि नूतन कालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। सन् १६१० में कैण्टियन रूप के कई उप: पाषाण युगीय अवशेष मि० रीड मॉयर ने प्राप्त किये जिन्हें उसने पूर्व पाषाण युग के प्रारम्भिक काल या अथवा चैलियन संस्कृति से पूर्व का बतलाया है।

स्टोट के कथनानुसार पहले मैफियन, मैस्वीनियन, स्ट्रैपियन संस्कृतियों को उप: पाषाण कालीन संस्कृतियों में परिगणित किया जाता था परन्तु अब स्टोट का कथन है कि इन्हें पूर्व पाषाणयुग का समझना चाहिये।

### उप: पाषाण कालीन उपकरण

ये उपकरण केण्ट (इंग्लैण्ड) से अति नूतनयुगीय कन्दराओं से उपलब्ध हुए हैं:—

१. चूर्णित पाषाण खण्ड (Battered Flint Nodule) २. चौरस पाषाण खण्ड (Tabular Flint Nodule) ये नीचे के सिरे पर कुछ कटे हुए होते हैं ३. चौरस पाषाण खण्ड—ये दोनों सिरों पर कटे और उभरे हुए होते हैं। क चौरस-पाषाण खण्ड—ये सीधे और किनारे पर थोड़े फटे होते हैं। ख. चौरस पाषाण खण्ड—जिनके किनारे नीचे की ओर झुके हुए होते हैं ग चौरस पाषाण खण्ड—ये एक नोक पर कटे हुए होते हैं।

## पूर्व पाषाण युग

पूर्व पाषाण युग को प्रो० सोलास ने 'आखेटक युग' के नाम से स्मरण किया है। पूर्व पाषाण काल में मनुष्य को स्वेच्छापूर्वक नहीं अपितु आवश्यकता पूर्ति के लिए यह व्यवसाय अपनाना पड़ता था। प्राचीन मानव का जीवन ग्रीष्म अन्त: हिमयुगों में परिभ्रमण करने, नदियों के किनारो पर जंगली पशुओं का पीछा करने, घास, शाक मूल, कन्द एकत्रित करने में ही व्यतीत होता था। हिमकाल में खाद्य सामग्री की कमी के कारण प्राचीन मानव मांसभोजी बनने के लिए बाध्य हो गया अन्यथा वह शाकाहारी मानव ही हुआ करता। जब तक उसके उपकरणों का विकास नहीं हुआ तब तक वह मत्स्य आदि छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं का शिकार किया करता परन्तु ज्यों-ज्यों उसके उपकरण एवं यन्त्रादि विकसित होते गये वह विशालकाल पशुओं का भी शिकार करने लग गया।

नवपाषाण युग से पूर्व ही आखेटकों ने चरवाहों तथा कृषिकारों
का व्यवसाय अपनाया। 'मस्देअजिल' की कन्दरा में जले हुए अनाज के ढेर
मिले हैं जिसके आधार पर मानव शास्त्रियों का अनुमान है कि पूर्व पाषाण युग
की समाप्ति पर कृषि का व्यवसाय प्रारम्भ हो गया था।

सीधा खड़े होने की प्रवृत्ति ने मनुष्य को पशु श्रेणी से पृथक् कर
दिया। इसके बाद वह पत्थर को सुगमतया उठा सकता था। पत्थर को
पकड़ना और फेंकना भी उसे आता था। सर्व प्रथम जावा के वानर मानव
ने जब एक पाषाण खण्ड को तोड़ा तो सहसा उसके मस्तिष्क में यह युक्ति
सूझी कि पाषाण खण्ड का किनारा किसी पदार्थ को काटने के लिए उपकरण
का काम दे सकता है। उसने सहसा पाषाण खण्ड को काट कर उपकरण
बना लिया। उसने अपने आपको सभ्य बनाने की योजना स्वयमेव ही
निर्धारित की। जब मनुष्य ने सबसे प्रथम आग के प्रयोग का अनुसन्धान
किया होगा तो वह यह अवश्य जान पाया होगा कि आग न केवल उसका
खाना पकाती और उसके देह को उष्ण रखती है अपितु उसे यह भी प्रतीत
हो गया होगा कि आग द्वारा लकड़ी के उपकरण भी बनाये जा सकते हैं।

'पिल्टडाऊन' (ससैक्स) में जब उप मानव की सम्प्राप्ति हुई तो
उसी स्थान से उप पाषाण युगीय पाषाणखण्डनिर्मित उपकरण भी उपलब्ध
हुए। इससे प्रतीत होता है कि उस समय पाषाणखण्डों की परिष्कृत
रचनायें चाकू, छुरे आदि बनाने का व्यवसाय, लकड़ी के सघर्ष द्वारा आग
की उत्पत्ति का कार्य प्रारम्भ हो गया था। पशु को वह शिकार द्वारा पकड़
लाता और उसकी खाल पत्थर के टुकड़े से उतार सकता था। इन उपकरणों
द्वारा वह जमीन को खोद लेता और अपने निवास योग्य स्थान बना लेता था।
पत्थर तथा अस्थियों से वह उपकरणों का काम लेता और उस से अपने जीवन
के कई उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता था। वानर तो वैसे किसी फल को तोड़ने
का काम पत्थर से लेते थे परन्तु मानवीय मस्तिष्क ने यह सोचा कि पत्थर को
विशेष आकार दे देने से उस से कई काम लिये जा सकते हैं। मानवीय मस्तिष्क
ने इस ओर प्रगति की और इन पत्थरों से आकार संयुक्त उपकरणों का
निर्माण किया। प्रारम्भ के उपकरणों की निर्माण-विधि यह थी कि एक पत्थर
को दूसरे पत्थर पर काट पीट कर उसका आकार प्रकार इस प्रकार बना
लिया जाता था ताकि उपकरण का काम दे सके। कैण्ट तथा बेल्जियम के
पथरीले मैदानों में ऐसे उपकरण उपलब्ध हुए हैं जिन्हें हम उप-पाषाण-
युगीय (Eolithic) कहते हैं। सबसे प्रथम पत्थर द्वारा काट पीट कर बनाये
गये उपकरणों को अभिव्यक्ति के लिए मि० जे एलन ब्राउन ने उपपाषाण

(Eoliths) नाम रक्खा था परन्तु बाद के पुरातत्वशास्त्रियों ने भी इस नाम को अपना लिया। ये वही उपकरण हैं जो पूर्व पाषाण युग के आदिकाल से सम्बन्ध रखते हैं।

पूर्वपाषाण युगीय व्यवसाय का काल तथा अतिनूतन काल दोनों समकालीन हैं। वियाना के मि० मोस्वाल का मत है कि पूर्व पाषाणकाल के प्रारम्भ में ही उत्तरीय एशिया में अस्थिप्रयोग प्रारम्भ हो गया था। वहाँ से यह संस्कृति योरुप की ओर फैली। पूर्वपाषाणयुग में मुष्ठिछुरे (Coup-de-poing) का भी प्रयोग प्रारम्भ हुआ। यह व्यवसाय भारत से पश्चिम की ओर अफ्रीका के रास्ते से मैडिट्रेनियन के प्रदेश में फैला। तीसरा पाषाणखण्डीय शल्कल (Flake) व्यवसाय है जो पूर्वीय एशिया से केन्द्रीय एशिया और मैडिट्रेनियन प्रदेश की ओर फैला। अब जिस-जिस काल के अवशेष जहाँ-जहाँ मिलते गये उस स्थान के नाम से उस संस्कृति को स्मरण किया जाता है। कई मानवशास्त्री तो इसे आदि पूर्वपाषाण, मध्य पाषाणयुग तथा अन्तिम पाषाण युग के वर्गीकरण द्वारा इसका संस्मरण करते हैं और कई विभिन्न विभिन्न स्थानों चैलियन, क्लैक्टोनियन, एशुलियन, लैवेलोसियन, मौस्टेरियन, आरिग्नेशियन, साल्यूट्रियन, मगडलेनियन, एजिलियन, टार्डीनोसियन, मैग्लेमोसियन, कैम्पिग्नियन, एस्टूरियन, क्रोमेसिन, फाक्सहालियन, कैस्पियन, एस्वेकियन— आदि के नाम से संस्मरण करते हैं। संसार के लिए तो समय अथवा व्यवसाय का विशेष महत्व है क्योंकि प्रत्येक व्यवसाय का अपना-अपना पृथक् इतिहास है।

### आन्तरक (Core) तथा शल्कल (Flake) व्यवसाय:—

सम्पूर्ण पाषाण उपकरणों को आन्तरक (Core) तथा शल्कल (Flake) उपकरणों में विभक्त किया गया है। आन्तरक वर्ग में एक बहुत बड़े पत्थर को तब तक छाटा जाता था जब तक अभीष्ट वस्तु न बन जाती थी। शल्कल वर्ग में बड़े पत्थर से छोटा शल्कल पृथक् कर दिया जाता था और बाद में इस पर काम किया जाता था। इस प्रकार औजार बनाये जाते थे।

यह स्पष्ट है कि सबसे प्रथम मनुष्य ने पत्थर तथा छड़ी इन दो चीजों को ही प्रयुक्त किया होगा। मनुष्य को अपनी आजीविका के लिए शिकार और वानस्पतिक द्रव्य उपलब्ध होने होंगे। इन की सम्प्राप्ति के साधन केवल पत्थर तथा छड़ी ही थे। अपनी आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे मनुष्य ने इन्हीं को विकसित करना प्रारम्भ किया। विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए विशेष प्रकार

के पाषाण को काटने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। पत्थर को काटकर उसके उपकरण बनाये जाते, काटने और खुरचने से उसे विशेष आकार दे दिया जाता था। पत्थर के सिरे को पत्थर द्वारा ही तेज धार का बना दिया जाता जो काटने और खुरचने के काम आता। इसी पत्थर से एक दूसरे पत्थर को नोकदार बना दिया जाता जो खोदने और प्रहार करने के काम में आता था। जब उसे उपयुक्त पाषाण खण्ड उपलब्ध होते तो वह पत्थर को चट्टान पर 'प्रतिघात प्रक्रिया' द्वारा फेंककर अथवा पानी से घिसे हुए चिकने गोल पत्थर द्वारा हथौड़े की तरह ठोक पीटकर अपने उपयुक्त बनाता। इस प्रकार निकले हुए पाषाण खण्डों तथा समाधियों में से अपने कार्योपयोगी खण्डों को चुन लेना और विभिन्न-विभिन्न उपकरण बनाकर कार्यसिद्धि करता। इस पाषाण व्यवसाय के उपयुक्त हम तीन प्रमुख आविष्कार पाते हैं। १—पाषाण निर्मित हथौड़ा (Hammer Stone) पाषाणान्तरक (Core) तथा शल्क (Flake) ये तीनों चीजें पाषाण-व्यवसाय के आधारभूत उपकरण बने।

पाषाण को काटने की इस विधि द्वारा जो पाषाण खण्ड लम्बे, नोकदार तथा तेज धार वाले होते थे उन्हें चुन लिया जाता था और काट-पीटकर ठीक बनाया जाता था। खुरचने, छेदने एवं बेधने का काम इन्हीं से लिया जाता। इस प्रकार के उपकरणों को हम चैलियन संस्कृति से पूर्व कालीन उपकरण समझते हैं। कुछ ही काल पश्चात् इस पाषाण कर्तन क्रिया में कई प्रकार के परिवर्तन एवं सुधार हुए। वास्तव में देखा जाये तो यह कहा जाएगा कि पाषाण शल्कों का उपकरण रूप में प्रयोग चैलियन संस्कृति से ही प्रारम्भ होता है। ये उपकरण आकार में २ से १२ इंच तक लम्बे होते थे। ये एक प्रकार के छोटे छुरे व कुल्हाड़े की भाँति होते थे जिन्हें मुष्टिछुरा (Coup-de-poing) कहते थे और रिक्त व अपूर्ण पाषाणखण्डीय उपकरण को कूर्मान्तरक (Tortoise cores) कहते थे। इन उपकरणों की विद्यमानता योरप में चैलियन, अश्यूलियन तथा मौस्टेरियन काल तक रही। अमेरिका में इन उपकरणों की उपलब्धि नहीं होती। हो सकता है कि अफ्रीका में मौस्टूरियन तथा नवपाषाण युगीय संस्कृति के समय दोहरे नोकदार फलके बनाने का व्यवसाय (एवेंबियन व्यवसाय) इसी से विकसित हुआ हो। अमेरिका में नवपाषाणयुगीय गरुड़ चञ्चु पाषाणान्तरक (Rostro-carinate) के सभी रूप इसी व्यवसाय से विकसित हुए। चाहे कुछ भी हो इतना अवश्य है कि यह पाषाणकर्तन व्यवसाय किसी न किसी रूप में अवश्य सजीव रहा। पश्चिमीय योरप में अश्यूलियन संस्कृति के अन्तिम काल तथा

'मौस्टेरियन संस्कृति' के प्रारम्भ में यह व्यवसाय विकृतावस्था में पहुँच गया था परन्तु पुनः इसी प्रकार के पाषाण खण्ड लैवालायस (Levallois) में निर्मित होने लगे। मौस्टेरियन संस्कृति के विकास के समय इन उपकरणों का विनाश होने लगा। 'प्रारिग्नेसियन संस्कृति' के प्रारम्भ में इनका रूप परिवर्तित होकर गूढ़ाकार रूप में हो गया जिसे हम बहुभुजीय ग्रान्तरक (Poly-hedral Core) कहते हैं पाषाण खण्डों के ये नवीनरूप नवपाषाण युग की समाप्ति तक योरप, एशिया तथा मैक्सिको के भागों में विद्यमान रहे।

## 'स्ट्रैपियन' तथा 'चैलियन' संस्कृति

बेल्जियम में स्ट्रैपी (Strepy) नामक स्थान पर तथा पेरिस से ८ मील दूर "चैलस" (Chelles) नामक स्थान पर जब कतिपय पाषाण खण्डीय उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई तो आधुनिक संसार को नवीन संस्कृति की खोज में सफलता उपलब्ध हुई। सम्पूर्ण वैज्ञानिकों और मानवशास्त्रियों का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ। कौन जानता था कि द्वितीय अन्तर्हिमयुग में सोमे नदी के तट पर भी किसी समय उच्चतम संस्कृति का विकास हुआ होगा? लोग अपनी आजीविका के लिए पशुओं और मनुष्यों का मांस खाते होंगे? शिकार के लिए उन्हें हजारों मील दूर परिभ्रमण करना पड़ा होगा। परन्तु आज ये सब बातें तथ्य सिद्ध हो चुकी हैं। 'स्ट्रैपी' तथा 'चैलस' में पाये जाने वाले अवशेष इसकी स्पष्ट साक्षियाँ दे रहे हैं।

"स्ट्रैपी-मानव" पाषाणखण्डीय शल्कल (Flake) व्यवसाय में निपुणता प्राप्त कर चुका था। यह उन उपकरणों की रचना से स्पष्ट प्रतीत होता है जिन्हें 'स्ट्रैपी-मानव' ने पाषाणखण्ड को चारों ओर से काटकर बादाम के आकारवाले उपकरणों के रूप में परिवर्तित कर लिया था। इन उपकरणों के प्रथम अनुसन्धान कर्ता मि० बाउचर डे पर्थ स थे जो निरन्तर कई वर्षों तक इन उपकरणों की छानबीन के साथ उनके प्रयोग करने के विषय में भी जानकारी प्राप्त करते रहे। यही कारण है कि प्रो० सोलास ने इन उपकरणों को "बाउचर" उपकरण के नाम से स्मरण किया है।

इसी बीच में "चैलस" से अनेक ऐसे उपकरणों की संप्राप्ति हुई जिन्हें चारों ओर से काटकर नोकदार बनाया गया था। इस के साथ साथ टेम्स नदी के सपाट स्थित "रैडनैग" तथा "नारिचकैग" नामक स्थानों से भी १० उपकरणों की उपलब्धि हुई जिन्हें हम "चैलियन-बाउचर" नाम से स्मरण करते हैं।

### "स्ट्रैपी-मानव की संस्कृति

प्राप्त उपकरणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि "स्ट्रैपी-मानव" की सम्प्राप्ति काल में हाथी, चीते और घोड़े आदि पशु भी द्वितीय अन्तर्हिमयुग में सोमे नदी के तट पर विचरण किया करते थे और "स्ट्रैपी-मानव" अपनी आजीविका सम्प्राप्ति के लिए इन पशुओं से सदैव शत्रुता का सा व्यवहार किया करता था। इन पशुओं पर विजय पाने के लिए वह भाला, फन्दे तथा अन्य उपकरणों का प्रयोग करना भी जानता था। बड़ी बड़ी खाइयाँ खोद कर वह इन पशुओं का शिकार करता और मांस भक्षण द्वारा अपनी जठराग्नि को शान्त करता। पशु-पालन, खेती आदि-व्यवसाय अभी उसके ज्ञान से दूर थे अत. आखेट द्वारा जीवन-व्यतीत करना ही उसे सहज प्रतीत होता था। आखेट-व्यवसाय को उन्नत करने के लिए वह अपनी सम्पूर्ण मस्तिष्क शक्ति को जुटा देता था। यही कारण है कि पाषाणखण्डीय उपकरणों में उसने पर्याप्त उन्नति की। "स्ट्रैपी-मानव" के लिए सदैव पशुओं का मांस खाकर जीवन निर्वाह करना साधारण बात थी। डार्विन ने अपनी यात्रा के वर्णन में पम्पास की गाचो (Gaucho) जाति का उल्लेख करते हुए बताया है कि गाचो लोग अब भी महीनों गो माम के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का भक्षण नहीं करते। वे गौ की चर्बी को भूनकर उसे दैनिक भोजन के रूप में व्यवहृत करते हैं।

### "चैलियन-मानव" की संस्कृति

द्वितीय अन्तःहिमयुग कालीन संस्कृति का प्रतिबिम्ब 'चैलस' की कन्दराओं में स्पष्टतया दिखाई दे रहा है। इस समय मनुष्य एक कुशल कलाकार के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होता है। विश्व के कोने कोने में पाषाण-व्यवसाय का श्री गणेश इसी काल में ही प्रारम्भ होता है। "चैलियन मानव" के काल में आजीविका-सम्प्राप्ति एक विकट समस्या का रूप धारण कर चुकी थी। पेड़, पत्तों, वनस्पतियों का अभाव था। जंगलों में पशुओं की सम्प्राप्ति बहुत कम हो गई थी अतएव 'चैलियन-मानव' को आजीविकोपार्जन के लिए मीलों और महीनों दूर दूर पृथ्वी की परिक्रमा करनी पड़ती थी। अतएव चैलियन-मानव जहाँ कहीं भी जाता अपना पाषाण-व्यवसाय साथ ले जाता। यही कारण है कि आस्ट्रेलिया को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर इस संस्कृति के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। हीडलबर्ग के

'मौस्टेरियन संस्कृति' के प्रारम्भ में यह व्यवसाय विकृतावस्था में पहुँच गया था परन्तु पुन: इसी प्रकार के पाषाण खण्ड लैवालायस (Levallois) में निर्मित होने लगे। मौस्टेरियन संस्कृति के विकास के समय इन उपकरणों का विनाश होने लगा। 'आरिग्नेशियन संस्कृति' के प्रारम्भ में इनका रूप परिवर्तित होकर सूच्याकार रूप में हो गया जिसे हम बहुभुजीय आन्तरक (Polyhedral Core) कहते हैं पाषाण खण्डों के ये नवीनरूप नवपाषाण युग की समाप्ति तक योरुप, एशिया तथा मैक्सिको के भागों में विद्यमान रहे।

## 'स्ट्रैपियन' तथा 'चैलियन' संस्कृति

बेल्जियम में स्ट्रैपी (Sirepy) नामक स्थान पर तथा पेरिस से ८ मील दूर "चैलस" (Chelles) *नामक स्थान पर जब कतिपय पाषाण* खण्डीय उपकरणो की सम्प्राप्ति हुई तो आधुनिक ससार को नवीन संस्कृति की खोज में सफलता उपलब्ध हुई। सम्पूर्ण वैज्ञानिकों और मानवशास्त्रियों का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ। कौन जानता था कि द्वितीय अन्त:हिमयुग में सोमें नदी के तट पर भी किसी समय उच्चतम संस्कृति का विकास हुआ होगा? लोग अपनी आजीविका के लिए पशुओं और मनुष्यों का मास खाते होंगे? शिकार के लिए उन्हें हजारों मील दूर परिभ्रमण करना पडा होगा। परन्तु आज ये सब बातें तथ्य सिद्ध हो चुकी हैं। 'स्ट्रैपी' तथा 'चैलस' में पाये जाने वाले अवशेष इसकी स्पष्ट साक्षियाँ दे रहे हैं।

"स्ट्रैपी-मानव" पाषाणखण्डीय शल्कल (Flake) व्यवसाय में निपुणता प्राप्त कर चुका था। यह उन उपकरणों की रचना से स्पष्ट प्रतीत होता है जिन्हें 'स्ट्रैपी-मानव' ने पाषाणखण्ड को चारों ओर से काटकर बादाम के आकारवाले उपकरणो के रूप में परिवर्तित कर लिया था। इन उपकरणों के प्रथम अनुसन्धान कर्ता मि० बाउचर डे पर्थ्स थे जो निरन्तर कई वर्षों तक इन उपकरणों की छानबीन के साथ उनके प्रयोग करने के विषय में भी जानकारी प्राप्त करते रहे। यही कारण है कि प्रो० सोलास ने इन उपकरणों को "बाउचर" उपकरण के नाम से स्मरण किया है।

इसी बीच में "चैलस" से अनेक ऐसे उपकरणों की संप्राप्ति हुई जिन्हें चारों ओर से काटकर नोकदार बनाया गया था। इस के साथ साथ टेम्स नदी के सफाक स्थित "रैडकैग" तथा "नार्विचत्रैग" नामक स्थानों से भी १० उपकरणों की उपलब्धि हुई जिन्हें हम "चैलियन-बाउचर" नाम से स्मरण करते हैं।

## "स्ट्रैंपी-मानव की संस्कृति

प्राप्त उपकरणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि "स्ट्रैंपी-मानव" की सम्प्राप्ति काल में हाथी, चीते और घोड़े आदि पशु भी द्वितीय अन्त:हिमयुग में सोमें नदी के तट पर विचरण किया करते थे और "स्ट्रैंपी-मानव" अपनी आजीविका सम्प्राप्ति के लिए इन पशुओं से सदैव शत्रुता का सा व्यवहार किया करता था। इन पशुओं पर विजय पाने के लिए वह आग, फन्दे तथा अन्य उपकरणों का प्रयोग करना भी जानता था। बड़ी बड़ी खाइयाँ खोद कर वह इन पशुओं का शिकार करता और माँस भक्षण द्वारा अपनी जठराग्नि को शान्त करता। पशु-पालन, खेती आदि-व्यवसाय अभी उसके ज्ञान से दूर थे अत आखेट द्वारा जीवन-व्यतीत करना ही उसे सहज प्रतीत होता था। आखेट-व्यवसाय को उन्नत करने के लिए वह अपनी सम्पूर्ण मस्तिष्क शक्ति को जुटा देता था। यही कारण है कि पाषाणखण्डीय उपकरणों में उसने पर्याप्त उन्नति की। "स्ट्रैंपी-मानव" के लिए सदैव पशुओं का मांस खाकर जीवन निर्वाह करना साधारण बात थी। डार्विन ने अपनी यात्रा के वर्णन में पम्पास की गाचो जाति का उल्लेख करते हुए बताया है कि गाचो (Gaucho) लोग अब भी महीनों गो मांस के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का भक्षण नहीं करते। वे गौ की चर्बी को भूनकर उसे दैनिक भोजन के रूप में व्यवहृत करते हैं।

## "चैलियन-मानव" की संस्कृति

द्वितीय अन्त:हिमयुग कालीन संस्कृति का प्रतिबिम्ब 'चैलस' की गन्दराओं में स्पष्टतया दिखाई दे रहा है। इस समय मनुष्य एक कुशल कलाकार के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होता है। विश्व के कोने कोने में पाषाण-व्यवसाय का श्री गणेश इसी काल से ही प्रारम्भ होता है। "चैलियन मानव" के काल में आजीविका-सम्प्राप्ति एक विकट समस्या का रूप धारण कर चुकी थी। पेड़, पत्तों, वनस्पतियों का अभाव था। जंगलों में पशुओं की सम्प्राप्ति बहुत कम हो गई थी अतएव 'चैलियन-मानव' को आजीविकोपार्जन के लिए सैकड़ों और सहस्रों मील दूर पृथ्वी की परिक्रमा करनी पड़ती थी। अतएव चैलियन-मानव जहाँ कहीं भी जाता अपना पाषाण-व्यवसाय साथ ले जाता। यही कारण है कि आस्ट्रेलिया को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर इस संस्कृति के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। हीडलबर्ग के

समीप मावेर नामक स्थान से जिस 'ह्रीडलवर्ग-मानव' का जबडा प्राप्त हुआ वह भी चैलियन संस्कृति कालीन और इसी संस्कृति के विकास का द्योतक था।

'चैलियन-मानव' को अपने शत्रुओं—हाथी, चीते, घोड़े आदि का उसी प्रकार साम्मुख्य करना पडता था जिस प्रकार 'स्ट्रैपियन-मानव' को। डार्विन ने 'चैलियन-मानव' के सम्बन्ध में विशद वर्णन करते हुए लिखा है कि वे लोग अपने शरीर को ढाँपने के लिए खाल निर्मित उपवस्त्र या परिधान करते थे और जब कभी विशेष सहभोज अथवा विधि विधान व उत्सवादि में सम्मिलित होते तो एक विशेष सुसज्जित एवं विभूषित खाल निर्मित उपवस्त्र का प्रयोग करते थे। वे अपने शरीर को विभूषित करने के लिए आभूषणो के स्थान पर नर-कंकाल तथा उनकी अस्थियों को प्रयोग में लाया करते थे। जिस प्रकार "फ्यूजियन-लोग" प्रेतात्मा तथा भविष्य-फल में विश्वास रखते और निकृष्ट कार्य करने से पूर्व प्रेतात्मा का भय मन में लाते थे उसी प्रकार चैलियन मानवों में प्रेतात्मा विचार का कोई प्रमाण उपलब्ध नही हुआ। केप्टेन फिट्जराय ने फ्यूजियन लोगो के प्रेतात्मा और भविष्य सम्बन्धी विचारों का खण्डन करते हुए लिखा है कि यदि फ्यूजियन-लोग 'भविष्य-फल' का चिन्तन करते तो वे न तो नर भक्षण का महान पाप करते और न हीं परिभ्रमणकाल में वृद्धा स्त्रियो को मार कर उनके मास खाने का दुस्साहस करते।

## पूर्व चैलियन तथा चैलियन संस्कृति के उपकरण

प्रविनूतनयुगीय चैलियन संस्कृति के उपकरण निम्न हैं:—

१. नोकदार आन्तरक उपकरण (Core-Implement)—इसका छोर मोटा तथा (Pointed) छिलकेदार होता था।
२. कुल्हाडी सम उपकरण (Chopperlike Implement) इसकी मुट्ठी के लिए छोर मोटा तथा छिलकेदार होता था।
३. चाकू—यह एक साधारण पाषाण खण्ड से ही ठीक किया हुआ होता था और थोडा सा कटा हुआ था।
४. पार्श्व खुरचन यन्त्र (Sidescrapers)—जिसका पिछला भाग मोटा, किनारा सीधा और कुछ भाग कटा हुआ होता था।
५. पार्श्व खुरचन यन्त्र—यह किनारे पर कटा हुआ होता तथा इसका किनारा नीचे की ओर झुका होता था।

६. नोकीला पाषाणखण्ड—नोकों पर कुछ कुछ कटा हुआ होता था।
७. नोकीला मुष्ठिछुरा ( Pointed-coup-de-poing ) इसका छ
मोटा तथा छिलकेदार होता था।
८. अण्डाकार मुष्ठिछुरा ( Oval coup-de-poing )। इसका छो
मोटा तथा छिलकेदार होता था।
९. कुल्हाड़ी रूप मुष्टिछुरा ( chopperlike coup-de-poing )
इसका किनारा लहरदार होता था।

## एश्यूलियन संस्कृति (Acheulean Culture)

'एशूलियन संस्कृति' काल के जितने भी उपकरण सम्प्राप्त हुए हैं उनसे प्रतीत होता है कि 'एशूलियन मानव' के उपकरण संख्या में 'चैलियन-मानव' से कम थे परन्तु आकार प्रकार तथा रचना में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। एशूलियन-संस्कृति का काल "चतुर्थ हिम-काल" है अतएव शरद् जलवायु के कारण उत्तरीय प्रदेशों के अनेक पशु दक्षिण की ओर घुस आये थे। बड़े बड़े हाथियों की खाल शरद्कालीन जलवायु से मानवों की रक्षा करती थी। चतुर्थ हिमकाल में मनुष्यों ने भी कन्दराओं में रहना प्रारम्भ कर दिया था। वे पत्थर, लकड़ी तथा खाल का उपयोग तो भली भांति जान गये थे परन्तु धातु का प्रयोग अभी तक प्रारम्भ न हुआ था।

सन् १६४२ में जब अबेल जैन्सजून ( Abel Janszoon ) ने तस्मानिया ( Tasmania ) की खोज की थी तो उसे केवल मात्र वहाँ पाषाण के कुछ उपकरण ही उपलब्ध हुए थे। उनका विचार था कि तस्मानिया के आदि-वासी नग्न रहा करते थे परन्तु कभी कभी कांगरू (Kangaroo) की खाल ओढ़ लिया करते थे। वे भोजन की तलाश में इधर उधर परि-भ्रमण किया करते थे। भोजन न मिलने पर वह मानवों को मारते और मांस खाते थे। कई बार छोटे छोटे बच्चों की भी बलि दी जाती थी।

कांगरू के शिकार के लिए वे लोग काष्ठनिर्मित भालों का प्रयोग करते थे। वे आकार प्रकार में ११ फीट ११ इन्च लम्बे होते थे। कभी कभी ये भाले हाथ से छूट जाया करते थे अतएव उन्होंने एक सिरे को भारी और एक सिरे को हलका बनाया जिससे ४० व ५० गज की दूरी पर स्थित पशु को सुगमता मारा जा सकता था। तस्मानियन लोग आखेट के अवसर पर जिस पशु व पक्षी को मारते उसे खा जाते थे। नमक के स्थान पर

लकडी की राख प्रयोग में लाई जाती थी चूँकि उन दिनों में किसी पदार्थ को उबालने के लिए बर्तन न थे अतएव मांस को भून लेने की प्रथा प्रचलित थी।

मछलियों का शिकार स्त्रियों के सुपुर्द था। वे जलस्थित चट्टानों की भी छान बीन किया करती। स्त्रियों से अधिक काम लिया जाता था। नाव का काम शहतीर से लिया जाता था। धीरे-धीरे शहतीर को काट कर उसे और उपयोगी बनाया गया। तस्मानियन लोग घास की रस्सियाँ भी बनाना सीख चुके थे। भद्दे आकार की टोकरियाँ भी बनाया करते थे। उनके यहाँ कृषि, व्यापार, पशु-पालन न होता था। यदि वे बीमार होते तो कष्ट निवारण के लिए अंग का छेदन कर दिया करते थे। मृतकों को कभी तो जला दिया जाता था और कभी दफना दिया जाता था। नरकंकाल को गले में पहना जाता था। वे लोग पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे।

झगड़ों को निपटाने के लिए भी विचित्र प्रथा प्रचलित थी। दो दल आमने सामने खड़े होकर एक दूसरे को गाली गलौच देते। जब एक दल थक जाता तो उसे पराजित और दूसरे को विजयी समझा जाता। एंथूलियन-संस्कृति के लोगों का जीवन भी तस्मानियन लोगों से बिलकुल सादृश्यता रखता था। स्त्रियाँ घर की देखभाल तथा बच्चों के पालन-पोषण के अतिरिक्त अन्य कतिपय कार्य करती थीं। मातृ-परिवारों की व्यवस्था भी उन लोगों में पाई जाती थी। आसपास के ग्रामवासी जब उनके आखेट क्षेत्र में घुस आते तो वे उनसे झगड़ा करते और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया करते थे। उन दिनों युद्ध को एक रूप में अनिवार्य समझा जाता था।

यदि आधुनिक युग की भाँति उन्हें भी कृषि करना आता, और उनके यहाँ भी हरे भरे बाग बगीचे, फल, फूल, कन्द और अन्य खाद्य सामग्री होती तो वे इतने भयङ्कर और क्रूर स्वभाव के न होते। उस काल में खाने पीने के लिए पशु, कीट, पतंग आदि के अतिरिक्त था भी क्या? अतः उन्हें क्रूर भयंकर कहना हमारी भूल है। वास्तव में देखा जाये तो मनुष्य सभ्यता की दौड़ में बड़े वेग से आगे बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा था। नवीन वस्तुयें सदैव उसकी जिज्ञासा का विषय बनी हुई थी, वह नवीनता को पाने के लिए अधीर और विह्वल था। जिस प्रकार आज का मानव प्रकृति पर प्रभुत्व पाने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा है, बड़े बड़े पर्वतों और विशाल चट्टानों को काटकर निवास योग्य भूमियों के रूप में परिवर्तित करता हुआ प्रकृति पर विजय पाना चाहता है, हवा-पानी, और ऋतु को अपने आधीन कर के प्रकृति को तिरस्कृत करना चाहता है उसी प्रकार एंथूलियन संस्कृति का मानव भी अपने जीवन

को सुखद बनाने के लिए नवीन खोज की ओर वेग से प्रगति करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

स्वॅन्स कोम्बे (कॅण्ट) से उपलब्ध होनेवाले उपकरण एश्यूलियन संस्कृति की महानता के द्योतक हैं जिसको आज भी सारा ससार उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से निहार रहा है।

## मौस्टेरियन-संस्कृति

**कन्दरा जीवन**—'मौस्टेरियन-मानवों को हम 'कन्दरावासी मानव' कहकर स्मरण करते हैं। डोरडोन प्रदेशान्तर्गत वजेरे ( Vezere ) घाटी स्थित 'ले मोस्टेयर' कन्दरा में से कतिपय उच्च अवशेषों की उपलब्धि ही इन मानवों का सही सही चित्रण कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि असह्य सर्दी के कारण इन लोगों ने खुले प्राकृतिक वातावरण को छोड़ कर कन्दरा जीवन को अपनाया होगा। सन् १९०७ में ला-चपेल-आक्ससेन्ट्स जिलान्तर्गत डोरोडोन प्रदेश स्थित मोरडायर नदी के तट पर एक कन्दरा में से एक अस्थिपंजर की सम्प्राप्ति हुई। यह प्रथम अवसर था जब कि मानव जाति ने मृतकों को शव स्थान (Sepulchre) पर ले जाकर गाड़ने की प्रथा प्रारम्भ की होगी। क्योंकि इस से पूर्व के सभी निखानक प्राणियों-जावामानव, उप.मानव तथा हीडलबर्ग मानव सभी ऐसी स्थिति में पड़े हुए मिले जिससे उनके दफनाये जाने का प्रमाण नहीं मिलता। ला-चपेल आक्ससेन्ट्स का अस्थिपंजर तथा उसके पास रक्खे हुए पाषाण उपकरण एवं खाद्य सामग्री इतनी सुरक्षित अवस्था में प्राप्त हुई है जिससे सम्भावना की जाती है कि अत्यन्त प्यार और श्रद्धा के साथ इस प्राणी का मृतक संस्कार किया गया होगा। प्रतीत होता है कि मृतक के सम्बन्धियों ने प्रेतात्मा-जगत् के आखेट-क्षेत्र में प्रयोग करने के लिए उपकरण और आजीविका के लिए भोजन भी मृतक के साथ में दे दिया गया होगा। यह या मानवीय सभ्यता के विकास का आगामी पग जो मृतक के सम्बन्धियों की भावनाओं से प्रकट होता है। ठीक इसी प्रकार का अनुसन्धान सन् १९०९ में लेमौस्टेयर कन्दरा में भी किया गया।

इन अनुसन्धानों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इसी समय अन्य कई स्थानों पर भी अनेक अवशेष उपलब्ध हुए जिन्हें हम नियन्डरथल-मानव अथवा में मौस्टेयर मानवों के रूप. मानते हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक हक्सले ने इन सब को एक ही श्रेणी का परिगणित किया है।

यह मौस्टेयर-मानव संसार के कई भागों पर फैला हुआ था। इंगलैण्ड, बेल्जियम, युगोस्लाविया, फ्रांस, इटलीतया अफ्रीका आदि सभी स्थानों पर इन मानवों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एशूलियन संस्कृति के अनेक उपकरण मोस्टेरियन काल में नवीन रूप धारण कर चुके थे। वह एक ही पाषाणखण्ड में से कई उपकरण बना सकता था।

## मौस्टेरियन मानवों का पाषाण व्यवसाय

लम्बे तथा पतले पाषाणखण्ड के निर्माण में सिद्ध हस्त हो जाने के बाद अगली प्रगति इन पाषाणखण्डों को अनुकूल एवं उपयोगी बनाने की दिशा में हुई। जैसा पहले वर्णन कर चुके हैं कि इन पाषाणखण्डों के कटे हुए किनारे टेढ़े मेढ़े रह जाते थे। अस्थि तथा काष्ठादि द्वारा इनका प्रयोग कैसे हो? और उन्हें कैसे परिष्कृत रूप दे दिया जाये? यह विचारणीय विषय था। मोस्टेरियन काल में पाषाणखण्डों के किनारों को काटने और तारतम्य रूप देने के लिए प्रतिघात विधि (Percussion method) को छोड़ कर दबावविधि (Pressure method) अपनाई गई। यद्यपि इस प्रक्रिया द्वारा आशु कार्य तो न होता था परन्तु परिणामतः कार्य सुदृढ़ एवं स्थाई होता था। इस कार्य के लिए एक और उपकरण का निर्माण हुआ। वह उपकरण लकड़ी के साथ बँधा हुआ अस्थि का उपकरण होता था जिससे पत्थर के पतले टुकड़ों को काटा जाता था। छोटे तथा सुदृढ़ पाषाणखण्ड अब भी उसी पुरानी प्रतिघात परिपाटी द्वारा ठीक किए जाते थे।

पाषाण को खण्डित करने की यह विधि पाषाणयुग के अन्त में प्राचीन व नवीन संसार के बहुत से भागों में सर्वत्र फैल गई थी। यह दालकल व्यवसाय बहुत समय तक योरुप में विद्यमान रहा। मौस्टेरियन काल से लेकर आरिग्नेशियन, साल्यूट्रियन तथा मडलेनियन कालों में से गुजरता हुआ अजिलियन तथा टार्डेनोसियन काल तक विद्यमान रहा। पुनः उसके बाद इस व्यवसाय का ह्रास होता गया। अस्थि तथा काष्ठ का प्रयोग भी इन उपकरणों के साथ किया जाता था। इस समय जो उपकरण बने वे वे निम्न हैं —

१. पार्श्वखुरचन यन्त्र (Racloir sidescraper)—जिसका प्रयोग छोटी कुल्हाड़ी की भाँति किया जाता था।

२. रन्दा (Spokeshave)—यह दाँतेदार खुरचन यन्त्र होता था।

३. आरा (Saw)

४. चाकू (Knife)

५. नक्काशी यन्त्र (Incising tool)—यह चाकू से मिलता जुलता परन्तु अधिक नोकदार होता था।

६. टेकुआ व सूजा (Perforator) वेध यन्त्र

७. बाण (Arrow)

८. भाला (Lance)

९. बर्छा अथवा माल्यूट्रियन चाकू (Spear)

१०. चित्रलेखन यन्त्र (Planning tool)

११. मूर्तिनिर्माण यन्त्र (Sculpturing tool)

१२. सुदृढ़ नक्काशी यन्त्र (Stout endscraper)—यह यन्त्र आरिग्नेशियन संस्कृति के समय प्रकट हुआ।

जिस समय इन उपकरणों का निर्माण हुआ उस समय पश्चिमीय योरुप में प्लास्टिक युग की हानि भी हो रही थी। पाषाणों की प्राप्ति कम मात्रा में होगई थी। परिणाम स्वरूप पूर्वपाषाणयुग के पाषाण व्यवसाय का भी ह्रास हो चला था। इस युग के बाद के कई सहस्र वर्ष पूर्ण व्यावसायिक शान्ति के वर्ष कहलाते हैं। इन दिनों में जिन उपकरणों का विकास हुआ वे आखेट तथा हस्तकौशल का पूरा पूरा प्रयोजन सिद्ध करते थे परन्तु वे उपकरण घने जंगलों को साफ करने, भवन निर्माण करने तथा जहाजों को बनाने के लिए उपयुक्त न थे अतएव जैसे जैसे विभिन्न विभिन्न कला कौशल में निपुण व्यक्तियों का आवागमन अन्यत्र स्थानों पर होने लगा त्यों त्यों कला कौशल में भी असाधारण परिवर्तन होने लगे। निकटपूर्व तथा उत्तरीय अफ्रीका से जो लोग यहाँ आये उन्होंने उपकरण निर्माण की पुरानी विधियों के स्थान पर नवीन प्रणालियों को प्रारम्भ किया। इंग्लैंड, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस के कई भागों में उपकरण बनाने के लिए जो कच्ची वस्तु आवश्यक होती थी उसे जमीन में से गहराई तक खोदकर प्राप्त किया जाता था। इस दिशा में सब से प्रथम ऐसे उपकरण का आविष्कार किया गया जो सुदृढ़, दीर्घाकार, त्रिभुजाकार, वक्र तथा फावड़े व कुदाली (Pick) के आकार सदृश होते थे। ये उपकरण पाषाण खण्डों को गोल खानों से खोदने के काम में लाये जाते थे। धीरे धीरे इन्हीं में छेनी तथा कुल्हाड़ी आदि का आविष्कार हुआ। इस उपकरण को वास्तव में छेनी, रुखानी आदि का प्राचीन

रूप माना जा सकता है। इसके बाद सभी प्राचीन उपकरणों का नवीन रूपान्तर होने लगा और सभी उपकरण परिष्कृतावस्था में बना दिये गये। मिश्र में हँसुमा अथवा हँसिया (Sickle) का काम इसी आरी से लिया जाता था। एटलाण्टिक के दोनों पार्श्वों में कटे हुए पत्थरों का एक नवीन उपकरण मछली पकड़ने का काँटा (Fishhook) भी पाया जाता था। संयुक्त राष्ट्र में बड़ी बड़ी कुदालों का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था।

मौस्टेरियन काल में बारहसिंघे भी उत्तर की ओर से आने लग गये थे अतएव आजीविका प्राप्ति के लिए उनका शिकार किया जाता था। मौस्टेरियन मानवों के पशुपालन कार्य का अभी तक कोई विवरण ज्ञात नहीं हुआ। मौस्टेरियन संस्कृति पर नरभक्षणवाद का एक महान् कलंक लगा हुआ है। क्रोटिया स्थित क्रपिना की चट्टानों से ऐसी मानवीय अस्थियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उन्हें शरीर में से नोच नोच कर निकाला गया हो और आग से जला दिया गया हो। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में भी धार्मिक विधि विधान के रूप में नरभक्षण प्रथा मिलती है परन्तु सार्वजनिक रूप से नहीं।

यद्यपि मौस्टेरियन-संस्कृति के सम्बन्ध में हमें विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता तथापि आदिवासी आस्ट्रेलियन की संस्कृति का अवलोकन करने से मौस्टेरियन संस्कृति का बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि आस्ट्रेलिया के आदिवासी ठीक उन्हीं परिस्थिति और वातावरण के अन्तर्गत रहते हैं जो मौस्टेरियन मानवों के अनुकूल था।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी खानाबदोश, नग्न, पाषाण-काष्ठ और अस्थि निर्मित उपकरणों का प्रयोग करनेवाले तथा कृषि से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। ये तस्मानिया वासियों के साथ आस्ट्रेलिया में घुसे और वहाँ बस गये। ये शिकार के लिए भाले और काष्ठ निर्मित अन्य कई उपकरणों का प्रयोग करते थे सम्भवतः जिनका प्रयोग मौस्ट्रेरियनकाल में न होता होगा। तस्मानिया वासियों की भाँति आस्ट्रेलिया के आदिवासी भी नग्नावस्था में बाहर घूमा करते और अपने शृंगार के लिए नाक और कान के नानाविध आभूषणों का प्रयोग करते थे। ये अपने शरीर पर चर्बी का तेल प्रयुक्त करते और योरुप के आरिग्नेशियन मानवों की भाँति अपनी अँगुलियों के जोड़ बलि-रूप में दे देते थे।

आस्ट्रेलियन लोगों ने वल्कल-नाव (Bark canoe), काँटेदार हारपून तथा मछली पकड़ने के काष्ठनिर्मित काँटे भी बनाये। इसी वल्कलनाव के आधार पर एस्किमो लोग 'कयाक' और 'उमयाक' नावें तैयार करते हैं।

ये लोग अपना व्यापार आदान प्रदान पद्धति पर किया करते थे। वे पाषाण के बदले में अपने शारीरिक शृंगार का सामान ले लेते थे। यद्यपि लिपि-पद्धति इनमें न थी फिर भी वे अपने सन्देश 'सन्देश-पट्टिका' (Message stick) द्वारा इधर उधर भेजा करते थे। यह पट्टिका ३ इंच लम्बी और बीच में कटी हुई होती थी। ये कंगारू तथा अन्य पशु व पक्षियों का माँस खाते थे। स्त्रियाँ घास और पौधों के बीज एकत्रित करतीं और उन्हें पत्थर में पीसकर उनकी रोटियाँ तैयार करतीं थीं। इससे प्रतीत होता है कि आदिकालीन आस्ट्रेलियन कृषि का ज्ञान भी रखने लग गये थे और अपने आहार के लिए नानाविध पौधे आदि बोया करते थे।

आस्ट्रेलियन-जातियों में रक्त सम्बन्ध व गोत्र सम्बन्ध अत्यन्त जटिल तथा विचित्र थे। उनका वैधानिक प्रबन्ध एक मुखिया के आधीन होता था और वे नानाविध देवी देवताओं, जादू व तन्त्र मन्त्र में विश्वास रखते थे। जहाँ वे लोग अपनी आजीविका का प्रश्न हल करते थे वहाँ वे धार्मिक प्यास को बुझाने के लिए भी नानाविध देवताओं की शरण में जाते और और मृतक पूर्वज-आत्माओं से स्वप्नावस्था में बात चीत करते थे। उनका धार्मिक संसार अपने ही ढंग का था जिसके आधार पर हम प्राचीन लोगों की सभ्यता और संस्कृति की पूरी पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

आकाश, तारे, सूर्य चन्द्रमा व अन्य नक्षत्रगण आदिकालीन मानवों के अन्तःकरण को किसी अनन्त शक्ति की ओर प्रेरित करते थे। आँधी और तूफान से वे भयभीत हो जाते और उनका मानसिक संसार जिज्ञासा की हिलोरें लेने लगता। मौस्टेरियन-मानव का अस्तित्व चतुर्थ अन्त हिम युग के अन्त में योरप में नष्ट हो गया अतः हम उसके सम्बन्ध में इतना अधिक नहीं जान पाते।

## पत्थर को छेदने व पीसने की विधियाँ

जनसंख्या में वृद्धि हो जाने तथा बिल्लौरी, सूर्यकान्तमणि तथा अन्य कई बहुमूल्य पाषाणों के प्रयोग के साथ-साथ पाषाण का उच्चय अपर्याप्त था। प्राचीनकालीन कारीगर अन्य प्रकार के पत्थरों-खड़िया, संगमरमर, कबर, बालुकापत्थर आदि पर अपनी कारीगरी प्रदर्शित करते थे। इसके अतिरिक्त सुलेमानी पत्थर का भी प्रयोग किया जाता था परन्तु अब नवीन कारीगरी ने छेदने तथा पीसने की विधियों द्वारा इन्हें नवीन रूप देना प्रारम्भ किया। उत्तरीय अमरिका में तो कई प्रकार के आभूषणों का निर्माण भी

प्रारम्भ हो गया था। खुदाई के लिए एक छेनी प्रयुक्त की जाती थी। दक्षिणी कैलीफोर्निया में भी यह व्यवसाय ज़ोरों पर था। एस्किमो भी इस विद्या को जानते थे। मिश्र में इस व्यवसाय की प्रतिष्ठा थी। हरितवर्ण पाषाण (Jade) को आरी से काटने का व्यवसाय निकटपूर्व, चीन, न्यूज़ीलैण्ड अमेरिका के उत्तरीय प्रशान्त सागर तट तथा मैक्सिको में फैला हुआ था। बहुत प्राचीन समय में टीराडेलफ्यूगो नामक स्थान पर सामान्य पत्थर पर यह काम होता था। आरी से काटने का कार्य पतली लकड़ी के किनारे अथवा रस्सी द्वारा किया जाता था। बालू से उसे घिसाया जाता था। कठोर पत्थर में छेद करने की प्रक्रिया एक ठोस लकड़ी के सिर से बालू की सहायता से की जाती थी। जो पत्थर बहुत कठोर न होते थे उन्हें पत्थर निर्मित साधारण बरमों की नोकों द्वारा ही छेद दिया जाता था।

योरुप तथा निकटपूर्व में छेददार हथौड़े तथा काटनेवाली कुल्हाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। इनकी मुट्ठियों में भी छेद होते थे। ओक्साका (अमेरिका) 'मोण्टे अल्बान' नामक समाध से रील व गड़ारी—आकृति (Spool Shaped) के कर्णाभूषण मिले हैं। उससे प्रतीत होता है कि अकेला अमेरिका ही छेददार चिलमें, नलियें तथा अन्य अलंकृत वस्तुओं को बाहर भेजता था। साधारण छेददार गुटके तो प्रायशः सर्वत्र ही उपलब्ध होते थे।

### अस्थि तथा काष्ठादि का व्यवसाय

जब हम 'पाषाण व्यवसाय' का उल्लेख करते हैं तो हमें अन्य प्रमुख प्राचीन व्यवसायों के सम्बन्ध में सक्षेप में अवश्य विचार कर लेना चाहिये। लकड़ी, अस्थि तथा धातु निर्मित उपकरण के विकास का क्रम भी जानना आवश्यक है। अस्थि तथा श्रृंग से सम्बद्ध वस्तुओं को काटा तथा छेदा जाता था। योरुप में अस्थि तथा काष्ठादि को काटने और छेदने की प्रक्रिया मौस्टेरियन काल से प्रारम्भ हुई। सबसे प्रथम टेकुआ (Awl) के आकार के उपकरण उपलब्ध हुए। क्रोमैग्नन मानव तथा आरिग्नेशियन व्यवसाय के आगमन के साथ साथ अस्थिनिर्मित उपकरण अधिक संख्या में उपलब्ध होने लगे। अस्थिनिर्मित टेकुआ (Awl) अब विकसित अवस्थाओं में प्रकट हुआ। अस्थिनिर्मित वर्तुलाकार खूटियाँ जो पर्दे के साथ लगाई जाती थीं मौस्टेरियनकाल में बनाई गई। सुइयाँ भी कपड़ा सीने के लिए मौस्टेरियनकाल में सबसे प्रथम प्रकट हुई। छेददार मनकों में भी अस्थि का

व्यवहार किया जाता था। बारहसिंघे के सींघ मूंठे में प्रयुक्त होते थे। माल्यूट्रियन काल में अस्थि तथा हाथीदाँत के उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा आभूषण तैयार किये जाते थे। मडलेनियन काल में तो अस्थि एवं सींघ के उपकरण पूर्ण यौवनावस्था पर थे। उस काल को हम 'अस्थियुग' के नाम से भी कह सकते हैं। भाले की नोक सींघ की बनी होती थी परन्तु बाद में उसे हारपून की नोक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। मोराविया में २ कुल्हाड़े ऐसे मिले हैं जो अस्थिनिर्मित हैं तथा उनकी मुट्ठी भी अस्थिनिर्मित है। पूर्वी स्पेन में २ धनुष ऐसे प्राप्त हुए हैं जो लकड़ी के बने हुए हैं और उन पर आभूषणों द्वारा नक्काशी की गई है। मडेलेनियन संस्कृति के बहुत से चित्र ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जिनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे लोग पशु तथा वनस्पति जगत के बहुत से चित्र चित्रित किया करते थे।

अब धीरे धीरे दक्षिण पश्चिमी योरप में अस्थि व्यवसाय में भी वैसी ही अवनति होने लगी जैसे पाषाण व्यवसाय में हुई थी। यह व्यवसाय उत्तर की ओर नार्वे तथा एस्किमो प्रदेश में फैल रहा था।

काष्ठ का अस्थि के साथ प्रयोग तो साधारण अवस्था में पाया जाता था। इग्लैण्ड में मौस्टेरियन काल में भाले का कुछ भाग मिला जो आकार में लम्बा तथा सिरे पर नोकदार था। 'स्पेनिका' चित्रकला में जो धनुष चित्रित किये हुए उपलब्ध हुए हैं वे पाषाणयुग के अन्तिम समय के बतलाये जाते हैं। अस्थि तथा सींघ, नोकदार हारपून और भाले कुछ और पुरातन सभ्यता की याद दिलाते हैं। नवपाषाणयुग के बहुत से काष्ठनिर्मित उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। योरप में कई उपकरणों की मुट्ठियाँ—मिश्र, दक्षिणपश्चिमी प्रदेश तथा पेरु में लकड़ी की हथौड़ी, मुगरी (Mallet), रस्से के फंदे में लगी हुई त्रिकोणाकार मूंठियाँ (Toggles) उपलब्ध हुई हैं। डेनमार्क में फटे शहतीर की बनी हुई घाव रखने की पेटियाँ, लम्बी मकरी नाव, मछली पकड़ने के फन्दे, नाव के चप्पू, प्रक्षेपणयन्त्र (Boomerang) उपलब्ध हुए हैं। चाकू तथा कटारें भी लकड़ी की बनी हुई उपलब्ध हुई हैं। मिट्टी के पात्र तथा कपड़े तैयार करनेवाले उपकरणों का पता चला है। अमेरिका में इन सब उपकरणों की प्राप्ति हुई है। चिमटे (Tongs) कुल्हाड़ी, मिट्टी के बर्तनों को साफ करनेवाले ब्रुश, कताई तथा बुनाई करनेवाले उपकरण, पेटियाँ, सन्दूक तथा बैठने की चौकियाँ, खाल की बनी हुई नावों के ढाँचे, गाड़ियाँ, बर्फीले जूते, मकानों में रक्खी जानेवाली सीढ़ियाँ, खेलने की छड़ी, ढोल, व कवच तथा अन्य कई प्रकार के उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं।

## आरिग्नेशियन-संस्कृति (Aurignacean Culture)

'मोस्टेरियन-मानव' की संस्कृति के साथ साथ आदि पाषाणयुग की भी इतिश्री हो जाती है। मानव जाति अन्तिम पाषाणयुग के साथ साथ नवीन सांस्कृतिक क्षेत्र में पदार्पण करती है। इस समय 'आरिग्नेशियन-मानव' तथा "लोइस-मानव" की संस्कृतियों के अवशेष उपलब्ध होते हैं। टौलोस (Toulouse) के दक्षिण पश्चिम में ४० मील दूर 'आरिग्नाक' (Aurignac) नामक स्थान ही इस संस्कृति का उद्गम स्थान है। आरिग्नेशियन संस्कृति का एक रूप 'क्रोमेग्नन' (Cro-Magon), दूसरा रूप 'कोम्बकपले' (Combe Capelle) तथा तीसरा रूप ग्राइमाल्डी जाति (Grimaldi) का है।

आरिग्नेशियन-मानव कन्दराओं तथा बाहर खुले मैदानों में रहा करते थे। लोइस (Loess) के समीप उनके चिन्ह मिले हैं अतः उन्हें "लोइस-मानव" भी कहा जाता था। प्रो० सोलास का कथन है कि ये मानव दक्षिणी अफ्रीका झाड़वासी (Bushmen) लोगों के पूर्वज थे जो पहले अफ्रीका से आये थे और बाद में जिन्हें क्रोमेग्नन-मानवों ने पीछे खदेड़ दिया था। 'मोस्टेरियन-काल' के सभी उपकरण इस सांस्कृतिक काल में परिष्कृत किये गये। नकाशी यन्त्र (Burin) द्वारा वह बारहसिंघे के सींघों के टुकड़े-टुकड़े कर लेता और उसके धनुष तथा भाले तैयार करता। अस्थि का प्रयोग भी इस काल में बहुधा होने लग गया था। लम्बे धुरे को सीधा करने की विधि इतनी उत्तम थी कि पञ्जाब के आदिवासी अब भी उसी विधि द्वारा शहतीर को सीधा करते चले आ रहे हैं।

पशुपालन तथा कृषि अभी तक इन लोगों को अज्ञात थी। ये लोग बारहसिंघे तथा घोड़े का शिकार करते और उन्हें खाते थे। फ्रांस से कई मन अस्थियाँ उपलब्ध हुई हैं। इस काल में भोजन सामग्री की बहुतायत थी। 'नियण्डरथल मानवों' तथा 'मोस्टेरियन मानवों' को भोजन सम्प्राप्ति के लिए जितनी कठिनाई होती थी उतनी दिक्कत इन मानवों को न होती थी। चित्रकला तथा मूर्तिनिर्माण विद्या का भी विस्तार प्रारम्भ हो गया था। अल्टामीरा (Altamira) के पास एक स्पैनिश सज्जन मार्सेलीनो-डी-सेन्टुओला (Marcelline-de-Santuola) जब खुदाई कर रहे थे तो उनकी छोटी लड़की एक दम चिल्लाई—"साँड" "साँड।" जब उसके पिता रक्षार्थ वहाँ पहुँचे तो उन्होंने लड़की को कन्दरा की दीवार पर "साँड" के चित्र को निहारते हुए देखा और सहसा अचम्भित हो गये। इसके बाद उन्होंने हरिण, घोड़े तथा

अन्य पशुओं के पूर्णविकसित चित्र देखे। आधुनिक संसार को जिस प्रकार नियन्डरथल के मानव होने में, पाषाणखण्डीय उपकरणों के मानवों की कृति होने में संदेह था उसी प्रकार वह तत्कालीन चित्रकला को भी मानवीय ज्ञान से दूर की वस्तु समझता था।

यदि हम इन कन्दराओं को देखें तो इनमें प्रकाश का सर्वथा अभाव है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि आरिग्नेशियन-संस्कृति के मानव, कन्दराओं में "कृत्रिम-प्रकाश" का प्रबन्ध भी अवश्य करते होंगे। प्रकाश के बिना कन्दरा की दीवारों पर चित्र बनाये ही नहीं जा सकते। कन्दरा की दीवारों पर बनाये गये पशु-चित्रों में भाले का प्रदर्शन उनके सम्बन्धसूचक चिन्हों (Totems) तथा धार्मिक विचारों को प्रकट करता है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इस जाति के लोग अपने धार्मिक विधिविधानों तथा पूजा आदि को भी कन्दराओं में किया करते होंगे। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य चित्र भी दृष्टिगोचर हुए जिनसे उनकी धार्मिक प्रथाओं का पता चलता है। कई चित्रों में अँगुलियों के जोड़ कटे हुए मिले हैं इससे पता चलता है कि वे दुःख के दूरीकरण के लिए और भविष्य में देवता का कृपा पात्र बनने के लिए नानाविध दुःख उठाने को भी धर्म का अंग समझते होंगे।

स्त्री तथा पुरुष दोनों सुन्दर बनने का प्रयत्न किया करते थे। माला, कण्ठी, अँगूठी आदि आभूषण उनके शृंगार की सामग्री थी। उन्हें संगीत विद्या का भी ज्ञान था। स्पेन के अल्पेरा (Alpera) नामक स्थान में "नृत्यमुद्रा" में अवस्थित कतिपय स्त्रियों के चित्र भी प्रकाशित किये गये हैं जिनसे तत्कालीन संगीत और नृत्यकला पर सुन्दर प्रकाश डाला जा सकता है।

## आरिग्नेशियन संस्कृति के उपकरण

१. पाषाणखण्डीय चाकू—इसका किनारा सीधा होता है, २. पाषाणखण्डीय नखाग्रीयन्त्र (Endscraper)—इसका अन्तिम सिरा काटकर गोल बनाया जाता है। ३. पाषाणान्तर्भागीय नखाग्रीयन्त्र (Endscraper of Core) ४. नखाग्रीयन्त्र (Burin) ५. पाषाणखण्डीय नोकीला चाकू (PointedKnife) ६. दाँतेदार पार्श्वखुरचन यन्त्र (Notched Sidescraper) ७. वेधनयन्त्र (Perforator), ८ दो नोकों का अस्थि-उपकरण। सम्भवतः मछली के पन्ने के स्थान इसका पर प्रयोग होता है। ९. अस्थिनिर्मित सुई (Needle of Bone) १०. अस्थिनिर्मित नोकीली

बर्छी—इसका आधार ढालुवा होता है ११. अस्थिनिर्मित दूसरी नोकीली बर्छी १२. अस्थिनिर्मित टंकुआ (Awl)—१३. अस्थिनिर्मित केश सुई १४. सींघ-निर्मितचम्मचाकार उपकरण (Spatulate Implement) १५. मनके १६. बारहसिंघे के दन्तनिर्मित मनके १७. टोकरी के आकार के अस्थिनिर्मित मनके १८. पाषाणनिर्मित मनके १६. जंगली बकरे के चित्र—ये कन्दराओं की दीवार पर चित्रित होते थे। २०. स्त्रैण्यशिर—ये स्त्री आकार के सिर हाथीदांत के बने होते थे। इसके अतिरिक्त पाषाण निर्मित कुल्हाड़े, सूर्प (Anvil) तथा चित्रितपाषाण भी होते थे। पाषाण निर्मितदीप, पात्र, हाथी दान के मनके, अण्डाकार बुटियां हाथीदांत के आभूषण, कण्ठमाला, कन्दराओं के चित्र आदि का निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

## साल्युट्रियन संस्कृति (Solutrean Culture)

वोल्गू के समीप जब नहर निर्माण का कार्य जारी था तो साल्यूट्रे नामक स्थान पर कतिपय पाषाणनिर्मित उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई। इन उपकरणों की कटाई बहुत सुन्दर ढंग से की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि साल्युट्रियन कारीगरों ने इसमें पर्याप्त मेहनत की होगी। यन्त्र के फलके (अग्रभाग) की स्थूलता तथा असाधारण आकृति से प्रतीत होता है कि इसके निर्माण में ठोक पीटकर काम नहीं किया गया। मिश्र के बलिकर्म के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले चाकू की बनावट की भांति यन्त्रों का अग्रभाग बनाया जाता था। चूंकि ये उपकरण बहुधा प्रयोग में आते न थे अतः कई पुरातत्व-शास्त्रियों का विचार है कि विशेष विधिविधानों के अवसर पर ही इन्हें प्रयुक्त किया जाता होगा।

इस युग में पत्थर पर मूर्ति बनाना, अस्थियों पर नक्काशी करना भी प्रारम्भ हो गया था। यह कला आरिग्नेशियन काल की थी। साल्युट्रियन तथा मडेलेनियन काल में पूर्व पाषाणयुगीय मानव की कला सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। इस काल में दीवारों को अलंकृत करने की कला भी विद्यमान थी।

"साल्युट्रियन-मानव" किसी समय इंग्लैण्ड में भी रहा करता था। इस मानव की कला के अवशेष दक्षिणी वेल्स की "पेवीलैण्ड कन्दरा" से तथा डर्बीशायर स्थित "क्रैसवेल क्रैग्स", फ्रांस, केन्द्रीय योरुप तथा स्पेन के उत्तर में उपलब्ध हुए हैं। इटली में इस संस्कृति का कोई अवशेष उपलब्ध नहीं हुआ। 'साल्युट्रियन-मानव' घोड़ों का शिकार करते थे। ये अत्यन्त प्रसिद्ध योद्धा थे। और इन्होंने योरुप पर आक्रमण भी किया। इनके अस्त्र शस्त्र अत्यन्त

प्रभावशाली तथा भयङ्कर होते थे। अस्थिसूचिका (Bone Needle) इस युग की एक आश्चर्यजनक देन थी। तागे के स्थान पर पशु की नसें प्रयुक्त की जाती थीं।

## 'साल्यूट्रियन संस्कृति' के उपकरण

१. चाकू नं० १ इसका आकार चमकदार पत्तियों वाले एक पौदे की न्याईं होता था। २. चाकू नं० २ इसका आकार मरपत पत्र की न्याईं होता था। इसकी नोक भाले की नोक के समान होती थी। ३. चाकू नं० ३ तीर की नोक के समान नोकवाला। इसका आधार नीचे झुका हुआ ऊपर का मुख कटा हुआ। ४. चाकू नं० ४ भाले की नोक के समान नोकवाला। ऊपर की सतह पर कटा हुआ। ५. वेधनयन्त्र। ६. आरा। ७. नक्काशीयन्त्र। ८. मनके। ९. सींघनिर्मित नोकीला उपकरण अथवा टेकुआ। १०. अस्थिनिर्मित सूचिका। ११. सींघनिर्मित नोकीला हारपून। १२ हाथी दांत के मनके।

## मडलेनियन संस्कृति

वेजेरे नदी के तटपर स्थित 'ला मडेलीन' नामक स्थान पर नवीन प्रकार के उपकरणों की उपलब्धि हुई। ज्यों ज्यों साल्यूट्रियन संस्कृति के स्थान पर मडेलीनियन संस्कृति का विकास होने लगा त्यों त्यों प्राचीन उपकरणों के स्थान पर नवीन उपकरण विकसित होते गए। मडेलीनियन अपने नवीन उपकरणों के साथ योरप में प्रविष्ट हुए। ये लोग लम्बे, पतले, फलकेदार उपकरण बनाते थे। हारपून, भाले, बर्छे तथा बर्छों की नोकवाले उपकरण, हड्डी तथा सींघों के बने हुए उपकरण प्रयोग में लाते थे। इस प्रकार इस युग में नवीन व्यवसाय का विकास हुआ।

नवीन प्रकार के भाले चौड़े तथा सूच्याकार दण्डवाले होते थे। धुरे से दूर सिरे पर मुड़े हुए तथा पंखनुमाकृति के लम्बे दरार होते थे। जोड़ के चारों ओर नसों के बने हुए धागे लिपटे होते थे। भाले तथा हारपून हाथ से फेंके जाते थे। फेंका जाने वाला भाला बारहसिंघे के सींघों का बना हुआ एक सिरे पर काँटे के आकार का होता था। धनुष तथा भाले के सिरे पर नक्काशी का काम किया जाता है। नक्काशी का काम तो "मडेलीनियन संस्कृति" में सर्वत्र पाया जाता था। इन पर पशुओं के चित्र चित्रित किये जाते थे। हाथीदांत के एक टुकड़े पर विशालकाय प्राणी के चित्र बनाये जाते थे।

मूर्ति बनाने तथा नकाशी के काम तक ही यह संस्कृति सीमित न थी अपितु इस काल के मनुष्य अपनी कन्दराओं में भी दीवारों पर सजावट किया करते थे। ये दीवारें काले, लाल तथा अन्य रंगों से चित्रित की जाती थी।

सन् १८६५ में ला मौथे, १८९६ में पेयर-नानपेयर सन् १६०१ में फौंट डी गोमे नामक कन्दराओं में इस प्रकार के चित्र मिले। नियाक्स नामक कन्दरा में जो अनुसन्धान हुआ वह महत्वपूर्ण था। वहाँ मिट्टी के फर्श पर तथा दीवारों पर रक्तवर्ण की रेखायें अंकित थी। इन रेखाओं द्वारा एक धनुष बनाया गया था जो सांड की पीठ के पीछे चुभोया हुआ दिखाया गया था। जुनी जाति की बहुरंगी (Polychrome) चित्रकला, झाड़वाली (Bushmen) जाति की चित्रकला इसके उदाहरण हैं।

"मैंडेलीन-मानव" (Madeleine Man) आरिग्नेशियन-मानव के वंशज कहे जाते हैं। इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम तथा जर्मनी में इनकी कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये लोग शरीर ढाकने के लिए वस्त्र परिधान किया करते थे। सन् १८८८ में पेरीग्युएक्स (Perigueux) के समीप 'चान्सलेड' (Chancelade) अस्थिपंजर की उपलब्धि से प्रतीत होता है कि ये लोग क्रोमैग्नन की अपेक्षा कद में छोटे थे। चान्सलेड को एस्किमो का पूर्वज भी कहा जाता है। चित्रकला में कोई इनकी टक्कर न ले सकता था। हाथी दाँत पर चित्रकारी अस्थिनिर्मित हारपून इन की सुन्दर कला की जीवित साक्षियाँ हैं। एस्किमो की भाँति ये लोग 'सील' मछली का शिकार किया करते और उसकी खाल के कपड़े पहना करते थे।

"मैंडेलीन-मानवों" ने पेड़ लगाने भी प्रारम्भ कर दिये थे। शरद् ऋतु में ये लोग कन्दराओं में रहा करते थे। ये पाषाणनिर्मित कैम्पों को जलाने तथा एस्किमो की भाँति उनसे अपने घरों को गर्म रक्खा करते थे। ये लोग पशु-चित्रों को बनाने और उन्हें विभिन्न विभिन्न रंगों से अलंकृत किया करते थे। ब्रुश का भी प्रयोग किया जाता था। हाथी दाँत पर नकाशी का काम भी अतीव सुन्दर जान पड़ता था। रेखाचित्रों तथा नकाशी का यह काम पाषाणखण्डीय उपकरणों द्वारा ही किया जाता था। एस्किमो की संस्कृति देखने से इनकी संस्कृति का चित्र चित्रित किया जा सकता है क्योंकि दोनों की संस्कृतियों में पर्याप्त साम्यता है।

## मग्दलेनियन संस्कृति के उपकरण

१. अस्थिनिर्मित नोकदार प्रक्षेपणयन्त्र—इस यन्त्र के एक पार्श्व

में नोक होती है। एक पार्श्व काँटेदार होता है। २. अस्थिनिर्मित नोकदार प्रक्षेपण यन्त्र—इस यन्त्र के दोनों पार्श्व नोकदार एवं काँटेदार होते हैं ३. सींगनिर्मित नोकदार हारपून—यह दोनों ओर काँटेदार होता है। ४. सींगनिर्मित नोकदार हारपून—यह एक पार्श्व में काँटेदार होता है ५. अस्थि-निर्मित धनुषाकार यन्त्र—इसे मछली का फन्दा भी कहते हैं। ६. अस्थि-निर्मित धनुषाकार यन्त्र ७. अस्थिनिर्मित छुरा ८ भाला प्रक्षेपण यन्त्र ९. सींगनिर्मित डण्डा व छड़ी, १०. हाथीदाँत का डण्डा ११. दाँतेदार अस्थि उपकरण १२. अस्थिनिर्मित खूँटी १३ मनके १४ पाषाणनिर्मित दीप, १५ अस्थिनिर्मित गरल।

## आज़िलियन संस्कृति (Azilean Culture)

'मस्दे-अजिल'-मानव—प्राचीन पाषाणयुग की अन्तिम संस्कृति 'मस्देअजिल' मानवों की संस्कृति है। इस संस्कृति के अवशेष लोरडस (Lourdes) फ्रांस के समीप मस्देअजिल, सेवनओक्स (Sevenoaks), हेस्टिंग्स (Hastings) इंगलैण्ड तथा स्कॉटलैंड (Scotland) में उपलब्ध हुए हैं। ये लोग मृतकों के सिर उतार कर कपाल को गाड़ दिया करते थे। बेरिया (दक्षिण जर्मन) प्रदेश में २७ कपाल उपलब्ध हुए हैं। ये अपने शरीर को अलंकृत किया करते थे। कुत्ता उन दिनों का पालतू पशु था। पानी की अधिकता के कारण 'मस्दे-अजिल' मानवों ने मछली का शिकार भी प्रारम्भ कर दिया था।

पत्थरों पर भी ये लोग चित्र बनाया करते थे। ये लोग आदान प्रदान विधि द्वारा व्यापार भी किया करते थे। कइयों का विचार है कि चित्रित पाषाणों पर बनाये गये निशान उनकी 'लिपि विद्या' का संस्मरण कराते हैं। उन लोगों ने पढ़ना लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। स्काटलैण्ड के समीप समुद्रतट की एक कन्दरा से कुछ अवशेष उपलब्ध हुए हैं इससे प्रतीत होता है कि ये मानव-चतुर मछियारे और शिकारी थे। डेनमार्क में भी 'मस्देअजिल-संस्कृति' के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

जलवायु के परिवर्तन के साथ साथ मनुष्य की संस्कृतियों में भी परिवर्तन होता चला गया। पहले मनुष्य शेर चीतों तथा हाथियों के साथ रहा करता, पुन. बारहसिंघे, घोड़े और हरिण आदि उसके साथी बने।

'अजिलियन-संस्कृति' काल में बारहसिंघे के पाषाणगत चित्रों के स्थान पर रक्तवर्ण के मृग बनाये जाने लगे। अज़ीलियन संस्कृति के विकास के कारण

मडेलीनियन संस्कृति नष्ट हो गई। 'मस्देअजिल' की कन्दरा में जले हुए अनाज का ढेर उपलब्ध हुआ। फ्रांस स्थित कैम्पिग्नी नामक स्थान पर सबसे प्रथम हाथ से आटा पीसने की चक्की मिली। पूर्व पाषाणयुग में वर्तन बनाने तथा कताई बुनाई करने की कला का ज्ञान लोगों को न था। पूर्व पाषाणयुग की समाप्ति पर आरिग्नेशियन काल के उपकरण पुनः दिखाई देने लगे। अजिलियन काल के उपकरणों की विशेषता यह थी कि इस काल के हारपून चौडे तथा फैले हुए होते थे। इनमें एक तरफ एक छेद होता था जिसमें से रस्सी गुजर सकती थी। यह बारहसिंघे के सींगों से बनाया जाता था। इस काल में टार्डेनोसियन, मगल-मोसियन तथा लौवेलासियन आदि कई संस्कृतियों का भी विकास हुआ।

## एजिलियन-टर्डेनोसियन, मगलमोसियन संस्कृति के उपकरण

१ चित्रित पाषाण २ मानवीय आकार के चित्र—जो कन्दराओं की दीवारों पर चित्रित होते थे। ३ धनुष और कमान के चित्र—ये चित्र कन्दराओं की दीवारों पर अंकित थे। ४. अस्थिनिर्मित मछली पकड़ने का फंदा। ५. सींग निर्मित नोकदार हारपून। ६ सींग निर्मित वसूला व कुल्हाड़ी। ७. पाषाणखण्डीय नकाशी यन्त्र। ८. चाकू। ९ रेखांकित पाषाणखण्ड। १०. छेदक यन्त्र (Incising tools) ११. पाषाण-खण्डीय खुरचन यन्त्र—इन्हें मुष्ठिछुरी के अन्तर्भाग से निकाला जाता था। इनका आकार नीचे की ओर झुका होता था।

## नव पाषाणयुग

नवपाषाण युग का प्रारम्भ ५००० से ८००० साल वर्ष पूर्व का काल है। अजिलियन संस्कृति सम्बन्धी व्यवसाय लगभग सम्पूर्ण पश्चिमीय गोलार्द्ध में फैल चुका था। पूर्वपाषाणयुग की समाप्ति पर लोगों की आवा-गमन, पर्यटन तथा प्रव्रजन सम्बन्धी वृत्तियाँ बढ गई थी। हिमयुग की समाप्ति पर हिम भी ध्रुवों के समीप तक ही रह गई थी। बहुत सा विस्तृत भूभाग जातियों के विस्तार के लिए काम में लाया गया। जब हम पूर्व पाषाणयुग से नवपाषाणयुग में प्रवेश करते हैं तो हम इन लोगों के रहन-सहन, भूमि तथा समुद्र की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में महान् परिवर्तन पाते हैं। ब्रिटेन तक का भाग योरुपियन महाद्वीप के अन्तर्गत था नवपाषाण युग के उदय के साथ साथ बहुत सा भूभाग एक दूसरे में मिल गया। परिणामस्वरूप ब्रिटेन

का भाग पृथक् हो गया। समशीतोष्ण जलवायु के प्रारम्भ हो जाने के कारण पशु और पौधों की उत्पत्ति होने लगी। मनुष्य ने भी अपने रीति-रिवाज बदले। अब मनुष्य जाति एक स्थान पर आबाद होकर अपनी उन्नति की ओर अग्रसर हुई। लोग घोड़े, कुत्ते, बकरी आदि पशु पालने लग गये। पृथ्वी पर फलों की खेती होने लगी। अनाज उत्पन्न किया जाने लगा। यह कह सकना कठिन है कि पूर्वपाषाणयुग के अवशेष बिल्कुल समाप्त हो गये अथवा योरप में नवीन जातियों का प्रवास होने लगा? नवपाषाणयुग के व्यक्ति कृषि, कताई व बुनाई द्वारा वस्त्र तैयार करना जानते थे। उन्हें बर्तन बनाने की कला का भी पूरा पूरा ज्ञान था। कन्दराओं की दीवारों को चित्रित करने, हाथी दाँत के टुकड़ों पर नक्काशी करने के जो कार्य पूर्वपाषाणयुग में सर्वत्र प्रचलित थे लोग उनसे विमुख होने लगे। नवपाषाणयुग के मनुष्यों का ध्यान भवन निर्माण, वस्त्र निर्माण तथा बर्तन निर्माण कलाओं की ओर आकृष्ट होने लगा।

चमकदार पत्थर के काटने का व्यवसाय वैसे ही कायम रहा। वे लोग पत्थरों को काटकर चमकदार, और साफ सुथरा बनाया करते थे। उनके काटने की प्रक्रिया में भी अभीष्ट सुधार हो गया था। बहुत से पुरातत्वशास्त्रियों का कथन है कि पूर्वपाषाण और नवपाषाणकालीन सभ्यताओं के बीच की ऐसी शृंखला अवश्य रही होगी जिसने दो विभिन्न संस्कृतियों को आपस में जोड़ा होगा। अर्द्धमंजिल कन्दरा की उपलब्ध प्राचीन वस्तुएँ इस बात का प्रमाण हैं। मि० जे० एलन ब्राउन ने इस अभिप्राय के लिए एक मध्यपाषाणयुग (Mesolithic Period) की धारणा की है। ईस्टबार्न के समीप कनिगशेप में जो कलावशेष प्राप्त हुए हैं वे सब इसी मध्यपाषाणयुग के हैं। अतिनूतन तथा सर्वनूतन काल के मिश्रित पशुअवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

नवपाषाणयुग के कुल्हाड़े सदृश कुछ उपकरण ऐसे हैं जो मौस्टेरियन संस्कृति कालीन उपकरणों से मिलते जुलते हैं। कारनाक में, वर्धिंग के समीप सिसबरी में चमकदार पत्थर की खान तथा कुछ अन्य उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं जिन्हें इसी मध्यपाषाणयुग का बतलाया जाता है। चार्ल्सफोर्ड के "सिट्स स्विसंग्यूजियम"ने चमकदार पत्थरों के उपकरणों का संग्रह कर रक्खा है जिसमें सभी युगों के उपकरणों का शृंखलाबद्ध प्रदर्शन किया जाता है।

मि० रेजीनाल्ड स्मिथ ने उपरोक्त कलावशेषों को मौस्टेरियन तथा आरिग्नेशियन संस्कृतियों के बीच का तथा पूर्वपाषाणयुगीय ठहराया है। मि० ब्रेम ने कॉर्नवाल के स्टोर्पेन नामक स्थान का दौरा किया तो

उन्होंने 'म्टोरपेन' के प्राप्त कलावशेषों को नवपाषाणयुग का ठहराया। 'ग्राइम्स-ग्रेव्स' में भी जो बारहसिंघे के सींघों के अवशेष प्राप्त हुए हैं वे सब नवपाषाण-युग के हैं। मध्यपाषाणयुग के अभी पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले। 'ग्राइम्सग्रेव्स' के कलावशेषों को कई पुरातत्वशास्त्री मौस्टेरियन तथा आरिग्नेशियनकालीन भी मानते हैं। थीटिंग, बीचमवैल तथा क्रानविच के सभी कलावशेष नव-पाषाणयुगीय हैं। जब तक हमें इस सम्बन्ध में भूगर्भशास्त्रीय अथवा पुरातत्व-शास्त्रीय प्रमाण न मिलें तब तक हमें यह कट्टरपन्थी दृष्टिकोण मानना पड़ेगा कि 'ग्राइम्सग्रेव्स' कलाकार वह नवपाषाणयुगीय मानव ही रहा होगा जो आकार में छोटा, कृष्ण वर्ण तथा लम्बे सिरवाला होता था। ये दक्षिण की ओर से आक्रान्ता के रूप में यहाँ आये थे और इन लोगों ने बर्तन निर्माण, पशुपालन, कृषि, आदि कलाओं में निपुणता प्राप्त की हुई थी। ये लोग पूर्वपाषाणयुगीय मानव को उत्तर की ओर खदेड़ने में समर्थ हुए थे।

## डेनमार्क के ढेर (Shall-mound or Kitchen Midden)

डेनमार्क में समुद्र के पूर्वीय तट पर ऐसे ढेर उपलब्ध हुए हैं जो १०० गज लम्बे, ५० गज चौड़े और १ गज ऊँचे होते थे। इन्हें डेनमार्क में जोक्न मोडिनार (Kjokkenmoddinger) नाम से पुकारा जाता है। ये ढेर कूड़ाकर्कट, मृगास्थियों, जगली सुअर की हड्डियों तथा छिलकों के एकत्रीकरण से निर्मित हो जाते थे। अस्थियों के भीतर का गूदा निकालने के लिए बड़ी बड़ी हड्डियों को तोड़ दिया जाता था। ब्रिटिश द्वीप तक फ्रास में भी इस प्रकार के कई ढेर उपलब्ध हुए हैं। 'टीराडेल' पमूगों तथा कतिपय अन्य इलाकों में भी अनेक ढेरों की सम्प्राप्ति हुई है।

इस काल में लोगों ने पशुपालन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। रात्रि में इन पशुओं की रक्षा करनी पड़ती थी। पशुओं का दूध एकत्रित करने के लिए बर्तनों की आवश्यकता अनुभव हुई। नवपाषाणयुगीय मानव भेड़, बकरी, सुअर तथा अन्य सभी पशु अपने पास रखा करते थे।

## गृह निर्माण तथा भाण्ड-कला

नवपाषाणयुगीय मानव पृथ्वी के भीतर कई फुट गहरा एक गोल गड्ढा खोदकर बनाया करते थे। ऊपर की छत को डालियों से गूथकर उसे लीप देते थे। इसके चारों ओर मिट्टी का टीला बना होता था। इन निवासगृहों से हमें धनुष,

मारे, पत्थर के टुकड़े, कुल्हाड़े, बर्तन, चक्की तथा कांस्य और लौहयुग के अनेक उपकरण प्राप्त हुए हैं। कई रोमन सिक्कों तथा धातु के उपकरणों से प्रतीत होता है कि नवपाषाणयुग के पश्चात् भी बहुत समय तक इस प्रकार के निवासगृह पर्याप्त समय तक स्थापित रहे। यद्यपि धातु के बने सिक्कों की सबसे प्रथम उपलब्धि उस समय हुई जब कि बड़े बड़े भवनों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार मिट्टी के बने हुए मकानों की उपलब्धि ग्रान्गस्टाव, वर्टम्बर्ग आदि कई स्थानों पर हुई है जिनमें पृथक् पृथक् कमरे भी बने हुए पाए गये हैं।

स्विट्जरलैण्ड में झीलों के किनारों पर तथा अन्य कई स्थानों पर कई नवपाषाणयुगीय जातियों ने अपने मकान बनाये ताकि उन्हें मछली आदि सुगमतया मिल सकें। ये मकान पानी के ऊपर बड़े बड़े सुदृढ़ डण्डों पर बने होते थे। केन्द्रीय योरुप में नवपाषाण तथा कांस्य युग में इस प्रकार के कई ग्रामों की रचना की गई जिसमें ऐसे मकानों का निर्माण किया जाता था। न्यूगाइना, बोर्नियो, तथा केन्द्रीय अफ़्रीका में तो अब भी इस प्रकार के मकान उपलब्ध होते हैं। ब्रिटेन में इस प्रकार के मकानों को 'क्रानोग्स' कहा जाता है। वहां कांस्य युग से पूर्व इनकी उपलब्धि नहीं मिलती। ग्लास्टनबरी के प्रसिद्ध "झील-ग्राम" में इसी सभ्यता के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।

इन पुरातन अवशेषों से नवपाषाणयुगीय तथा कांस्ययुगीय सभ्यता पर अत्यन्त प्रकाश पड़ता है। घोड़े तथा बकरियां कांस्ययुग में पर्याप्त संख्या में पाई जाती थीं। झीलवासी अनाज, जौ, तथा बाजरा की खेती करते थे। सन के धागे पटुआ अथवा सन के कपड़े बनाये जाते थे। भाण्डकला (Pottery) सहित अनेक प्रकार के बर्तन भी उपलब्ध हुए हैं।

## सामाजिक जीवन

पुरातन युग में आखेट करने वाली जनजातियां एक परिवार के रूप में रहा करती थीं। एक दूसरे के गुणों को शीघ्र ग्रहण कर लेतीं और स्वतन्त्र रूप में विचरण करती थीं। दास प्रथा (Slavery) का प्रारम्भ हमें युद्ध-काल से प्रतीत होता है। इससे पूर्व कोई गुलाम न हुआ करता था। जन-जातियां अपने आपको आबाद करने के लिए आक्रमण किया करती थीं। ये लोग देवी देवताओं की उपासना भी किया करते थे। सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि सब देवता के प्रतीक समझे जाते थे। धार्मिक विधिविधानों और उत्सवों के सम्बन्ध में देवी देवताओं को प्रमुख स्थान दिया जाता था। प्रेतात्माओं में ये लोग अगाध

श्रद्धा और विश्वास रखते थे। पहाड़ी स्थानों पर एकत्रित रूप में रहना इस नवपाषाणयुगीय जीवन की विशेषता थी। आखेट के लिए परिभ्रमण व प्रव्रजन की प्रवृत्ति कम हो गई थी। उनमें भूमि व सम्पत्ति को हस्तगत करने की भावना अभी जागृत नहीं हुई थी अतएव आक्रमणकारी सेनाओं के रखने की कोई प्रथा नहीं थी।

## नव पाषाणयुगीय उपकरण

ये उपकरण अल्पाइन के इलाके से प्राप्त हुए हैं। १ पाषाण निर्मित कुल्हाड़ी। २ पाषाण निर्मित बसूला। ३ रेती—जिसकी मुट्ठी सींग की बनी होती है। ४ चाकू—लकड़ी के मूठ वाला। ५ चाकू—सींग निर्मित मूठ वाला। ६ अस्थिनिर्मित दांतेदार रेती। ७ शूकरदन्त निर्मित मछली पकड़ने का फंदा। ८ स्तनधारी प्राणी की अस्थि से निर्मित टेकुआ। ९ अस्थि-निर्मित टेकुआ। १० मिट्टी के बर्तन—घड़ा आदि। ११ कंघी। १२ अस्थिनिर्मित बटन। १३ सींग निर्मित मनके। १४ पाषाण निर्मित मनके। १५ मानवीय आकार के मिट्टी के चित्र। १६ मिट्टी की आभूषित मूर्तियां। १७ लकड़ी की हथौड़ी (Mallet)। १८ लकड़ी का बड़ा चम्मच (Ladle)। १९ धनुष। २० नाव। इनके अतिरिक्त डालियों व पत्तों के मकान, लट्ठों व शहतीरों के बने मकान, मूसल कड़नी (Flail), वस्त्र व्यवसाय, टोकरी, रस्सी, मछली पकड़ने के जाल, कसीदा-कारी, ताम्र, मनके, कृषियन्त्र, अनाज, जौ, आदि की उपलब्धि भी प्रारम्भ हो गई थी।

## मध्य तथा अन्तिम नव पाषाणयुगीय उपकरण

१ सान (Grind stone)—इससे पाषाण खण्डीय कुल्हाड़ों को तेज किया जाता था। २ पाषाणखण्डीय कुल्हाड़े—सबसे पुरातन रूप के कुल्हाड़े जिनका सिरा पतला और नोकदार होता था। ३ पाषाणखण्डीय कुल्हाड़ों का द्वितीय रूप जिनके किनारे चौड़े होते थे। ४ पाषाणखण्डीय कुल्हाड़ों का तृतीय रूप जो समकोण व चतुर्भुजाकार होते थे। ५ पाषाण खण्डीय कुल्हाड़ों का—चतुर्थ रूप जिनका किनारा चौड़ा होता था। ६ पाषाणखण्डीय बसूला (Adze)। ७ पाषाणखण्डीय गोल रुखानी (Gouge)। ८ पाषाणखण्डीय छेनी (Chisel)। ९ पाषाण निर्मित कुल्हाड़ी।

१०. पाषाण निर्मित गदाशिर । ११. मनके । १२. पाषाणखण्डीय हंसुआ (Sickle) । १३. पाषाणखण्डीय आरा व चाकू । १४. पाषाणखण्डीय छुरा । १५. मिट्टी के बर्तन ।

## कांस्य युग (Bronze Age)

पाषाण, लकड़ी और अस्थि के प्रयोग के बाद संस्कृति के विकास के साथ-साथ धातु का प्रयोग भी प्रारम्भ हो जाता है । सब से पूर्व साइप्रस द्वीप के इलाके में ताम्र का प्रयोग सबसे पूर्व पाया गया । धातुओं को पिघलाने तथा उन्हें आकार देने की प्रक्रिया लगभग ईसा से ३००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई । पहले ताम्र पर पुन. ताम्र मिश्रित टीन (कास्यकूट) पर कई परीक्षण किये गये । इसके बाद लोहे का प्रयोग ईसा से १५०० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ । योरप का लोह व्यवसाय जिसे 'हालस्टट' ( Hall Statt ) संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है लगभग ईसा से १००० वर्ष पूर्व का माना जाता है । स्विट्‌ज़रलैण्ड के ला टेने नामक स्थान पर ईसा से ३०० वर्ष प्राचीन काल की अन्तिम संस्कृति का विकास हुआ । सबसे प्रथम धातु का प्रयोग उपकरणों के निर्माण के लिए ही किया जाता था । ताम्र और कास्यनिर्मित कुल्हाड़ियाँ, फावड़े, मुद्गर तथा सूर्में (Anvil) सब से प्रथम उपलब्ध हुए । इसके बाद धीरे-धीरे पाषाण उपकरणों की नकल के छेददार फावड़े (Socketed picks ), कुदालियाँ ( Hoes ), बसूले ( Adzes ), आरियाँ (Saws), हंसिया ( Sickles ), छोटी चिमटियाँ ( Tweezers ) बाल मूंडने के छुरे ( Razors ) तथा कई प्रकार के चाकू आदि उपकरणों का आविष्कार हुआ । अस्त्र शस्त्रों में तलवारें, कटारें, भोंकने की छोटी तलवार ( Rapiers ), गड़ासे, ( Halberds ), ढाल ( Shield ), कवच (Helmet), मनुष्य तथा घोड़े के कवच भी उपलब्ध हुए हैं । आभूषणों में मुद्रा, कंगन, कण्ठी (Torques), गुलूबन्द (Lunulae), गले की माला, पाल्पीन (Fileolae) वस्त्रों में लगाने के आलपीन (Brooches), बटन, बकसूए ( Buckles ), दर्पण, भस्म रखने के पात्र ( Urn ) आदि उपलब्ध हुए हैं । इसके अतिरिक्त घंटे, दुंदुभि, (Trumpets) और गोल टिकिया (Disk) आदि भी धार्मिक विधिविधानों के अवसरों के लिए निर्मित हुए । धातु की ईंटें (Ingots), धातु की चद्दर या टुकड़ों को बाँधने की कीलें (Rivets) मापनी पकड़ने के फन्दे, प्याले, कड़ाहे व देगचे (Couldrons) आदि भिन्न भिन्न चीजें भी उपलब्ध हुई हैं । इसके

अतिरिक्त अन्य चीजों पर विभिन्न विभिन्न प्रकार के नमूनों की कढाई भी की जाती थी। उत्तरीय योरुप के रेखामय चित्र तथा दक्षिणी साइबेरिया को मनुष्य और पशु सम्बन्धी तस्वीरें इसी युग की देन हैं। इन चित्रों में धार्मिक भावनाओं को निहित किया गया है। प्राचीन युग और नवीन युग की बहुत कृतियों में सभ्यता प्रदर्शित होती है। जो उपकरण प्राचीन युग में जिस कार्य में लाये जाते थे वही उपकरण आधुनिक युग में भी प्रयोग में लाये गये हैं। दोनों का क्रियात्मक रूप तो एक समान था परन्तु निर्माण में साधारण एवं नाममात्र कहीं कहीं परिवर्तन हुए। विस्कान्सिन तथा पेरु के प्रदेश में निर्माण सम्बन्धी परिवर्तन अवश्य हुए परन्तु वहाँ के उपकरण प्रयोग में नहीं लाये गए। सोने और चाँदी के प्रयोग के साथ साथ निर्माण में परिवर्तन अवश्य हुआ। हम देखते हैं कि पुरातन संसार की अपेक्षा अमेरिका अधिक समृद्धिशाली देश है। अमेरिका की बनी चीजें चाहे वास्तविक रूप में हैं चाहे अवास्तविक रूप में—विलक्षण हैं और विचार तथा क्रिया में बिल्कुल विभिन्नता रखती हैं। चूंकि हम देखते हैं कि कई क्रियात्मक उपकरणों जैसे—हँसिया, आरी, तलवार, दुदुंभि आदि का अमेरिका में लोप सा है। इसके अतिरिक्त नथुनी (Nose Ring), नालीदार कुल्हाड़े, तलवाराकृति की गदायें अमेरिका में ऐसी उपलब्ध होती हैं जिनकी नकल धातुरूप में नहीं की गई।

जब हम लोहे के उपकरणों पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उन उपकरणों के कई रूप तो आधुनिक युग में भी विद्यमान हैं। हँसिया को खुर्पे (Scythe) का रूप दे दिया गया। हार्पून को त्रिशूल का रूप दे दिया गया। कई नवीन रूप भी आविष्कृत हुए। चिमटी व छोटे मुह की संडासी (Pincers), कैंची, चाकू, दरजी की अंगुलि में पहनने की टोपी (Thimble), बरमा (Auger), आरी, रेती (File), मोटी रेती (Rasps), बढई का रन्दा (Plane) परकाल (Compasses), करनी (Trowels) सूखी घास की टहनी लगाने का नोकदार डण्डा (Pitchfork), भूमि को चिकना बनाने का हथियार हेंगी (Rake), अँगीठी के लोहे के सीकचे (Andirons), ताले व चाबियां इत्यादि वस्तुओं का भी विकास हुआ। कीलें तथा घोड़े की नाल भी पर्याप्त प्राचीनकाल में विद्यमान थीं।

## कांस्ययुग के उपकरण

१. कुल्हाड़े का फलक (Blade)—पतला, चौड़ा तथा चमकदार

१. कुल्हाड़े का फलक—(Blade) पतला, चौड़ा तथा चमत्कार होता था। २. कुल्हाड़े का फलक नं० १ इसका पार्श्व भाग उन्नत (Lateral Flangs) होता था। ३ कुल्हाड़े का फलक नं० २ इसकी पलकें चौड़ी तथा फन्देदार होती थी। ४. कुल्हाड़े का फलक नं० ३ इसकी फलक छेददार होती थी। इन उपकरणों से कास्ययुग के विकास का पता चलता है। ५. छेददार रेती जिसमें हत्था लगाया जा सकता है ६. कुल्हाड़ा ७ टेकुआ। ८. सुई ६ छोटी चिमटी (Tweezer) १०. बाल मूंडने का छुरा (Razor) ११. नावाकार बाल मूडने का छुरा १२. आरा १३. चाकू १४. भाला १५. छुरा १६. तलवार १७. मछली पकड़ने का फन्दा १८. पहिया १६ लगाम (Bit) २० बालों की सुई २१ आलपीन २२. मनके २३ हण्डे के आकार के बटन २४ जंजीर २५ तलवार की मुठिया (Hilt) के आकार के बटन २६ हँसुओं के फलक २७ आलङ्कारिक स्वर्णमय चित्र २८ योद्धाओं के चित्र—हाथ में तलवार, धनुष और कमान आदि पकड़े हुए हैं २६ कुल्हाड़े तथा भाले से सुसज्जित योद्धागण ३०. योद्धा—घुड़सवार भाले और कवच लिए हुए ३१. बैलों को जोतते हुए कृषिकार ३२. रथ—जिन्हें घोड़े खींच रहे हैं ३३. पराक्रमी योद्धाओं के चित्र—जो दुन्दुभि बजा रहे हैं।

## लौह युग (IronAge)

कांस्ययुग की समाप्ति पर तथा लौहयुग के प्रारम्भ में कांस्य और लौह का एक साथ प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। समक्ष की खानों में जिसकी खुदाइयाँ हुई हैं उन सबसे आदिलौहयुग की संस्कृति का पता चलता है। आदिलौहयुग के अन्तिमकालीन उपकरण अवशेष जो मैरिन के समीप उपलब्ध हुए हैं लौहयुग की संस्कृति पर सुन्दर प्रकाश डाल रहे हैं। स्विट-जरलैंड की झील बस्तियों में आबादी बढ़ने के साथ साथ जब प्रव्रजन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो लोग 'पो' घाटी की ओर आने लग गये और टैरामेयर (Terramare) में उन्होंने अनेक बस्तियाँ बना लीं। किसानों ने देखा कि यहाँ की जमीन खेती के लिए अत्यन्त उपजाऊ प्रतीत होती है वे वहीं बस गए। यदि हम 'लौह-युग' की संस्कृति का भलीभाँति विवेचन करना चाहते हैं तो हमें उन अवशेषों का सम्यक् अध्ययन करना पड़ेगा जो ग्लैस्टनबरी (Glastonbury) के प्रदेश में उपलब्ध हुए हैं। ग्लैस्टनबरी की प्राचीनतम सभ्यता ही "लौह-योग" की आदिकालीन सभ्यता कही जा सकती है।

"ग्लैस्टनवरी संस्कृति" का समूचा इतिहास 'लौह-युग' की संस्कृति का युगीय कहा जा सकता है।

## लौहयुग की संस्कृति

ग्लैस्टनवरी के पुरातन अवशेषों में सबसे प्राचीन एक भग्न झोपड़ी तथा एक नाव का अवशेष प्राप्त हुआ है जो तत्कालीन संस्कृति की गृहनिर्माण कला तथा वाणिज्य एवं व्यवसाय सम्बन्धी नीति पर सुन्दर प्रकाश डाल रहा है। सड़ी हुई लकड़ी के अवसाद (Deposits) यह प्रमाण दे रहे हैं कि ब्रू (Brue) नदी के चारों ओर बसा हुआ यह प्रदेश पुरातन काल में दलदल परिपूर्ण रहा होगा। इसी प्रदेश से शहतीर का लम्बा टुकड़ा भी प्राप्त हुआ है उसका आकार इस प्रकार बना हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि इससे खेती के समय हल का काम लिया जाता होगा। बहुत सी चक्कियाँ (Querns) तथा चक्की के पाट (Millstone) तथा कुछ रोटियाँ भी प्राप्त हुई हैं। रथ के पहिये, घोड़े के साज, लगाम (Bits) तथा अन्य सामान भी उपलब्ध हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि ये लोग घोड़े भी रखा करते थे। ये लोग व्यापार के लिए अपना माल नावों पर रखकर बाहर ले जाते थे और बाहर से अपनी आवश्यकतानुसार साधन ले आया करते थे। इन प्राप्त अवशेषों में हमें लोहे के उपकरणों की भी सम्प्राप्ति हुई है अतः हमें यहीं से "लौह-युग" का प्रारम्भ मानते हैं।

धातु गलाने की घरिया (Crucibles) धूम्राक्ष (Funnels) की भी सम्प्राप्ति हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्बे तथा टीन को गलाने के लिए ही धातु गलाने की घरियों का प्रयोग किया जाता होगा।

यदि हम ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका की अकीकुयू (Akikuyu) संस्कृति को देखें तो उससे "लौह-युग" पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ग्लैस्टनवरी से लोहे के चाकू (Iron Knife), चिमटे, (Tongs) लोहे का रन्दा, (Spokeshave) कैंची (Shear) तथा अन्य अनेक उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं।

पात्रों के नानाविध नमूने ग्लैस्टनवरी से प्राप्त हुए हैं। ये यन्त्र हाथ तथा यन्त्र द्वारा—दोनों विधियों से बनाये जाते थे। ग्रामों में कताई तथा बुनाई के काम के लिए अनेक केन्द्र स्थापित थे। पीपा बनानेवाले (Coopers) भी अपने काम में सिद्धहस्त थे। ये लोग टब तथा पीपे बनाने का काम किया करते थे। खराद (Lathe) का काम भी हुआ करता

था । ग्लैस्टनबरी के बढ़ई कुल्हाड़ी ( Axe ) का प्रयोग किया करते थे ।

ग्लैस्टनबरी में शरारती और बदमाश लड़कों की भी कमी नहीं थी । ये लोग खाली समय में अस्थिनिर्मित 'पासे का खेल' (Dice) खेला करते और अपना मनोरंजन किया करते थे ।

## मृतक संस्कार

ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग श्मशानभूमि में मुर्दे न ले जाया करते थे क्योंकि श्मशान भूमि का कोई अवशेष प्राप्त नहीं हुआ । परन्तु खुदाई पर आदि-नवपाषाणयुग के कुछ मानवावशेष प्राप्त हुए हैं । इन का प्रारम्भ नवपाषाणयुग की मेडिट्रेनियन शाखा से प्रारम्भ होता है । ये लोग ग्लैस्टनबरी में लाये गए थे । रोमन आक्रमण से पूर्व ग्लैस्टनबरी वासियों पर एक महान् विपत्ति आई और बेल्जिक आक्रमणकारियों ने—जो दीर्घ शिरीय थे उन्हें तलवार के घाट उतारा । सीजर ने भी इनका वर्णन किया है । रोमन इतिहास में इनका उल्लेख पाया जाता है । प्रो० फ्लूरे (Fleure) ने इन नवपाषाणयुग के वंशजों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ये नवपाषाणयुगी मानवों के वंशज दीर्घ शिरीय, दीर्घाकृति वाले तथा कृष्ण केशीय हैं । इनकी आँखें भूरी हैं ।

ईस्ट यार्कशिर के पूर्व में आर्रा (Arrah) के समीप जमीन में से गड़े हुए मृतक व्यक्ति के कुछ अन्य अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे प्रतीत होता है कि ये लोग दीर्घकपालीय ( Dolichocephalic ) होते थे । इस मृतक शरीर के पास रखे हुए कुछ काष्ठनिर्मित उपकरण भी प्राप्त हुए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग रथ आदि का प्रयोग भी किया करते थे । रथ के पहियों का व्यास ८ फीट ८ इंच है । कांस्ययुग में हमें हीदरीबर्न कन्दरा (Heathery Burn Cave) में भी रथ के अवशेष प्राप्त हुए थे परन्तु लौहयुग में इसी स्थान पर एक अन्य रथ के अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

सन् १८८६ में केंट के समीप आयलसफोर्ड (Aylesford) नामक स्थान से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उन से प्रतीत होता है कि भाण्डकला (Pottery) अत्यधिक उन्नति पर थी । केल्टी इलाके के लोग मजबूत योद्धा माने जाते थे और उन्होंने दक्षिण-पूर्वी ब्रिटेन को जीत लिया था । उन्होंने ससेक्स वील्ड (Sussex weald) की लोहे की खानों पर अपना आधिपत्य कर लिया था । कांस्ययुग में ब्राइथन्स ( Brythons ) तथा गोइडेलिक स्कन्ध ( Goidelic stock ) तथा ग्लैस्टनबरी के मैडिट्रेनियन वंशजों ने

# प्राचीन वस्तुकला

## प्राचीन वस्तुकला क्या है ?

प्राच्य वस्तुकला वह विज्ञान है जिसके द्वारा मनुष्य तथा उसकी संस्कृति के उद्गम और विकास के अवशेषों का पूर्ण अध्ययन किया जाता है। मनुष्य के अवशेषों का प्राणि-शास्त्र वेत्ता भी अध्ययन करता है परन्तु मानवीय हस्तकला के अवशेषों का अध्ययन करना केवलमात्र प्राच्य वस्तु कलाविज्ञ का ही काम है। मानव जाति के उपलब्ध लेखबद्ध इतिहास को प्राचीन तथा अर्वाचीन कालों में विभक्त किया गया है परन्तु यहाँ हमें उस काल की भी प्राचीन वस्तुओं का अध्ययन करना है जिनका अभी तक हमें लेखबद्ध इतिहास प्राप्त नहीं हुआ। भूगर्भशास्त्र द्वारा जो जो तथ्य जाने जा सके हैं प्रागितिहास अभी उनसे वञ्चित है। अतएव प्रागैतिहासिक प्राच्य वस्तुकला केवलमात्र उन वस्तुओं से सहायता प्राप्त करती है जो हमें अनुसन्धान द्वारा अवशेष रूप में प्राप्त हुए हैं। संसार में लेखन कला भी आज से हजार साल पूर्व प्रारम्भ हुई थी अत मानव संस्कृति का इतिहास जानने के लिए हमारे पास प्राच्य वस्तुओं के अतिरिक्त कोई लिखित एवं लिपिबद्ध आधार नहीं। हम इन प्राच्य वस्तुओं को समयानुसार निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं —

१ प्रथमवर्ग उन 'अचल' स्मारक अथवा प्राचीन अवशेषों का है जो भूखण्ड की सतह पर उपलब्ध हुए हैं। इनके अन्तर्गत निम्न अवशिष्ट प्राचीन वस्तुयें आ जाती हैं।

(क) समुद्र तट पर भग्नावशेषों के समीप कन्दराओं में प्राप्त होने वाले मिट्टी कंकर व पत्थर के ढेर।

(ख) भोजन, सम्पत्ति व पूजा के उपहार के एकत्रीकरण के लिए बनाये गये संग्रहस्थान।

(ग) अंगीठी तथा अस्थाई निवास स्थान।

(घ) गृह तथा ग्राम के क्षेत्र, भग्नावशेष, इष्टों द्वारा निर्मित निवासस्थान।

(ङ) सामान्य पथ, मार्गवाहन दुर्ग (Portage), ग्रामों को मिलाने वाले बाँध व पुल।

(च) कारखाने, ढलाई के कारखाने तथा धातु गलानेवाले उपकरण।

(छ) श्मशान भूमि तथा समाधिस्थल।

(ज) उद्यान तथा कृषि क्षेत्र।

(झ) क्रीडा के अन्धकूप, जलाशय, कुण्ड, बावली, कृषि सिंचनपद्धति, पाषाणकन्दरायें, कन्दरायें, कब्रिस्तान, भूमि के भीतर के निवासस्थान, कृत्रिम निवास स्थान, कुसनपत्थर के निवास स्थान।

(ञ) बाँध, खेतों तथा पशुओं के लिए बनाई गई बाड़ किलाबन्दी की दीवारें, क्रीडास्थान, मिट्टी के ढेर, शुण्डाकार स्तम्भ (Pyramids) अन्य पाषाणीय रचनायें, सड़कें पाषाणनिर्मित ढेर समाधि स्थान मन्दिर किलाबन्दी की दीवारें जिन्हें कोषागार नदी के बाँध।

(ट) एक ही ठोस पत्थर का बना हुआ खम्भा तथा इस प्रकार की

(ठ) कन्दराओं की दीवारों पर चित्रित मनियों चट्टानों पर बनाये गये चित्र (Petroglyph)

२ द्वितीय वर्ग में ये प्राचीन वस्तुएँ हैं जो खुदाई द्वारा उपलब्ध हुई हैं। वे या तो कृत्रिम ढंग से प्राप्त हुई हैं अथवा प्राकृतिक भूमि अवसादों (Deposits) से इनमें निम्न पदार्थों की परिगणना की गई है —

(क) कटे हुए पत्थर, उपकरण यन्त्र पाषाणनिर्मित आभूषण तथा विधि विधानार्थ निर्मित पाषाण वस्तुएँ।

(ख) लकड़ी का काम, काष्ठनिर्मित उपकरण, यन्त्र, नाव तथा आवागमन की अन्य काष्ठ वस्तुएँ। लकड़ी के आभूषण तथा उत्सवादि सम्बन्धी सामग्री।

(ग) अस्थिनिर्मित पदार्थ—अस्थिनिर्मित उपकरण यन्त्र तथा पात्र। आभूषण तथा पूजा सामग्री।

(घ) खाल के बने हुए कपड़े, बालों तथा चर्मों की बनी चीजें, बर्तन, नाव।

(ङ) चटाई, टोकरी, नाव, जाली, कपड़े, टोपी, पट्टी आदि।

(च) मृत्तिका-निर्मित बर्तन, पूजा आदि के मिट्टी के बर्तन।

(छ) धातुनिर्मित उपकरण, यन्त्र, बर्तन तथा आभूषण आदि।

३—प्रागैतिहासिक कला तथा विज्ञान के सम्बन्ध में उपरोक्त वस्तुओं की सम्प्राप्ति से प्राचीनमानवों के सांस्कृतिक जीवन की अनेक समस्याओं का

ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। हम प्राचीन मानवों की निम्न कलाओं को तो भली भाँति जान सकते है—

(क) हस्तकला एवं शिल्प

(ख) शिकार तथा युद्ध विद्या

(ग) मछली पकड़ने की अनेक विधियाँ

(घ) जल तथा स्थल भागों द्वारा यात्रा-अन्वेषण

(ङ) आदान प्रदान तथा व्यवसाय—उत्पादन केन्द्रों से कच्चे माल का अन्य स्थानों पर वितरण।

(च) चिकित्सा कार्य का ज्ञान, शिल्प तन्त्र, औषध विज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा आदि का ज्ञान।

(छ) कृत्रिम-अन्न उत्पादन—कृषि तथा पशुपालन का ज्ञान।

(ज) कच्चेमाल की उत्पत्ति, खनिज द्रव्यों की उत्पत्ति, ढलाई तथा धातु गलाने का व्यवसाय।

(झ) रचनात्मक विचार—गृह, सेतु, नाव, बर्फ पर चलनेवाली गाड़ियाँ, क्रीडाग्र तथा फन्दों के निर्माणकला सम्बन्धी अवशेषों का ज्ञान।

(ञ) कलात्मक विचार—जिनका ज्ञान हमें चित्रकला तथा अलंकार एवं शृंगार आदि सामग्री द्वारा प्राप्त होता है।

(ट) धार्मिक विचार—धार्मिक विधिविधान, उत्सव, समाधिस्थान मन्दिर आदि का ज्ञान प्राप्त करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रागैतिहासिक वस्तुकला का उद्देश्य मानवीय इतिहास सम्बन्धी ज्ञान को परिवर्धित करना है। इसके द्वारा हम मनुष्य के प्राचीन भौतिक तथा मानसिक विकास सम्बन्धी प्राप्तव्य तथ्यों को ग्रहण कर सकते हैं। इससे मानव-शास्त्रियों को मनुष्य की प्राचीनता तथा उसके प्रारम्भिक विकास का निर्णय करने में सहायता मिलती है। इससे हम मनुष्य के भौगोलिक विभाजन का भी सुगमतया पता लगा सकते हैं। संसार के सभी प्रमुख आविष्कारों, अनुसन्धानों का समय और स्थान निर्णय करने में हमारा विज्ञान सहायक है। जब हम इन आधारों पर असली तथ्य जान लेते हैं तो हमारे लिए मानवीय विकास के भूत को जानना, भूत का वर्तमान से सम्बन्ध जोड़ना और वर्तमान के आधार पर भविष्य का भी कुछ कह सकना सुगम होता है।

प्राच्य वस्तुकला के अवशेष मनुष्य निर्मित कन्दराओं में उपलब्ध हुए हैं अथवा प्राकृतिक अवसादों में इसका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है अन्यथा हम कालनिर्णय में भूल कर बैठेंगे। कालनिर्णय का प्रश्न हम भूगर्भ

शास्त्र द्वारा भी हल कर सकते हैं। पाये जानेवाले सभी पदार्थों का यदि हम वर्गीकरण करें तो हम इन्हें ८ भागों बाँट सकते हैं —

१. पत्थर, मोती, प्रवाल, तृणमणि, अभ्रक, लकड़ी, पैट्रोलियम, राल, शिलाजीत, जलनेवाला तत्त्वमय धातु।
२. लकड़ी, छाल, पौधों के बीज, तथा तन्तुसार।
३. अस्थि, दाँत, हाथीदाँत, सींग आदि।
४. खाल, केश, पंख, आँतें, स्नायु, मज्जा आदि।
५. विभिन्न प्रकार की मृत्तिका।
६. धातु, ताम्र, स्वर्ण, रजत, तथा लोह।
७. वे धातुएँ जो कच्ची धातु से कृत्रिम साधनों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं।
८. शीशा तथा चमकदार पदार्थ।

प्राचीन मानव इन सभी प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग करता था परन्तु बहुत ही साधारण रूप में। सर्वप्रथम पत्थर तथा लकड़ी का प्रयोग किया गया। पुनः मिट्टी तथा कच्ची धातु का प्रयोग। धीरे धीरे ज्ञान बढ़ने के साधन योजित किए गये। इस प्रकार भौतिक संस्कृति का धीरे धीरे विकास होता गया। इन वस्तुओं के उपयोग के लिए उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। अतएव उपकरणों के विकृत रूप सबसे प्रथम निर्मित हुए। तत्पश्चात् उनमें भी परिष्कृति हुई। यह स्मरण रखना चाहिए कि जितनी भी प्राचीनकाल की वस्तुएँ निर्मित हुई वे सभी सुरक्षित अवस्था में उपलब्ध नहीं हुई। परन्तु तो भी अस्थि तथा पाषाण की वस्तुओं के प्राप्त अवशेष इतना अवश्य सिद्ध करते हैं कि अस्थि तथा पाषाण आदि का उपयोग किया जाता था। इस प्रकार बर्तन निर्माण, वस्त्र निर्माण, कृषि सम्बन्धी सभी वस्तुएँ उनकी सभ्यता का दिग्दर्शन कराती हैं और संस्कृति के समय को भी निर्धारित करती हैं।

## अफ्रीका में वस्तुकला कला का विस्तार

गत ५० वर्षों में मिस्र में सुक्सोर के पश्चिमीय मरुप्रदेश में पूर्व पाषाणयुग के आदिकालीन अनेक उपकरण उपलब्ध हुए हैं। सोमालीलैंड, नूबियन तथा लीबियन मरुप्रदेश, ट्यूनिस, अल्जीरिया, मोरक्को, सहारा के बिखरे प्रदेश, तथा दक्षिण में टिम्बक्टू तक इसी प्रकार के अन्य उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई है। कांगो, रोडेशिया, दक्षिणी अफ्रीका के विस्तृत भूभागों पर

नदी तट पर स्थित कन्दराओं में अनेक प्रकार के पाषाणखण्डीय उपकरणों की उपलब्धि से पूर्व पाषाणयुग की प्राचीन संस्कृति का पता चलता है। पूर्व पाषाणयुग के मध्यकाल के—चैलियन, मौस्टेरियन तथा ग्रशुलियन संस्कृतियों के अवशेषों का पता लगाया गया है। सन् १९२६ में शिकागो विश्वविद्यालय के मि० के० एस० सन्फोर्ड तथा मि० डब्ल्यू० जे० आरकेल ने जो अनुसन्धान किये उनके आधार पर नीलघाटी के अवशेषों को प्रतिनूतनकाल का बतलाया है। इसी प्रकार मि० एल० एस० बी० लीके ने केनिया उपनिवेश में प्राप्त चैलियन, एशूलियन तथा मौस्टेरियन संस्कृति के अवशेषों को प्रतिनूतनकालीन बतलाया है जो कि योरुप के हिमकाल का समकालीन युग है। मैडिट्रेनियन समुद्र तटवर्ती प्रदेश में पूर्वपाषाणयुग की बहुत सी शिल्पकला सम्बन्धी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। ट्यूनिस तथा अल्जीरिस के चट्टानी प्रदेशों में इनकी खुदाई हुई है परन्तु ये योरपियन शिल्पकलात्मक वस्तुओं के अनुरूप प्रतीत नहीं होतीं। इन सब वस्तुओं को कैप्सियन संस्कृति का परिगणित किया गया है। रोडेशिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में पूर्वपाषाणयुग के अनेक पाषाणखण्डीय उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं।

केनिया उपनिवेश के अनुसन्धानों को हम पूर्ण मान सकते हैं क्योंकि यहाँ पर सब प्रकार के उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई है। हथौड़े, अस्थिनिर्मित टेकुए, वेधनयन्त्र, चाकू, तक्षणीयन्त्र, पार्श्वखुरचनयन्त्र, मनके, हाथीदान्त के मनके, मिट्टी के बर्तन आदि सब उपकरण उपलब्ध हुए हैं। मि० ए० पाण्ड ने अल्जीरिस के इलाके में जो अन्वेषण किए हैं उनसे पता चलता है कि वहाँ अस्थिनिर्मित उपकरणों की प्रचुरता थी। केवल मात्र मृत्तिकापात्र निर्माण के व्यवसाय का अभाव था। ८ या ९ हजार वर्ष पूर्व जबकि योरुप के पाषाण व्यवसाय का युग समाप्त हो रहा था मिश्र में उन उपकरणों के कुछ चिन्ह अभी विकसित हो हो रहे थे। अर्धचन्द्रा नोकीले धनुष अफ्रीका की झाड़वासी (Bushmen) जाति में पाये जाते थे।

पूर्वपाषाणयुग के बहुत से चित्र—कन्दराओं की दीवारों पर पशुओं के रंगीन चित्र उपलब्ध होते हैं। यदि उनका गम्भीरता से अध्ययन किया जाए तो प्रतीत होता है कि योरुप की पूर्वपाषाणयुगीय कन्दरा कला (Cave Art) और अफ्रीका की कन्दरा कला-दोनों की निर्माण प्रक्रिया एक समान है। दोनों की कलाओं में इतना सादृश्य है कि उनमें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं पाई जाती। पूर्वीय स्पेन के चित्र तो हूबहू वैसे ही प्रतीत होते हैं।

अफ्रीका की नवपाषाणयुगीय संस्कृति बिल्कुल अज्ञात सी है। मोरीटानिया, मिश्र, केनिया उपनिवेश, तथा दक्षिणी अफ्रीका की वाल नदी

घाटी के बिखरे स्थानों पर कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं परन्तु वे इतने अपर्याप्त हैं कि उनसे हम अफ्रीका की नवपाषाण संस्कृति का ठीक पता नहीं लगा सकते। इन प्राप्त अवशेषों में भाले, धनुष, बरछे, मूसल, पाषाणनिर्मित मुद्रायें, मिट्टी के बर्तन, अस्थिनिर्मित टेकुए तथा हाथी दाँत व अन्य चीजों के मनके भी उपलब्ध हुए हैं परन्तु अफ्रीका की विशुद्ध नवपाषाण संस्कृति अभी तक विवादास्पद रूप में है। यदि समग्र मिस्र को ही लें तो मिस्र की नवपाषाण संस्कृति तो हमें पूर्णरूप से विकसित अवस्था में उपलब्ध होती है परन्तु अन्य प्रदेशों की नहीं। नील नदी की घाटी पर वर्तमान सतह से ६० फीट की गहराई पर कुछ भग्नपात्र उपलब्ध हुए हैं उनसे अनुमान किया जाता है कि मिस्र की नवपाषाणयुगीय संस्कृति २० हजार पूर्व की संस्कृति थी।

जब हम अफ्रीका के धातुशोधन सम्बन्धी स्तरों पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि मेडिट्रेनियन सागर के तटवर्ती प्रदेश मिस्र तथा स्पेन के उपकरणों का एक साथ उपयोग करते रहे हैं। सहारा व दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी प्रदेश के कतिपय विस्तृत इलाके में योरपियनकाल से पूर्व ताम्र का प्रयोग होता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय कांगो प्रदेश तथा सहारा के बाह्यप्रदेशों में बहुत समय से लोहे को निकालने की प्रक्रिया लोगों को मालूम थी। जब १५वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में पुर्तगाल वासियों ने जहाज पर सवार होकर अफ्रीका की ओर परिभ्रमण करना प्रारम्भ किया तो उसस पूर्व ही लोहे के उपकरण तथा लोहे की वस्तुएं सम्पूर्ण महाद्वीप में विद्यमान थी और वहाँ व्यापार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाता था। केवल मात्र दक्षिणवासी बशमैन जाति के लोग तथा कनेरीज द्वीपवासी ही ऐसे थे जिनमें पाषाणनिर्मित उपकरणों का व्यवहार पाया जाता था। ऐसा कहा जा सकता है कि मिस्र से बाहर अफ्रीका के सभी अनुसन्धान अभी शैशवावस्था में हैं क्योंकि उनमें अभी तक संस्कृति के विकास की ठीक ठीक दिशा नहीं जानी जा सकी। इतना अवश्य है कि अफ्रीका का मनुष्य भी इतना ही प्राचीन है जितना योरप का। प्रत्यक्ष दर्शन से तो उनकी संस्कृति का विकास इतना गहरा प्रतीत नहीं होता जितना योरप का परन्तु उपलब्ध अवशेषों के आधार पर उनकी प्राचीनता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

**इण्डोनेशिया की वास्तुकला**

इण्डोनीशिया तथा मलाया द्वीप समूह (Malay Archipelago)

आज जितने घने आबाद हैं पहले ऐसे न थे। धीरे-धीरे कई जातियों के आक्रमण होने से यहाँ जन संख्या बढ़ती गई। नेग्रिटो जाति के लोग यहाँ के आदिवासी हैं। परन्तु इन नेग्रिटो के पूर्वज कब और कहाँ से आये इसका अभी तक ठीक निर्णय नहीं हो सका। जावा में सन् १८६० में प्रो० डुबायस तथा अन्य कई विद्वानों ने प्रतिनूतनकालीन वानर मानव "तथा" "वाजक मानव" का पता लगाया। इससे अनुमान किया जाता है कि संसार के इस भूभाग पर मानव तथा प्राचीन मानव का स्कन्ध (Stock) उपकरणों के आविष्कार से बहुत समय पूर्व आया। फिलिपाइन्स में भी कई अवशेष प्राप्त हुए हैं। कैलिबस (Celebes) की कन्दराओं में सन् १९०८ में जो खुदाई हुई उससे पाषाण व्यवसाय के अवशेष प्राप्त हुए हैं। लंका में भी खुदाई हुई और कुछ उपकरण प्राप्त हुए इन अवशेषों को मडलेनियन संस्कृति का समकालीन माना जाता है। सुमात्रा, फारमोसा बोर्नियो तथा मैडागास्टर में भी कई स्थानों पर खुदाइयां हुई परन्तु उनमें अत्यन्त प्राचीन कालीन अवशेष प्राप्त नहीं हुए। पात्र निर्माणकला का तो कहीं पता नहीं चलता। साफ किये गये पाषाण के उपकरण सीमित संख्या में उपलब्ध हुए हैं। कटे हुए नोकीले उपकरणों का भी बिल्कुल अभाव है। फारमोसा, फिलिपाइन्स तथा बोर्नियो में कहीं भी कटे हुए नोकीले उपकरण नहीं मिले। एक ही ठोस पत्थर के बने हुए उपकरण (Monoliths), मानवीय आकार की मूर्तियां, वर्तुलाकार पाषाणकलश आदि कई चीजें उपलब्ध हुई हैं। मैडागास्कर में तो इन वस्तुओं का भी अभाव है। मलायाप्राप्त द्वीपों में योरुपियन के आगमन के अनन्तर ही वहाँ के आदिवासियों ने धातु का प्रयोग प्रारम्भ किया था अत उनके आगमन से पूर्व के धातु प्रयोग सम्बन्धी चिन्ह प्राप्त नहीं होते।

आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया:—

प्राचीन वस्तुकला की दृष्टि से आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया का अत्यन्त महत्व है। प्रो० सोलास ने तस्मानिया के पाषाणखण्ड-व्यवसाय को योरुप के उप पाषाण युगीय संस्कृति तथा आस्ट्रेलिया के पाषाणखण्डीय व्यवसाय को योरुप की मौस्टेरियन संस्कृति का समकालीन बतलाया है। प्रो० सोलास ने यहाँ के प्राचीन मानवों को निएनडर्थल पुरुषों के सच्चे प्रतिनिधि बतलाया है। परन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक तिथि का निर्णय सन्देहास्पद ही है। अमेरिका की भांति आस्ट्रेलिया में भी अनेक उपकरणों का समिश्रण है जिनमें से कुछ उपकरण तो ऐसे हैं जो योरुपियन उपकरणों के तुल्य हैं और कुछ ऐसे हैं जो अभी हाल ही में आविष्कृत हुए हैं।

अस्थि, प्रवाल तथा अन्य कच्ची धातुओं का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा तक किया जाता था। पत्थर को घीसने, चमकाने तथा ठोकने पीटने की सभी साधारण विधियाँ बर्ती जाती थी परन्तु पत्थर को काटने की प्रक्रिया का अभाव था। कुछ ऐसे प्राकृतिक पत्थरों की सम्प्राप्ति होती थी जो हथौड़ों, मछली पकड़ने के कांटों की न्याई प्रयुक्त होते थे। पत्थर को ठोकने पीटने तथा घीसने से गदा, ओखली, मूसल, प्याले, दीप, मुद्रा, तावीज, मनके, मछली तथा मानवीय आकार की मूर्तियाँ आदि वस्तुएँ तैयार की जाती थी। बसूले, कुल्हाड़ियाँ, रन्दे आदि उपकरण पाषाणखण्डों को घीसने के अनन्तर ही निर्मित किया जाता था। चाकू, बरमे आदि जिन्हें पाषाणकर्तन क्रिया द्वारा तैयार किया जाता था पाषाणखण्डों अथवा पाषाणखण्डीय फलकों की ही कृतियाँ होती थी।

इस काल में अस्थि का प्रयोग किया जाता था। मनके पक्षियों की अस्थि से बनाये जाते थे। मारक्यूसस में मानवीय अस्थिमजर के टुकड़ों को एक कर सिर के आभूषण, व कंघी आदि रूपों में प्रयुक्त किया जाता था। ह्वेल-दांतों से आभूषण व मनके आदि तैयार किये जाते थे। सूअर के दांतों से कंगन, शार्क मछली के दांतों से चाकू की मुट्ठी, ह्वेल मछली तथा शिशुमार (Porpoise) दांत द्वारा गले के हार बनाये जाते थे। इस के अतिरिक्त लकड़ी, पक्षियों के पंखों तथा खाल आदि का भी प्रयोग किया जाता था। मकान, पात्र, विभिन्न वाद्ययन्त्र, खिलौने, हथियार, आभूषण, मछली पकड़ने के फन्दे, टोकरियाँ आदि सभी पदार्थ बनाये जाते थे। टोंगन तथा ईस्टर द्वीप में पात्र निर्माण के लिए मिट्टी का प्रयोग किया जाता था परन्तु अन्य स्थानों पर लौकी तथा पशु की खाल के बने हुये कमण्डल तथा लकड़ी और पत्थर के बने पात्र प्रयोग करने वाले द्वीप वासियों के काम में आते थे। पालीनीशिया के आर्थिक क्षेत्र में अभी धातु के प्रयोग का कोई स्थान नहीं था। पॉलीनीशिया, माइक्रोनीशिया तथा मैलानीशिया के सम्बन्ध में संक्षेप में हम यह कह सकते है कि यद्यपि इनके बारे में हमारा उपलब्ध ज्ञान बहुत कम है तो भी यह विस्तृत द्वीप प्रदेश हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्यों कि संसार का यह अन्तिम निवास योग्य प्रदेश था जिस पर प्राचीन मानव का आक्रमण हुआ हो। ऐसा प्रतीत होता है कि जब मैलानीशिया में सर्व प्रथम आने वाले लोग पूर्वपाषाणयुगीय आस्ट्रेलिक उपकरण रखते होंगे तब बाद के आक्रान्ता—जिन्होंने सम्पूर्ण प्रशान्त द्वीप पर अधिकार कर लिया—अपने साथ नवपाषाणयुगीय संस्कृति अवश्य से आयें होंगे।

दक्षिणी एशिया एवं भारत की कई कन्दराओं में आदि, मध्य और अन्त कालीन पूर्वपाषाणयुगीय सभ्यताओं के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त चीन तथा अफ्रीका की कन्दराओं से जैसे जैसे कलात्मक अवशेष प्राप्त होते गये वैसे वैसे दक्षिणी एशिया की 'कन्दरा कला' का ज्ञान उपलब्ध होता गया। इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त नवपाषाणयुगीय तथा लौह युगीय अनेक उपकरणों की भी सम्प्राप्ति दक्षिणी एशिया की कन्दराओं से हुई है जिसका सम्बन्ध वृहत् पाषाणखण्डीय (Megalithic) रचनाओं से जोड़ा जाता है। ताम्र तथा कांस्ययुगीय व्यवसाय को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं किया गया। 'विचार यह है कि भारत नवपाषाणयुग से सीधा लौहयुग में प्रविष्ट हुआ होगा। भारत के जितने अवशेष प्राप्त हुए हैं वे सब पृथ्वी की सतह पर से उपलब्ध हुए हैं परन्तु इस दिशा में अभी तक पर्याप्त अन्वेषण हो रहे हैं। भारत का कांस्ययुग धुंधला है। सुदूर भारत के बारे में तो अभी कुछ ज्ञान भी नहीं। परन्तु कई प्रकार की विचित्रताओं को प्रदर्शित करने के लिए उदाहरण रूप में उस का उल्लेख अवश्य किया जाता है। फ्रांसीसी इण्डोचाइना के भूगर्भशास्त्री तथा उनके अनेक साथियों ने सन् १९०८ टोंकिन की कन्दराओं के सम्बन्ध में कुछ अनुसन्धान किये थे जिसके आधार पर उन्होंने प्रारम्भिक नवपाषाणयुगीय संस्कृति का पता लगाया है। वे लोग इसे 'बैक्सोनियन संस्कृति' के नाम से पुकारते हैं। मलाया द्वीप के कुछ प्रदेशों में भी इसी प्रकार के अन्य अवशेष उपलब्ध हुए हैं जो तत्कालीन संस्कृति से सम्बन्धित हैं। कम्बोडिया के अंगकोरवट नामक इमारत की भांति यह प्रदेश भी अपने ऐतिहासिक अवशेषों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि भारत की भांति संसार के इस महत्त्वपूर्ण भूभाग दक्षिणी एशिया में भी उत्तरीय अथवा पश्चिमी यूरोप की सभी मुख्य संस्कृतियां विकसित हुईं।

## उत्तरीय एशिया

उत्तरीय एशिया अथवा साइबेरिया में भी प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। सन् १८८४ में येनिसी प्रान्त के क्रास्नो यार्स्क (Krasnovarsk) नामक स्थान के समीप मि० आई० टी० सवन्कोव ने कुछ अनुसन्धान किए। इस पूर्वपाषाणयुगीय अवशेषों में हाथी तथा अन्य कई

प्राणियों के अस्थि अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं। तत्पश्चात् सन् १६२३ के बाद मि० जी० पी० सोस्नोवस्की, मि० वी० ई० पेट्री तथा कुछ अन्य रूसियों ने बिस्क के समीप तथा पूर्व की ओर आगरा नदी के साथ साथ इरकुट्स्क नामक स्थान तक कई अवशेषों का पता लगाया। यद्यपि यहाँ की प्रागैतिहासिक संस्कृतियां योरुपियन प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के समकालीन नहीं थी तथापि इन्हें योरुप की मौस्टेरियन संस्कृति का समकालीन माना जा सकता है। यूराल पर्वत से लेकर अमूर प्रदेश के अग्रभाग तक नवपाषाण संस्कृतियों के कई अवशेष प्राप्त हुए हैं। और नदी के अग्रभाग पर तथा "बेरिंग स्ट्रेट" के समीप अन्य कई स्थानों पर भी प्रागैतिहासिक अवशेषों की सम्प्राप्ति हुई है। उत्तरीय प्रशान्त सागर के तटवर्ती इलाकों में नवपाषाणयुगीय संस्कृतियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। कमचटका (Kamchatka) प्रायद्वीप में पार्श्वों की उपलब्धि हुई है, जिससे उत्तरकालीन संस्कृति का पता चलता है। मिनूसिन्स्क (Minusinsk) के इलाके में कांस्ययुग के कई उपकरण उपलब्ध हुए हुए हैं। झील बैकल के उत्तरपश्चिमीय प्रदेशस्थित लीना घाटी में लोहयुग के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। मि० रैडलोफ का कथन है कि दक्षिण केन्द्रीय साइबेरिया तथा मंगोलिया में कांस्य और लौह दोनों युगों की संस्कृतियां पूर्णरूपेण विकसितवस्था में थीं।

## केन्द्रीय एशिया

सच बात तो यह है प्राचीन वस्तुकला विज्ञों ने केन्द्रीय एशिया की ओर क्रियात्मक रूप से अभी तक कोई विशेष ध्यान ही नहीं दिया। अभी हाल ही में केन्द्रीय एशिया में कुछ अनुसन्धान किए गये हैं जिनसे इनके महत्वपूर्ण अवशेषों का पता चला है। ये प्रागैतिहासिक अवशेष अस्थिपंजरों तथा कई अन्य वस्तुओं से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से कुछ अवशेष तो ऐसे हैं जिन्हें हम अतिनूतनकालीन मानते हैं।

सम्पूर्ण एशिया के सम्बन्ध में हम इतना कह सकते हैं कि क्रियात्मक कठिनाइयों के बावजूद भी प्राचीन वस्तुकला के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर वहाँ की प्राचीन संस्कृतियों का इतिहास तो उपलब्ध होता है परन्तु फिर भी अभी इस दिशा में अनुसन्धानात्मक कार्य करने की आवश्यकता है। अब तक जितनी गवेषणा हुई है उससे हम तीन परिणामों पर पहुँचते हैं —१. प्रथम यह कि पश्चिमीय योरुप तथा अफ्रीका की पूर्व पाषाणयुगीय संस्कृति एशिया में केवलमात्र दक्षिणी एशिया में विकसित

थी। दूसरा यह कि हिमालय के उत्तर में जो पाषाणयुगकालीन अवशेष प्राप्त हुए वे केन्द्रीय योरप के मौस्टेरियन संस्कृति के पूर्व कालीन पाषाण खण्डीय व्यवसाय के समकालीन थे। तीसरा यह कि जिस प्रकार कला का विस्तार दक्षिणी एशिया में हुआ वैसे ही एशिया के विभिन्न देशों—भारत, मंचूरिया, साइबेरिया आदि में हुआ। यहाँ पर नवपाषाणयुग के बाद एक दम लौहयुग का प्रारम्भ हुआ है। कांस्ययुग के अवशेष प्राप्त ही नहीं होते। अधिक सम्भव है कि पश्चिमीय एशिया तथा समीपवर्ती मिश्र ऐसे स्थान हों जहाँ प्राचीन मानव ने आखेट जीवन को छोड़कर कृषि तथा पशुपालन व्यवसाय ही अपनाया हो।

## मैलानीशिया

मैलानीशिया में नव पाषाण युगीय संस्कृति के बहुत से अवशेष ऐसे प्राप्त हुए हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यह प्रदेश नव पाषाणयुगीय संस्कृति में बहुत उन्नत था। कई सिंचाई प्रदेशों, जल मार्गों व नहरों आदि से कुछ ऐसे उपकरण उपलब्ध हुए हैं जिन्हें पाषाणनिर्मित उपकरण माना जा सकता है। खुदाई में बसना कुल्हाड़ी भाला चाकू आदि भी उपलब्ध हुए हैं। सोलोमन द्वीप में कई पूर्व पाषाणयुगीय अवशेष प्राप्त हुए हैं परन्तु सब में पुरातन अवशेष कुल्हाड़ी है जो उत्तरपाषाणिय योरप की कैम्पि-नियन संस्कृति का समकालीन है। मैलानीशिया में अनेक पाषाण निर्मित उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई है। न्यू कैलीडोनिया तथा न्यू हैब्राइडिस में खुदी हुई मूर्तियाँ, इमारतें, किलाबन्दी मुख्याकार पत्थर के स्तम्भ आदि की उपलब्धि को अतीव पुरातन काल का परिगणित किया जाता है।

## माइक्रोनीशिया

माइक्रोनीशिया में पाषाण निर्मित उपकरणों की उपलब्धि नहीं है। यहाँ पर, जहाँ जहाँ खुदाई हुई है वहाँ मुख्याकार पत्थर के स्तम्भ, न नाशदार आकृतियाँ, सीढ़ियाँ, राजपथ, गोपुर किले की दीवारें, नहरें तथा सड़कें आदि भी उपलब्ध हुई हैं। इन में से बहुत से अवशेष भग्नावस्था में हैं। सब में विचित्र बात यह है कि इनके यहाँ पत्थर का सिक्का भी प्रयुक्त होता था जो चीनी सिक्के की भाँति था। यह छोटा बड़ा सभी आकारों में पाया जाता था।

**ओशीनिया-अमेरिका सम्बन्ध**

ऐसा प्रतीत होता है कि ओशीनिया तथा अमेरिका में लोगों का आपस में आवागमन रहा होगा क्योंकि हम देखते हैं कि उत्तरी दक्षिणी अमेरिका की बहुत सी कृतियाँ प्रशान्त द्वीपों की कृतियों से बिल्कुल सादृश्यता रखती हैं। मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका की एक ही ठोस पत्थर की बनी चित्रित कृतियाँ पोलीनीशिया की अनेक कृतियों से मिलती जुलती हैं। वैनेज्यूल तथा तथा मैलानीशिया के भवननिर्माण में, ओशीनिया तथा दक्षिणी कैली-फोर्निया की जहाजरानी में पर्याप्त समानता है। मि० अरलैण्ड ने ओशीनिया तथा दक्षिणी अमेरिका के नस्ल सम्बन्धी चिन्हों की भी समानता दर्शाई है। पत्थर और लकड़ी के अनेक उपकरण ऐसे उपलब्ध हुए हैं जो दोनों की सादृश्यता को और भी अधिक सुदृढ़ सिद्ध करते हैं। इन सब युक्तियों के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि एक संस्कृति दूसरी सभ्यता से अवश्य विकसित हुई होगी और दोनों संस्कृतियों का पारस्परिक सम्मिश्रण अवश्य हुआ होगा। हाँ! यदि हम इस पारस्परिक सम्मिश्रण के काल व शिल्प सम्बन्धी पदार्थों पर दृष्टिपात करते हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वे संख्या में अपेक्षाकृत थोड़े होते हुए भी महत्वपूर्ण अवश्य थे। यह मानना पड़ेगा कि नवीन संसार में पाये जानेवाले उपकरणों तथा आभूषणों के २०० से भी अधिक रूप ऐसे हैं जो प्राचीन संसार के प्रतिरूप हैं। टोकरी चटाई, तथा वस्त्र निर्माण आदि के अतिरिक्त यदि हम रेखाकार चित्रित आभूषणादि को पूरा-पूरा गिनें तो सम्भवतः संख्या इससे भी दुगनी हो जाये।

इसमें सन्देह नहीं कि पोलीनीशिया तथा अमेरिका में लगभग ३००० मील का अन्तर है तो भी दोनों के कई महत्वपूर्ण सांस्कृतिक चिन्ह एक दूसरे से अभिन्न हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध में पूर्ण विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता तो भी विशेष बात यह है कि कोस्टा रीका से अलास्का तक का प्रशान्त समुद्र-तटवर्ती प्रदेश कई प्रकार के ऐसे पाषाण और अस्थि निर्मित उपकरणों की उपलब्धि को प्रदर्शित करता है जो पोलीनीशिया में भी पाये जाते थे। दक्षिणी अलास्का, ब्रिटिश कोलम्बिया, ओरेगान आदि के काल के सम्बन्ध में जानना चाहें तो हमें अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो जायेंगी। कइयों का मत है कि प्रशान्त द्वीपों का पशुपालन तथा कृषि सम्बन्धी ज्ञान कभी भी पोलीनीशिया से बाहर नहीं गया अतः अमेरिका को इस युग के अनेक उपकरण प्रशान्तद्वीप में भी फैलने से पूर्व ही प्राप्त हुए होंगे। इससे वे इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अमेरिका में संस्कृति का विकास पोलीनीशिया के स्थान पर मैलानीशिया

से ही हुआ होगा। नृवंशशास्त्रियों का मत तो यह है कि पोलीनीशिया तथा नवीन संसार के मध्य कहीं कहीं अचानक ही पारस्परिक सम्बन्ध अवश्य रहा होगा।

प्राचीन वस्तुकला के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पश्चिमीय गोलार्द्ध के प्राचीन मानवों ने पूर्वीय गोलार्धवालों की भाँति सुगमतया प्राप्तव्य कच्चे माल का अवश्य उपयोग किया होगा। अमेरिका ने उल्कापरमाणुजन्य लोह का प्रयोग भी अवश्य किया होगा। परन्तु इतना तो अवश्य मानना ही पड़ेगा कि प्राचीन और नवीन संसार की सूक्ष्म कलायें तथा व्यवसाय आपस में सादृश्यता रखते हैं। कैलीफोर्निया तथा कोस्टारीका के कई उपकरण हवाई ( Hawaii ) के उपकरणों से मिलते हैं। तलवार के आकार की पाषाणनिर्मित गदा न्यूज़ीलैण्ड तथा ओरेगान के उत्तरीय प्रदेश में भी पाई जाती है। दक्षिणी कैलीफोर्निया के प्रदेश में एक ही टुकड़े का मछली पकड़ने का फंदा, फंदे के आकार का अस्थिनिर्मित मनका ऐसा है जो न्यूज़ीलैण्ड में भी तद्रूप पाया जाता है। पाषाणनिर्मित टेकुए, बसूले, ओखली, मूसल, मनके तथा तावीज ऐसे हैं जिनमें सादृश्यता पाई जाती है। लकड़ी के अनेक उपकरण भी एक समान हैं। न्यूज़ीलैण्ड का बहुत सा पाषाण व्यवसाय मैक्सिको तथा उत्तरीय समुद्र तटवर्ती प्रदेश में एक जैसा है।

उक्त सादृश्यताओं के आधार पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पोलीनीशिया का गहरा प्रभाव अमेरिका पर पड़ा। परन्तु दोनों के सम्बन्ध का वास्तविक रूप अभी तक इतना स्पष्ट नहीं हो सका जितनी आशा थी। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि पोलीनीशिया तथा प्रशान्त द्वीपवासी सामूहिक रूप में समय समय पर स्वेच्छापूर्वक अथवा अकस्मात् ही आदिवासी इण्डियन्स से मिलते-जुलते रहे होंगे और उन पर अपना प्रभाव डालते रहे होंगे।

## अमेरिका

अमेरिकन प्राच्य वस्तुकला की सबसे प्रथम और मुख्य समस्या अमेरिकन इण्डियन्स की उत्पत्ति के सम्बन्ध में है। अब यह सर्वसाधारण रूप से स्वीकृत कर लिया गया है कि अमेरिकन जाति का मंगोलायड जाति से सीधा और गहरा सम्बन्ध था। इसके विपरीत मि० अमेघिनो ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव का प्रारम्भ दक्षिणी अमेरिका में हुआ। सन् १८३४ तथा १८४४ के मध्य दक्षिण पूर्वीय ब्राज़ील के मीनासगेरायस प्रान्त में लैगोआ

वासी प्राचीनसत्वशास्त्री मि० पी० डब्ल्यू० लंड ने जो गवेषणायें की उनके आधार पर ही मि० अमेघिनो ने अपने मत की स्थापना की। मि० लंड ने ८०० से भी अधिक कन्दराओं को खोज की। इनमें से ६ कन्दरायें तो ऐसी थी जो लैगोग्रो साल्ता के प्रदेश में स्थित थी। इनमें से ३० मानवीय कपालों, अस्थिपंजरों तथा अन्य प्राचीन पदार्थों का सम्बन्ध तो चतुष्क काल से जोडा जाता है परन्तु उससे अनुसन्धानकर्ता प्राप्त अवशेषों की प्राचीनता का भूगर्भ-शास्त्रीयविभाजन नही कर सके। इसके बाद मि० अमेघिनो ने सन् १८७० में अपना अनुसन्धान अर्जेंटाइन प्रजातन्त्र में प्रारम्भ किया।

एण्डस से एटलाण्टिक तक का समूचा ढलुवा भाग नदी के-बहाव व बाढ से बना हुआ विस्तृत मैदान ही है जिसे पम्पस के नाम से पुकारा जाता है। सम्पूर्ण पैम्पियन संस्कृति को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक पूर्वकालीन और दूसरा उत्तरकालीन। पूर्वकालीन पैम्पियन सस्कृति को हर्मोसियन कहा जाता है और उत्तरकालीन में सभी आधुनिक अवसादों (Deposits) को परिगणित किया जाता है। मि० अमेघिनो ने समुद्र तट की सतह से अभी हाल ही में जिन अवसादों (Deposits) का पता लगाया है उन सबको अन्तिम अतिनूतन कालीन (Pliocene) और विशुद्ध पैम्पियन संस्कृतियों को आदि अतिनूतन तथा मध्य अतिनूतनकालीन और पूर्वकालीन पैम्पियन सस्कृति अर्थात् हर्मोसियन सस्कृति को मध्यनूतनकालीन माना है परन्तु बाद के अनुसन्धानकर्ताओं ने पूर्वकालीन पैम्पियन अर्थात् हर्मोसियन सस्कृति को अतिनूतनकालीन और दोनो पैम्पियन सस्कृतियो को प्रतिनूतन कालीन (Pleistocene) माना है। दक्षिणी ब्राजील के पराना नामक स्थान से लेकर मैगलेन जलडमरूमध्य तक अर्जेंटाइन के समद्रतट के साथ साथ जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे सब वालु के टीलो की सतह पर से और विशेषतया पैम्पियन सतह से प्राप्त हुए है। ये दो अवशेष पूर्ववर्ती (Harmosean) और उत्तरवर्ती पैम्पियन सस्कृतियों को प्रदर्शित करते हैं। इन में १३ अस्थि-पंजर आदिपैम्पियन और ४ अन्तिमकालीन पैम्पियन तथा दो पूर्ववर्ती पैम्पियन सस्कृति के द्योतक हैं। सतह पर उपलब्ध होनेवाले अवशेषों में इन अस्थि-पंजरावशेषों के अतिरिक्त कुछ उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें पाषाण-खण्डीय उपकरण अथवा मिट्टी के पात्र आदि भी सम्मिलित है। चार दक्षिणी जिलो के बिखरे हुए स्थानो से जो खुदाइयाँ की गई हैं उनके प्राप्त अवशेषों में कुछ कुछ पारस्परिक भेद है। बहुतो ने उन्हें तत्कालीन घोषित किया है और बहुतों ने उन्हें प्रागैतिहासिक बतलाया है। मि० हर्डलिका का तो मत है कि ये आधुनिक काल के स्थानीय अवशेष है। मि० आउट्स का

मत है कि पाषाणखण्डीय उपकरण तो आदि तथा मध्यकालीन पूर्व पाषाणयुग के हैं और अस्थि निर्मित उपकरण नवपाषाणयुगीय हैं। अर्जेंटाइना का यह शिल्पसम्बन्धी विकास श्रेष्ठ तथा "टोराडेलयुगों" के शिल्पविकास के अनुकूल है। इस क्रमिक विकास का भूगर्भ शास्त्रीय महत्व कितना है इसका निर्णय नहीं किया जा सकता परन्तु इतना अवश्य है कि जिस प्रकार उत्तरीय अमेरिका में भी मानव की विद्यमानता थी उसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका में मानव की सत्ता रही होगी।

कुछ समय पूर्व यह प्रबलधारणा थी कि योरप की पूर्व पाषाणयुगी संस्कृति अमेरिका की पूर्व पाषाणयुगी संस्कृति के समानान्तर है। परन्तु अब तक जो गवेषणायें की गई हैं उनके आधार पर इस कथन की पूर्ण पुष्टि नहीं होती। उत्तरीय अमेरिका में जो भूगर्भशास्त्रीय अवशेष प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम इतना मानते हैं कि वहाँ पर पाये जानेवाले मानव की कोई पृथक् जाति नहीं थी और उनका व्यवसाय नवपाषाणयुगीय था। फोल्सम के प्राप्त अवशेषों से तो और भी स्पष्ट है कि जब वहाँ प्राचीन मानव का वास था तो उसका पाषाण व्यवसाय उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था। इस से पूर्व की मानव जाति के कोई चिन्ह वहाँ उपलब्ध नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है कि नियन्डरथल प्राणी का यहाँ अभाव होगा अतएव वहाँ के उपकरण भी अत्यन्त प्राचीन काल के नहीं हैं।

यह भी अनुमान किया जाता है कि हिमकाल के अन्त में मनुष्य अमेरिका में आया होगा क्योंकि हिमकाल के अन्त में साइबेरिया की ओर से अमेरिका का रास्ता बिलकुल साफ था और बर्फ वहाँ से हट चुकी थी। ऐतिहासिकों का विचार है कि मनुष्य ने उत्तर से दक्षिणी अमेरिका की ओर जाने पर अपने आपको सभी प्रकार के जलवायुओं और संस्कृति तथा भाषाओं के अनुकूल बना लिया होगा। शीत, उष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु की अनुकूलता मनुष्य के लिए आवश्यक थी परन्तु जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है वहाँ तक तो हम भिन्न भिन्न जातियों के सम्पर्क का इतिहास देख पाते हैं। इस कथन की पूर्ण पुष्टि नहीं हो पाई। केन्द्रीय अमेरिका में बास्केट तथा कृषिव्यवसाय दोनों उन्नति पर थे और ये दोनों व्यवसाय भी उत्तरीय तथा दक्षिणी अमरिका की ओर फैले। इसके साथ साथ मिट्टी के पात्र निर्माण का व्यवसाय सम्पूर्ण महाद्वीप में फैल गया धातु के गलाने आदि का काम केन्द्रीय तथा दक्षिणी अमरिका तक ही सीमित था। नवीन संसार में सामूहिक प्रगतियाँ प्राचीन संसार की प्रगतियों के पश्चात् ही हुई। अतः प्राचीन और नवीन संसार का सम्पर्क किसी रूप में भी स्थापित नहीं किया जा

सकता। हाँ! पोलीनीशिया, मैलानीशिया और अमेरिका के मध्य जो सम्बन्ध स्थापित था उस पर हम पूर्व ही भली भाँति प्रकाश डाल चुके हैं।

संसार की सभी संस्कृतियों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि कि पूर्वपाषाण और नवपाषाण प्राप्त संस्कृतियाँ धीरे धीरे विकसित हुई। एक स्थान पर एक संस्कृति पनपी तो दूसरे स्थान पर दूसरी संस्कृति ने अपना घर कर लिया। उपकरणों और यन्त्रों के निर्माण के साथ साथ संस्कृतियाँ परिष्कृत एवं उन्नत होती गई, अफ्रीका में लौह उपकरण प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होते थे। परन्तु लोहे के पिघलाने का काम उन्हीं प्रदेशों में सीमित था जहाँ कच्ची धातु तथा ईंधन की अधिकता होती थी। सम्पूर्ण महाद्वीप में लोहे के उपकरणों का विभाजन आदान प्रदान क्रिया द्वारा किया जाता था। इस प्रकार यद्यपि बुशमैन जाति के लोग इस व्यवसाय से लाभ तो उठाते थे परन्तु "लौह युग" के उपकरण निर्माण में वे भाग न ले सके। उत्तरीय योरुप तथा एशिया के पशुचरवाहों को दक्षिण से धातुनिर्मित उपकरण तो अवश्य मिले परन्तु इन्होंने उन उपकरणों के निर्माण में कोई भाग न लिया।

## भारत में वस्तुकला

भारतीय पुरातत्वशास्त्र का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ पूर्वपाषाणयुग के अवशेषों की सम्प्राप्ति नहीं हुई। भारत में उत्तरपाषाण काल से ही संस्कृति एवं वस्तुकला का प्रारम्भ माना जाता है। सब से प्रथम मद्रास प्रान्त के बेलारी जिले में उत्तरपाषाणकालीन अवशेष मिले। दक्षिण भारत में मृत्तिका पात्रों की सम्प्राप्ति हुई। इसके साथ साथ तिन्निलपुर तथा परकाट के इलाके से कुछ ऐसी मृत्तिका निर्मित मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई जिनकी तुलना बगदाद में पाई जानेवाली मूर्तियों के साथ की गई। अतः इसमें सन्देह नहीं कि भारत का सम्पर्क बैबीलोन आदि देशों से अवश्य रहा होगा। भारत में कृषि तथा पशुपालन का व्यवसाय भी इसी युग से प्रारम्भ होता है। गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं का पालन भी किया जाता था। इस काल के भारतीय—पाकविद्या, पशुपालन तथा अन्य कई कार्यों में सिद्धहस्त माने जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सूती कपड़ों का प्रयोग भी इस काल में प्रारम्भ हो गया था। ये लोग उन दिनों में कई प्रकार के उपकरण भी प्रयोग में लाते थे। मिर्ज़ापुर के कतिपय अवशेषों से इतना तो अवश्य ज्ञात

पड़ता है कि ये लोग शव को गाड़ते थे। ये लोग पशु की बलि देने और उसे देवताओं की भेंट चढ़ाया करते थे।

भारत का धातुकाल भी पर्याप्त मनोरंजक है। क्योंकि इसमें कांस्य-काल की झलक नहीं मिलती। ताम्बे और टिन के मिश्रण से जो कांस्य तैयार होता है उसके उपकरण भारत के अवशेषों में प्राप्त नहीं हुए अतएव भारत की संस्कृति को कांस्यविहीन संस्कृति के रूप में माना जा सकता है। डा० स्मिथ का विचार है कि केवल मात्र पांच छः अवशेषों की उपलब्धि से अनुमान लगाया जा सकता है कि कांस्य का प्रयोग साधारण रूप में विद्यमान न था। दक्षिण भारत के टिनेवली नामक स्थान से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे भी उपकरण व अस्त्र शस्त्र नहीं अपितु आभूषण व पात्र हैं जो सम्भवत भारत में तैयार नहीं किए गए अपितु बाहर से यहाँ लाये गए थे। अतएव यह मानना पड़ेगा कि दक्षिण भारत में पाषाण काल के पश्चात् सम्भवतः लोह-काल का प्रारम्भ हुआ और उत्तरी भारत में पाषाण काल के पश्चात् ताम्र-काल का प्रारम्भ हुआ। उत्तरीय भारत में ताम्बे के भाले, कुल्हाड़े तथा तलवारें भी उपलब्ध हुई हैं। मध्यभारत के गुनगेरिया नामक स्थान से तथा उत्तर प्रदेश के कानपुर, मथुरा तथा मैनपुरी नामक स्थानों से ताम्बे के उपकरण और अस्त्र शस्त्रों की उपलब्धि हुई है। उत्तर भारत में ताम्र प्रयोग के कई शताब्दि बाद लोहे का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। ताम्र के बने हुए सभी उपकरण ईसा से ७०० वर्ष पहले के हैं। उत्तरी भारत का लौह युग सम्भवतः ईसा से १०० वर्ष पूर्व पहले का है।

उत्तर पाषाणकाल के अवशेषों से प्रतीत होता है कि भारत का चीन, हिन्दचीन, मध्यएशिया तथा पूर्वीयद्वीप समूहवासियों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो चुका था। प्रव्रजन प्रक्रिया द्वारा इन देशों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से सांस्कृतिक सम्पर्क में कठिनाई न आन पड़ती थी। सिन्धुघाटी के सांस्कृतिक विकास के समय फारस, अरब, बैबीलोनिया, मिश्र तथा बलोचिस्तान आदि देशों के सम्पर्क में आने के अनेक उदाहरण मिले हैं। बैबीलोन, सीरिया तथा मिश्र के लोगों ने तो कई भारतीय वस्तुओं के नाम तक अपना लिए थे। मैसोपोटामिया में ईसा से १००० वर्ष से पाये जानेवाले बोगजकोई के उत्कीर्ण लेखों से तो यहाँ तक भी अनुमान लगाया गया है कि भारतीयों का धर्म भी वहाँ पहुँच चुका था। भारत की प्रागैतिहासिक सम्कृतियाँ इस बात की स्पष्ट साक्षी दे रही हैं कि भारत की प्रागैतिहासकालीन संस्कृति किसी रूप में अन्य देशों से कम नहीं थी।

## सिन्धुघाटी की प्राचीन संस्कृति

सिन्ध नदी की घाटी में जो भग्नावशेष उपलब्ध हुए हैं उनसे सिन्धु-घाटी की सभ्यता पर प्रकाश डाला जा सकता है। यह सभ्यता वैदिककालीन सभ्यता से भी अधिक प्राचीन जान पडती है। मिश्र तथा बेबीलोन की पुरातन संस्कृतियो को इतिहास में जो स्थान प्राप्त है वही स्थान सिन्धुघाटी की सभ्यता को भी दिया जाने लगा है। हडप्पा और महेन्जोदडो के अवशेष इस प्राचीन संस्कृति के द्योतक हैं। मिण्टगुमरी जिलान्तर्गत हडप्पा नामक स्थान पर किसी समय में विशालनगर बसा हुआ था। भारत के पुरातत्व विभाग की ओर से जब इस स्थान की खुदाई हुई तो सिन्धुघाटी की प्राचीन सभ्यता के अनेकों अवशेष प्राप्त हुए। महेन्जोदडो भी सिन्ध के लरकाना जिले में स्थित था। महेन्जोदड़ो का अभिप्राय मुर्दों की समाधि से है अतएव अनेक लोग इसे मुर्दों का शहर भी कहते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह नगर ७ बार बना और सात बार नष्ट हुआ होगा। ऐतिहासिको तथा पुरातत्व शास्त्रियों का अनुमान है कि इस नगर की रचना ईसा से ५००० वर्ष पूर्व हुई होगी। सन् १९२२ में यहाँ एक बौद्ध समाधि का पता चला। अनेक विद्वानो का अनुमान था कि किसी समय यहाँ भी बौद्ध धर्म के भिक्षु बौद्धधर्म प्रचारार्थ आये होगे और सिन्ध भी बौद्धसंस्कृति का विशेष केन्द्र रहा होगा। यद्यपि जो शिलालेख प्राप्त हुए है उन की भाषा स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सकी तथापि इन खुदाइयो से तत्कालीन संस्कृति का विशेष ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

इन दो विशेष खुदाइयों के अतिरिक्त सिन्धुघाटी के अन्य कतिपय स्थानो की भी खुदाइयाँ की गई। कराची के अमरी नामक स्थान पर तथा पजाब में अम्बाला नगर के समीप सिन्धुघाटी की संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इसके अतिरिक्त कल्लात रियासत के नाल नामक स्थान पर तथा सिन्ध के 'चैहन्दडो' और 'भूकरदडो' स्थानो पर भी खुदाई के फलस्वरूप प्राचीन कालीन सभ्यता के अवशेष मिले है।

## गृह-निर्माणकला

महन्जोदडो के अवशेषो में नगर की गलियों, सडको तथा भवनो की उपलब्धि हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नगर की सडकें चौडी चौड़ी तथा गलिया कुछ कुछ दूरी पर बनी हुई थी। यहाँ के भवन ऊँचे तथा विशाल होते थे। कुछ भवन ऐसे भी मिले हैं जिनमें एक या दो कमरों की रचना थी।

अत अनुमान किया जाता है कि इस नगर में धनवान और निर्धन सभी श्रेणी के लोग रहते होंगे। सडकों की लम्बाई का अनुमान ९ फीट से ३४ फीट तक लगाया गया है। प्रत्येक गली के लिए एक एक कूप का निर्माण भी किया गया था। शहर के गन्दे पानी को बाहर ले जाने के लिए नालियों की रचना भी की गई थी। शहर के मध्य कहीं कहीं सभा भवन भी बनाये गये थे। सड़कों पर प्रकाश का भी उत्तम प्रबन्ध था। नगर की खुदाई में एक महान् स्नानागार की उपलब्ध हुई है जिससे प्रतीत होता है कि शहर के अनेक लोग स्नान के लिए यहां आते होंगे। इस स्नानागार के चारों ओर छोटे छोटे कमरे भी बने हुए थे। इसकी लम्बाई १८० फुट और चौडाई १०८ फुट थी। महेन्जोदडो के प्रायशः सभी मकान पक्की ईंटों के बने हुए थे। कई भवनों में २१ इन्च लम्बी, ११ इन्च चौडी तथा ४ इन्च मोटी ईंटें लगी हुई प्राप्त हुई है। पक्के फर्श और खिडकियां भी मिली हैं। प्रत्येक भवन में नाली, कूआं तथा स्नानगृह अवश्य बना होता था। घरों की छतों में लकडी का प्रयोग किया गया था।

हडप्पा की खुदाई में भी प्रायः सभी मकान पक्की ईंटों के बने हुए मिले हैं। क्योंकि इस इलाके में पत्थरों की सम्प्राप्ति दुर्लभ थी अत: यहां निर्धन व्यक्ति मिट्टी के मकानों में भी रहा करते थे। हडप्पा में एक विशाल अन्नगृह का भी पता चला है। यह अन्नगृह दो भागों में विभक्त था। सिन्धु घाटी की इन दोनों खुदाइयों में जितने भवन मिले हैं उनमें किसी प्रकार की कला का आभास नहीं हुआ। अत. ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी गृहनिर्माण-कला कलात्मक दृष्टि से नहीं अपितु उपयोगिता की दृष्टि से उच्च मानी जा सकती है। ये भवन रहने के लिए अत्यन्त सुदृढ और सुन्दर बने होते थे।

## सामाजिक दशा।

सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से सिन्धुघाटी की सभ्यता को अत्यन्त उन्नत माना जा सकता है। ये लोग गेहूँ तथा जौ की कृषि किया करते और चावल, खजूर, मछली, अण्डे, गोमांस, भेड़ और सूअर का मांस आदि सभी वस्तुओं का उपयोग किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें वर्णव्यवस्था के अनुसार सभी पेशे बंटे हुए थे। चमड़े तथा टोकरी बनाने का व्यवसाय भी हुआ करता था। महेन्जोदड़ो के निवासी अपने बालों का भी शृंगार किया करते थे। कई लोग लम्बी दाढ़ी और मूँछ रखते थे और कई दाढ़ी मूछ को छोटा करवा लेते थे। पुरुष की एक सम्प्राप्त मूर्ति से प्रतीत हुआ है कि ये

लोग ऊनी वस्त्रों का भी प्रयोग किया करते थे। मूर्तिका सम्पूर्ण कलेवर एक सुन्दर शाल से ढपा हुआ मिला है। हड़प्पा की खुदाई में भी स्त्रियों का उप-वस्त्र मिला है जो प्राय: वे सिर पर ओढ़ा करती होंगी।

वस्तुकला

इसके अतिरिक्त स्त्रियों तथा पुरुषों के आभूषण भी प्राप्त हुए हैं। कान, भुजा, नाक तथा अन्य अगो की सजावट वे लोग आभूषणो द्वारा किया करते थे। सोने, चाँदी, हाथीदाँत, पत्थर, ताँबे, अस्थि तथा मिट्टी आदि सभी चीजों के आभूषणो की सम्प्राप्ति हुई है। पीतल के बने हुए शीशे तथा हाथी दाँत की कंघिया भी उपलब्ध हुई हैं।

ये लोग जगली जानवरो का शिकार भी किया करते और सुन्दर चिड़ियो और चिड़ियो को पाला करते थे। महेन्जोदड़ो में भिन्न भिन्न प्रकार के खिलौने भी प्राप्त हुए है। बच्चे मिट्टी की छोटी छोटी गाड़ियाँ बनाकर खेला करते थे। नगर में मनोरजन के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान थी। कई प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती थी। आवागमन के लिए बैलगाड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था। कई विद्वानो का अनुमान है कि अनेक रोगो के निवारण के लिए ये लोग मछली की अस्थियो का भी प्रयोग करते थे। शिलाजीत के प्रयोग का भी कहीं कहीं उल्लेख किया गया है परन्तु इसकी पुष्टि प्रमाणों द्वारा नही की जा सकी। हिरण के सीघ, मूगे तथा नीम की पत्ती, व अन्य जड़ी बूटियो के प्रयोग के अनेक उल्लेख प्राप्त हुए हैं। रोगों का चमत्कारिक दृष्टि से भी निदान किया जाता था। ये लोग देवी देवताओं तथा प्रेतात्माओं और जादू आदि पर भी विश्वास रखते थे। शव को जलाने, गाड़ने तथा फेंक देने की सभी विधिया प्रयोग में लाई जाती थी। हड़प्पा में कब्रिस्तान के भी अवशेष प्राप्त हुए है। ये लोग खेती के लिए हल का भी प्रयोग करते थे। वस्त्रव्यवसाय, काष्ठादि निर्मित वस्तुओं का व्यवसाय भी किया जाता था। खेती के अनेक उपकरण कुदाली, फावड़ा, हल आदि अनेक वस्तुएं उपलब्ध हुई है। ये लोग बनाई बुनाई का व्यवसाय भी किया करते थे। इनमें सुनार, लोहार, बढ़ई तथा अच्छे-अच्छे जौहरी पाये जाते थे। इन लोगो ने एशिया की ओर भी अपना व्यापार बढ़ाया हुआ था।

महेन्जोदड़ो की खुदाई में कुछ पशुओं के चित्र भी उपलब्ध हुए है। जौहरियो के प्रयोग में लाये जाने वाले अनेक बाटो की सम्प्राप्ति हुई है। खुदाई मे यह भी मालूम हुआ है कि लोहे को छोड़कर अन्य सभी धातुओं—

ताम्बा, कांस्य, चांदी, टिन, सीसा आदि का प्रयोग उस समय तक प्रारम्भ हो चुका था अतः इस सभ्यता को हम ताम्रकालीन सभ्यता मान सकते हैं।

कुल्हाड़ी, कमानी, हंसिया, छुरी आदि उपकरण ताम्र तथा कांस्य मिश्रण से निर्मित किये जाते थे। गाड़ियों को चलाने के लिए बैलों को प्रयोग में लाया जाता था। खेल के सामान गेंद, गोलियाँ आदि भी मिली हैं। कमरे सजाने के लिए कुर्सियाँ, तख्त आदि का भी व्यवहार किया जाता था। ताम्बे तथा मिट्टी के दीपक भी प्राप्त हुए हैं। ऐसा अनुमान है कि महेन-जोदड़ो के लोग मोमबत्ती का प्रयोग किया करते थे। पत्थर ताम्र और कांस्य के अनेक उपकरण प्राप्त हुए हैं। ये लोग धनुष बाण का प्रयोग भी किया करते थे। तलवार कवच, और नोकदार उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त खेती के प्रयोग में लाये जाने वाले अनेक उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई है।

जहाँ तक पशुपालन का सम्बन्ध है ये लोग भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि सभी जानवर पाला करते थे। घोड़ों तथा कुत्तों की अस्थियों के अनेक अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। ये लोग गधों का प्रयोग किया करते थे। मिट्टी के अनेक पात्र उपलब्ध हुए हैं जिन पर नाना प्रकार की कारीगरी की गई है। मिट्टी के बर्तनों पर अनेक पशुओं के चित्र पाये गये हैं। नग्न स्त्रियों के चित्र भी उपलब्ध हुए हैं। यद्यपि मिट्टी के पात्रों पर किसी प्रकार की लिपि का आभास नहीं हुआ तथापि जो मुहरें मिली हैं उन पर कुछ लिखा हुआ मिला है। परन्तु इस लिपि के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण ज्ञात नहीं हो सका। ये मुहरें पत्थरों तथा धातुओं की बनाई जाती थी। मुहरों पर एक देवता के चित्र का भी पता चला है। यह देवता ध्यानावस्थित मुद्रा में पाया गया है इस चित्र से प्रतीत होता है कि ये लोग सम्भवतः शिव के उपासक थे। अनेक पाषाणखण्ड शिवलिंग के नमूने के भी प्राप्त हुए हैं। ये लोग पशुओं, वृक्षों तथा अन्य जड़पदार्थों की पूजा किया करते थे। नदी नालों को देवता का रूप समझते थे। अनेक मोहरों पर स्वस्तिक का निशान मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग सूर्य की भी उपासना करते होंगे और पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते होंगे। अभी तक इन लोगों की जाति के सम्बन्ध में ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका है। कई लोग मंगोल, आर्य, द्राविड़ तथा अन्य अनेक जातियों का सम्पर्क इन से जोड़ते हैं अतः यह निश्चित है कि इन लोगों में एक जाति न थी अपितु कई जातियों का सम्मिश्रण था। कई लोग सिन्धु घाटी की सभ्यता का सम्बन्ध मैसोपोटामिया, सुमेर आदि की सभ्यताओं

मे जोडते है परन्तु इतना अवश्य है कि ये लोग व्यापार संस्कृति, सभ्यता शिक्षा व कला आदि सभी दृष्टि से उच्च थे।

**सोहन घाटी (Sohan Valley-Punjab)**

पोथवार के प्रदेश में अनेक प्रकार के उपकरण उपलब्ध हुए। इन उपकरणों का सम्बन्ध सोहन व्यवसाय ( Sohan Industry ) से था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये अवसाद ( Deposits ) तूफान व आधी के कारण ही बन गये होंगे क्योंकि इन अवसादों से किसी पशु व वानस्पतिक निखातक ( Fossil ) का कोई अवशेष नही मिलता। इस सोन व्यवसाय को हम दो भागों में बाट सकते है :—

१ प्रथम भाग में तो वे आन्तरक (Core) तथा शल्कल (Flake) उपकरण है जो अण्डाकार पाषाण खण्ड द्वारा निर्मित हुए है और जिनका एक छोर लहरदार और सीधा है। इसके अतिरिक्त तीन और रूप भी उपलब्ध हुए है परन्तु नया रूप ऐसा है जिससे प्रतीत होता है कि अण्डाकार पाषाण-खण्ड को जानबूझकर आयताकार बनाया गया है जिससे इसका आकार समतल रहे। २ दूसरे प्रकार के वे औजार है जो तृतीय हिमयुग के प्रतीत होते है और क्लैक्टो-लैवैलोसियन रूप से मिलते जुलते है। ये फलक (Blades) तथा लम्बे शल्कल (Flakes) है और कुछ त्रिकोणाकार तथा अण्डाकार उपकरण है। सोहन नदी के किनारे कतिपय अन्य स्थानों पर छेनी (Chisel) की भी उपलब्धि हुई है। इसके अतिरिक्त सोन नदी के प्रदेश में चतुर्थ हिमयुग के अनेक उपकरण उपलब्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के प्रथम हिमयुग में पंजाब में भी प्राचीन मानव रहता होगा परन्तु इसके पर्याप्त प्रमाण नही मिले।

**राजपूताना**

चतुर्थ हिमयुग (Fourth Ice Age) के अनेक उपकरण राजपूताना में प्राप्त हुए है जो दो प्रकार के बालुआ पत्थर के है। जितने हस्त परशु (Hand axe) मिले है वे नोकदार तथा अण्डाकार है। इनका विशेष महत्व नही। वे खुरदरे है तथा खूबसूरती से कटे हुए नही।

**गुजरात**

चतुर्थ हिमयुग के अनेक उपकरण साबरमती घाटी तथा नर्मदा घाटी मे भी उपलब्ध हुए है। भारतीय इतिहास में इन अनुसन्धानों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उपकरण कई प्रकार के है :—हाथ के कुल्हाडे (Hand axe), खुरचन यन्त्र (Scrapers) शल्कल (Flake) चमकदार पत्थर के उपकरण (Pebble Tools)। हाथ के कुल्हाडे तीन प्रकार के उपलब्ध हुए है जो योरूप की चैलियन एशुलियन संस्कृति के उपकरणों से मिलते जुलते है।

पञ्जाब, मद्रास पश्चिमी अफ्रीका की नील घाटी तथा यूरोप के अन्य स्थानों में भी इस प्रकार की सादृश्यता रखने वाले उपकरण प्राप्त हुए हैं। चतुर्थ हिमयुग के चमकदार पत्थर के अनेक उपकरण मॉरमंग घाटी से मिले हैं। इन उपकरणों का विभाजन इस प्रकार किया गया है। १. हाथ का कुल्हाड़ा (Hand axe) जो अण्डाकार तथा नाशपाती के आकार का है। २. शल्कल उपकरण (फ्लेक) ३. चमकदार पत्थर के उपकरण। अपर नर्मदा घाटी में भी अनेक उपकरणों की सम्प्राप्ति हुई है। मि० एच० डी० सांकलिया के मत में गुजरात की लघुपाषाण-संस्कृति ( Microliths Culture ) मोहेन्जोदड़ो से भी प्राचीन है।

**मध्यप्रदेश**

बुन्देलखण्ड, रीवा तथा सागर के इलाकों में भी अनेक उपकरण मिले हैं। महादेव की पर्वत शृङ्खलाओं हैदराबाद, मैसूर, गुजरात, सिन्ध तथा पञ्जाब में पाषाण युगीय अवशेष उपलब्ध हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अपर सिन्ध, सोहन घाटी ( पञ्जाब ) उत्तर पूर्वीय प्रदेश तथा आसाम के पर्वतीय प्रदेशों में नवपाषाणयुगीय(Neolithic) व्यवसाय और दक्षिण भारत पूर्वपाषाणयुगीय व्यवसाय सदैव चलता रहा। सिन्धु तथा सोहन घाटी में सबसे पुराने पाषाण उपकरण शल्कल उपकरण हैं जो जिन्हें ज्यूनर (Zeuner) के मतानुसार आदिमनिनूतन काल के अन्तिम समय का कहा जाता है। उत्तर पश्चिमी भारत में सोहन-व्यवसाय से पूर्व का व्यवसाय इसी व्यवसाय से सम्बन्ध रखता था। बयाना (Bayana) आगरा रेलवे पर गम्भीर नदी के तटवर्ती बयाना नामक स्थान में तथा स्यालकोट (पञ्जाब) में जो एक एक कपालावशेष उपलब्ध हुआ है उनके साथ किसी प्रकार के उपकरण तथा पशु-अवशेष की उपलब्धि नहीं हुई। उसमें पशु तथा पक्षियों की अस्थियां, भग्न पात्रों के कुछ भाग तथा अस्थिनिर्मित पात्रतल के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

**उड़ीसा**

डा० डी० ई० सेन के प्रयत्नों से उड़ीसा में भी प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के औजार उपलब्ध हुए हैं। ये उपकरण दो प्रकार के हैं एक तो चमकदार पत्थर के (Pebble tools) हैं जिनमें कतिपय उपकरणों की समता हाथ के कुल्हाड़े (Hand axe) से मिलती जुलती है तथा दूसरे छुरे (clivers) हैं। ये नोकदार उपकरणों के सादृश्य हैं। इन्हें हम आन्तरिक (Core) उपकरण कह सकते हैं।

**दक्षिण भारत में वस्तुकला**

प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की दृष्टि से दक्षिण भारत का भी अत्यन्त

महत्व है। गोदावरी के इलाके से मध्य प्रतिनूतन काल के कुछ अवशेष उपलब्ध हुए हैं। कोंकन के समुद्रतट पर पूर्व पाषाणयुग के अनेक उपकरण हाथ के कुल्हाडे (Hand axe), फलक (Blades), आदि की मिले हैं इसके अतिरिक्त एबेवेलियन तथा क्लैक्टोनियन रूप के अनेक उपकरण दूसरे स्थान से प्राप्त हुए हैं। ह्वीलर महोदय के प्रयत्नो से मैसूर में भी कई उपकरणो की सम्प्राप्ति हुई हैं। ये पाषाण निर्मित उपकरण कुल्हाडे की शकल के सुन्दर तथा नोकदार औजार हैं। इन उपकरणो की प्राचीनता के सम्बन्ध में अभी तक कोई निर्णय नही हो सका परन्तु इतना अवश्य है कि इन्हे लाखो वर्ष पहले का बतलाया जाता है। ये शल्कल, आन्तरक तथा चमकदार पत्थरो से बने हुए उपकरण हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय पात्रों की भी उपलब्धि हुई है। इसके बाद कुछ सिक्को की भी उपलब्धि हुई। आरकाट तथा बेल्लरी के इलाके से पाषाणयुगी औजार मिले हैं।

## बंगाल में नवीन खुदाई

मार्च सन् १६५४ में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग को दुर्गापुर (बंगाल) से दस हजार वर्ष पुरानी सस्कृति के पाषाण उपकरण मिले हैं। ये उपकरण उस काल के हैं जब गगा के मैदान में मनुष्य जाति का नाम न था। दामोदर घाटी योजना के बाध के कारण दुर्गापुर नामक स्थान देश भर में प्रसिद्ध होगया है। ये सम्प्राप्त उपकरण कई प्रकार के पत्थरों के हैं। इनमें फलक, अर्धचन्द्राकार फलक, बादाम की शकल के तीर के नोक, सूजे, गोल और दातेदार खुरचन यन्त्र, छोटी कुल्हाडियां आदि हैं। जैसा कि योरुप, अफ्रीका, पश्चिमी एशिया आदि की तत्कालीन सस्कृतियो के अवशेषों से पता चलता है। ये नोक और फलक लकडी में लगाकर काम में लाए जाते थे। अर्धचन्द्राकार फलको और नोकों का लगाकर बर्छी परशु आदि हथियार बनाए जाते थे। दातेदार औजारो से मारे हुए जानवरो की खाल खुरची जाती थी और सूजे से खाल में छेद किया जाता था। छेनी की तरह के औजार से गुफाओ की दीवारो और पत्थरो पर चित्रादि खोदे जाते थे। उस काल के लोग पशु पक्षियों और सुगमतया उपलब्ध होनेवाले कन्दमूल आदि पर ही निर्भर थे। वे खेती करने और मृत्तिका-पात्र निर्माण करने की कला से एकदम अनभिज्ञ थे।

ये उपकरण लोहा मिश्रित धूल और पत्थरों के टुकडो की पाँच फीट मोटी सतह पर पाये गए हैं। इस सतह को देखकर अनुमान लगाया जाता है कि ये औजार १०००० वर्ष पुराने हैं। इन औजारों के ऊपर रेतीली चिकनी मिट्टी की तीन फुट ऊँची सह जमी हुई थी। कलान्तर में यह मिट्टी

ज्ञात हो गई जिस से इसकी प्राचीनता का पता चलता है। इस क्षेत्र में अभी और खुदाई तथा खोज भविष्य में होने की सम्भावना है।

## मद्रास

मद्रास में संप्राप्त उपकरण योरप तथा अफ्रीका के मुष्टि छुरे (Coup-de-poing) से मिलते जुलते हैं। मस्की, मैसूर, तथा अन्य कई स्थानों के प्राप्त अवशेष दक्षिण का सांस्कृतिक इतिहास बतला रहे हैं। हैदराबाद के रायचूर जिलान्तर्गत मस्की नामक स्थान के बर्तन तथा उपकरण अपने में एक विशेषता रखते हैं। सतह की वस्तुएं ईसा से ५०० वर्ष पूर्व की तथा पात्रावशेष ईसा से १०० वर्ष पूर्व के हैं। मि० ब्रूस फूटे (Bruce-Foote) ने तो स्वर्ण-व्यवसाय का सम्बन्ध भी इस काल से जोड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौड़ियां तथा सनके पर्शिया से लाए गए होंगे और मस्की तथा अरेबियन समुद्रतट के मध्य व्यापार होता होगा। मस्की व्यवसाय में सोने का भी प्रयोग किया जाता था। मैसूर के ब्रह्मगिरी नामक स्थान से भी परशु आकार के अनेक पाषाण उपकरण उपलब्ध हुए हैं। मि० ह्वीलर ने इन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। उनका विचार है कि ब्रह्मगिरि में आन्ध्र संस्कृति का विकास प्रथम शताब्दि के मध्य में हुआ।

## चीन में वस्तुकला

चीन की प्राचीन वस्तुकला, पात्र तथा वस्त्रनिर्माण, की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृष्णवर्णीय पात्रों की उपलब्धि से चीन की नवपाषाणयुगी संस्कृति पर अत्यन्त प्रकाश पड़ता है। पश्चिमी होनान प्रदेशान्तर्गत यंग-शौ (Yang-Shao) तथा पीली-नदी (Yellow River) के समीप दक्षिणी शांसी के हसीयिन (Hsiyin) नामक स्थानों पर नव-पाषाणयुग के अनेक अवशेष उपलब्ध हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज से लगभग ४००० वर्ष पूर्व चीन में सजीव व सुन्दर पात्र बनाये जाते थे। ये सभी पात्र चक्र द्वारा नहीं अपितु हाथ से ही तैयार किये जाते थे। इन पात्रों पर नानाविध रेखाकारचित्रों का निर्माण देखकर सचमुच आश्चर्य होता है। भूरे रंग के कुछ ऐसे पात्र भी उपलब्ध हुए हैं जिन पर किसी प्रकार का रंग नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि होनान तथा शांसी का प्रदेश उन दिनों पात्र निर्माणकला का केन्द्र था और इस व्यवसाय का दूरस्थ देशों से व्यापार किया जाता था। इसके अतिरिक्त कान्सु (Kansu) प्रदेश के पश्चिम में तो इससे भी पुरानी सभ्यता के अवशेष मिले हैं। यहां पर जो खुदाइयां हुई हैं उनसे पता चलता है कि आज से ४२०० वर्ष पूर्व पात्रनिर्माण कला

अतीव उन्नत अवस्था में थी। नवपाषाणयुग में चीन में कृषि का भी विस्तार हो चुका था। ज्वार, चावल, तथा गेहूँ की खेती की जाती थी। सूअर, कुत्ते आदि पशु पाले जाते थे। ताम्र तथा कांस्य का प्रयोग भी प्रारम्भ हो चुका था। कृष्णवर्णीय पात्रकला अथवा "लग-शान" संस्कृति को "चेंगतजूयई" (Chengtzu-yai) के नाम से पुकारा जाता है। अनेक पशु तथा घोड़े प्रयोग में लाए जाते थे। कृषि तथा आवागमन के लिए पशुओं का प्रयोग हुआ करता था। कांस्य युग के प्राप्त अवशेषों से प्रतीत होता है कि चीन में रथों का भी निर्माण प्रारम्भ हो गया था और रथों में घोड़ों को प्रयुक्त किया जाता था। रेशम का व्यापार भी चीन में प्रारम्भ हो चुका था। कपड़ों को बड़ी सुन्दरता से सीया जाता था। भेड़, बकरी, कुत्ते तथा अन्य अन्य अनेक पशुओं को पाला जाता था। सुन्दर उद्यानों का भी निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। धातु प्रयोग तथा पूजा पात्रों का चीनी-संस्कृति में विशेष महत्व है। भाले, कुल्हाड़े कवच, तीर कमान, आदि सभी उपकरण निर्मित किए जाते थे। तलवार के निर्माण का अभी तक पता नहीं चला। सुई, चाकू, तथा कृषि के अनेक उपकरण भी तैयार किए जाते थे। 'चाऊ-वंश' (Chau Dynesty) के समय तो लोह उपकरणों का भी निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

## फिलस्तीन व सीरिया में वस्तुकला

माउण्ट कार्मेल से जिस मानव की सम्प्राप्ति हुई थी उससे फिलस्तीन की पाषाणयुगीय संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नवपाषाणयुग में तो फिलस्तीन में पात्रनिर्माण तथा धातु उपकरणों के निर्माण का श्रीगणेश हो चुका था। मध्यपाषाणयुग के अनेक शल्कल उपकरण मिले हैं परन्तु उस समय तक पात्र निर्माणकला का प्रारम्भ न हुआ था। ईसा से ५, ६ हज़ार वर्ष पूर्व फिलिस्तीन में खेती का प्रारम्भ होगया था क्योंकि उस समय के अनेक कृषि उपकरण—फलक, संकीर्णफलक का बना हुआ हसुआ (Sickle) तथा अस्थि-निर्मित चाकू की मुठिया (Haft), मुड़े हुए अस्थिनिर्मित भुमके (Pendants) उपलब्ध हुए है। कार्मेल से जिस संस्कृति के उपकरण (फलक) आदि मिले हैं, वह पश्चिमी योरुप का मगडलेनियन काल है। फिलिस्तीन में जो अस्थिपंजर उपलब्ध हुए हैं वे "लैवेलोसियन-मौस्टेरियन काल" के हैं। हाथ के परशु तथा शल्कल अन्तिम अशूलियन संस्कृतिकाल से सम्बन्ध रखते है। पृथ्वी की सतह पर से उपलब्ध होनेवाले उपकरण आदि अशूलियन काल के प्रतीत होते हैं।

## कांस्य तथा ताम्र युग का सामाजिक प्रभाव

कांस्ययुग (Bronze Age) में सम्पूर्ण धातु व्यवसाय कतिपय धनतन्त्रवादी श्रेणियों के हाथ में चला गया। वे लोग मजदूरों का शोषण करने लगे। उत्पत्ति के साधन तो कम थे परन्तु धन का एकत्रीकरण बड़ी तेजी से हो रहा था। परिणामतः श्रमिक श्रेणी को अत्यन्त कष्टों का सामना करना पड़ता था। श्रमिक संघों में धनिकों के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला भभक उठी। पाषाण की उपलब्धि धातु की अपेक्षा अधिक थी परन्तु पाषाण का प्रयोग कांस्ययुग में कम होगया था। कांस्य और ताम्र के प्रयोग के कारण अन्य स्थानों से धातु की सम्प्राप्ति के लिए व्यापार प्रारम्भ हो चुका था। यातायात के साधनों के विकास के कारण अनेक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए। उपकरण निर्माण में विशेष योग्यता प्राप्त की गई। लोगों की सामाजिक स्थिति उन्नत होती गई। सामाजिक स्थिति के परिवर्तन भेद से जहाँ अन्य प्रभाव पड़े वहाँ श्रम विभाजन भी प्रारम्भ होगया। नानाविध पार्थिव संघों की उत्पत्ति हुई। नगरों के निर्माण तथा उपकरणों में विशेष उन्नति हुई।

कांस्ययुग के उपकरण

सुन्दर एवं चिकने (Glazed) बर्तन प्रयोग में लाये गए। पात्र निर्माणयन्त्र—चक्र (Wheel) का निर्माण हुआ। कातना बुनना तथा वस्त्र निर्माण प्रारम्भ हो गया। जनसंख्या में वृद्धि हुई। संक्रामक रोगों की वृद्धि से मुरदे गाड़े जाने लगे। गणित विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया

जाने लगा। कई श्रेणियाँ धन का संचय करने लगी। सुमेरियन लोगों ने सब से पूर्व लिपि का निर्माण किया। यद्यपि सभी दिशाओं में यह उन्नति हुई इस समय। मिश्र, भारत तथा बैबीलोनिया की सभ्यता विशेष रूप से उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी।

यन्त्र द्वारा मृत्तिकापात्र निर्माण

## अन्तिम पूर्व पाषाणयुगीय कला (Upper Paleólithic Art)

आदि पूर्वपाषाणयुग ( Lower Paleolithic Period ) में कला का विस्तार नगण्य था। कला की जितनी भी सवृद्धि हुई वह अन्तिम पूर्व पाषाणयुग में हुई। इस कला को दो भागों में विभक्त कर सकते है ? गृहकला (Home Art) तथा दूसरी कन्दराकला (Cave Art)।

गृहकला—गृहकला के अन्तर्गत वही वस्तुए है जिन्हे तत्कालीन लोग शृगारार्थ उपयोग में लाते और कलात्मक दृष्टि से सुन्दर बना लेते थे। यह कला तत्कालीन मानवो के निवास स्थानो में पाई जाती थी। वे सभी अस्थिनिर्मित उपकरण-जिन पर चित्रकारी भी होती थी—इसी गृहकला के द्योतक है। गृहकला सम्बन्धी चित्रकारी आरिग्नेशियन काल में तो बहुत कम उपलब्ध होती है परन्तु बारहसिंघे तथा अन्य पशुओ के रगीन चित्रो के अनेक नमूने इस काल में उपलब्ध होते है। मगडलेनियन काल की सम्पूर्ण खुदाई इसी से सम्बन्ध रखती है। अस्थिनिर्मित उपकरणों तथा विशालकाय प्राणियों के अग प्रत्यंग पर कलात्मक ढंग से चित्रों का प्रदर्शित करना किसी कुशल कलाकार का ही काम हो सकता है। 'हारपून' पर बने हुए घोड़ों के

चित्र उपलब्ध हुए हैं। अस्थियों तथा हाथी दांत के ऊपर की गई पच्चीकारी के सुन्दर एवं आकर्षक नमूने आरिग्नेशियन तथा मगडलेनियन—दोनों कालों में उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त पशु आकार में कटे हुए चपटे हड्डियों के टुकड़े भी उपलब्ध हुए हैं। वीनस आफ विलनडर्फ (Venus of Willenderf ) की एक अत्यन्त आकर्षक मूर्ति पाई गई है। मगडलेनियन काल की सभी कलात्मक कृतियां आरिग्नेशियन काल की कला की अपेक्षा अधिक सुन्दर, सजीव एवं आकर्षक थीं।

कन्दराकला—कन्दराकला में प्रायः पशुओं के चित्र ही सम्मिलित किये जाते हैं। सम्पूर्ण मानवीय शरीर को नहीं अपितु केवल मात्र हाथों को ही उन दिनों में चित्रित किया जाता था। फ्रांस के डोर्डोन तथा मारीज़ा नामक इलाकों में कन्दरा में बनाये गये अनेक चित्र उपलब्ध हुए हैं। फिलस्तीन, दक्षिणी अफ्रीका तथा स्पेन में भी कन्दरान्तर्गत निर्मित चित्रों की सम्प्राप्ति हुई है।

अस्थिनिर्माण सूचिका आरिग्नेशियन संस्कृति की चित्रकला

चित्र निर्माण के लिए जो रंग प्रयुक्त किये जाते थे वे सब पशुओं के बालों से बनते थे। कन्दरा कला को हम चार कालों में विभक्त कर सकते हैं। पहला काल तो आरिग्नेशियन संस्कृति का है जबकि पशुओं के चित्रों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दूसरा काल आदि मगडलेनियन है जिसमें एक ही रंग के चित्रों पर अधिक जोर दिया गया। तीसरा मध्य मगडलेनियन काल है जबकि इन चित्रों के निर्माण में पर्याप्त चातुर्य दिखाया गया। चौथे काल अर्थात् अन्तिम मगडलेनियन काल में तो यह कलापूर्ण यौवन पर पहुँच

गई। इस काल में लाल, पीले, काले तथा भूरे रंगों (Polychromes) का प्रयोग किया जाने लगा। फ्रांस के अल्टामीरा नामक स्थान पर जितने कलात्मक चित्र दृष्टिगोचर हुए हैं वे सब इस कला के प्रतीक हैं। यदि हम इस कला के उद्देश्यों पर विचार करें तो हमें प्रतीत होगा कि इस युग के कलाकार कला
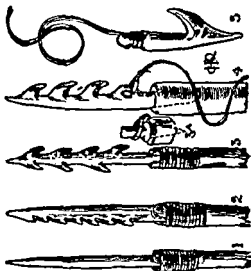
भाले तथा हारपून

चातुर्य, शृंगार, सफल आखेट व्यवसाय तथा तत्कालीन जादू सम्बन्धी विचारों का कला द्वारा चित्रण करते थे। तत्कालीन मानवों का विश्वास था कि मृतकों को खाद्यसामग्री प्रदान करने से पूर्वजों का खाद्य भण्डार खाली नहीं होता।

## हिमयुग का सूत्रपात (Ice Age)

इसमें सन्देह नहीं कि हम संसार में प्राचीनकाल से 'हिमप्रलय' की कहानियाँ सुनते चले आते हैं परन्तु हम ने हिमप्रलय के कारणों पर कभी विचार नहीं किया। आखिर यह 'हिमप्रलय' क्यों आती है? और इसके मुख्य कारण क्या हैं? संसार के महान् भूगर्भशास्त्रियों तथा हिमशास्त्र विशेषज्ञों ने अधिक छानबीन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि 'हिम प्रलय' का सिद्धान्त तीन ही कारणों पर आधारित हो सकता है.—

१. पर्वतों का उभार (Elevation)—संसार में जब जब 'हिम-प्रलय' हुआ तब तब नवीन पर्वत शृंखलाओं की रचना हुई। विशाल पर्वतों

के उत्थान के साथ साथ उसके आसपास का बहुत सा प्रदेश तत्कालीन जल-वायु से भी अत्यन्त प्रभावित हुआ । पर्वत शृंखलाओं की रचना से वायु परि-भ्रमण (Air Circulation) परिवर्तित होता है और इसका प्रभाव वर्षा तथा हिमपात पर भी पड़ता है । हो सकता है हिम प्रलय सम्बन्धी यह विचार कुछ अंश तक सही हो परन्तु वैज्ञानिकों ने जो चार हिमयुग (Glacial-Periods) तथा तीन मध्य हिमयुग (Inter Glacial Periods) माने हैं उनके क्रम पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता ।

२. आकाश सम्बन्धी सिद्धान्त (Astronomical theory)—वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी के चारों ओर के आकाशीय वायुमण्डल में धूलि-कण अनिश्चित अवस्था में विद्यमान रहते हैं जिसके कारण सूर्य से प्राप्त होनेवाली शक्ति ठीक रूप से नहीं मिल पाती और ये धूलिकण उसमें बाधक होते हैं । यदि संयोगवश यह दशा पर्याप्त समय तक रहे तो यह भी सम्भव है कि पृथ्वी का वार्षिक तापक्रम इतना गिर जाय जिससे कुछ अंशों में हिमप्रलय की स्थिति उत्पन्न हो जाय ।

३. खगोल विद्या सम्बन्धी सिद्धान्त—खगोल शास्त्र का सिद्धान्त है कि पृथ्वी के परपथ पर कुछ ऐसे भाग हैं जो अन्य भागों की अपेक्षा सूर्य के अधिक समीप हैं । यही कारण है कि उत्तरीय गोलार्ध में दक्षिणी गोलार्ध की अपेक्षा अधिक ठण्ड होती है । पृथ्वी के गति केन्द्र व अक्षरेखा (Axis of Rotation) का झुकाव परपथ की ओर अधिक होता है अतः ऋतुओं में परिवर्तन होता रहता है । प्रत्येक गोलार्ध में गर्मी तभी रहेगी जब वह सूर्य की ओर रहेगा । क्योंकि सूर्य की किरणें तब पृथ्वी पर बिल्कुल सीधी पड़ती हैं और उस समय दिन भी बड़े होते हैं । सर्दियों में इससे बिल्कुल विपरीत दशा होती है अतः दिन भी छोटे होते हैं । पृथ्वी की अक्षरेखा (Axis) की दिशा और पृथ्वी के परपथ (Orbit) में परिवर्तन आजाने से तापमान बदल जाता है । इस प्रकार केन्द्र भ्रष्ट (Eccentricity) हो जाने से जलवायु में परिवर्तनावस्था उत्पन्न हो जाती है । विशेष परि-स्थितियों में तो यहां तक भी सम्भव है कि तापक्रम बहुत कम हो जाए और ठण्ड बढ़ जाये । पृथ्वी का गति केन्द्र व अक्षरेखा अपने स्थान से धीरे धीरे हटती जा रही है । इसी गति के आधार पर ही हम यह मानते हैं कि प्रति १३००० वर्ष बाद उत्तरीय गोलार्ध और दक्षिणी गोलार्ध क्रमशः एक के बाद एक सूर्य की ओर आते हैं क्योंकि पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर २६००० वर्षों में पूरा कर पाती है । यह ठीक है कि उपरोक्त दोनों कारणों में से किसी एक को 'हिमयुग' के लिए उत्तरदायी नहीं कहा जा

सकता परन्तु यह सम्भव है कि दोनों कारणों से मिलकर हिमयुग का सूत्रपात हुआ हो।

## योरुप में हिमकाल (Ice Age)

तृतीयक काल के अन्त से तथा प्रतिनूतन काल के प्रारम्भ से हिमयुग का सूत्रपात होता है। योरुप में हिमयुग आदिप्रतिनूतनकाल से प्रारम्भ हुआ। कतिपय प्रमाणों के आधार पर ऐसा समझा जाता है कि किसी समय योरुप का बहुत बड़ा भाग हिमाच्छादित था। सभी पेड़ पौधे नष्ट होगये थे। सभी प्राणी अपनी जीवनरक्षा के लिए दक्षिण की ओर भाग गए। आल्सपर्वत की घाटियों में चार बार हिमखण्डों की प्रगति हुई। हिम उत्तरी अक्षांशों से नीचे की ओर बढ़ी और योरुप का बहुत बड़ा भाग हिमाच्छादित हो गया। इन्हें चार हिमयुगों में बाँटते हैं जिनके नाम क्रमशः गंज (Gunz), मिण्डेल (Mindel), रिस (Riss) तथा वर्म (Wurm) हैं। इनमें सर्व प्रथम 'गंज' काल है अतः हम इसे प्रथम हिमयुग के नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक हिमयुग के पश्चात् अन्त हिमयुग हुआ। प्रथम अन्त हिमयुग का प्रारम्भ 'गंज' हिमयुग के बाद तथा 'मिण्डेल' हिमयुग से पहले हुआ। इसे हम प्रथम अन्त हिमयुग अथवा गंज-मिण्डेल अन्त हिमयुग के नाम से स्मरण करते हैं। दूसरा अन्त. हिमयुग "मिण्डेल" हिमयुग के बाद तथा रिस ( Riss ) हिमयुग से पूर्व हुआ जिसे हम द्वितीय अन्त हिमयुग अथवा 'मिण्डेल रिस' अन्त हिमयुग के नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार तीसरे अन्त हिमयुग को रिस-वर्म" (Riss-wurm) अन्त हिमयुग के नाम से पुकारा जाता है।

हिमकाल में जब हिम चारों ओर जमी रहा करती थी तो जलवायु ठण्डा होता था परन्तु जब अन्त.हिमयुग के समय हिमखण्ड पीछे हटते जाते थे तो जलवायु उष्ण होती जाती थी परन्तु पुनः हिमयुग के आते ही जलवायु ठण्डा हो जाता था। इस प्रकार शीत और उष्ण ऋतुओं का चक्र चला करता। हिमयुग के समय योरुप की जलवायु स्थाई न होने से तत्कालीन योरुपीय मानव को इस परिवर्तनशील जलवायु के अनुकूल बनाना पड़ता होगा। अनेक विद्वानों का तो यह विश्वास है कि मानवसंस्कृति के विकास में जलवायु की परिवर्तन-शीलता कुछ सीमा तक अवश्य उत्तरदायी है।

उत्तरी गोलार्ध में जब 'हिमयुग' का सूत्रपात होता तब दक्षिणीगोलार्ध में भी वर्षा, आँधी, तूफान और बाढ़ों का प्रकोप प्रारम्भ होता। उत्तरीगोलार्ध में जब शीत जलवायु होती तो दक्षिणी गोलार्ध में नमीदार जलवायु होती। इसके विपरीत उत्तरी गोलार्ध में जब अन्त हिमयुग में उष्ण जलवायु होती

तो दक्षिणी गोलार्ध में शुष्क जलवायु होती थी। दक्षिणी गोलार्ध के इस नमीदार और शुष्क जलवायु के क्रम को वर्षा सम्बन्धी (Pluvial) तथा अल्प वर्षा सम्बन्धी क्रम (Inter pluvial) कहा जाता है। योरप के इस हिम-युगीय विभाग के आधार पर हमें प्रस्तर युग की मानव संस्कृति के काल निर्णय में पर्याप्त सहायता मिली है। हिमयुग के सभी अवसादों (Deposits) का अध्ययन करने से न केवल हम जलवायु का ही पता लगा सकते हैं अपितु हम मानव संस्कृतियों के काल निर्णय का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हिमयुग के प्राणी—हिमयुग में हमें दो प्रकार के प्राणियों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। एक वे प्राणी जो शीत जलवायु में रहने के अभ्यस्त थे और दूसरे वे जो ग्रीष्म जलवायु में रहने के अभ्यस्त थे और दक्षिण की ओर चले जाते थे। इन प्रमुख प्राणियों के नाम निम्न हैं—

जंगली गाय (Bos-Primigenus)—ये गो या बैल जातियाँ पृथ्वी के धरातल से लुप्त हो चुकी हैं। ये जातियाँ आधुनिक युग के अनेक पालतू पशुओं की पूर्वज कही जाती हैं। इनके सींग बाहर की ओर और सामने की ओर एकदम सीधे होते थे। सम्भवतः पहले जंगली गायें हल्के लाल भूरे रंग की होती थीं। इन पशुओं के अस्थि पंजर, कपाल तथा चित्रकारियाँ पाई गई हैं। पुरे-पाषाणयुग के योरप के चेलियन एशूलियन काल में यह पाया जाता था। ये लघु और स्थूल अंग वाले तथा विशालकाय प्राणी थे।

२. भैंसा (Bison)—यह उत्तरी अमेरिका के अन्तर्वर्ती पर्वतीय प्रदेशों में रहनेवाला प्राणी है। यह भैंसे की शक्ल का प्राणी है। यह विशाल-काय तथा स्थूल टाँगोंवाला है। इसके सींग लघु तथा कृष्णवर्णीय होते हैं।

३ (Wooly ऊन केशीय हस्ति Rhinoceros)—यह एक बहुत ही बड़ा और भारी देह वाला प्राणी था। इसके शरीर पर घने-घने बाल चला हुआ करते थे। इसका मुँह सीधे होठों वाला था। और उपरिदाँत नोकदार न होता था अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि यह घास व अन्य वानस्पतिक द्रव्यों पर ही निर्भर रहता था। यह प्राणी मोस्टेरियन तथा अन्तिम प्रतिनूतन काल में पाया जाता था। यह शीत प्रधान जलवायु का प्रेमी था। परन्तु आज कल यह किसी शीत प्रधान देश में नहीं पाया जाता।

४. हस्ति (Merk's Rihnosorous)—यह एक लम्बी और मुलायम नाकवाला पशु था। यह ग्रीष्म जलवायु में रहना पसन्द करता था। यह पूर्व-

पाषाण युग के नेनियन-एश्यूलियन काल का प्राणी है। इसके सींग घनत्व सींग (Rhinoceros) के सींगों से छोटे होते थ।

५ विशालकाय हाथी (Mammoth)—प्रति नूतन काल के स्तनधारी प्राणियों में सबसे अधिक संख्या में पाया जाता था। इसे कई जातियों में विभक्त किया गया है। साइबेरिया में पाये जानेवाला हाथी (Mammoth) योरुपीय हाथी (Mammoth) से अधिक लम्बा था।

६. हाथी (Elephus-Straight tusk elephant)—यह सीधी सूँड वाला हाथी था। सामान्य हाथी की अपेक्षा यह अधिक लम्बा था। इसके पैर लम्बे और शरीर पर बल कम होते थे। इसका पृष्ठवंश बिलकुल सीधा होता था।

७. घोड़ा (Horse Equuus)—जंगली घोड़ों की अनेक जातियाँ हैं। इनके अस्थिपंजर अन्तिम प्रतिनूतन काल के अवसादों से प्राप्त हुए हैं।

८. शेर (Lion)—यह गुफाओं में रहनेवाला शेर होता था। यह योरुप के सम शीतोष्ण कटिबन्ध में पाया जाता था। इनके अस्थिपंजर हिमयुग तथा अन्तः हिमयुग दोनों के अवसादों से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्राणी बारहसिंघा, रीछ आदि पाये जाते थे।

## बृहत्पाषाणनिर्मित स्मारक ( Megalithic Monuments )

हमें योरुप के पश्चिमी तथा उत्तरी प्रदेशों में अनेक बृहत्पाषाणनिर्मित स्मारक उपलब्ध हुए हैं। इनमें कतिपय स्मारक ऐसे हैं जो एक ही ठोस पत्थर ( Monolith ) के बने हुए हैं। और ये प्रायश कब्रिस्तान व उसके आसपास पाये जाते हैं। कार्नाक ( Carnac ) के समीप एक ३० फुट ऊँचा बृहत्पाषाण स्मारक प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कभी कभी तो पाषाण के प्राकृतिक रूप को उपयुक्त आकार में परिवर्तित किया जाता और कभी इन्हें चौकोर रूप देकर सिरे पर नोकीला बना दिया जाता था। कतिपय प्राणिविज्ञानवेत्ताओं ने इन स्मारकों का लिङ्गपूजन सम्बन्धी ( Phallic) महत्व भी प्रतिपादित किया है इससे प्रतीत होता है कि इन स्मारकों को अवश्य ही पूजा सम्बन्धी महत्व प्रदान किया जाता होगा। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य स्तोदर रूप पृथुप्रस्तर (Cromlech or Stone Circle) उपलब्ध हुए हैं जो बड़े बड़े पत्थरों के चक्राकार रूप में बनाया गया है। उद्यानपथों पर इस प्रकार के स्मारकों की लम्बी लम्बी पंक्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जिन्होंने पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग घेर रक्खा है। कैण्ट ( इंग्लैण्ड ) के

अन्तर्गत कार्नाक नामक स्थान पर पौने ३ मील तक इस प्रकार की पंक्तियाँ चली गई है। मेज के आकारवाले अनेक पत्थरों ( Dolmen ) की भी उपलब्धि हुई है जिनके ऊपर आच्छादन ( Lid ) के रूप में शिलाफलक (Slab of Rock) को रख दिया गया है। इन आच्छादन व छत के नीचे कमरे बनाये जाते थे जिसमें मृतक का शरीर तथा अन्त्येष्टि क्रिया का सामान गाड़ दिया जाता था। ये आच्छादन आकार में महान् और वजन में भारी होते थे परन्तु यह अनुमान नहीं लगाया जा सका कि इतने भारी पत्थरों को खान से किस प्रकार लाया जाता होगा। डबलिन के दक्षिण में भी इस प्रकार के आच्छादन (Lids) प्राप्त हुए है जो वजन में कई टन हुआ करते थे। दक्षिणी वेल्स तथा स्कैंडेनेविया में भी इस प्रकार के पत्थर मिले हैं। क्यूवा मेंगा में जो विशाल आकार का कमरा मिला है उसका आंगन छोटा तथा प्रवेशमार्ग चौड़ा है। कमरे की लम्बाई २५ मीटर (८४ फीट) चौड़ाई ६ मीटर (२० फुट), तथा ऊँचाई ३ मीटर (१० फुट), है। सारी छत पर केवल ५ विशाल प्रस्तर लगे हैं। केण्ट ( इंग्लैण्ड ) विटस्काट तथा पोर्तुगाल में पाविया ( Pavia) तथा उत्तर पश्चिमी अफ्रीका में इस प्रकार के अनेक बृहत्पाषाणीय स्मारक उपलब्ध हुए हैं।

भारत के बृहत्पाषाणीय-स्मारक (Megalithic Monuments) मैडिट्रेनियन से बिल्कुल मिलते जुलते है। सम्भव है कि मैडिट्रेनियन लोगों को दक्षिण भारत का पता चला हो और वे समुद्र के रास्ते से दक्षिण भारत में प्रविष्ट हुए हों। यद्यपि स्थल द्वारा भी आना जाना सम्भव था परन्तु फिर उन्होंने समुद्र से आना उचित समझा। शाल (बलोचिस्तान) में पाये गये पाषाणीय तथा ताम्बे की कई चीजें यह सिद्ध करती है कि उत्तर-पश्चिमी इलाके से मैडिट्रेनियन सम्स्कृति का भारत में प्रवेश हुआ होगा।

---

| भूगर्भशास्त्रीय काल | संस्कृति | जलवायु | मनुष्य और पशु विकास | उपकरण |
|---|---|---|---|---|
| सर्वनूतन + प्रतिनूतन ( चतुष्ककाल ) | लोह + ताम्र + कांस्य संस्कृति | | नार्डिक, मैडिट्रेनियन आदिजातियों का विकास | लोह, कांस्य, ताम्र उपकरण |
| नूतनकल्प | नवपाषाणयुग<br>अज़ीलियन, माल्यूट्रियन, आरिग्नेशियन, मग्दलेनियन } अन्तिम पाषाण युग<br>मौस्टेरियन, अशूलियन, चैलियन } आदि पूर्व पाषाण युग<br>उप. पाषाणयुग | हिमयुग तथा अन्त.हिमयुग (प्रथम+द्वितीय+तृतीय) चतुर्थ | क्रोमैग्नन<br>नियन्डरथल<br>स्वैन्सकोम्बे<br>चीनी मानव<br>पिल्टडाऊन<br>जावा मानव | अस्थिनिर्मित उपकरण<br>आन्तरक तथा शल्कल उपकरण |
| (तृतीयक काल) (अति + मध्यनूतन) | | समशीतोष्ण | स्तनधारी प्राणीविकास | |
| | | | सरीसृप उभयचर मत्स्य आदि विकास | |
| मध्यकल्प (द्वितीययुग) | | | | |
| | | | अपृष्ठवंशी प्राणी | |
| आदिकल्प | | | | |

# पारिभाषिक शब्द कोष

Anthropometry = मानव का परिमिति प्रमाण
Artifact = मानवीय उपकरण
Anthropoid Primate = मानवसम प्रधान वर्ग
Amphibian = उभयचर मण्डूक श्रेणी
Anthropoid Apes = मानवसम वानर
Amphipithecus = द्विजातीय वानर श्रेणी
Acheulean Culture = एशूलियन संस्कृति
Africanthropus Nijaranensis = लेक नजारा में प्राप्त होने वाला अफ्रीकन मानव
Acculturation = परसंस्कृति ग्रहण, सांस्कृतिक संपर्क का प्रभाव।
Aleuts = एल्यूटियन द्वीपवासी जो एस्किमो से मिलती जुलती भाषा बोलते हैं।
Aborigines = आदि प्रवासी
Adaptation = उपयोजन
Animatism = जीवोवाद
Alabaster = भाषा चूर्ण
Aurignacian Culture = आरिग्नेशियन संस्कृति
Anatomy = छेदन शास्त्र
Amphibian = मण्डूक श्रेणी
Adranal Glands = उपवृक्क ग्रन्थि
Acrophone = एक वाद्ययन्त्र
Alpine Race = पश्चिमीय योरूप की श्वेतांग जातियाँ
Adjustment = समीकरण, व्यवस्था
Animism = जीववाद
Archeozoic = आदि जीविय
Assimilation = सात्मीकरण, स्वीकरण

Amagyat = पूर्वज प्रेतात्मा। वश परम्परा मे लोग इस प्रेतात्मा में विश्वास करते थे।

Amulet = तिलिस्मा व यन्त्र

Anthropomorphic = मानवीय आकार प्रकार सम्बन्धी

Anthropophagy = मनुष्य भक्षणवाद

Ape = लगूर

Arancanian = चाइल में बसने वाले अमेरिकन इण्डियन्स का भाषा तथा सस्कृतिवर्ग

Ambivalance = विरोधी भाव यथा प्रेम और घृणा

Acrophone = एक वाद्ययन्त्र

Amitate = फूफा की आर से भतीजे पर लगाये अधिकार।

Avunculate = मातुल, अधिकार

Alpine Race = अल्पाईन जाति यह श्वेताग जाति समूह म सम्बद्ध है। पूर्वीय तथा पश्चिमीय मध्य योरुप में रहती है।

Analytic Language = वह भाषा जिसमें व्याकरण सम्बन्धी नियमों का कोई बन्धन न हो।

Athabaskan = एक भाषा सम्बन्धी विभाग। हैदा तिलिंगित आदि भाषायें भी इसमें सम्मिलित है।

Austronesian = मैडागास्कर, मलाया, इण्डोनीशिया, मैलानीशिया आदि में बोली जाने वाली भाषा।

Avoidance = परिहार

Azilian = पूर्व पाषाणयुग की संस्कृति (एजिलियन)

Aztec = मैक्सिको घाटी के लोग तथा उनकी संस्कृति।

Adrenel Gland = उपवृक्क ग्रन्थि

Affinial = दाम्पत्य

Attraction = आकर्षण

Ancestor worship = पितृपूजा

Amusement = मनोविनोद

Anvil = गूमाँ
Awl = टेकुआ
Adze = बसूला
Auger = बरमा
Andirous = अंगीठी के लोहे के सींकचे
Axis = अक्षरेखा
Baboon = दीर्घाकृति वानर (वानर श्रेणी)
Bride Price = कन्या मूल्य
Bronze Age = ताम्र युग
Blood Group = रक्त समुदाय
Burial Pot = समाधि पात्र
Biological = प्राणि शास्त्रीय
Brachycephalic = पृथुकपाल
Billiyark Agon = सम्मानित अतिथियों के बैठने का स्थान
Biological Nature = प्राणिक प्रवृत्ति
Bilateral = द्विपक्षीय
Bantu = एक भाषा वर्ग है। यह कांगो जिले से लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक बोली जाने वाली भाषाओं का वर्ग है।
Basque = दक्षिण पश्चिमी फ्रांस तथा उत्तरीय स्पेन के इलाकों में बोली जाने वाली भाषाओं का वर्ग जिसे इबेरियन भी कहते हैं।
Boomerang = प्रक्षेपशास्त्र
Brachiation = बाहु द्वारा एक से दूसरे स्थान गमन। यथा वानर
Border = घेरा
Bull-Roarer = गर्जनकारी वाद्यन्त्र
Boskop Man = बोस्कोप मानव। ट्रान्सवाल में बोस्कोप नामक स्थान से इसकी सम्प्राप्ति हुई।
Blue Blood = उच्च कुलीन
Battered Flint Nodule = कुटित पाषाण खण्ड
Bark Canoe = वल्कल नाव

Burin = नकाशी यन्त्र
Bone Needle = अस्थि सूचिका
Brooches = आलपीन
Bit = लगाम
Cultural Anthropology = सांस्कृतिक मानव विज्ञान
Craniometry = कपालीय परिमित प्रमाण
Cranial Index = कर्परदेशना
Composition = रचना
Chromosomes = वर्णसूत्र, पित्र्यसूत्र
Cenozoic = नूतन कल्प
Catarrbines = सकीर्ण नासिका वाले
Cercopithecidae = पुच्छल वानर परिवार
Capuchin = कृष्ण शीर्ष वानर ( वानर श्रेणी )
Canine teeth = भेदक दन्त, सूआदाँत
Cymotrichi = घुघराले बालो वाले
Chameccephalic = नतशिरीय
Core = आन्तरक
Criminal Tribes = जरायमपेशा
Cephalic Index = शीर्षदेशना
Cromagnon Man = क्रोमैग्नोन मानव । फ्रास के डोरडोन-स्थित लेस इजीज की क्रोमैग्नन चट्टानों में इस मानव के अवशेष की सम्प्राप्ति हुई ।
Cross-breeding = प्रसकरणोत्पादन
Chemacprosope = विस्तृताकृति
Chin = चिबुक
Covcave = नतोदर
Couvex = उन्नतोदर
Centimetre = शतांश मीटर
Canine = भेदकदन्त
Cross-breeding = पुसकरणोत्पत्ति
Chordophone = एक वाद्ययन्त्र
Cultural traits = सांस्कृतिक चिन्ह

Caste = वर्ण
Clan = गोत्र
Class = श्रेणी वर्ग
Cultural Inertia = सांस्कृतिक जड़ता
Cultural Complex = सांस्कृतिक संकुल
Cultural Pattern = सांस्कृतिक प्रतिमान
Coronal = कपाल सम्बन्धी
Cross-Cousin = भाई बहिन की सन्तान।
Couvade = पितृ प्रतिबन्ध
Crime = सामाजिक अपराध
Cromagnon = क्रोमैनन मानव
Consanguine = सगोत्र
Collateral = सपिण्ड
Circumsician = खतना
Communal ownership = सामाजिक स्वामित्व
Chattels = चलसम्पत्ति
Cultus = पूजा
Clairvoyance = दूरस्थ घटनाओं का दर्शन
Consecration = पवित्र संस्कार
Concubinage = रखैलवृत्ति
Cicisbeism = वेश्या वृत्ति
Cannibalism = नरभक्षणवाद
Chopper = कुल्हाड़ी
Coup-de-poing = मुष्टिदण्ड
Chisel = छेनी
Couldron = कड़ाहे व देगचे
Crucible = धातु गलाने की घरिया
Clivers = छुरा
Deposits = जमाव
Dryopithecus = वनवासी वानर (वानर श्रेणी)
Dolichociphalic = दीर्घकपाल
Dezoic = उप कल्प
Dormitory = शयनागार

Domestication = पशु पालन
Delinquency = अपराधवृत्ति
Diffusion = प्रसार
Discrete Variations = विभिन्न परिवर्तन
Ductless Glands = प्रणाली विहीन ग्रन्थिया
Dual clan organisation = दोहरेगोत्र सगठन
Divination = भविष्य कथन
Dibble = खोमनी व फाली
Disk = गोल टिकलिया
Demography = सामाजिक स्थिति का विवेचन
Dice = पासे का खेल
Eocene = आदिनूतन
Ethical = शीलाचार सम्बन्धी
Environment = पर्यावरण, वातावरण
Folithic = उप पाषाणयुगीय
Exogamy = बहिर्विवाह
Endogamy = अन्तर्विवाह
Extended Family = विस्तृत परिवार
Ecology = परिस्थितिशास्त्र
Eugenics = सुप्रजननशास्त्र
Eoanthropus Dowsani = उप मानव। पिल्टडाऊन (ससैक्स) में इस मानवाशेष की सम्प्राप्ति हुई थी।
Ethnic Group = नृवंशीय वर्ग
Elevation = उभार
Eccentricity = केन्द्रभ्रष्ट
Falklore = कथा कहानी
Fertilized ovum = निषिक्त अड
Fossilized Life = सुनिखातक-जीवन
Fossil = निखातक
Flake = शल्कल
Fetish = जडदेवता। दैवीय शक्ति के मा... इसका सम्मान किया जाता है।
Feral man = विजनपोषित मनुष्य

Frontal Bone = ललाटास्थि
Family = परिवार
Firedrill = छेदने का बरमा
Flail = मूसलकूटनी
Fileulae = गले की माला झालपीन
File = रेती
Funnels = धूम्रावस
Femur = उर्वस्थि
Genetics = उत्पत्ति विषयक शास्त्र
Glands = ग्रन्थियां
Glacial Phenomena = हिमसिद्धान्त
Guild = समूह-संघ
Genotype = प्रजनन रूप, पित्र्यैक
Genes = वाहकाणु
Gonad Gland = प्रजनन ग्रन्थि
Gossip = गपशप
Group Marriage = समूह विवाह
Group = वर्ग
Gouge = रुखानी
Homo Sapiens = मेधावी मानव
Homonidae = मानवाकार जाति
Hybridization = प्रसंकरण
Holocene = सर्वनूतन
Hylobatidae = वनचर वानर परिवार
Horse Tailed Monky = अश्वपुच्छ वानर
Howler Monkey = गर्जनकारी वानर (वानर श्रेणी)
Hypsiciphalic = उन्नतशिरीय
Hypothetical = उपकल्पात्मक
Hypergamy = अनुलोम व कुलीन विवाह
Homogenous = सजातीय
Hallucination = इन्द्रजाल
Hammer = हथौड़ा
Hemispherical = अर्ध गोलाकार

Habitat = प्राकृतिक निवास
Homo Primigenius = प्रथम मौलिक मानव
Heterogeneous = भिन्न जातीय गुण
Handicraft = शिल्प, दस्तकारी
Haka = नृत्य
Hoes = कुदालिया
Halberds = गडासा
Hilt = तलवार की मुठिया
Hand axe = हस्तपरशु
Haft = चाकू की मुठिया
Interglacial Period = अन्त हिमयुग
Insectivore = कीटभाजी
Ingroup = अन्तर्जनन
Interceding = अन्त समूह
Impersonal = अवैयक्तिक
Impact = संघात
Inherited = वंशानुगत
Isolation = पृथक्करण
Internal Secretion = अन्त स्राव
Individual Family = व्यक्तिगत परिवार
Individual Ownership = व्यक्तिगत-स्वामित्व
Initiation = दीक्षा
Iron Age = लौहयुग
Ingots = धातु की ईंटें
Inferior Ramus = अधर शृंग
Incisor Theeth = कर्तनक दन्त
Incorporeal Property = सर्वाधिकार सुरक्षित सम्पत्ति
Intra Cranial Capacity = आभ्यन्तरिक कर्परदेशता
Inheritance = उत्तराधिकार
Inferiority Complex = हीनभावना
Identity = तादात्म्यता
Incising tool = नक्काशी यन्त्र
Joking Relationship = औपहासिक सम्बन्ध

Junior Right = कनिष्टत्व-सम्पत्ति अधिकार
Joint Ownership = संयुक्त स्वामित्व
Jade = हरितवर्ण पाषाण
Kinship = रक्त सम्बन्ध
Kaliany = शैतान प्रेतात्मा
Lagathrix Monkey = सासकाकार वानर (वानर श्रेणी)
Lower Miocene = आदिमध्यनूतन
Lower Pliocene = आदिअतिनूतनकाल
Limnopithecus = सरोवरवर्ती वानर (वानर श्रेणी)
Lower oligocene = आदि आदिनूतनकाल
Lineal = वंशीय
Lissotrichi = सीधेबालों वाले
Leptorrhine = संकीर्ण नासिका
Lobola = कन्यामूल्य
Levirate = देवर सम्बन्ध
Land Tenure = भूमि अधिकार
Left hand Soul = वामपार्श्वी आत्मा
Lower Paleolithic = आदि पूर्वपाषाणयुग
Lance = भाला
Ladle = चम्मच
Lower jaw = निम्नहनु
Linage = वंश
Lunualae = नखचन्द्र
Lathe = खराद
Mammels = स्तनधारी
Metazoa = बहुकोषीय
Mesozoic = मध्यकल्प
Miocene = मध्यनूतन
Migration = प्रव्रजन
Mangaby = कृष्णवानर (वानर श्रेणी)
Macacus = लघुपुच्छ वानर (वानर श्रेणी)
Marmoset Monkey = लघुवानर (वानर श्रेणी)
Missing link = खोई कड़ी

Mesognathous = मध्यहन्वीय
Matriarchate = मातृसत्तात्मक
Marital Status = वैवाहिकपद
Matrilocal Residence = मातृगृह
Medicine man = ओझा
Mores = रूढियां
Mutation = अन्तः परिवर्तन
Microlithic = अणुप्रस्तर
Mesoprosope = मध्याकृति
Mesorrhine = मध्यनासिका
Molar Bone = गडास्थि
Millimetre = सहस्रांश मीटर
Melanoderm = कालारंग
Metabolism = चयापचय
Mollusca = चूर्णप्रावर
Mesocephalic = मध्यकपालीय
Mes lithic = मध्यपाषाणयुगीय
Mixed Family = मिश्रित परिवार
Maxilla = ऊपर की हन्वस्थि
Mandible = चर्वरयोग्य
Mana = दैवीयशक्ति। यह शब्द मैलानीशिया तथा पोलीनीशिया की भाषाओं से लिया गया है।
Moiety = अर्धांश
Morphology = शब्दों का आकार अध्ययन करने का शास्त्र
Musicology = संगीत के वर्णन तथा विश्लेषण का शास्त्र
Middle Pleistocene = मध्यप्रतिनूतन
Male Possessiveness = पुरुषाधिकार भावना
Matrinymic = मातृनामी
Monogamous Family = एक विवाही परिवार
Monitone = अवैयक्तिक शक्ति

Marginal Religion = अनधिकृत धर्म
Middle Paleolithic = मध्यपूर्वपाषाणयुग
Message Stick = सन्देशपट्टिका
Monoliths = एक ही ठोस पत्थर के बने हुए उपक
Megaliths = वृहत्पाषाणीय
Material Culture = भौतिक संस्कृति
Myth = कल्पित कथा
Nucleus = केन्द्र
Non human Primates = अमानवीय प्रधान वर्ग
Neolithic = नवपाषाण
Nasal Index = नासिकदेशना
Nordic Race = श्वेतांगजातीय एक रूप। ये उत्तरीय योरुप में वास करते हैं और गोरे तथा लम्बे हैं।
Nodule = ग्रन्थि
Nuclei (Tool) = उपकरण का केन्द्रीय भाग
Neandarthal man = नियण्डरथल मानव। जर्मनी के नियन्डर थल नामक स्थान मे इस मानवावशेष के अस्थिपंजर प्राप्त हुए थे।
Nomenclature = नामकरण विधि व परिभाषा
Neoanthropic = नवमानव
Natural Selection = प्राकृतिक चुनाव
Neolithic Culture = नवपाषाण संस्कृति
Notched Sidescraper = दाँतेदार पार्श्व मार्जन यन्त्र
Osteology = अस्थिविज्ञान
Oreopithecus = पर्वतीय बानर (बानर श्रेणी)
Orthognathous = अवक्र हन्वीय
Orthocephalic = मध्य कपालीय ऊँचाई
Orific = विवर
Occipital Bone = मस्तक के पिछले भाग की हड्डी
Orbit = [illegible]
Ordeals = कठोर परीक्षायें
Oval Coup-de-poing = अण्डाकार मुष्टिछुरा

Potlatch = एक विशेष भोज। प्राचीनकाल में ए व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, एक जा दूसरी जाति को विशेष भोज दि करती थी।
Proximity of Kinship = सामीप्य सम्बन्ध
Parietal Bone = पार्श्वकास्थि
Phratry = भ्रातृभाव
Parellel Cousin = दो भाइयो के बच्चे आपस में समानान्तर भतीजे कहलायेंगे।
Pituitary Gland = कफस्रावक ग्रन्थियाँ
Pygmy = वामनजाति
prolongation = विस्तीर्णता
Patrinymic = पितृनामी
Polygamic Family = बहुविवाही परिवार
Privileged Familiarity = विशेषाधिकार प्रयुक्त मेल जोल
Patent Property = अधिकृत सम्पत्ति
Primogeniture = ज्येष्ठत्व
Pseudo-Science = मिथ्या विज्ञान
Pictograph = चित्रसंकेत कला
Propithecanthropi = प्रथम वानरमानव
Perforator = बेधनयन्त्र, टेकुआ
Polyhedral Core = बहुभुजीय आन्तरक
Percussion Method = प्रतिघातविधि
Pressure Method = दबाव विधि
Planning Tool = चित्रलेखन यन्त्र
Pick = कुदाली
Polychrome = बहुरंगी
Pincer = छोटे मुंह की संडासी
Pendants = झुमके
Plane = बढ़ई का रन्दा
Pluvial = वर्षा सम्बन्धी
Pitchfork = सूखी घास की,टहनी सपाने का नोकदार डण्डा

Petroglyph = चट्टानों पर बनाये गए चित्र
Pyramids = शुण्डाकार स्तम्भ
Portage = मारवाहन मूल्य
Pebble Tools = चमकदार पत्थर के उपकरण
Phonetics = भाषा की स्वरध्वनि
Pelvis = श्रोणिका
Primate = प्रधानवर्ग
Paleozoic = आदिकल्प
Psychozoic = मानस कल्प
Pliocene = अतिनूतन
Primatology = प्रधानवर्ग
Platyrrhine = चौड़ीनासिकावाले
Proboscis = दीर्घनासिका वानर
Parapithecus = पूर्ववर्ती वानर (वानर श्रेणी)
Pliopithecus = अतिनूतन वानर (वानर श्रेणी)
Platyrrhine = चौड़ी नासिका
Paraboloid = टोप अनुवृत्त
Protoanthrophic = प्रथम मानव
Paleoanthropic = पुरातन मानव
Protozoa = एककोशीय
Patrilocal Residence = पितृगृह
Pheno Type = आकृतिरूप
Proterozoic = सुपुराजीवीय
Platycephalic = समतल कपाल
Polygamy = बहुविवाह
Polygyny = बहुपत्नीत्व
Polyandry = बहुपतित्व
Querns = चक्कियाँ
Quartz = बिल्लौरी पत्थर
Reptiles = सरीसृप, सर्पश्रेणी
Ramapithecus = राम वानर (वान
Reproduction = प्रजनन
Repulsion = अनाकर्षण

Real estate = वास्तविक अचल सम्पत्ति
Rituals = शास्त्रोक्त विधिविधान
Revelation = ईश्वरीय वचन
Resuscitate = पुनः जिलाना
Right hand Soul = मध्यपार्श्वी आत्मा
Rostro-Carinate = गरुडचञ्चु पाषाणान्तरक
Rapiers = छोटी तलवार
Rivets = धातु की चादर को बाँधने की कीलें
Rasps = मोटी रेती
Rake = भूमि को चिकना बनाने का हथियार हेंगी
Somatology = भौतिक विज्ञान
Simian Plate = वानर पट्टिका
Species = जाति
Simidae = समतलनासिका वानर परिवार
Spider Monkey = मर्कटक वानर (वानर श्रेणी)
Squirrel Monkey = चमरपुच्छ वानर (वानर श्रेणी)
Saki Monkey = लोमडीसम पुच्छ वानर (वानर श्रेणी)
Stock = स्कन्ध
Sivapithecus = शिव वानर (वानर श्रेणी)
Suitor = विवाहेच्छुक
Secularisation = ऐहिकीकरण
Shaman = मिथ्याधर्मी
Sheduled Tribe = अनुसूचित जनजातियां
Sub Type = उपरूप
Skull = कपाल, करोटि
Steatopygous = स्थूलनितम्ब
Superior Ramus = उत्तरशृंग
Sex Relation = यौन सम्बन्ध
Serology = लसीकाविद्या
Stratification = स्तरण
Static = स्थिर
Sangyriah = स्त्री का कोट। जादूगर खेल दिखाने से पूर्व स्त्री का कोट पहनता था।

| | |
|---|---|
| Sororate | = स्याला सम्बन्ध। यह Sorore शब्द Sister से अभिप्रेत है। |
| Sib | = सम्बन्ध, गोत्र |
| Sorcery | = जादू टोना |
| Suture | = खोपड़ी की हड्डी का जोड़ |
| Shinbone | = अग्रजघास्थि |
| Stable Type | = स्थिर रूप |
| Snails | = शम्बूक |
| Social Norm | = सामाजिक आदर्श |
| Supernaturalism | = अलौकिक शक्ति |
| Spell | = तन्त्र मन्त्र |
| Shifting Agriculture | = अस्थाई खेती |
| Stone slab | = पाषाणखण्ड |
| Sepulchre | = शव स्थान |
| Spokeshave | = रन्दा |
| Sculpturing Tool | = मूर्ति निर्माणयन्त्र |
| Stout endscraper | = सुदृढ़ नक्काशीयन्त्र |
| Spool Shaped | = गड़ारी आकृतिवाले |
| Spatulate Implement | = चम्मचाकार उपकरण |
| Socketed Picks | = छेददार फावड़े |
| Scythe | = खुर्पे |
| Temple | = शंखदेश |
| Toxonomy | = वनस्पति तथा पशुओं को वर्गों में विभक्त करने का सिद्धान्त |
| Taboo | = वर्जित व निषिद्ध |
| Technology | = यन्त्रशास्त्र |
| Totem | = गणचिन्ह |
| Taurodont | = वृषभदन्त |
| Tribe | = जनजाति |
| Tribal Community | = जनजाति समुदाय |
| Traces | = भेद |
| Technique | = प्रविधि |
| Talibun | = एक प्रकार का सिक्का जिससे चाम्बुमी लोग व्यापार करते थे। |

Titian Hair = विशेष केशवर्ण। श्वेतांग लोगों के बालों का रूप जो कुछ २ काले, चमकदार तथा रक्तवर्ण होते हैं।
Teknonymy = सन्तति नाम सस्मरण
Tort = व्यक्तिगत अपराध
Tortoise Core = कूर्मान्तरक
Tertiary = तृतीयक
Thyroid Gland = चुल्लिकाग्रन्थि
Thymus = हृदय पार्श्व ग्रन्थि
Trustee = निक्षेपधारी
Tabular Flint Nodule = चौरसपाषाण खण्ड
Toggles = खूटियाँ
Tongs = चिमटे
Trowels = करनी
Tomtom = एक प्रकार का नगाड़ा
Tambourine = खँजड़ी
Tweezers = छोटी चिमटियाँ
Upper Eocene = अन्तिमप्रतिनूतन
Ulotrichi = वर्तुलकेशीय
Unilateral = एक पक्षीय
Upper Pliocene = अन्तिम अतिनूतन
Upper Pleistocene = अन्तिम प्रतिनूतन
Vertebrate = पृष्ठवंशीय
Variability = विपर्यय अथवा अन्ययावरण
Veddas = एक जाति का नाम है जो लंका के आन्तरिक प्रदेशों में रहती थी
Woolly Monkey = घनकेशी वानर
Witchcraft = जादू टोना
Weregild = धनरा[illegible]
Yurta = झोपड़ी व कुटिया—जिसमें जादू प्रवेश करता था।
Zoological = प्राणिकीय
Zygomatic = गंडाप्रवर्धन